

श्रीः ।



ज्योतिषतत्त्वसुधारणव

भाषाटीकयाऽलंकृतः ।



बॉसबरेलीनिवासिबुधवरबॉकेलालतनयेन श्यामसुं-  
दरलालशर्मणा सम्पादितः ।



सोऽयम्

गंगाविष्णु-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

स्वकीये “ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ” स्टोम्-मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

सन्त १९८३, शके १८४८.

कल्याण-मुंबई.

अस्य ग्रन्थस्य सर्वेधिकारा प्रकाशकाणीना सन्ति ।

# समर्पणम् ।

“विफलान्यन्यशास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।  
प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्रं साक्षिणी चन्द्रभास्करी ॥”

सन्मिश्रविद्वद्वरपंडितश्रीज्वालाप्रसादानुमतोऽहमद्य ।  
श्रीकृष्णदासात्मजवैश्ववंशसुधाकरोद्भूतसुधाकराय ॥ १ ॥  
श्रीखेमराजाय वसुन्धराविख्यातामलजानयशस्वते च ।  
सुन्वापुराधिष्ठितवेङ्कटेशमुद्रालयाध्यक्षवराय चेमम् ॥ २ ॥  
ग्रन्थं सुधीभिर्बहुभावितार्थं भाषामयं व्याकृतिशालिनं च ।  
कृत्वार्ययेऽहं बहुतोपहेतोर्विद्वद्गुणस्वर्णकपायजोपम् ॥ ३ ॥  
दिष्ट्याऽहं सुबहुश्रमेण विषयानालोच्य सारं भृशं  
रत्नैरप्यमितं सुधापदमितं तत्त्वं-पुराविन्मतम् ।  
संगृह्यार्यसुभाषया व्यसप्तमयं किञ्चिज्ज्ञहेतोरलं  
ज्योतिस्तत्त्वसुधारणवेति पदवीमस्माद्गतम्भक्तम् ॥ ४ ॥  
आशासे चायमस्मच्छ्रममखिलमवेक्ष्यात्पूर्णातुरागः  
स्वस्थाने मुद्रयित्वा सकलजनमनस्तोपकं संविधाता ।  
तावन्मात्रेण तुष्टो निजनिखिलमहाश्रान्तिमेतां त्यजेहं  
देवो नस्तेन तुष्टो भवतु कुलपतिः श्रीगणेशो दिनेशः ॥ ५ ॥

पंडित श्यामसुन्दरलालशर्मा-

गुलाबनगर-बॉम्बेवरेली,

M. W. P.



# भूमिका ।

प्रिय पाठक गण ।

चिरकालमे मेरा यह विचार था कि, कोई ज्योतिषकी पुस्तकको सम्पादन करके ज्योतिषविद्याभिलाषियोंके प्रति प्रकाशितकरूं परन्तु शागेरक अस्वस्थतामे परिश्रम न कर सका संवत् १९५३ की, आदिमे जब इम ग्रन्थके लिखनेका प्रारम्भ किया तब समय पाय इस ग्रन्थके प्रबन्धको अवलोकन करके मुरादाबाद निवासी श्रीमान् जगद्विरूपात विठ्ठलशिरोमणि पाण्डित ज्वालाप्रसाद-मिश्रजीने अपनी इच्छा प्रकट की कि, आप हमारे सेठजी श्रीकृष्णदामात्मज खेमराजजीके अर्थ इम “ ज्योतिषतत्त्वमुधारण ” नामकग्रन्थको समर्पण करना, क्योंकि, यह ग्रन्थ हमारे सेठजीकेही योग्य है, उक्त पं० जीके कथनानुसार मैं इम ग्रन्थके पूर्ण करनेको उद्यत हुआ किन्तु कार्यमें प्रवृत्त होनेके उपरान्त अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए कि, जिनसे ग्रन्थ पूर्णहोनेकी असम्भावना थी. परन्तु श्रीगुरुदेवके चरणरुमलोंकी कृपामे निर्विघ्नतापूर्वक ग्रन्थ पूर्ण हुआ ।

इस ग्रन्थमें अनेक ज्योतिषकी पुस्तकोंका और विविधाचार्योंके मतोंका सार भाग ग्रहणकरके लिखा है और ज्योतिषसिद्ध जनोंके मुगमार्थ मापाटीका करादिया है तथा गूढ स्थलमें संस्कृत टिप्पणीभी सान्निभोगित की हैं ।

ज्योतिषे तंत्रशास्त्रे च विवादे वैद्यशास्त्रके ।

अर्थमात्रन्तु गृहीयान्नापशब्दं विचारयेत् ॥ १ ॥

ज्योतिषशास्त्र व तंत्रशास्त्र और विवाद तथा वैद्यक शास्त्रमें अर्थमात्रको ग्रहण करना उचित है यहाँ अपशब्दका विचार न करना चाहिये । इस प्राचीन श्लोकसे प्रगट होता है कि, कोई २ वचन व्याकरणानुसार अशुद्ध होनेसेभी परित्याग करनेके उचित नहीं है—आठकण्ठभी उक्तश्लोकके आशयको ग्रहण करेंगे ।

एक बात यहाँपर लिखना परमावश्यक है कि, जैसे आजकल प्रायः अभिमानी पाण्डितमानी नाममात्रके ज्योतिषी ऐसे हैं कि, जो अपनेही मुखसे अपनी प्रशंसा करते और अपनेको देवज्ञराज ज्योतिषी आदिनामसे प्रसिद्ध करते हैं—जिससे अपना हास्य बगरहे हैं—और धूर्तता करके अपनी प्रतिष्ठा चाहते हैं—यहाँ पर एक श्लोक स्मरण आताहै कि,—

( ६ )

“न गुणो न च सौभाग्यं स्वयं स्वगुणवर्णने ।  
यथैव च पुरन्ध्रीणां स्वहस्तकुचमर्दने ॥ ”

जैसे स्त्रीगण अपने हाथ अपने कुच मर्दें तो कुछ आनन्द नहीं होता किन्तु पीडा होती है—इसी प्रकार अपने मुख अपनी प्रशंसा करनेवालेकी प्रतिष्ठा नहीं होती किन्तु हास्यही होता है, इस लिखनेसे हमारा यह प्रयोजन है कि, मैं अपने मुख अपनी तथा अपने ग्रन्थकी प्रशंसा नहीं करता—जसा कुछ यह ग्रन्थ है आपके सम्मुखही है देख लीजिये कि, इसमें ज्योतिषके सबही विषय आगये हैं जैसे—मुहूर्त, प्रश्न, जातक, ताजक, स्वर आदि निश्चय है कि; इस एकही ग्रन्थके आधारसे पण्डितोंका ज्योतिष विषयमें सबही प्रयोजन सिद्ध होवेगा—किमधिकम् ।

रामवाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।

नवम्यां चन्द्रवारे च ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥

आप सज्जनोंका सद्गुरुहीत—

पंडित श्यामसुन्दरलाल शर्मा,

मुहह्या गुलाबनगर—वाँसवरेली.

३३. P.



जिनने बृहद्ग्रन्थोंका नाम तथा जिन आचार्योंका मत ग्रहण करके  
 इस ज्योतिषतत्त्वसुधारणव नामक ग्रन्थको लिपिबद्ध किया है-  
 तिन ग्रन्थों तथा आचार्योंके नाम निम्नलिखे प्रकार जानना ।

॥ ग्रन्थगणना ॥

ज्योतिषशास्त्रकी शुद्धि दीपिका.

ज्योतिषतत्त्व.

ज्योतिषमार.

ज्योतिषनागमप्रह.

वृत्त्याचिन्तामणि.

ज्योतिषरत्नमाला.

राजमार्त्तण्ड.

बृहद्राजमार्त्तण्ड.

भीमपराक्रम.

रत्नावली.

वाराही संहिता.

भुजबलभीम.

सुदृत्ताचिन्तामणि.

विष्णुधर्मोत्तर.

जातकामरण.

जातकचान्द्रिका.

श्रीपतिव्यवहारनिर्णय.

संवत्सर प्रदीप.

श्रीपतिव्यवहारममुषय.

श्राद्धतत्त्व.

लिखितत्त्व.

दीक्षातत्त्व.

स्मृति.

मृत्तिसार.

नवीन वर्द्धमानधृत स्मृति-

नारायणपद्धति.

कोष.

रत्नमाला.

ज्ञानमाला.

पाश्चात्यानिर्णयामृत.

बुद्धिप्रकाश.

पराशर्याप्य.

तत्त्वसागर.

मत्स्यसूक्त महातंत्र.

रुद्रयामलतंत्र.

सनत्कुभ्रांतंत्र.

योगिनीतंत्र.

कालोत्तरतंत्र.

विश्वसारतंत्र.

समयातंत्र.

आगमार्णवतंत्र.

बागहीतंत्र.

वीरतंत्र.

मुण्डमालातंत्र.

निरुचरतंत्र.

गीतमीपतंत्र.

नारदतंत्र.

तंत्रसार.

वेशम्पाधन संहिता.

रामार्चनचान्द्रिका.

यामल.

विष्णुयामल.

महामारत.

देवीपुराण.

विष्णु ,,

मत्स्य ,,

स्कन्द. ब्रह्म, पुराण.

ब्रह्मवैवर्त्त ,,

भविष्यपुराण.

गङ्गामृतग्रन्थधृत भविष्य पुराण.

नारदीय, गरुड, कूर्म, पद्म, बराह, पुराण.

नन्दिकेश्वरपुराण-इत्यादि.

# आचार्यगणना ।

चलभद्र  
भोजगंज  
वगहमिहिराचार्य  
भैरवाचार्य  
शङ्ख  
वृद्धमनु  
गर्ग  
मनु  
भागुरि  
हारीत  
याज्ञवल्क्य  
वृद्धवाशिष्ठ  
वाशिष्ठ  
शातातप  
जाबालि  
देवल  
गौतम  
वृद्धगौतम  
गोमिल

मार्किण्डेय  
पराशर  
यम  
यवनेश्वर  
पारस्कर  
माण्डव्य  
भृगु  
कौशिक  
वृहस्पति  
प्रचता  
दक्ष  
वृद्ध गार्ग्याचार्य  
काश्यप  
प्रभाकरभट्ट  
श्रीपातिभट्ट  
हृदयानन्द  
विद्याधरी  
स्मार्त्तमहामहोपाध्यायव्यास  
इत्यादि.



अथ ज्योतिषतत्त्वसुधारणवविषयाञ्जुक्रमणिका



| विषय.                         | पृष्ठ.  | विषय.                          | पृष्ठ   |
|-------------------------------|---------|--------------------------------|---------|
| ग्रन्थारम्भः ।                |         | अन्यच्च ....                   | .... १२ |
| ( १ ) तत्रादौमङ्गलाचरणम्      | .... १  | ग्रहाणांघातवः ....             | .... "  |
| ख्याद्युत्पत्तिः ....         | .... "  | ग्रहाणांसत्त्वादिगुणाः ....    | .... १३ |
| भेषादिराशयः ....              | .... २  | सामाह्यपायाधिकारिणः ....       | .... १४ |
| राशिपर्यायः ....              | .... "  | ग्रहेषुनृपाद्यः ....           | .... "  |
| भेषादीनांविशेषसंज्ञा ....     | .... ३  | पुरुषाद्याधिपा ग्रहाः ....     | .... "  |
| शूरसौम्यादिविवेकः ....        | .... "  | वेदाधिपाः ....                 | .... "  |
| पुण्यादिसंज्ञामेषादीनाम् .... | .... "  | रसाधिपाः ....                  | .... १५ |
| द्विचतुष्पदादिराशयः ....      | .... ४  | दिग्धिपतयः ....                | .... "  |
| कीटसरसृपराशयः ....            | .... "  | ग्रहाणामित्रभावः ....          | .... "  |
| ग्राम्यारण्यराशयः ....        | .... "  | ग्रहाणांसमभावः ....            | .... १६ |
| जलजराशयः ....                 | .... "  | तात्कालिकमित्रभावः ....        | .... "  |
| राशीनां बलज्ञानम्             | .... ५  | तात्कालिकशत्रुभावः ....        | .... १७ |
| अन्यच्च ....                  | .... "  | अधिमित्रभावः....               | .... "  |
| राशीनांस्थानबलम्              | .... ६  | राहुकेत्वोर्मित्रभावादिकम्.... | .... १८ |
| बलाबलविभागः                   | .... "  | ग्रहाणांपापसौम्यभावः ....      | .... १९ |
| पत्यादियोगादिनाराशिवलाबलम्    | .... ७  | ग्रहाणामृतबलम्                 | .... "  |
| वेश्यादिस्थानकथनम्            | .... "  | चन्द्रबलम् ....                | .... "  |
| पह्वर्गकथनम् ....             | .... ८  | ग्रहाणांबलविशेषः ....          | .... २० |
| क्षेत्राधिपतयः ....           | .... "  | मूलत्रिकोणानि                  | .... २१ |
| राशीनांह्रस्वतादिसंज्ञाः .... | .... "  | अन्यच्च ....                   | .... २२ |
| राशीनामधिष्ठातृदेवताः ....    | .... ९  | मूलत्रिकोणांशाः                | .... "  |
| अन्यच्च ....                  | .... "  | तद्गादिकथनम्                   | .... २३ |
| राशीना वश्यावश्यत्वे          | .... १० | अन्यच्च ....                   | .... २४ |
| राशीनांजातयः....              | .... "  | अपरञ्च                         | .... "  |
| भेषादीनां वर्णाः....          | .... "  | ग्रहाणांदृष्टयः                | .... २५ |
| नवग्रहसंज्ञाः ....            | .... ११ | ग्रहाणामदृष्टिस्थानानि         | .... २७ |
| ग्रहाणांसंज्ञान्तराणि         | .... "  | राहोर्दृष्टयः                  | .... "  |
| ग्रहाणांजातयः ....            | .... १२ | नक्षत्राणि                     | .... "  |
| ग्रहाणां वर्णाः ....          | .... "  | नक्षत्राधिपाः                  | .... २८ |
|                               |         | गणकथनम्                        | .... २९ |

| विषय                             | पृष्ठ.  | विषय.                      | पृष्ठ.  |
|----------------------------------|---------|----------------------------|---------|
| उग्रनक्षत्रगणः                   | .... २९ | साधिपशकुन्यादयः            | .... ४४ |
| ध्रुवनक्षत्रगणः                  | .... ३० | विष्टिभद्रा                | .... ४५ |
| चरनक्षत्रगणः                     | .... ३० | अन्यच्च                    | .... ४६ |
| लघुनक्षत्रगणः                    | .... ३० | अपरञ्च                     | .... ४७ |
| मृदुनक्षत्रगणः                   | .... ३० | प्रकारान्तरञ्च             | .... ४७ |
| तीक्ष्णनक्षत्रगणः                | .... ३१ | विष्टिभद्रोत्पत्तिः        | .... ४७ |
| मृदुतीक्ष्ण ( भिश्च ) नक्षत्रगणः | .... ३१ | विष्टिभद्राया अङ्गविभागः   | .... ४७ |
| अधोमुखनक्षत्रगणः                 | .... ३१ | अङ्गविभागफलम्              | .... ४७ |
| ऊर्ध्वमुखनक्षत्रगणः              | .... ३१ | भद्रास्थितिनिर्णयः         | .... ४७ |
| पार्श्वमुखनक्षत्रगणः             | .... ३२ | विष्टिभद्राफलम्            | .... ४८ |
| ताराशुद्धिः                      | .... ३२ | अन्यच्च                    | .... ४७ |
| पञ्चमादितारानिर्णयः              | .... ३३ | विष्टिभद्रायाः प्रतिप्रसवः | .... ४७ |
| जन्मतागफलम्                      | .... ३३ | नवग्रहसंज्ञा               | .... ४७ |
| ताराप्रतीकारः                    | .... ३४ | वारसंज्ञाः                 | .... ४७ |
| दिवसस्य पञ्चदश नक्षत्रमुहूर्ताः  | .... ३५ | वारगुणाः                   | .... ४७ |
| रात्रेः पञ्चदश नक्षत्रमुहूर्ताः  | .... ३५ | इति प्रथमस्तरंगः ।         |         |
| नक्षत्रमुहूर्तफलम्               | .... ३५ | ( २ ) विवाहः               | .... ५१ |
| नाडीनक्षत्राणि                   | .... ३५ | कन्यालक्षणम्               | .... ५१ |
| नाडीनक्षत्रफलम्                  | .... ३६ | कन्यायाः प्रतिप्रसवः       | .... ५२ |
| नाडीनक्षत्रपीडाशान्तिकथनम्       | .... ३७ | वैवाहिकनक्षत्रादयः         | .... ५७ |
| अशुभनक्षत्राणि                   | .... ३७ | विवाहे नोपिद्धमासाः        | .... ५९ |
| पुनक्षत्राणि                     | .... ३८ | प्रशस्तमासाः               | .... ५९ |
| राशिनक्षत्रविभागः                | .... ३९ | अन्यप्रकारमाह              | .... ५९ |
| तीर्थिनिरूपणम्                   | .... ३९ | प्रशस्ताप्रशस्तवारविभागः   | .... ५९ |
| तियिसंज्ञाः                      | .... ४० | अपरञ्च                     | .... ६० |
| तियोनां नन्दादिसंज्ञाः           | .... ४० | अन्यच्च                    | .... ६० |
| अन्यच्च                          | .... ४० | तत्र तिथयः                 | .... ६१ |
| सप्तविंशतिनित्ययोगाः             | .... ४१ | तत्र नक्षत्राणि            | .... ६१ |
| योगानां त्याज्यकालः              | .... ४२ | गण्डपादवर्जनम्             | .... ६२ |
| अन्यच्च                          | .... ४२ | त्याज्ययोगः                | .... ६२ |
| अपरञ्च                           | .... ४२ | अन्यच्च                    | .... ६३ |
| प्रकारान्तरञ्च                   | .... ४३ | तत्र लग्नाणि               | .... ६३ |
| एकादशकरणानि                      | .... ४३ | अपरञ्च                     | .... ६३ |
| करणपतयः                          | .... ४४ | अन्यच्च                    | .... ६४ |



| विषय.                        | पृष्ठ.  | विषय.                               | पृष्ठ.  |
|------------------------------|---------|-------------------------------------|---------|
| युतियाभिन्नवेधादिवर्जनम्     | .... ६४ | प्रकारान्तरञ्च                      | .... ७७ |
| यामित्रवेधः ....             | .... ७  | गणफलम्                              | .... ७८ |
| यामित्रवेधप्रतिप्रसवः ....   | .... ६५ | नाडीवेधः ....                       | .... ७  |
| यामित्रयुतिवेधः ....         | .... ७  | नाडीवेधफलम्                         | .... ७९ |
| अन्यञ्च ....                 | .... ६६ | सप्तसप्तमादिफलम्                    | .... ७  |
| फलम् ....                    | .... ७  | विषमसप्तमादिफलम्                    | .... ८० |
| युतियामित्रादीना प्रतिप्रसवः | .... ७  | राजयोटकप्रशंसा                      | .... ७  |
| सप्तशलाकावेधः ....           | .... ६७ | अरिपडष्टकम्                         | .... ७  |
| सप्तशलाकाचक्रम्              | .... ७  | मित्रपडष्टकम्                       | .... ८१ |
| अन्यप्रकारमाह                | .... ६८ | पडष्टकादिफलम्                       | .... ७  |
| अभिजिन्नक्षत्रम्             | .... ६९ | नवपञ्चकादौविशेषफलम्                 | .... ७  |
| सप्तशलाकावेधफलम्             | .... ७  | वर्णकथनम्                           | .... ८२ |
| अन्यञ्च ....                 | .... ७  | वर्णफलम्                            | .... ७  |
| इन्द्रपद्मगताः पापाः         | .... ७  | योटकापवादः                          | .... ७  |
| अन्यञ्च ....                 | .... ७० | अन्यञ्च ....                        | .... ७  |
| इन्द्रपद्मगतफलम्             | .... ७  | अपरञ्च ....                         | .... ८३ |
| तत्प्रतिप्रसवमाह             | .... ७१ | द्विर्द्वादशादौ विशेषः              | .... ७  |
| खर्जूरेवेधः ....             | .... ७  | भ्रमप्रमादोत्पन्नपडष्टकादिप्रतीकारः | .... ८४ |
| खर्जूरेचक्रम्                | .... ७२ | कन्यायाः ग्रहादिशुद्धिकथनम्         | .... ८५ |
| खर्जूरेवेधप्रतिप्रसवः        | .... ७३ | विवाहे अयनादिशुद्धिः                | .... ८६ |
| स्पष्टमाह                    | .... ७  | कालाशुद्धिः                         | .... ८७ |
| सुतहिबुकयोगः                 | .... ७  | अनादिदेवदर्शननिषेधः                 | .... ९४ |
| अन्यञ्च ....                 | .... ७४ | गयायां प्रतिप्रसवः                  | .... ९५ |
| अपरञ्च                       | .... ७  | अकालवृष्टिः                         | .... ७  |
| प्रकारान्तरञ्च               | .... ७  | विशेषमाह                            | .... ९७ |
| गोधूलियोगः                   | .... ७  | जन्ममासादौ विवाहादिनिषेधः           | .... ९८ |
| गोधूलिव्यवस्था               | .... ७५ | अपिच भोजदेवः                        | .... ७  |
| गोधूलियोगद्विविधः            | .... ७  | जन्ममासादौ विवाहादिप्रतिप्रसवः      | .... ७  |
| गोधूलिप्रशंसा                | .... ७  | अपिच                                | .... ७  |
| गोधूलिनिन्दा                 | .... ७६ | अन्यञ्च                             | .... ९९ |
| अन्यञ्च                      | .... ७  | अपरञ्च                              | .... ७  |
| योटकविचारः                   | .... ७७ | प्रकारान्तरञ्च                      | .... ७  |
| अन्यञ्च                      | .... ७  | अपिच                                | .... ७  |
| अपरञ्च                       | .... ७  | अन्यञ्च                             | .... ७  |

| विषय.                            | पृष्ठ.   | विषय.                                   | पृष्ठ.   |
|----------------------------------|----------|---|----------|
| विवाहादौ ग्रहशुद्धिः ....        | .... १०० | चन्द्रताराद्यशुभप्रतीकारः ....          | .... ११४ |
| अष्टवर्गस्तत्रादौरेष्टवर्गः—     | .... ”   | अन्यञ्च ....                            | .... ११५ |
| चन्द्रस्याष्टवर्गः ....          | .... १०१ | चन्द्रस्य विशेषः ....                   | .... ”   |
| कुजस्याष्टवर्गः ....             | .... १०२ | चन्द्रदोषोपशान्तिस्नानम्                | .... ”   |
| बुधस्याष्टवर्गः ....             | .... ”   | गोचरे चन्द्रशुद्धिफलम्                  | .... ”   |
| बृहस्पतेरष्टवर्गः ....           | .... १०३ | ग्रहाणां गोचरापवादफलम्                  | .... ११६ |
| शुक्रस्याष्टवर्गः ....           | .... ”   | ग्रहाणां दक्षिणवेषवामवेषो               | .... ”   |
| शनेरष्टवर्गः ....                | .... १०४ | तत्रादौ रवेः ....                       | .... ”   |
| लग्नाष्टवर्गः ....               | .... ”   | चन्द्रस्य ....                          | .... ११७ |
| अष्टवर्गगणनक्रमः ....            | .... १०५ | प्रकारान्तरेण वामवेषे चन्द्रशुद्धिः.... | .... ११८ |
| स्पष्टमाह ....                   | .... ”   | कुजशान्त्योः ....                       | .... ११९ |
| तत्ररेखाविन्दादीनां फलम्         | .... १०६ | बुधस्य ....                             | .... ”   |
| अन्यञ्च ....                     | .... ”   | गुरोः ....                              | .... १२० |
| अपरञ्च ....                      | .... ”   | शुक्रस्य ....                           | .... ”   |
| अविशुद्धाष्टवर्गस्य फलम्         | .... १०७ | दक्षिणवेषवामवेषयोः फलम्                 | .... १२१ |
| माण्डव्योक्तग्रहाणां गोचरशुद्धिः | .... ”   | दिवात्रिवाहनिषेधः ....                  | .... १२२ |
| वराहोक्तग्रहाणां गोचरशुद्धिः     | .... ”   | कुलिकारज्ययोगः ....                     | .... ”   |
| रविशुद्धिः ....                  | .... ११० | दग्धतिथयः ....                          | .... ”   |
| तत्फलम् ....                     | .... ”   | अन्यञ्च ....                            | .... १२३ |
| अन्यञ्चशुद्धिमाह                 | .... ”   | रात्रिषु चन्द्रस्थित्या दग्धतिथयः....   | .... १२४ |
| अपरञ्च ....                      | .... १११ | अवमध्यहस्पर्शो                          | .... ”   |
| निषिद्धरविफलम्                   | .... ”   | अपिच ....                               | .... १२५ |
| अन्यञ्च ....                     | .... ”   | अन्यञ्च ....                            | .... ”   |
| बृहस्पतिशुद्धिः ....             | .... ”   | अपरञ्च ....                             | .... १२६ |
| चन्द्रशुद्धिः । ....             | .... ११२ | त्र्यहस्पर्शनिन्दा                      | .... ”   |
| अपिच ....                        | .... ”   | एकीदने सोदराणां विवाहनिषेधः             | .... ”   |
| अन्यञ्च ....                     | .... ”   | अपिच ....                               | .... ”   |
| चन्द्रताराशुद्धिप्रशसा           | .... ”   | गुणवाहुल्येल्पस्त्याज्यः                | .... १२७ |
| अपिच ....                        | .... ११३ | बहुगुणसत्त्वेपि गुरुतरएकदोषःस्वीकार्यः” |          |
| अन्यञ्च ....                     | .... ”   | इति द्वितीयस्तरंगः                      |          |
| अपरञ्च ....                      | .... ”   | ( ३ ) नववध्वागमनम्                      | .... १२८ |
| प्रकारान्तरञ्च                   | .... ११४ | अन्यञ्च ....                            | .... ”   |
| अपिच ....                        | .... ”   | अपरञ्च ....                             | .... ”   |
| अन्यञ्च ....                     | .... ”   | प्रकारान्तरञ्च                          | .... ”   |
| प्रकारान्तरञ्च                   | .... ”   | विवाहे जादौ स्त्रियाः बालबन्धः          | .... १२९ |

| विषय.  | पृष्ठ. / विषय | पृष्ठ.                              |
|--|---------------|-------------------------------------|
| द्विरागमनम् ....                               | .... १२२      | अन्यञ्च .... १४३                    |
| अपिच ....                                      | .... "        | अपरञ्च .... "                       |
| अपरञ्च ....                                    | .... १३०      | प्रकारान्तरञ्च....                  |
| अन्यञ्च ....                                   | .... "        | प्रशस्ताप्रशस्तनक्षत्राणि .... १४४  |
| प्रकारान्तरञ्च ....                            | .... "        | अपिच....                            |
| अपरञ्च ....                                    | .... "        | अन्यञ्च .... १४५                    |
| अपिच ....                                      | .... १३१      | अपरञ्च .... "                       |
| पुनरापिच ....                                  | .... "        | प्रकारान्तरञ्च .... "               |
| अन्यञ्च ....                                   | .... "        | प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् .... " |
| अपरञ्च ....                                    | .... १३२      | गण्डपादवर्जनम् .... १४७             |
| प्रकारान्तरञ्च ....                            | .... "        | अशक्तौ तु भुजबलम् .... "            |
| अन्यञ्च ....                                   | .... "        | फलबन्धनम् .... "                    |
| अपरञ्च ....                                    | .... १३३      | पोडशवर्षीयागभिर्णाचिन्ता .... १४८   |
| प्रकारान्तरञ्च ....                            | .... "        | पुसवनम् .... "                      |
| द्विरागमने प्रशस्ततिथिकथनम् ....               | .... "        | पञ्चामृतम् .... १४९                 |
| तत्र निषिद्धतिथयः ....                         | .... १३४      | अन्यञ्च .... "                      |
| पितृगृहे भोजनानंतर पतिगृहे भोजन<br>निषेधः .... | .... "        | घटी ( खीरवस्त्र ) दानम् .... "      |
| आद्यरजोदर्शनेशुभाशुभवारादयः ....               | .... "        | सीमन्तोन्नयनम् .... १५०             |
| तत्रमासाः ....                                 | .... "        | अन्यञ्च .... "                      |
| तत्र तिथयः ....                                | .... १३५      | अपरञ्च .... "                       |
| अन्यञ्च ....                                   | .... १३६      | जातकप्रकरणम् .... १५१               |
| तत्रयोगादयः....                                | .... "        | तत्रादौ लग्नमानम् .... "            |
| अन्यञ्च ....                                   | .... "        | प्रसूतिज्ञानम्....                  |
| तत्र नक्षत्राणि ....                           | .... १३७      | लग्नज्ञानम् .... "                  |
| दिनचक्रम् ....                                 | .... १३८      | अन्यञ्च .... "                      |
| गर्भाधानम् ....                                | .... "        | अपरञ्च .... १५३                     |
| तत्रादौ पञ्चपर्वसु वर्ज्यानि ....              | .... "        | प्रकारान्तरञ्च .... "               |
| अन्यञ्च ....                                   | .... १३९      | अपिच .... "                         |
| निषेककालः ....                                 | .... "        | गृहस्वरूपम् .... "                  |
| गर्भाधाने युग्मायुग्मदिनव्यवस्था ....          | .... १४२      | अन्यञ्च .... १५४                    |
| अन्यञ्च ....                                   | .... "        | अपरञ्च ... .. "                     |
| अपरञ्च ....                                    | .... "        | दीपस्थितिज्ञानम् .... १५५           |
| प्रकारान्तरञ्च ....                            | .... "        | वर्तिकाज्ञानम् .... "               |
| अपिच ....                                      | .... १४३      | तेलज्ञानम् .... १५६                 |

| विषय.                              | पृष्ठ.   | विषय.                           | पृष्ठ.   |
|------------------------------------|----------|---------------------------------|----------|
| पद्वर्गनिर्णयः ग्रहाणां क्षेत्राणि | .... १५६ | गण्टारिष्टशान्तिः               | .... १६८ |
| होराविभागः                         | .... १५६ | मात्ररिष्टम्                    | .... १७० |
| अपिच                               | .... १५७ | अन्यञ्च                         | .... १७१ |
| होराफलम्                           | .... १५७ | अपरञ्च                          | .... १७१ |
| द्रेक्षाणाविभागः                   | .... १५७ | प्रकारान्तरञ्च                  | .... १७२ |
| अपिच                               | .... १५८ | अरिष्टमङ्गयोगः                  | .... १७२ |
| अन्यञ्च                            | .... १५८ | पित्ररिष्टम्                    | .... १७२ |
| नवांशाः                            | .... १५८ | अन्यञ्च                         | .... १७३ |
| वर्गोत्तमांशाः                     | .... १५९ | अपरञ्च                          | .... १७३ |
| अपिच                               | .... १५९ | प्रकारान्तरञ्च                  | .... १७३ |
| द्वादशांशाः                        | .... १५९ | अपिच                            | .... १७३ |
| अन्यञ्च                            | .... १६० | अन्यञ्च                         | .... १७३ |
| त्रिंशांशाः                        | .... १६० | अपरञ्च                          | .... १७४ |
| यामाङ्कविभागः                      | .... १६० | प्रकारान्तरञ्च                  | .... १७४ |
| अपिच                               | .... १६१ | पितृमातृहायोगः                  | .... १७४ |
| अन्यञ्च                            | .... १६१ | अपिच                            | .... १७५ |
| दण्डाः                             | .... १६१ | शिशोरिष्टम्                     | .... १७५ |
| विशेषः                             | .... १६२ | तत्रादौ सूर्यारिष्टम्           | .... १७५ |
| सूक्तिकाख्येण शिशोर्दिवादंलज्ञानम् | .... १६२ | चन्द्रारिष्टम्                  | .... १७६ |
| रोत्रिदण्डज्ञानम्                  | .... १६३ | चन्द्रारिष्टमङ्गः               | .... १७६ |
| अन्यञ्च                            | .... १६३ | पापयुक्तचन्द्रारिष्टम्          | .... १७६ |
| अपिच                               | .... १६३ | अन्यञ्च                         | .... १७७ |
| जन्मसमये पितुः परोक्षादिस्थिति     | .... १६४ | लग्नस्थक्षिणेन्द्रारिष्टम्      | .... १७७ |
| ज्ञानम्                            | .... १६४ | त्रिंशांशविशेषस्थचन्द्रारिष्टम् | .... १७८ |
| जारज (अन्यपुरुषजातसन्तान)          | .... १६५ | विविधभौमारिष्टम्                | .... १७८ |
| योगः                               | .... १६५ | बुधारिष्टम्                     | .... १७८ |
| अन्यञ्च                            | .... १६५ | गुर्वरिष्टम्                    | .... १७८ |
| अपरञ्च                             | .... १६५ | शुक्रारिष्टम्                   | .... १७९ |
| जारजयोगमङ्गः                       | .... १६६ | शन्यरिष्टम्                     | .... १७९ |
| अन्यञ्च                            | .... १६६ | शन्यरिष्टमङ्गः                  | .... १८० |
| बालस्य पितृमातृसादृश्यज्ञानम्      | .... १६६ | अपरञ्च                          | .... १८० |
| गण्टयोगः                           | .... १६७ | राह्वरिष्टम्                    | .... १८० |
| गण्टयोगकालः                        | .... १६७ | राह्वरिष्टमङ्गः                 | .... १८० |
| गण्टारिष्टकथनम्                    | .... १६७ |                                 |          |
| अन्यञ्च                            | .... १६८ |                                 |          |
| गण्टापवादः                         | .... १६८ |                                 |          |

| विषय.                       | पृष्ठ.   | विषय.                    | पृष्ठ.   |
|-----------------------------|----------|--------------------------|----------|
| जन्ममरणयोर्मोक्षज्ञानम्     | .... २१० | अपरञ्च                   | .... २२६ |
| स्त्रीणां रूपादिनिरूपणम्    | .... "   | प्रकारान्तरञ्च           | .... २२७ |
| सप्तमस्थपापग्रहफलम्         | .... २११ | अपिच                     | .... "   |
| वैषम्यादियोगः               | .... "   | ग्रहदोषे मूलादिधारणविधिः | .... "   |
| अपिच                        | .... २१२ | अन्यच्च                  | .... २२८ |
| ग्रहाणां गोचरभोगकालः        | .... २१३ | ग्रहदोषे स्नानविधिः      | .... "   |
| ग्रहाणां गोचरफलम्           | .... २१४ | इति तृतीयस्तरङ्गः ।      |          |
| तत्रादी रवेः                | .... "   | ( ४ ) जातकर्म            | .... २२९ |
| चन्द्रस्य                   | .... "   | अपिच                     | .... "   |
| मङ्गलस्य                    | .... २१५ | अन्यच्च                  | .... "   |
| बुधस्य                      | .... २१६ | नामकरणम्                 | .... २३० |
| बृहस्पतेः                   | .... "   | अपिच                     | .... २३१ |
| अन्यच्च                     | .... २१७ | अन्यच्च                  | .... "   |
| शुक्रस्य                    | .... "   | अपरञ्च                   | .... "   |
| शनेः                        | .... २१८ | प्रकारान्तरञ्च           | .... २३२ |
| राहोगोचरफलम्                | .... २१९ | निष्क्रामणम्             | .... "   |
| केतोगोचरफलम्                | .... "   | अपिच                     | .... २३३ |
| गोचरफलकालः                  | .... "   | ताम्यूलमक्षणम्           | .... "   |
| अन्यच्च                     | .... २२० | भूम्युपवेशनम्            | .... "   |
| चन्द्रचाखशाद्ग्रहशुद्धिः    | .... "   | अन्नप्राशनम्             | .... २३४ |
| तागादिशुद्ध्याद्ग्रहशुद्धिः | .... २२१ | अपिच                     | .... "   |
| नाशत्रिकीदशाफलम्            | .... "   | पञ्चपथाणि                | .... २३५ |
| दशानिरूपणम्                 | .... २२२ | अन्यच्च                  | .... "   |
| दशाफलकथनम्                  | .... "   | अपरञ्च                   | .... "   |
| दशाफलनिर्णयः                | .... २२३ | प्रकारान्तरञ्च           | .... "   |
| अष्टमचन्द्रादिदशाफलम्       | .... "   | अन्यच्च                  | .... २३६ |
| शिरश्छेदादिकारकदशा          | .... "   | अपरञ्च                   | .... "   |
| दशाष्टम्                    | .... २२४ | प्रकारान्तरञ्च           | .... "   |
| पापग्रहान्तर्दशाकथनम्       | .... "   | चूलाकरणम्                | .... २३७ |
| अपिच                        | .... "   | अन्यच्च                  | .... २४० |
| दशान्तर्दशाशोरपवादः         | .... "   | निरयक्षीरम्              | .... २४१ |
| निराष्टमतीकारः              | .... २२५ | अन्यच्च                  | .... २४३ |
| ग्रहदोषे द्रव्यधारणविधिः    | .... २२६ | कणवेपः                   | .... २४४ |
| अन्यच्च                     | .... "   | अन्यच्च                  | .... २४६ |

| विषय.                               | पृष्ठ. | विषय.                                  | पृष्ठ |
|-------------------------------------|--------|--|-------|
| विद्यारम्भः ....                    | २४६    | अन्यञ्च ....                           | २७१   |
| उपनयनम् ....                        | २५०    | अपरञ्च ....                            | २७२   |
| अन्यञ्च ....                        | २५१    | प्रकारान्तरञ्च ....                    | "     |
| प्रशस्तमासाः ....                   | "      | गजाद्यारोहणम् ....                     | "     |
| प्रशस्ताप्रशस्तातिथ्यादयः ....      | २५२    | अन्यञ्च ....                           | २७३   |
| अपिच ....                           | "      | अपरञ्च ....                            | "     |
| अन्यञ्च ....                        | "      | गजवाजिक्रियादन्तकल्पनक्रियानिषेधः"     |       |
| अपरञ्च ....                         | २५३    | नवदोलाद्यारोहणम् ....                  | २७४   |
| प्रकारान्तरञ्च ....                 | "      | खड्गादिधारणम् ....                     | "     |
| अन्यञ्च ....                        | "      | क्रयविक्रयनक्षत्राणि ....              | "     |
| अपिच ....                           | २५४    | ऋणप्रयोगनिषेधः ....                    | २७५   |
| अपरञ्च ....                         | "      | नृपदर्शनम् ....                        | "     |
| जन्मलग्नादिप्रशस्ता ....            | "      | नाट्यारम्भः ....                       | "     |
| शुक्रास्तादिसमये उपनयनादिनिषेधः २५६ |        | करग्रहणम् ....                         | २७६   |
| ग्रहणे विशेषः ....                  | २५८    | वास्तुलक्षणम् ....                     | "     |
| तथाच ....                           | २५९    | वास्तुभूमिद्वयः....                    | २७७   |
| अनध्यायकथनम् ....                   | २६०    | वास्तुभूमेःपूर्वादिदिग्जलाशयकथनम् "    |       |
| उप नयनकालः ....                     | २६२    | पुष्करिण्याारम्भः ....                 | २७८   |
| समावर्तनम् ....                     | २६४    | पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा ....            | "     |
| आग्निग्रहणम् ....                   | २६५    | अपिच ....                              | २७९   |
| घनुविद्यारम्भः ....                 | "      | अपरञ्च ....                            | "     |
| मोक्षदीक्षा ( सन्यासग्रहणम् ) ....  | २६६    | वृक्षादिरोपणम् ....                    | "     |
| नृपाभिषेकः ....                     | २६७    | गृहप्रशस्तवृक्षारोपणम् ....            | २८०   |
| नववस्त्रपरिधानम् ....               | "      | अपिच ....                              | "     |
| अन्यञ्च ....                        | २६८    | अन्यञ्च ....                           | "     |
| प्रकारान्तरञ्च ....                 | "      | अपरञ्च ....                            | २८१   |
| अपरञ्च ....                         | "      | वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ....       | "     |
| नववस्त्रक्षारसयोगनिषेधः ....        | २६९    | गृहारम्भः ....                         | "     |
| अन्यञ्च ....                        | "      | गृहारम्भेनिषिद्धानिषिद्धमासादिभूम् २८२ |       |
| रत्नशंखादिधारणम् ....               | "      | नक्षत्रशुद्धजावासगृहनिर्णयः ....       | २८५   |
| अन्यञ्च ....                        | २७०    | नागशुद्धचागृहस्थाननिर्णयः ....         | २८६   |
| अपरञ्च ....                         | "      | अपिच ....                              | "     |
| प्रकारान्तरञ्च ....                 | "      | अन्यञ्च ....                           | २८७   |
| अपिच ....                           | २७१    | नागशीर्षादीगृहकरणफलम् ....             | "     |
| नवशय्याद्यपभोगः ....                | "      | अपिच ....                              | "     |

| विषय.                                   | पृष्ठ.   | विषय.                                 | पृष्ठ. |
|---|----------|---------------------------------------|--------|
| एकशालादिव्यवस्था ....                   | .... २८८ | गृहारम्भे सूत्रादीनामारोपणस्थानम् ३०० | ३००    |
| अपिच ....                               | .... २८  | गृहस्य वामस्य द्वारकरणव्यवस्था.... २१ | २१     |
| अन्यच्च ....                            | .... २१  | गृहारम्भे सूत्रच्छेदादौ दोषः .... ३०१ | ३०१    |
| अपरञ्च ....                             | .... २८९ | गृहार्थदानोपस्थापितकुम्भभङ्गेदोषः २१  | २१     |
| प्रकारान्तरञ्च ....                     | .... २१  | सूत्रदाने कुब्जादिदर्शननिषेधः .... २१ | २१     |
| अपिच ....                               | .... २१  | सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम् ३०२   | ३०२    |
| देवगृहारम्भोविशेषः ....                 | .... २९० | गृहप्रवेशः .... २१                    | २१     |
| अपिच ....                               | .... २१  | अपिच .... २१                          | २१     |
| अन्यच्च ....                            | .... २१  | अन्यच्च .... ३०२                      | ३०२    |
| अपरञ्च ....                             | .... २१  | अपरञ्च .... २१                        | २१     |
| तृणकाष्ठादिसञ्चयनिषेधः ....             | .... २९१ | प्रकारान्तरञ्च .... २१                | २१     |
| अपिच ....                               | .... २१  | गृहप्रवेशाविधिः .... ३०४              | ३०४    |
| वास्तुग्रहकरणकथनम् ....                 | .... २१  | पारावतादिपोषणकथनम् .... २१            | २१     |
| अपिच ....                               | .... २९२ | गृहपार्थेनिषिद्धवृक्षाः .... २१       | २१     |
| अन्यच्च ....                            | .... २१  | तत्फलम् .... ३०५                      | ३०५    |
| अपरञ्च ....                             | .... २१  |                                       |        |
| प्रकारान्तरञ्च ....                     | .... २१  |                                       |        |
| अपिच ....                               | .... २९३ |                                       |        |
| आयतादिलक्षणम् ....                      | .... २१  |                                       |        |
| वास्तुनक्षत्राणि ....                   | .... २१  |                                       |        |
| वास्तुशाशयः ....                        | .... २१  |                                       |        |
| गृहारम्भे लोकपालादिपूजा ....            | .... २९४ |                                       |        |
| गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा ....            | .... २१  |                                       |        |
| पूर्वादिचतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवाः .... | .... २९५ |                                       |        |
| वायव्यादिचतुष्कोणे गृहबन्धध्रुवाः २१    | २१       |                                       |        |
| गृहाणामायकथनम् ....                     | .... २१  |                                       |        |
| गृहाणा सामान्यनक्षत्राणि ....           | .... २९६ |                                       |        |
| गृहाणामायज्ञानमायव्ययफलं च ....         | .... २१  |                                       |        |
| गृहाणा नक्षत्रव्यवस्था....              | .... २९७ |                                       |        |
| शुल्कोद्दारादिकथनम् ....                | .... २१  |                                       |        |
| दिग्बिन्दुशेषे शुल्यस्थितिनिर्णयः ....  | .... २९९ |                                       |        |
| अपिच ....                               | .... २१  |                                       |        |
| अन्यच्च ....                            | .... २१  |                                       |        |
| गृहारम्भे हस्तप्रमाणम्....              | .... ३०० |                                       |        |
|   |          | इति चतुर्थतरङ्गः ।                    |        |
|   |          | ( ९ ) देवतावन्दनम् .... ३०६           | ३०६    |
|   |          | सामान्यदेवताप्रातिष्ठा .... ३०६       | ३०६    |
|   |          | अपिच .... २१                          | २१     |
|   |          | अन्यच्च .... २१                       | २१     |
|   |          | वासुदेवप्रातिष्ठा .... ३०७            | ३०७    |
|   |          | हरेःप्रातिष्ठायातिथिविशेषकथनम्.... २१ | २१     |
|   |          | महेशादिप्रातिष्ठा .... ३०८            | ३०८    |
|   |          | परीक्षाकरणम् .... २१                  | २१     |
|   |          | अपिच .... २१                          | २१     |
|   |          | दीक्षाग्रहणम् .... ३०९                | ३०९    |
|   |          | दीक्षायामासकथनम् .... २१              | २१     |
|   |          | दीक्षायामासकथनम् .... ३१०             | ३१०    |
|   |          | अपिच .... २१                          | २१     |
|   |          | तत्रसरोक्तदीक्षाकालकथनम् .... ३१३     | ३१३    |
|   |          | तत्रमासनिर्णयः .... २१                | २१     |
|   |          | अपिच .... २१                          | २१     |
|   |          | दीक्षायाम्निर्णयः .... ३१४            | ३१४    |
|   |          | अपिच .... ३१५                         | ३१५    |
|   |          | अन्यच्च .... २१                       | २१     |

| विषय.                      | पृष्ठ. | विषय.                          | पृष्ठ. |
|----------------------------|--------|--------------------------------|--------|
| अपरञ्च                     | ३१५    | अन्यञ्च                        | ३२६    |
| प्रकारान्तरञ्च             | ३१६    | महाविद्याविषयेविशेषफलकथनम्.... | "      |
| दीक्षायाःवारनिर्णयः        | "      | दशमहाविद्याकथनम्               | "      |
| दीक्षायाःनक्षत्रनिर्णयः    | "      | अष्टादशमहाविद्यामाह            | ३२७    |
| अपिच                       | ३१७    | गुरुकृपायादीक्षाकालः           | "      |
| अपरञ्च                     | "      | अपिच                           | ३२८    |
| दीक्षायाःयोगकथनम्          | ३१८    | पुरश्चरणकालः                   | "      |
| दीक्षायाःकरणनिर्णयः        | "      | अन्यञ्च                        | ३२९    |
| दीक्षायाःलग्ननिर्णयः       | "      | अपरञ्च                         | "      |
| अपिच                       | "      | प्रकारान्तरञ्च                 | "      |
| अपरञ्च                     | ३१९    | अन्यञ्च                        | ३३०    |
| दीक्षायाःपक्षनिर्णयः       | "      | शान्तिपुष्टिकथनम्              | "      |
| निषिद्धमासादौतिथिविशेषाणां |        | हलप्रवाहः                      | "      |
| प्राशस्त्यमाह              | "      | अपिच                           | ३३१    |
| अन्यञ्च                    | ३२०    | अन्यञ्च                        | "      |
| अपिच                       | "      | अपरञ्च                         | "      |
| अपरञ्च                     | ३२१    | प्रकारान्तरञ्च....             | ३३२    |
| अपिच                       | "      | बीजवपनम्                       | "      |
| अन्यञ्च                    | ३२२    | अपिच                           | "      |
| अपरञ्च                     | "      | अन्यञ्च                        | ३३३    |
| प्रकारान्तरञ्च             | "      | अपरञ्च                         | "      |
| अन्यञ्च                    | "      | प्रकारान्तरञ्च                 | ३३४    |
| अपरञ्च                     | ३२३    | अन्यञ्च                        | "      |
| सूर्यग्रहणेविशेषमाह        | "      | अपिच                           | "      |
| तारादिविद्यायाविशेषः       | "      | अपरञ्च                         | ३३५    |
| अन्यञ्च                    | ३२४    | प्रकारान्तरञ्च                 | "      |
| सूर्यग्रहणसमकालकथनम्       | "      | अन्यञ्च                        | "      |
| अशोकाष्टम्याविशेषमाह       | "      | धान्यच्छेदनम्                  | ३३६    |
| अन्यञ्च                    | "      | अपिच                           | "      |
| अपिच                       | "      | धान्यादिसंस्थापनम्             | ३३७    |
| युगाद्यायाविशेषः           | ३२५    | धान्यादिविबर्द्धनज्ञानम्       | "      |
| अकालादौदीक्षानिषेधः        | "      | धान्यमहाध्यायदिकथनम्           | "      |
| अन्यञ्च                    | "      | अपिच                           | ३३८    |
| अकालेप्रतिप्रसवमाह         | "      | अन्यञ्च                        | "      |



| विषय                           | पृष्ठ.   | विषय                           | पृष्ठ    |
|--------------------------------|----------|--------------------------------|----------|
| वार्षिकप्रधान्यमूल्यज्ञानम्    | .... ३३८ | तत्रवारफलम्                    | .... ३५२ |
| अपिच                           | .... ३   | शनिमगलवारण्यक्तजन्मनक्षत्रफलम् | ”        |
| अन्यत्र                        | .... ३   | दोषशान्तिः                     | .... ३५३ |
| गोशालाप्रवेशः                  | .... ३३९ | सर्वोपधयः                      | .... ३   |
| गोवाजादिनिषेधः                 | .... ३   | इति पञ्चमस्तरङ्गः ।            |          |
| गणमानयनादि                     | .... ३४० | (६) यात्राप्रकरणम्             | .... ३५४ |
| वृष्टिज्ञानम्                  | .... ३   | निषिद्धप्रकरणम्                | .... ३   |
| ग्रहमस्थानेनसद्योवृष्टिज्ञानम् | .... ३४१ | निषिद्धतिथिकथनम्               | .... ३   |
| नवात्रम्                       | .... ३   | अपिच                           | .... ३५५ |
| अपिच                           | .... ३४२ | शुभाशुभतिथिकथनम्               | .... ३   |
| अन्यत्र                        | .... ३४३ | अपिच                           | .... ३   |
| अपरश्च                         | .... ३   | वारादिकथनम्                    | .... ३५६ |
| प्रकारान्तरश्च                 | .... ३   | अपिच                           | .... ३   |
| अपिच                           | .... ३४४ | अन्यत्र                        | .... ३५७ |
| अन्यत्र                        | .... ३   | अपरश्च                         | .... ३   |
| अपरश्च                         | .... ३   | प्रकारान्तरश्च                 | .... ३   |
| पनावधयश्चादिकथनम्              | .... ३४६ | दिगधिपतिथनम्                   | .... ३५८ |
| अपिच                           | .... ३   | अपिच                           | .... ३   |
| अन्यत्र                        | .... ३   | अन्यत्र                        | .... ३   |
| नवात्राकरणेनिन्दाकथनम्         | .... ३४७ | दिशाशूलकथनम्                   | .... ३   |
| अपिच                           | .... ३   | प्रकारान्तरश्च                 | .... ३५९ |
| नवाग्रभोजनविधिः                | .... ३४८ | वारखेलाकथनम्                   | .... ३   |
| अपिच                           | .... ३   | कालादिकथनम्                    | .... ३६० |
| अन्यत्र                        | .... ३   | अपिच                           | .... ३   |
| अपरश्च                         | .... ३४९ | कालराश्यादिकथनम्               | .... ३६१ |
| जन्मदिनवृत्त्यम्               | .... ३   | अपिच                           | .... ३   |
| अपिच                           | .... ३६० | तरफलम्                         | .... ३   |
| अन्यत्र                        | .... ३   | कुष्ठिकालः                     | .... ३६२ |
| अपरश्च                         | .... ३   | यामार्द्धं माहेन्द्रादिदण्डः   | .... ३   |
| प्रकारान्तरश्च                 | .... ३   | तरफलम्                         | .... ३६३ |
| अन्यत्र                        | .... ३६१ | योगिनीश्रियातिकथनम्            | .... ३   |
| जन्मतिथेरभमदिनेलाभेव्यवस्था    | .... ३   | न्याय्यकालकथनम्                | .... ३   |
| अपिच                           | .... ३   | अपिच                           | .... ३६४ |
| गणप्रवेशमतिविषयम्              | .... ३६३ | अन्यत्र                        | .... ३   |

| विषय                        | पृष्ठ   | विषय                                 | पृष्ठ |
|-----------------------------|---------|--------------------------------------|-------|
| दक्षिणायनेनिशि सौम्यायने च  |         | यमघण्टयोगादीनांत्याज्यकाल            | ३८१   |
| दिवायात्रा कथनम्            | ... ३६४ | विष्टादीनां प्रतिप्रसव               | "     |
| राहुभ्रमणचक्रम्             | ... ३६५ | त्रिपुक्कस्योगः                      | "     |
| यात्रिकनक्षत्राणि           | ... ३६६ | तत्फलम्                              | ३८२   |
| अन्यञ्च                     | ... "   | कालवण्टयोगः                          | "     |
| अपरञ्च                      | ... "   | महादग्धाकथनम्                        | "     |
| निन्दनक्षत्राणि             | ... "   | दग्धादिकथनम्                         | ३८३   |
| अपिच                        | ... ३६७ | अपिच                                 | "     |
| नक्षत्राणां दिग्ब्यवस्था    | ... "   | अन्यञ्च                              | "     |
| नक्षत्रशूलकथनम्             | ... ३६८ | अपरञ्च                               | "     |
| अपिच                        | ... "   | देशविशेषे रोगव्यवस्था                | ३८४   |
| यात्रायां निषिद्धनक्षत्राणि | ... "   | यात्रादिपुक्करणव्यवस्था              | "     |
| निषिद्धनक्षत्राणां विशेषः   | ... ३७० | यात्रायां नक्षत्रात्करणव्यवस्था      | ३८५   |
| अपिच                        | ... "   | निषिद्धलम्बकथनम्                     | "     |
| नक्षत्रामृतयोगकथनम्         | ... ३७१ | शुभाशुभलम्बकथनम्                     | ३८६   |
| अपिच                        | ... ३७२ | अपिच                                 | ३८७   |
| अमृतयोगप्रशंसा              | ... "   | अन्यञ्च                              | "     |
| उत्पातादियोगः               | ... ३७३ | अपरञ्च                               | "     |
| क्रकचयोगः                   | ... "   | प्रकारान्तरञ्च                       | ३८८   |
| अन्यञ्च                     | ... "   | यात्रायां लग्नस्य निषिद्धग्रहनिर्णयः | ३८९   |
| क्रक्यादिप्रतिप्रसवमाह      | ... ३७४ | यात्रायां लग्नस्य होराज्ञानम्        | ३९०   |
| तिथिनक्षत्रयोगे मृत्युयोग   | ... "   | यात्रायां द्रेष्णाणफलम्              | "     |
| वारनक्षत्रयोगे मृत्युयोग    | ... ३७५ | धरित्रीयोगः                          | ३९१   |
| आनन्दयोग                    | ... "   | क्विसुयोग                            | ३९२   |
| अमृतसिद्धियोग               | ... "   | विनासमरणयोग                          | "     |
| प्रशस्तयोगः                 | ३७६     | विनारणयोग                            | "     |
| यमघण्टयोगः                  | "       | अरिप्रध्वंसयोग                       | ३९३   |
| अमृतयोगः                    | "       | शशिनरेन्द्रयोग                       | "     |
| तिथ्यमृतयोगः                | ३७७     | जिगम्रतरणयोग                         | "     |
| अन्यञ्च                     | ३७८     | अरिशूलयोग                            | ३९४   |
| सिद्धियोगः                  | "       | अस्विनतेषयोग                         | "     |
| रत्नादुरयोग                 | "       | अरिषोपाभरणयोग                        | "     |
| पापयोगः                     | ३७९     | यात्रायां राजयोग                     | ३९५   |
| विषयोगः                     | "       | यात्रायां राजयोगफलम्                 | "     |
| अपिच                        | "       | धनवृद्धियोग                          | "     |
| सिद्धिदग्धापापयमघण्टयोगः    | "       | फलाप्तियोगः                          | ३९६   |
|                             |         | यात्राजनिधीयोग                       | "     |
|                             |         | योगोऽतियोगो योगातियोगश्च             | "     |

| विषय.                           | पृष्ठ.   | विषय.                           | पृष्ठ.   |
|---------------------------------|----------|---------------------------------|----------|
| योगयात्रादीनाव्यवस्था .         | .... ३९७ | स्वप्रदर्शनफलम् ....            | .... ४१० |
| उपादियोगेयात्रा ....            | .... "   | यात्रासमये वायोः शुभाशुभलक्षणम् | ४११      |
| दिग्विशेषे उपादिनिन्दा          | .... "   | अपिच ....                       | .... "   |
| अपिच, उपाकालः, ....             | .... ३९८ | <b>इति षष्ठस्तरङ्गः ।</b>       |          |
| अभिजित्कथनम्, अन्यज्ञ           | .... ३९९ | ( ७ ) नौकाघटनम्, अन्यज्ञ        | .... ४१२ |
| अभिजित्कथनम् ...                | .... "   | घटनस्थानात्रौ ऋचालनम्           | .... ४१३ |
| एकाङ्गीयोगः ....                | .... "   | नौकायात्रा ....                 | .... "   |
| सर्वाङ्गीयोगः, तत्फलम्          | .... ४०० | वाणिज्यकरणम् ....               | .... "   |
| घातचन्द्रवर्णनम्, फलम्          | .... ४०१ | कुसीदकरणम् ....                 | .... "   |
| अकालवृष्ट्यादीयात्रानिषेधः      | .... "   | नक्षत्रविशेषेरोगकथनम्           | .... ४१४ |
| यात्रादिगमनविधिः ....           | .... "   | अपिच ....                       | .... ४१५ |
| अपिच, यात्राविधिः ....          | .... ४०२ | प्रतीकाराभीमपराक्रमे ....       | .... ४१६ |
| यात्रानन्तरं निषिद्धानि         | .... "   | विरुद्धनक्षत्रादी रोगकथनम्      | .... ४१७ |
| वृहद्यात्रायाम् ....            | .... ४०३ | अन्यज्ञ . ....                  | .... "   |
| अपिच ....                       | .... "   | अपरश्च, अपिच, अन्यज्ञ           | .... ४१८ |
| अन्यज्ञ ....                    | .... ४०४ | अपरश्च ....                     | .... ४१९ |
| यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा      | .... "   | प्रकारान्तरश्च ....             | .... "   |
| अपिच ....                       | .... "   | सर्पदंशे नक्षत्रवशेन मरणम्      | .... "   |
| यात्रासमयेऽशुभदर्शनम्           | .... ४०५ | अपिच ....                       | .... "   |
| अपिच ....                       | .... "   | मरणप्रदरोगकथनम्, अपिच           | .... ४२० |
| क्षतनिषेधः ....                 | .... १०६ | रोगस्य शुभाशुभप्रश्नः ....      | .... "   |
| श्रुतादिफलम् ....               | .... "   | रोगोपशमनयोगकथनम्                | .... ४२१ |
| अपिच ..                         | .... "   | प्रश्नेमरणसूचकयोगी              | .... "   |
| विष्णोरित्यधिकृत्याह ....       | .... ४०७ | परदेशस्थरोगादिज्ञानम्           | .... "   |
| यात्रासमयेपरकीयस्थीयस्त्रीपुरु- | .... "   | मनुष्यादीनांपरमायुःप्रमाणम्     | .... ४२२ |
| पयोग्नादनादिनिषेधः ....         | .... "   | अन्यज्ञ ....                    | .... "   |
| अपिच ....                       | .... "   | अपरश्च, प्रकारान्तरश्च ....     | .... ४२३ |
| अन्यज्ञ ....                    | .... "   | गतायुःपरीक्षा ....              | .... "   |
| अपरश्च ....                     | .... "   | औपधकरणम् ....                   | .... ४२४ |
| प्रकारान्तरश्च ....             | .... ४०८ | औपधभक्षणम्                      | .... "   |
| अपिच ....                       | .... "   | अन्यज्ञ . ....                  | .... ४२५ |
| यात्रासमयेशुभदर्शनादि           | .... "   | अपरश्च ....                     | .... "   |
| यात्रासमयेमाहृत्यव्यदर्शनप्रशं- | .... "   | प्रकारान्तरश्च ....             | .... "   |
| नादि शुभफलानि ....              | .... ४०९ | अपिच ....                       | .... ४२६ |

| विषय                               | पृष्ठ | विषय                                | पृष्ठ |
|------------------------------------|-------|-------------------------------------|-------|
| वस्तिविरेचनवेध                     | ४२६   | तत्फलम्                             | ४४२   |
| आरोग्यस्नानम्                      | "     | नाडीनक्षत्रेपापग्रहसंक्रमणफलम्      | ४४३   |
| अन्यच्च अपरञ्च                     | ४२७   | नाडीनक्षत्रेपापग्रहसंक्रमणस्नानम्   | "     |
| आरोग्यस्नाननिषेध                   | "     | जन्मनक्षत्रेणरविसंक्रान्तिफलम्      | ४४४   |
| तैलाभ्यङ्गनिषेध, प्रतिप्रसन        | ४२८   | जन्मनक्षत्रेणरविसंक्रान्तिस्नानम्   | "     |
| अन्यच्च                            | "     | गोचरेऽशुभरखीम्नानम् अपिच,           | "     |
| साधारणकार्येकारादिव्यवस्था         | ४२९   | दिवाभेदसंक्रान्तौ तथा रात्रौ तुलासं |       |
| अपिच                               | "     | क्रान्तौफलम्                        | ४४५   |
| अन्यच्च                            | "     | शनिभगलधारेमहासंक्रमणफलम्            | "     |
| अपरञ्च                             | "     | ग्रहणम् चन्द्रग्रहणम्               | "     |
| रविसंक्रान्तिकथनम्, अन्यच्च        | ४३०   | सूर्यग्रहणम्                        | ४४६   |
| अपरञ्च                             | "     | नवांशविशेषेवर्षणाद्विषयनम्          | "     |
| संक्रान्तिक्रम                     | ४३१   | ग्रहणसमयेराहुवर्षणफलम्              | ४४७   |
| संक्रान्तीनांनक्षत्रघटितमन्दादि    | "     | ग्रहणदर्शननिषेध, अपिच               | ४४८   |
| संज्ञाकथनम्                        | "     | अन्यच्च, अपरञ्च                     | ४४९   |
| संक्रान्तीनांपुण्यकाल              | ४३२   | प्रभारान्तरञ्च                      | ४५०   |
| तत्रादीदिशासंक्रमणव्यवस्था         | ४३३   | अपिच अन्यच्च                        | "     |
| रात्रिसंक्रमणेपुण्यकालव्यवस्था     | ४३४   | अपरञ्च                              | ४५१   |
| अन्यच्च                            | "     | ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम्              | "     |
| मृगककेटयोरर्द्धरात्रिसंक्रमणम्     | ४३६   | ग्रहणगतनाडीनक्षत्रदोषोपे            |       |
| मन्दादिभेदेनेसंक्रान्तीनांपुण्यकाल | "     | शमनस्नानम्                          | "     |
| महाजयाकथनम्                        | ४३७   | सूर्यग्रहणेविशेष                    | ४५२   |
| संक्रान्त्यादिपुण्यसंस्कारणफल      | "     | चन्द्रग्रहणेविशेष                   | "     |
| कथनम्                              | ४३८   | स्वराश्यादौग्रहेरियते ग्रहणफलम्     | "     |
| विपुत्रादिसञ्चारगणनम्              | ४३९   | ग्रहणफलम्                           | ४५३   |
| तत्रादौ महाविपुत्रस्य              | "     | ग्रहणदोषप्रतिप्रसनकथनम्             | ४५४   |
| तत्फलम्                            | "     | ग्रहणे भोजनव्यवस्था                 | "     |
| जलविपुत्रगणनम्, तत्फलम्            | ४४०   | अपिच                                | ४५५   |
| उत्तरायणसंक्रमणगणनम्               | "     | अन्यच्च                             | "     |
| तत्फलम्                            | ४४१   | ग्रहणात्पूर्वभोजननिषेधमाह           | "     |
| दक्षिणायनसंक्रान्तिगणनम्           | "     | चन्द्रस्यग्रस्तोदधेविशेषमाह         | "     |
| तत्फलम्                            | "     | बालवृद्धातुराविषये                  | ४५६   |
| विष्णुपदीसञ्चारगणनम्               | "     | ग्रहणादौस्नानमाह अपरञ्च             | "     |
| तत्फलम्                            | ४४२   | राहुदर्शनेनतत्रकथनम्                | "     |
| पडशतिसञ्चारगणनम्                   | "     |                                     |       |

| विषय                              | पृष्ठ | विषय                           | पृष्ठ |
|-----------------------------------|-------|--------------------------------|-------|
| ग्रहणसुस्तिरानम्                  | ४५७   | चूटामणियोग                     | ४६९   |
| ग्रहणादापर्युपितात्रनर्जनम्       | "     | नारायणीयोग                     | "     |
| वेधग्रहणदर्शनफलम्                 | "     | नारायणीयोगेकृत्य तथा फलम्      | "     |
| वेधेतरग्रहणदर्शननिषेध             | "     | अपिच                           | "     |
| हूर्मादिफलम्                      | ४५८   | वारुणीकथनम्                    | ४७०   |
| तस्यफलम्                          | "     | महावारुणी                      | "     |
| अन्यञ्च                           | "     | ब्रह्मपुत्रस्नानेशेषयोगकथनम्   | ४७१   |
| अपरञ्च                            | ४५९   | बुधाष्टमीयोग दशहरा             | "     |
| तत्फलम्                           | "     | अपिच                           | ४७२   |
| हेमतादीसूक्पफलम्                  | "     | अन्यञ्च अपरञ्च                 | "     |
| वारफलम्                           | ४६०   | प्रकारान्तरञ्च                 | ४७३   |
| अम्बुवाचीवाल                      | ४६१   | महाज्येष्ठियोगकथनम् अन्यञ्च    | "     |
| अपिच                              | "     | अपरञ्च                         | "     |
| अपरञ्च                            | "     | प्रकारान्तरञ्च                 | ४७४   |
| अन्यञ्च                           | "     | अपिच                           | "     |
| अपरञ्च                            | ४६२   | प्रश्ने घातमूलजीवज्ञानम्       | ४७५   |
| प्रकारान्तरञ्च                    | "     | शुभाशुभप्रश्न                  | ४७६   |
| अम्बुवाच्यानिपिद्धानिपिद्भवर्माणि | "     | लाभालाभप्रश्न                  | ४७७   |
| अन्यञ्च                           | "     | नष्टलाभादिप्रश्न               | ४७८   |
| अपरञ्च                            | ४६३   | प्रवासादिज्ञानप्रश्न           | ४७९   |
| प्रकारान्तरञ्च                    | "     | अथाशकादिनाहतद्रव्यादीनाज्ञानम् | ४८१   |
| वचनान्तरञ्च                       | "     | पुत्रजनमादिप्रश्न              | ४८५   |
| अम्बुवाचीमाषिकृत्याह              | ४६४   | त्रिवाहज्ञानप्रश्न             | "     |
| अपिच अपरञ्च                       | "     | प्रश्नेबालादिचिन्ताकथनम्       | "     |
| प्रकारान्तरञ्च                    | "     | प्रश्नेआत्मसमादिचिन्ताकथनम्    | ४८३   |
| युगाद्याकथनम्                     | ४६५   | वर्षासमये श्रुष्टिज्ञानम्      | ४८८   |
| अपिच अपरञ्च                       | "     | मरणे त्रिपुष्करदोष             | "     |
| अक्षया                            | ४६६   | ग्रन्थान्तरञ्च                 | ४८९   |
| पुण्यतरा                          | "     | अथफलम्                         | "     |
| मन्त्रन्तरा                       | "     | अन्यञ्च                        | ४९६   |
| सद्बोदययोग                        | ४६७   | तत्फलम्                        | "     |
| वचनान्तरञ्च                       | "     | त्रिपुष्करप्रतिप्रश्न          | "     |
| व्यतीपातयोग                       | ४६८   | त्रिपुष्करदोषशांति             | "     |
| अपिच वचनान्तरेष                   | "     | इति सप्तमस्तरङ्ग ।             |       |

नमः श्रीजगदीश्वराय ।

अथ ज्योतिषतत्त्वसुधारणवः ।

भाषार्थसहितः ।

ग्रन्थारम्भः ।

तत्रादौ वस्तुनिर्देशात्मकमंगलम् ।

इयामसुन्दरेणाशु गुरोः पदकमलयुगं प्रणतेन मया ।

वाँसबरेलीमधिवसता बुधवाँकेलालशर्मतनयेन ॥

ज्योतिषतत्त्वसुधारणमेतत्प्रकाटितमल्पधियः सुमुदे ।

नैकज्योतिषाचार्यमतं सुविमृश्य लिखितमिदमस्तु शिवम् ॥

तत्र रघ्याद्युत्पत्तिकथनम् ।

तमस्तोमावृते विश्वे जगदेतच्चराचरम् ।

राशिग्रहोडुसंचातं सृजन्सूर्योभवत्तदा ॥ १ ॥ ( क )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—यह विश्व संसार सृष्टिके पूर्वमें घोर अन्धकारमय था, उस समय परम पुरुष भगवान् स्यावरजङ्गमात्मक जगत्में, मेघ, वृष, प्रभृति द्वादश राशि, नव ग्रह

( क ) सूर्योत्सृष्टिमाह—तमस्तोमावृतइति । सृष्टे पूर्व विश्वे ससारे तम समूहेनाच्छा-  
दिते सति एतच्चराचर स्यावरजगमात्मक जगत् मेघादिराशीन् नवग्रहान् नक्षत्रसमूहांश्च  
सृजन् परमपुरुषः सूर्यसज्जोऽभवत् । सर्वान् सरतीति सूर्य इति निपातः । सुवतीति वा  
पाठः । तथाच सूर्यसिद्धान्ते । “वासुदेवः पर ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः । स्रुपणोऽपः  
सृष्ट्वादी तासु बीजमवाप्तुमत् । तदण्डमभ्यन्द्य सर्वमन्तस्तमोवृतम् । तत्रानिरुद्धं प्रथम  
व्यक्तीभूतः सनातनः । हिरण्यगर्भो भगवानेव च्छन्दसि पठ्यते । आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्  
प्रसूत्या सूर्य उच्यते । पर ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽय सवितेति च । पर्येति भवनान्येप  
भावधन्वतभावन । सोऽहकारो जगत्सृष्टौ ब्रह्माणमसृजत्प्रभु । ततो देवान् च दत्त्वा सैन-  
लोकपितामहः । प्रतिष्ठाप्याशु मध्येऽथ स्वय पर्येति भावयन् ॥ ” इत्यादि सौरसृष्टिरुक्ता ।  
अत्र च सर्वनामत्वात् विश्व इति पद कथमिति विरोधे काश्चिद् विश्वे विश्वाभावे प्रलये इति  
सिद्धान्तयाति तदशुद्धम् । नच तत्पुरुषस्योत्तरपदवादेति न्यायेन अविश्वस्मिन्नित्येव भवति ।  
अव्ययीभावसमासेऽपि विश्वाभावस्य तमस्तोमावृतत्वविशेषण न सद्यत्ते सर्वेपा नाम सर्व-

और ममस्त नक्षत्रोंकी मृष्टि चक्रके सूर्यनामसे प्रकाशित होते हुए ॥ १ ॥

अथ मेपादिगणिकथनम् ।

सप्तविंशतिभैज्योतिश्चक्रं स्तिमितवायुगम् ।

तदकांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणान्वितः ॥ २ ॥ (ख)

अर्थ—सप्तविंशति ( २७ ) नक्षत्रयुक्त ज्योतिषचक्र निश्चलवायुके ऊपर स्थित है, इस चक्रके द्वादशभागके एक भागमें अर्थात् सवा दो नक्षत्रमें एक एक राशि होती है ॥ २ ॥

मेपवृपमिथुनकर्कटसिंहाः कन्या तुलाथ वृश्चिकभम् ।

धनुरथ मकरः कुम्भो मीन इति चराशयः कथिताः ॥ ३ ॥ (ग)

अर्थ—मेपादि द्वादशराशिके नाम कहते हैं—मेप, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन इन्हींका द्वादशराशिके नाम जानो ३ ॥  
अथ राशिपर्यायः ।

राशिनामानि च क्षेत्रं भृक्षं गृहनाम च ।

मेपादीनाञ्च पर्यायं लोकादेव विचिन्तयेत् ॥ ४ ॥ (घ)

अर्थ—अब राशिके पर्याय कहते हैं—क्षेत्र, ऋक्ष और गृहनाम अर्थात् गृह-पर्याय शब्द मेपादि द्वादशराशिवाचक ( क्षेत्र, म, प्रभृति प्रत्येक शब्दमें ही राशिको जानो ) अन्यान्य पर्याय लोकपरम्परासे जाने जाते हैं ॥ ४ ॥

—नाम इति व्युत्पत्त्या प्रत्येकं यदा विश्वशब्देन सर्वशब्दवत्सकलमभिधीयते तदेव सर्वनामत्वम् । अथ पुनर्विश्वशब्दोऽखण्डेकरूपस्य जगतो वाचकः संज्ञाशब्दत्वात् सर्वनाम इति वदन्ति । तथाच सारावल्याम् “तमसावृते समन्ताञ्ज्वलभूते मूतले ततोऽकस्मात् । उदितो भगवान्भानुः प्रकाशयन्प्रभवेन ॥” वृद्धाम्बु न विद्यते विश्वं यस्मिन् काल इति कालपद-मन्त्राध्याहार्यमित्याहुः । इति ॥

( रा )—ज्योतिश्चक्रे राशिभिर्भागमाह—सप्तविंशतित्यादि । सप्तविंशतनक्षत्रैर्वृत्तं ज्योतिश्चक्रं स्यात् स्तिमितवायुगं स्तब्धवायोरुपश्लिष्यतम् । तथाच सूर्यसिद्धान्ते । “मचक्रं घ्रुवयो-रुध्वमाक्षितं प्रवहानिलेः” इति । तस्य चक्रस्य द्वादशांशो राशिर्भवेत् । किम्भूतः नवमि-नक्षत्रपादेऽश्विनिं सपादनक्षत्रद्वयात्मकमित्यर्थः । इति ॥

( ग )—राशिनामान्याह—मेपाति । सुगमम् । इति ।

( घ ) राशिसेज्ञामाह—राशीति । क्षेत्रादीनि राशीनां मेपादीनां नामानि संज्ञाः स्युः गृह-नाम गृहेशमसपादीनित्यर्थः । मेपादीनान्तु पृथक् पृथक् पर्यायं लोकाञ्जात्या विचि-न्तयेत् । यथा “मेपस्य आविष्कारादिसाट्टस्याच्छागपर्यायोऽपि” तथाच बह्वृत्तात्के—“छाग-तिहृषेत्प्र ” इति पृथस्य ५ गवादि मिथुनस्य च सुगमादे । इति ॥

अथ मेषादीनां विशेषसंज्ञाः ।

क्रियतावुरिजितुमकुलीरलेयपाथेयूककौर्पाख्याः ।

तौक्षिकआकोकेरोहृद्रोगश्चान्त्यभश्चेत्थम् ॥ ५ ॥ ( ङ )

अर्थ-अब राशिगणकी विशेषसंज्ञा कही जाती है, यथा-मेषका दूसरा नाम क्रिय, वृषका दूसरा नाम तावुरि, मिथुनका जितुम, कर्कका कुलीर, सिंहका लेय, कन्याका पाथेय, तुलाका यूक, वृश्चिकका कौर्प, धनका तौक्षिक, मकरका आकोकेर, कुम्भका हृद्रोग और मीनका दूसरा नाम अन्त्यभ है ॥ ५ ॥

अथ क्रमौम्यादिविवेकः ।

ऋरोऽथ सौम्यः पुरुषोऽङ्गना च ओजोऽथ युगमं विपमः समश्च ।

चरस्थिरद्व्यात्मकनामधेया मेषादयोऽमी क्रमशःप्रदिष्टाः ६ ( च )

अर्थ-मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ इन छः राशियोंको क्रूर पुरुष ओज और विपम राशि कहते हैं । वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन छः राशियोंको सौम्य, अङ्गना युगम और सम जानो, मेष, कर्क तुला और मकर इन चारोंको चर राशि कहते हैं वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन चारोंको स्थिर राशि कहते हैं और मिथुन, कन्या, धन और मीनको द्व्यात्मक द्विस्वभाव राशि कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ पुण्यादिविवेकः ।

पुण्यश्च पुष्करश्चैव आधानाख्यस्तथैव च ॥

श्रुत्या वृत्त्या भवन्त्येते नित्यं द्वादशराशयः ॥ ७ ॥

अर्थ-अब मेषादि राशिकी पुण्यादिसंज्ञा कही जाती है, यथा-मेष, कर्क, तुला, और मकर इनकी पुण्य संज्ञा है । वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ इन कई एक राशियोंकी पुष्करसंज्ञा है । मिथुन, कन्या, धन और मीन इन राशियोंकी आधानसंज्ञा है ॥ ७ ॥

( ङ ) व्यवहारायै यथाक्रम विशेषद्वादशसंज्ञा आह-क्रियेति । आकोकेर इति मकरस्य संज्ञा हृद्रोगः कुम्भस्य संज्ञा इत्यर्थः । इति ॥

( च ) राशीनां क्रूरदिसंज्ञा आह-क्रूरइति । मेषादयो राशयः यथाक्रम क्रूरसौम्यादि-संज्ञकाः प्रथमः क्रूरः द्वितीयः सौम्यः ततस्तृतीयः क्रूरश्चतुर्थः सौम्य इत्यादि । तथा प्रथमः पुरुषः द्वितीया स्त्रीत्यादि । तथा प्रथम ओजः द्वितीयो युगमः इत्यादि ओजशब्दोऽयमदन्तः । तथाच बृहज्जातके “ओजोर्देव पुरुषांशकेषु बलिभिः” इत्यादि । तत्रैव “युगमे चन्द्रमासि तयोजभवने” इति । तथा । प्रथमो नियमः द्वितीयः सम इत्यादि । तथा प्रथमश्चरः द्वितीयः स्थिरः तृतीयो द्व्यात्मक इति । एव कर्कटश्चरः सिंहः स्थिरः कन्या द्व्यात्मक इत्यादि । द्व्यात्मकश्चरस्वभावः स्थिरस्वभावश्च तत्र चरसमीपादौ चरः स्थिरसमीपादौ स्थिरमिति । तथाच देवज्ञवज्रभाख्यायाम् “द्वितीयो लघोपगते चरस्थिरौज फल ददतः” इति ॥



अथ द्विपदचतुष्पदादिराशिकथनम् ।

मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्याश्चापपूर्वभागश्च ।

मृगधनुराद्यन्तार्द्धे वृषाजसिंहाश्चतुश्चरणाः ॥ ८ ॥ ( छ )

अर्थ—मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वार्द्ध भागको द्विपदराशि कहते हैं मकरका पूर्वार्द्ध, धनका शेषार्द्ध, वृष, मेष और सिंह इनको चतुष्पद राशि कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ कौटसंरीसृपराशिकथनम् ।

कर्कटवृश्चिकर्माना मकरान्त्यार्द्धेऽथ कौटसंज्ञाः स्युः ।

वृश्चिकराशिमुनिभिः सरीसृपत्वेन निर्दिष्टः ॥ ९ ॥ ( ज )

अर्थ—कर्क, वृश्चिक, मीन और मकरके शेषार्द्धको कौटराशि कहते हैं अधिकतर वृश्चिकराशिको सरीसृप कहा है ॥ ९ ॥

अथ ग्राम्यारण्यराशिकथनम् ।

ग्राम्या मिथुनतुलास्त्रीचापालिषटा निशासु वृषमेषौ ।

मकरादिमार्द्धेसिंहौ वन्यौ दिवसेऽजवृषभौ च ॥ १० ॥ ( झ )

अर्थ—मिथुन, तुला, कन्या, धन, वृश्चिक और कुम्भ इन छः राशियोंको ग्राम्यराशि कहते हैं और रात्रिमं वृष और मेषको ग्राम्य राशि कहा है मकरके प्रथमार्द्ध और सिंहको वन्यराशि कहते हैं और दिनमं मेष और वृषको वन्य राशि कहा है ॥ १० ॥

अथ जलजराशिकथनम् ।

जलजौ कर्कटमीनो मकरान्त्यार्द्धेऽथ शिवमते कुम्भः ।

राशोः स्वरूपमेतन्मार्कण्डेयादिभिःकथितम् ॥ ११ ॥ ( ञ )

अर्थ—कर्क, मीन और मकरके शेषार्द्धको जलज राशि कहते हैं और शिवके

( छ ) राशियोंनां द्विपदादिविभागमाह—मिथुनेति । मकरस्याद्यार्द्धे धनुषोऽन्त्यार्द्धे वृषाजसिंहाश्चतुष्पदा इत्यर्थः । इति ॥

( ज ) कौटसरीसृपसंज्ञामाह—कर्कयेति । मृगमम् । इति ॥

( झ ) ग्राम्यारण्यसंज्ञामाह—ग्राम्येति । स्त्री वन्येत्यर्थः । मिथुनतुलाकन्याधनुर्वृश्चिक-कुम्भा एते ग्राम्याः । निशासु राशिषु वृषमेषौ मकरस्याद्यार्द्धे सिंहश्च वन्याः दिवसे तु वृष-मेषावाण्येतिवत्यर्थः । इति ॥

( ञ ) जलजराशिमहाह—जलजागिति । शिवमत इत्यनेनेकस्य सम्मत्यान्येषां सर्वेषा-मसम्मतत्वं प्रतिपादितम् । इति ॥

मतसे कुम्भकोभी जलज राशि कहा है । मार्कण्डेयप्रभृति ऋषियोंने कर्तृक-  
राशिके स्वरूपको इस प्रकारसे कीर्त्तन किया ॥ ११ ॥

अथ बलज्ञानम् ।

• दिवा स्याद्विपदो राशिर्बली नक्तं चतुष्पदः ।

सन्ध्यायां कीटसंयुक्ता बलवन्तो जलोद्भवाः ॥ १२ ॥ ( ट )

अर्थ-दिनमें द्विपद अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनका पूर्वार्द्ध  
यह सब राशि बलवान् होती हैं, रात्रिमें चतुष्पद अर्थात् मकरका पूर्वार्द्ध, धनका  
शेषार्द्ध, वृष, मेष और सिंह यह बलवान् होती हैं, सायंकालमें कीट अर्थात् कर्क,  
वृश्चिक, मीन और मकरका शेषार्द्ध बलवान् होती हैं ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

गोजाश्विकर्कमिथुनाः सभृगा निशाख्याः

पृष्ठोदयाविमिथुनाः कथितास्त एव ।

शीषोदया दिनवलाश्च भवन्ति शेपा

लग्ने समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥ १३ ॥ ( ठ )

इति पृष्ठोदयादिविवेकः ।

अर्थ-वृष, मेष, धन, कर्क, मिथुन और मकर यह छः राशि रात्रिमें बलवान्

( ट ) राशीनां कालबलमाह-दीपिकायाम् । “ दिनभागे मनुष्यास्तु निशाथान्तु  
चतुष्पदाः । सन्ध्याद्वयेऽवशेषास्तु बलिनः परिकीर्त्तिताः ” ॥ अस्य व्याख्या । राशीनां  
कालबलमाह-दिनभाग इति । दिनभागे दिवाभागे इत्यर्थः । अत्राविपादमात्रं बलमिति ।  
एतान्युक्तानि सर्वबलानि राशीनां लग्नस्य च कर्त्तव्यानि इति ।

( ठ ) राशीनां दिग्बलमाह-दीपिकायाम् “ नरास्तु बलिनो लग्ने चतुर्थे जलराशयः ।  
सप्तमे वृश्चिकश्चैव दशमे पशवस्तथा ॥ ” अस्य व्याख्या । राशीनां दिग्बलमाह-  
नरास्त्विति । लग्नगता मिथुनतुलाघटक्रन्धाधनुःपूर्वार्द्धां नराशयः पूर्वदिग्बलिनः यतो  
राशीनामुदयो लग्नमुदयश्च पूर्वं एव भवति । लग्नाच्चतुर्थस्या मीनकर्कटमकरपगर्द्धां  
जलराशयः उत्तरदिग्बलिनः यस्मान्चक्रलग्नक्रमेण लग्नाच्चतुर्थराशिरेव उत्तरे तिष्ठति  
सप्तमस्यो वृश्चिकराशिः पश्चिमदिग्बली यतो लग्नात् सप्तमराशिरस्तमेति अस्तैश्च पश्चि-  
मदिग्भवेति लग्नाद्दशमस्याः पशुराशयो मेषपशुसिंहधनुःपराहर्मकरपूर्वार्द्धां दक्षिणदिग्बलिनः  
यतो लग्नाद्दशमराशिरेव दक्षिणादिशि तिष्ठति एतेन स्वकीयस्वकीयसप्तमस्या नरजलादि-  
राशयोऽबला नरा लग्नसप्तमे बलहीनाः जलजा लग्नदशमे बलहीनाः चतुष्पदा लग्नाच्चतुर्थे  
बलहीनाः लग्नगतश्च वृश्चिको बलहीन इति । एतेषां नरादीनामन्यत्र गतानामनुपाताविधिना  
बलान्वयानेनव्यानीति । तेनच लग्नगतानां जलजपशुगशीनामर्द्धबलमिति प्रथेजनम् । तथाच-

होती हैं और मिथुनको छोड़कर इन समस्त राशियोंकी पृष्ठादयसंज्ञा है । उक्त-  
राशिभिन्न और समस्तराशियोंकी तीर्षादयसंज्ञा है और दिनमें बलशाली होती  
है । किन्तु मीनगात्रि दिन क्या रात्रि सब समयमेंही समबलशाली है ॥ १३ ॥

अथ राशीनां स्थानबलम् ।

केन्द्रस्थान्प्रबलात्राशीन्मध्यान्पणफराश्रितान् ।

आपोक्लिमगतान्गार्गिः सर्वान्हीनबलान्वदेत् ॥ १४ ॥ ( ङ )

अर्थ—अब स्थानबल कीर्तन करते हैं । केन्द्रस्थानमें स्थित समस्त राशि बल-  
वान् होती हैं, इसी प्रकार पणफरस्थानमें स्थित राशिगण मध्यबली होती हैं  
और आपोक्लिम स्थानमें स्थित समस्त राशि हीनबल होजाती हैं, इस प्रकार  
गर्गमुनिने कहा है ॥ १४ ॥

अथ बलाबलविभागः ।

यस्तु यस्यांशपो राशेस्तद्बलादंशको बली ।

अवलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः ॥ १५ ॥ ( ङ )

अर्थ—जिस राशिके जो ग्रह नवांशाधिपति हों उनके बलानुसारही नवांश-

—श्रीपतिमट्टः । “नृभे क्षिपेच्चरूपक चतुष्पदादयोर्दलं न कीटभे तु किञ्चन स्फुट भवेत्तनो-  
र्बलम्” जलजचतुष्पदकीटभसंज्ञाः सुखदशमास्तगता बलवन्तः। निजनिजसप्तमगा विचलास्ते  
तद्वितरगैस्तुपात्ताविधिः स्यात्। यथा यात्राचूडादिमद्गलकर्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः।  
तथा एतेषां बलवत्तया भागफलाधिकत्वञ्च तथा राशिशीलाध्याये यत्प्रोक्तं द्वादश राशि-  
स्यग्रहाणां फल तद्वेतेषां बलवत्तया सपूर्णं स्यात् । तथाच बृहज्जातके “ बलवति'राशी  
तदधिपती स्वचलयुतः स्याद्यादि तु हिमांशुः । कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येऽ-  
प्यनुपरिकल्प्याः ” इत्यादिप्रयोजनमूह्यम् । कश्चित्तु एतेषां बलवत्तया लग्नमात्रस्य बल-  
वत्त्वमिति वदति । तत्र । नह्यन्यस्य बलेनान्यस्य बलवत्त्व स्यात् अन्यकर्तुरनभिप्रायाञ्च ।  
एव वक्ष्यमाणेष्वपि राशिवलानां प्रयोजनं ज्ञातव्यम् । इति ॥

( ङ ) राशीनां स्थानबलमाह—केन्द्रस्थानिति । केन्द्रस्थानांशीनां प्रबलान् प्रकृष्टबलान्  
वदेत् । पणफराश्रितान् मध्यबलान् आपोक्लिमस्थान् हीनबलान् वदेत् । अत्र चार्यं  
विभागः केन्द्रेषु सम्पूर्णबलमेव ग्राह्यं पणफरेष्वर्द्धबलम् आपोक्लिमेषु पादैर्कर्मित्यर्थः । तथा  
च श्रीपतिमट्टः । “ वण्टकाद्युपगतेषु नियोज्या रूपकार्द्धवरणा निजकीर्षे ” इति ।  
एतत्प्रयोजनन्तु यात्रादिमद्गलकर्मणि बलवत्तया एते राशयः प्रशस्ताः एषां भागफलस्य  
चाधिकरामिति ॥

( ट ) अंशबलमाह—परित्वाति । यस्य संशेषां नवांशाधिपतिग्रहस्तस्योशपतेर्बलात् सोऽ-  
शरोनवांशराशिर्बली तस्याधिपस्य दौर्बर्येऽवलस्तस्य मध्यबले मध्यबलोनवांशराशीः इति ।  
प्रयोजनत्वस्य प्रश्रद्धग्रनवांशयोर्बलाबलवशेन नवांशादपि फलं वक्तव्यमा तथाच बृहज्जातके

राशिमी बलवान् होती है और नवांशपतिके दुर्बल होनेसे राशिमी दुर्बल होती है और नवांशाधिपति ग्रहके मध्यबल होनेसे राशिमी मध्यबलशाली होती है ॥ १५ ॥

अथ पत्यादियोगादिना राशिबलाबलकथनम् ।

पतितत्प्रियबुधसौम्योच्चस्थैर्युतर्वाक्षितो बली राशिः ।

स्वल्पबलोऽन्यैर्मित्रैर्मध्यःसर्वायुतेक्षितस्त्वबलः ॥ १६ ॥ ( ण )

अर्थ-मेपादि द्वादशराशि अपने २ मालिक हों अपने २ मालिकके मित्र हों अथवा बुध ग्रह वा शुभग्रहगण अथवा किसी उच्चग्रहकी दृष्टि होवे वा युक्त होनेसे राशि बलवान् होती है. इसी प्रकार अपने मालिकके शत्रुग्रह वा नीच ग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे राशि बलहीन होती है, पत्यादियुक्त वा दृष्टि न होनेसे प्रत्येकमे पाद ( चौथाई ) बल होता है, पत्यादिग्रह और अन्यान्य ग्रहकी दृष्टि हो अथवा युक्त होनेसे मध्यबल होता है शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे चतुर्थांशबल होता है । और समस्तग्रहोंकी अदृष्टि हो अथवा अयुक्त होनेसे राशि बलहीन होजाती है ॥ १६ ॥

अथ वेद्यादिस्थानकथनम् ।

वोशिः सूर्याद्वितीयर्क्ष स्वामिदिक्साक्षितः पृथः ।

राशीनामदयो लग्नं होरा राश्यर्द्धलग्नयोः ॥ १७ ॥ ( त )

उस राशिके अधिपति ग्रहगणका नाम पुत्र है, मेपादि द्वादश राशिके उदयका नाम लग्न है, राशिका अर्द्ध और लग्नार्द्धको होरा कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ पट्टवर्गकथनम् ।

क्षेत्रं होराथ द्रेक्काणो नवांशो द्वादशांशकाः ।

त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं त्रयाद्यैर्यो यस्य तस्य सः ॥ १८ ॥ ( थ )

अर्थ—अब पट्टवर्गको कहते हैं—क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांशकको पट्टवर्ग कहते हैं और वर्गशब्दसे उक्त छःको और इन छःके मध्यमें एक एकको पट्टवर्ग कहते हैं अपने क्षेत्रमें स्थित या अपने होरादिस्थानमें स्थित ग्रहवर्गमें स्थित कहे हैं यदि कोई ग्रह त्रिआदिवर्गमें स्थित होवै तो जीवगणको आत्मसदृश आकृति प्रदानकरता है ॥ १८ ॥

अथ क्षेत्राधिपकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्रर्कसौम्यशुक्रावनीधुवाम् ।

जीवार्किभानुजेप्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १९ ॥ ( द )

अर्थ—अब क्षेत्राधिपति कीर्त्तन करते हैं—मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, शनि और बृहस्पति इन समस्त ग्रहोंके क्षेत्र ( गृह ) क्रमानुसार द्वादश राशि हैं, अर्थात् मेपका मालिक मङ्गल, वृषका शुक्र मिथुनका मालिक बुध इत्यादि ॥ १९ ॥

अथ राशीनां ह्रस्वतादिसंज्ञा ।

ह्रस्वास्तिमिगोऽविषटामिथुनधनुःकर्कांमृगमुखाश्च समाः ।

वृश्चिककन्यामृगपतिवाणिजो दीर्घाः समाख्याताः ॥ २० ॥

अर्थ—अब समस्तराशियोंकी ह्रस्वतादिसंज्ञा कही जाती है । मीन, वृष, मेष और कुम्भकी ह्रस्व संज्ञा है, मिथुन, धन, कर्क और मकर इन राशियोंकी सम संज्ञा है वृश्चिक, कन्या, मिठ और तुला इनकी दीर्घसंज्ञा है ॥ २० ॥

प्रथमनः कथितः । तत्प्लवगो विनिहन्वादिधिरेण महीपतिः शत्रुन् ॥” कश्चित् प्लवो जल-निर्गमवर्त्तन्ति प्रलपति । लग्नं राश्यादयः । होराशब्दो राश्यर्थे लग्ने च वर्त्तत इति ।

( थ ) पट्टवर्गमाह—क्षेत्रमिति । क्षेत्रादयः पट्टवर्गसंज्ञकाः । अत्र वर्गशब्देन समुदायः प्रत्येकञ्चोच्यते । यस्य ग्रहस्य त्रयादिवर्गेषां जातः तस्य ग्रहस्य स पुरुषस्तदाकार इत्यर्थः । ग्रहाकारस्तु बृहज्जातके उक्तः यथा—“मधुपिद्मलट्टू चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः ” इत्यादि । इति ॥

( द ) ग्रहाणां गृहाण्याह—ज्ञात ! इज्यो बृहस्पतिः । अन्यत्सुगममिति ॥



अथ राशीनामाधिष्ठातृदेवताकथनम् ।

मत्स्यौ घटो नृमिथुनं सगदं सवीणं  
चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।  
तौली सशस्यदहना प्लवगा च कन्या

शेषाः ( ध ) स्वनामसदृशाः स्वचराश्च ( न ) सर्वे ॥ २१ ॥ ( प )

अर्थ-अब राशिगणके आधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करते हैं-अन्यान्य पुच्छा-  
भिपक्त परस्पर मात्र निरीक्षक और रक्तमुख मत्स्यद्वय ( दोमछलियोंकी ) मीन-  
राशि है, स्कन्धमें घट धारण किये मनुष्यकी कुम्भराशि है, स्त्री और पुरुषकी  
मिथुनराशि है, तिनके बीचमें पुरुष गदाधारी और स्त्री वीणाधारिणी है, अश्व-  
कृति जंघा और धनुर्धारी पुरुषकी धनराशि है, मृगके समान मुख होनेसे मकर  
राशि है, तुलाधारी मनुष्यकी तुला राशि है, नौकारूढा शस्याग्निहस्ता कुमारीकी  
कन्या राशि है, एतद्भिन्न मेपादि जो समस्तराशि हैं उनको स्वनामसदृश जानो  
अर्थात् मेप मेपाकृति, वृष वृषाकार, सिंह सिंहाकृति, कर्क कर्कटके समान और  
वृश्चिकको वृश्चिकाकृति ( विच्छूके समान ) जानो ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।

स्वनामरूपा मेपाद्या मिथुनन्तु नृदम्पती ।

कन्या च प्लवगा तौली शस्यामानशिलायुतः ॥ २२ ॥

घटहस्तः पुमान्कुम्भो मीनो मत्स्ययुगः स्मृतः ।

जघनेऽश्वाकृतिर्धन्वी मकरश्च मृगाननः ॥ २३ ॥

पूर्वश्लोकके अनुमादौ इमका अर्थहे अतएव पृथक् अनुवाद नहीं करते २२ ॥ २३ ॥

( ध ) मेपवृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशा इत्यर्थः ।

( न ) स्वचरा इत्यपि पाठः ।

( प ) राशीनां देवतास्वरूपमाह-मत्स्याविति । मीनराशिर्मत्स्यद्वयम् अन्योऽन्यपुच्छा-  
भिपक्त रक्तमुखम् अन्योऽन्यसर्पगात्रनिरीक्षकम् । कुम्भः स्कन्धासक्तपथे नरः । नृमिथुनं  
स्त्रीपुत्री तत्र पुमान् गदाहस्तः स्त्री वीणाधारिणी धनुः धनधरो नरः अश्वजघनः अघाकृति  
जघनः न तु अश्वारूढो जघनः । मकरो मृगमुखः । तुलाराशिः तुलाहस्तः पुरुषः । कन्या  
कुमारी शस्याग्निहस्ता प्लवगा नौरथा शेषाः मेपवृषसिंहकर्कटवृश्चिकाः नामानुरूपाकाराः ।  
सर्वे द्वादशराशयः स्वचरा यथायोग्यस्थाननिवासीनः अन्योऽन्यपुच्छाभिमुखमिति । मेप-  
वृषो दिक्से वारण्यचरो रात्रौ ग्राम्यो मिथुन ग्राम्य कर्कटमीनो जलचरो सिंह वारण्यः कन्या  
नौरथा तुला पण्यवीथीम्या वृश्चिकः श्वभ्रवासी धनुःकुम्भो ग्राम्यो मकरस्य पूर्वभागो जल-  
चरः प्रयोजनन्तु हननप्रद्रव्यस्य स्थाननिर्णयादि । इति ॥

अथ राशीनां वश्यावश्यकथनम् ।

द्विपदवशगाः सर्वे सिंहं विहाय चतुष्पदाः  
सलिलनिभया भक्ष्या वश्याः सरीसृपजातयः ।  
मृगपतिवशे तिष्ठन्त्येते विहाय सरीसृपान्  
अकथितग्रहेषूह्यं वश्यं जनव्यवहारतः ॥ २४ ॥ ( फ )

अर्थ—अब राशिगणके वश्यावश्यको कीर्तन करते हैं, यथा—सिंहराशिके भिन्न समस्त चतुष्पदराशि द्विपदराशिके वशमें हैं, अर्थात् मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धन राशिके पूर्वार्द्धके वशीभूत है, समस्त जलजराशि द्विपदराशिके भक्ष्य हैं और सरीसृपसंज्ञक राशिको छोड़कर द्विपद और चतुष्पद समस्त राशि सिंहराशिके वशीभूत हैं । अन्यान्य जो समस्तराशियोंका वश्यावश्य नहीं कहा है उनका लोकाचारके अनुसार वश्यावश्य जानना, जैसे वृषके वशीभूत मेष राशि है । इत्यादि ॥ २४ ॥

अथ राशीनां जातिकथनम् ।

मीनकर्कटवृश्चिकविप्राः सिंहमेपधनुःक्षत्रिय उक्तः ।

कुम्भनरद्वययूकविशः स्युः स्त्रीवृषमकराःकथिताः शूद्राः ॥२५॥

अर्थ—अब राशिगणकी जाति वर्णन करते हैं । यथा—मीन कर्क और वृश्चिक ब्राह्मणजाति हैं; सिंह, मेष और धन इनकी क्षत्रियजाति है, कुम्भ, मिथुन और तुला इनकी वैश्यजाति है, कन्या, वृष और मकर इनकी शूद्रजाति है ॥ २५ ॥

अथ मेपादीनां वर्णकथनम् ।

अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ ।

पिङ्गलकर्तुरवभुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥२६॥ ( व )

अर्थ—अब मेपादि द्वादशराशिका वर्ण कीर्तन करते हैं । मेषका रक्तवर्ण है

( फ ) राशीनां वश्यावश्यमाह—द्विपदेति । द्विपदोऽत्र मनुष्यः सिंहं त्यक्त्वा चतुष्पदा मनुष्यवशगा जलराशयो मनुष्यस्य भक्ष्याः जातिशब्देनात्र प्रकार उच्यते । सरीसृपजातयः सरीसृपप्रकराः वृश्चिकजलजा वश्याः एतेन जलजानां भक्ष्यत्वं वश्यत्वञ्च दाशितम् । एते सर्वे द्विपदचतुष्पदाश्च राशयः सरीसृपान् त्यक्त्वा सिंहस्य वशगाः । अत्रापि बहुवचनात् सरीसृपसदृशानां जलजानां ग्रहण एव अकथितग्रहेऽपि लोकाचाराद्वश्यावश्यत्वमुक्तम् । यथा वृषस्य मेषो वश्यः । तथा गृह्यात्रायाम् अस्य श्लोकान्तरमन्यदापि वश्यत्व उक्तं यथा “ स्यलजसरीसृपाः स्वकानां चलमभिधीत्य विधेयतां भजन्ते । विपमग्रहवशे समाश्रयसंस्था निशि विपमा वशवात्तनः समानाः ॥ ” इति ।

( व ) राशीनां वर्णमाह—अरुणेति । मेपादिद्वादशराशीनां यथाक्रमरुणादयो वर्णा भवन्ति । अन्यस्तरागस्वरुणः सितः शुकः हरितः शुक्लवर्णः श्वेतरक्तस्तु पाटलः । पाण्डु-

वृषका शुकुवर्ण, मिथुनका हरितवर्ण, कर्कका पाटलवर्ण, सिंहका पाण्डुवर्ण, कन्याका विचित्रवर्ण, तुलाका कृष्णवर्ण, वृश्चिकका पिङ्गलवर्ण, धनका पिङ्गलवर्ण, मकरका कर्बुरवर्ण, कुम्भका बभ्रुकवर्ण और मीनका मलिनवर्ण है ॥ २६ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञाकथनम् ।

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।

राहुः केतुश्च कथितो मार्कण्डेयादिभिः पुरा ॥ २७ ॥

अर्थ-सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु यही नौ ग्रह संज्ञक हैं, इस प्रकार मार्कण्डेय प्रभृति मुनिगणने कहा है ॥ २७ ॥

अथ ग्रहाणां विशेषसंज्ञाकथनम् ।

हेलिः सूर्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः

हेमा विज्ञो बोधनश्चेन्दुपुत्रः ।

आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः

कालो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च ॥ २८ ॥

जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसांपतिज्यौ

शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ॥

राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखी च केतुः

पर्यायमन्यदुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥ २९ ॥ ( भ )

अर्थ- अब ग्रहोंकी विशेषसंज्ञा कहते हैं, यथा, सूर्यका दूसरा नाम हेलि है चन्द्रका नाम शीतरश्मि है. बुधके नाम हेमन्, वित्, ज और इन्दुपुत्र है मंगलका नाम आर, वक्र, क्रूरदृक् और आवनेय है, शनिका नाम काल, मन्द, सूर्यपुत्र, और असित है, बृहस्पतिका नामान्तर जीव, आङ्गिरा, मुरुगुरु, वचसांपति, और इज्य है. शुक्रके नाम भृगु, भृगुसुत, सित और आस्फुजित् है, राहुका

—श्राल्पशुक्रः विचित्रो नानावर्णः सिनेतरः कृष्णवर्णः बभ्रुपिङ्गलो पिशङ्गी । पिङ्गलश्चाग्निवर्णः स्वर्णवर्णश्चेति केचित् कर्बुरः शबलवर्णः बभ्रुकः कपिलवर्णः 'बभ्रुर्ना कपिले त्रिषु' इत्यमरः । मलिनः कृष्णवर्णः प्रयोजनन्तु हतनष्टद्रव्यस्थ वर्णज्ञानादि । इति ॥

( भ ) श्लोकद्वयेन ग्रहसंज्ञामाह—हेलिरिति । हेलिः सूर्यस्य संज्ञा हेमन्संज्ञो बुधस्य संज्ञा वचसांपतिरित्यथ लोकादन्यदपि पर्याय ज्ञात्वा वदेदिति ॥



नामान्तर तमः, अगु और असुर है और केतुका नाम शिखी है, इनके सिवाय और जो ग्रहगणके नाम हैं, उनको लोकपरम्पराके अनुसार जानो ॥२८ ॥२९ ॥

अथ ग्रहाणां जातिकथनम् ।

ब्राह्मणौ शुक्रवागीशौ क्षत्रियौ भौमभास्करो ।

वैश्यश्चन्द्रो बुधः शूद्रो म्लेच्छौ राहुशनैश्वरौ ॥ ३० ॥ ( म )

अर्थ—अब ग्रहोंकी जाति वर्णन करते हैं । शुक्र और बृहस्पतिकी ब्राह्मण-जाति है, मंगल और रविकी क्षत्रियजाति है, चन्द्रकी वैश्यजाति है, बुधकी शूद्रजाति है और राहु जनैश्वरकी म्लेच्छजाति है ॥ ३० ॥

अथ ग्रहाणां वर्णकथनम् ।

गौरवर्णो दिनाधीशो गौराश्चन्द्रेज्यभूमिजाः ।

श्यामलौ बुधशुक्रौ च कृष्णौ राहुशनैश्वरौ ॥ ३१ ॥

अर्थ—अब ग्रहोंके वर्ण कीर्तन करते हैं—सूर्यग्रहका गौर वर्ण है, चन्द्र, गुरु और मंगल इनका भी गौर वर्ण है, इसी प्रकार बुध और शुक्रका श्यामल वर्ण है, राहु और जनैश्वरका कृष्ण वर्ण है और केतुका धूम्रवर्ण है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दु-

नात्युच्चाद्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।

दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुगौरमात्रः

श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ॥ ३२ ॥ ( य )

कृष्णवर्णो भवेद्राहुः केतुश्च धूम्रवर्णकः ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, सूर्यका रक्त श्याम वर्ण है, चन्द्रका वर्ण गौर है, मंगलका अनुच्चाद्गौर और रक्त गौर वर्ण है, बुधका दूर्वाश्याम वर्ण है, बृहस्पतिका गौर वर्ण है, शुक्रका श्याम वर्ण है, राहु और जनैश्वरका कृष्ण वर्ण है ॥ ३२ ॥ और केतुका धूम्रवर्ण है ॥

अथ ग्रहाणां धातुकथनम् ।

पित्ते प्रभाकरक्ष्माजो श्लेष्माणो चन्द्रभार्गवौ ।

( म ) “चन्द्रो वैश्वे बुधः शूद्रे पतिमन्द्रोऽन्यजेजने ” इतिदीपिकायां पण्डितस्य पाठः ।

( य ) ग्रहाणां वर्णमाह—रक्तश्याम इति । प्रयोजनन्तु धनपट्टव्यस्य रूपज्ञानादि इति ।

ज्ञगुरु समधातु च पवनौ राहुमन्दगौ ॥ ३३ ॥

अर्थ-रवि और मङ्गलकी पित्तप्रकृति है, चन्द्र और शुक्रकी श्लेष्मा प्रकृति है बुध और बृहस्पतिकी समधातु प्रकृति है, शनि और राहुकी वायु प्रकृति है ॥ ३३ ॥

मधुपिङ्गलद्वक्चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सविताल्पकचः ।

तनुभृत्सुतनुर्वहुवातकफः प्राज्ञःशशी मृदुवाक्छुभद्वृ ॥ ३४ ॥

भूमिजस्तरुणमूर्त्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः ।

श्लिष्टवाक्सततहास्यरुचिर्ज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिः ॥ ३५ ॥

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्द्धजेषणो बृहस्पतिःश्रेष्ठमतिः कफात्मकः

भृगुस्सुखीकान्तनुःसुलोचनःकफानिलात्सा मितवक्रमूर्द्धजः३६ ॥

मन्दोऽलसः कपिलद्वक्कृशदीर्घगात्रः

स्थूलद्विजः पुरुषलोमकचोऽनिलात्मा ॥ ३७ ॥

अर्थ-सूर्यग्रहके पिङ्गल नेत्र हैं, चतुष्कोण है पित्तप्रकृति है और अल्पकेशों द्वारा युक्त है । चन्द्रग्रह स्त्रीसंज्ञक है, मृदुभापी, प्राज्ञ है, वातकफाधिक्यप्रकृति है और सुन्दर नेत्र हैं, मंगलग्रहका नवीन अंग है, उदार चित्त है, पित्ताधिक्य शरीर है, चपल है, मध्यक्षीण है, श्लिष्टभापी है और हास्यरस उनके लिये प्रिय है । बुधकी पित्त वायु और श्लेष्मा प्रकृति है, बृहत् शरीर है, पिंगल वर्ण नेत्र हैं और पिंगलवर्ण केशोंको धारण किये हैं । बृहस्पतिकी कफ प्रकृति है, और सुबुद्धिमान् है । शुक्र सुखी है, मनोरम कान्तिविशिष्ट हैं, उनके सुन्दर नेत्र हैं कफवायुप्रकृति है और ईषत् वक्र केशोंको धारण कियेहुए है । शनिश्चर अलसहै, उनके कपिल वर्णके समान नेत्र हैं, कपिलवर्ण केशोंको धारण किएहैं, कृश है, उनका दीर्घ शरीर है, बडे २ दांत हैं, वायुप्रकृति है, और वह रोम और केशों करके युक्त पुरुष हैं ॥ ३४-३७ ॥

इति धात्वधिपाः ।

अथ ग्रहाणां सत्त्वादिज्ञानम् ।

चन्द्रार्कजवा ज्ञसितौ कुजार्की

यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ ३८ ॥

अर्थ-चन्द्र, रवि और बृहस्पति यह सत्त्वगुणयुक्त हैं, बुध और शुक्र रंजो-गुणविशिष्ट हैं मंगल और शनि तमोगुणयुक्त हैं ॥ ३८ ॥

अथ सामादिज्ञानम् ।

साम्नो जीवः सभृगुतनयो दण्डनाथौ कुजाकौ  
दानेशेन्दुः शिखियमबुधाः सासुराभेदनाथाः ।  
वीयोपैतैरुपचयकरैर्लग्नैः केन्द्रैर्वा

तद्वत्सिद्धिर्भवति तदहस्पांशुकैर्वापि तेषाम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—कौन ग्रह किस नीतिका मालिक है अब उसको कहते हैं । बृहस्पति और शुक्र सामनीतिके मालिक हैं, मंगल और रवि दण्डनीतिके मालिक हैं, चन्द्र दाननीतिका मालिक है, केतु, शनि, बुध और राहु भेदनीतिके मालिक हैं । बलवान् यह समस्त ग्रह जिस बालकके लग्नमें स्थित उपचयमें स्थित ( र ) या केन्द्रमें स्थित अथवा नवांशमें स्थित हों तो उसके शरीरमें यह समस्त गुण अधिक होते हैं अर्थात् बृहस्पति या शुक्र लग्नादिमें रहनेसे जातबालक सामगुणविशिष्ट होता है, मंगल और रवि लग्नादि रहनेसे दण्डगुणविशिष्ट होता है ॥ ३९ ॥

अथ नृपादिज्ञानम् ।

रविचन्द्रौ च राजानौ कुजो नेता बुधः शिशुः ।

सचिवौ गुरुशुक्रौ च प्रेष्यौ शनिभुजङ्गमौ ॥ ४० ॥

अर्थ—रवि और चन्द्र राजा हैं, मंगल सेनापति है, बुध राजकुमार है, बृहस्पति और शुक्र गजमन्त्री है, शनि राहु और केतु प्रेष्य हैं ॥ ४० ॥

अथ पुरुपाद्याधिपकथनम् ।

पुंसां सूर्यास्वागीशा योपितां चन्द्रभार्गवौ ।

स्त्रीवानां बुधमन्दौ च पतयः परिकीर्त्तिताः ॥ ४१ ॥ ( ल )

अर्थ—रवि, मंगल और बृहस्पति पुरुषग्रह हैं, चन्द्र और शुक्र स्त्रीग्रह हैं, बुध और शनिश्चर नपुंसकग्रह हैं ॥ ४१ ॥

अथ वेदाधिपकथनम् ।

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपः सितः ।

सामवेदाधिपो भीमः शशिशोऽथर्ववेदराट् ॥ ४२ ॥ ( व )

अर्थ—अब वेदाधिपतिका कीर्त्तन करते हैं । बृहस्पति ऋग्वेदका अधिपति है,

( र ) उपचयसंज्ञा और केन्द्रसंज्ञा यथोचित स्थानमें लिखी गई हैं ।

( ल ) पुरुपाद्याधिपानाह—पुंसांमिति । स्पष्टार्थमिति ।

( व ) वेदाधिपानाह—ऋग्वेदेति । स्पष्टार्थमिति ।

शुक्र यजुर्वेदका, मङ्गल सामवेदका और बुध अथर्ववेदका अधिपति ( मालिक ) है ॥ ४२ ॥

अथ रसाधिपज्ञानम् ।

कटुलवणतित्कमिश्रो मधुराम्लौ च कपायकोऽर्कतः ।

एते रसाः प्रिया भवन्ति मुखेऽर्काद्या वर्तमानाः सन्तः ॥ ४३ ॥

अर्थ-रविग्रह कटुरसका अधिपति ( मालिक ) है, इसी प्रकार चन्द्र लवण रसका, मङ्गल तिक्तरसका, बुध मिश्ररसका, बृहस्पति मधुर रसका, शुक्र अम्ल रसका और शनि कषैले रसका मालिक है. इन समस्त ग्रहोंके मध्यमें अङ्ग (श) विभाग करनेसे बालकके जिस स्थानमें जो ग्रह पतित होवै और उस ग्रहको जो रसका प्रिय है, जात बालककेभी वह रस अधिक प्रिय होता है; यथा-रवि मुख स्थानमें रहनेसे कटु वस्तु प्रिय होती है और चन्द्र मुख स्थानमें रहनेसे लवणरस आहारमें अधिक प्रिय होता है ॥ ४३ ॥

अथ दिग्धिपतिकथनम् ।

सूर्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैहिकेयः शनिः शशी ।

सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिग्धीश्वराः ॥ ४४ ॥ ( ष )

अर्थ-अब दिशाओंके अधिपतियोंका वर्णन करते हैं-रवि पूर्वदिशाका मालिक है, इसी प्रकार शुक्र आग्निकोणका, मङ्गल दक्षिणका, राहु नैर्ऋत कोणका, शनि पश्चिमका, चन्द्र वायुकोणका, बुध उत्तरका और बृहस्पति ईशानकोणका मालिक है ॥ ४४ ॥

अथ ग्रहाणां मित्रादिकथनम् ।

मित्राणि सूर्याच्छशिभौमजीवाः

सूर्येन्दुजौ सूर्यशशाङ्कजीवाः ।

आदित्यशुक्रौ रविचन्द्रभौमा

बुधार्कजौ चन्द्रजभार्गवौ च ॥ ४५ ॥ ( स )

अर्थ-अब ग्रहोंके मित्रगणको वर्णन करते हैं । यथा-रविके मित्र चन्द्र, मंगल और बृहस्पति है. इसी प्रकार चन्द्रका मित्र रवि और बुध है, मंगलका मित्र

( श ) मेपादिद्वारा अङ्गविभाग लग्नप्रकरणमें वाणित है ।

( ष ) पूर्वाद्यष्टदिशां पत्नीनाह-सूर्य इति । स्पष्टार्थामिति ।

( स ) ग्रहाणां मित्राण्यहाह-मित्राणीति । सूर्यात्सूर्यादितः प्रथमाविभक्तिकथितानि यथाक्रमेण मित्राणि स्युः । यथा शशिभौमजीवाः रवेर्मित्रं सूर्यबुधौ चन्द्रस्य सूर्यचन्द्रजीवाः कुजस्य रविशुक्रौ बुधस्य रविचन्द्रकुजाः गुरोः बुधशनी भृशोः बुधशुक्रौ शनेरिति । इति ॥

रवि, चन्द्र और बृहस्पति है. बुधका मित्र रवि और शुक्र है । बृहस्पतिके मित्र रवि, चन्द्र और मंगल हैं, शुक्रके मित्र बुध और शनि हैं । शनिके मित्र बुध और शुक्र हैं ॥ ४५ ॥

सितासितौ चन्द्रमसो न कश्चित्  
बुधः शशी सौम्यसितौ रवीन्दू ।

रवीन्दुभौमा रवितस्त्वामित्रा

मित्रारिशेषश्च समः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥ ( ह )

इति शत्रुसमकथनम् ।

अर्थ—अब ग्रहोंके शत्रु और सम कहे जाते हैं—रविके शत्रु शुक्र और शनैश्वर-  
हैं, चन्द्रका शत्रु कोई नहीं, मंगलका शत्रु बुध है, बुधका शत्रु चन्द्रमा है, बृह-  
स्पतिके शत्रु बुध और शुक्र हैं शुक्रके शत्रु रवि और चन्द्र हैं और शनिके  
शत्रु रवि चन्द्र और मंगल हैं । मित्र और शत्रुके सिवाय और समस्त ग्रह ग्रह-  
गणके सम कहलाते हैं ॥ ४६ ॥

अथ ग्रहाणां समकथनम् ।

सौम्योऽङ्गिराभौमसितासिताश्च

सितासितौ भूसुतसौरिजीवाः ।

सौरिः कुजेज्यौ वचसांपतिश्च

रव्यादितोऽमी समसंज्ञकाः स्युः ॥ ४७ ॥

अर्थ—रविके सम बुध है इसी प्रकार चन्द्रके सम बृहस्पति मंगल, शुक्र और  
शनि है मंगलके सम शुक्र और शनि हैं, बुधके सम मंगल शनि और बृहस्पति  
हैं, बृहस्पतिके सम शनि है, शुक्रके सम मङ्गल और बृहस्पति है और शनिके  
सम बृहस्पति हैं ॥ ४७ ॥

( ह ) शत्रूनाह—सितासिताविति । रवितो रव्यादितः प्रथमाविभक्तमुदिता यथासुरयेन  
अमित्राः शत्रवः स्युः । शत्रुपर्यायोऽमित्रशब्दः पुल्लिङ्ग इति । रवेः शुक्रशनी शत्रु चन्द्रस्य  
न कश्चित् शत्रुः कुजस्य बुधः बुधस्य चन्द्रः शुरोबुधशुक्रौः भूगोरवीन्दू शने रवीन्दुभौमा  
इत्यर्थः । मित्रारिणां शेषः समः प्रदिष्टः कथितः । यथा रवेर्बुधः समः इत्यादि । तथाच  
लघुजातके “शत्रुमन्दासितौ समश्च शशिशो मित्राणि शेषा रवेरुदिकांशुर्हिमरश्मिजश्च  
सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः । जीवेन्दुमकराः कुजस्य सुहृदौ शोऽरिःसिताकीं समी मित्रे  
सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्वापरे । शुरोः सौम्यसितावरी राधिसुनो मध्योऽपरे  
वन्यया सौम्याकीं सुहृदौ समी घुजगुरुः शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञी सुहृदौ समः सुरगुरु-  
मन्दस्य चान्येऽरयः तत्काले च दशावन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्र स्थितः ॥” इति ॥

अथ तात्कालिकमित्रादिकथनम् ।

**चतुर्थदशवित्तान्त्यात्रिलाभस्थाः परस्परम् ।**

**तत्कालमित्राण्युच्चस्थः कैश्चिदुक्तोऽन्यथा रिपुः ॥ ४८ ॥ (क्ष)**

अर्थ—अब ग्रहगणके तात्कालिकमित्र निरूपण करते हैं—यथा रविप्रभृति ग्रहगणके मध्यमें इनके चतुर्थ, दशम, द्वितीय, द्वादश, तृतीय और एकादश जो ग्रह होवें तो परस्पर उनकी तात्कालिक मित्रता होती है । जैसे कर्कराशिमें यदि रवि होवै तो उसके चतुर्थ तुला, दशम मेष, द्वितीय सिंह, द्वादश मिथुन, तृतीय कन्या और एकादश वृष इन सब राशियोंमें स्थित ग्रहगणकी कर्कस्थानमें स्थित रविके साथ तात्कालिक मित्रता होती है और तुंगस्थानमें स्थित ग्रहकीभी तात्कालिक मित्रता होती है इन सब ग्रहोंके सिवाय अपरापर समस्त ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ तात्कालिकशत्रुकथनम् ।

**जन्मपञ्चाङ्गसप्ताष्टनवमस्थाः परस्परम् ।**

**तत्कालशत्रवो ज्ञेयास्त्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ ४९ ॥**

अर्थ—अब ग्रहगणके तात्कालिक शत्रु कर्त्तन करते हैं, यथा—जो ग्रह जिनके प्रथम (एक घरमें) अथवा पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, वा नवम घरमें स्थित हों, उनकी परस्पर तात्कालिक शत्रुता होती है, जैसे कर्कराशिमें स्थित सूर्य प्रथम घर कर्क, पञ्चम घर वृश्चिक, षष्ठ घर धन, सप्तम घर मकर, अष्टम घर कुम्भ और नवम घर मीन इन सब राशियोंमें स्थित ग्रहोंकी कर्कराशिमें स्थित सूर्यके साथ तात्कालिक शत्रुता होती है ज्योतिषशास्त्रके जाननेवाले विद्वानोंने इस प्रकारसे कहा है ४९ ॥

अधाधिमित्रादिकथनम् ।

**हितसमरिपुसेज्ञा ये निसर्गे विरुक्ता**

**अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः ।**

( क्ष ) तत् कालमित्रमाह—चतुर्थेति । चतुर्थदशमस्थौ द्वितीयद्वादशस्थौ तृतीयैकादशस्थौ अन्येऽन्ये तत्कालमित्रे भवतः । त्रैश्चिदिति बहुवचनेन बहुसम्मतत्वं दर्शितम् । उच्चस्थः सुतुङ्गस्थो ग्रहः सर्वेषां मित्रशुक्तम् एतद्-अन्यकारस्य समतम् । अन्यथा अनिमिषत्वादिश्लोके उच्चस्थस्य भृगास्तात्कालिकशत्रुत्वरूपेण विभागहानी सत्यां सम्पूर्णे परमायुर्न स्यादित्यर्थः । अन्यथा चतुर्थदशमादिव्यतिरिक्तस्थानस्यः शत्रुत्वित्यर्थः । इति ॥

रिपुसमसुहृदाख्या ये निसर्गोपादिष्टा

अधिरिपुरिपुमध्याः शत्रुभिश्चिन्तनीयाः ॥ ५० ॥ ( ३ )

अर्थ—अब अधिमित्रादि कीर्तन करते हैं—ग्रहोंके मध्यमें जो जिसका स्वाभाविक मित्र नम और शत्रु है; वह तात्कालिक मित्र होनेसे क्रमानुसार अधिमित्र, मित्र और सम होजाता है अर्थात् स्वाभाविक मित्र तात्कालिक मित्र होनेसे अधिमित्र स्वाभाविक सम तात्कालिक मित्र होनेसे मित्र, और स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक मित्र होनेसे सम होता है और जिनको स्वाभाविक शत्रु सम और मित्र कहा है उनके तात्कालिक शत्रु होनेसे क्रमानुसार अधिशत्रु, शत्रु और सम जाने जाते हैं अर्थात् स्वाभाविक शत्रु तात्कालिक शत्रु होनेसे अधिशत्रु, स्वाभाविक सम तात्कालिक शत्रु होनेसे शत्रु और स्वाभाविक मित्र तात्कालिक शत्रु होनेसे सम होजाते हैं ॥ ५० ॥

अथ राहुकेत्वोर्मित्रादि ।

उच्चं नृयुगं घटभं त्रिकोणं कन्यागृहं शुक्रशनी च मित्रे ।

सूर्यः शशाङ्को धरणीसुतश्च राहो रिपुर्विशतिकः परांशः ॥ ५१ ॥

अर्थ—अब राहु और केतुके मित्रादि वर्णन करते हैं यथा—राहुके उच्चस्थानकी मिथुन राशि है, मूलत्रिकोणकी कुम्भ राशि है, क्षेत्रकी कन्या राशि है, शुक्र और शनैश्वर मित्र हैं, सूर्य, चन्द्र और मंगल शत्रु हैं मिथुनके बीसभागका उच्चांश और कुम्भके बीस भागमें त्रिकोणांश होता है ॥ ५१ ॥

सिंहसत्रिकोणं धनुरुच्चसंज्ञं मीनो गृहं शुक्रशनी विपक्षौ ॥

सूर्यारचन्द्राः सुहृदः समानौ जीवेन्दुजो पद्मशिखिनःपरांशाः॥५२॥

अर्थ—केतुका मूलत्रिकोण सिंहराशि है, उच्चस्थानकी धनुराशि है, क्षेत्रकी मीन राशि है, शुक्र और शनि शत्रु हैं, सूर्य, मंगल और चन्द्र मित्र हैं बृहस्पति और बुध समर्हें सिंहका षष्ठभाग त्रिकोणांश और धनुका षष्ठ भाग उच्चांश है ॥ ५२ ॥

( ३ ) अधिमित्रादिव्यपस्यामाह—हितोति । निसर्गे स्वभावे मित्रसमशत्रवो ये उक्तास्ते तत्कालमित्रैर्यथास्वरूपम् अधिमित्रमित्रसमाः स्युः । यो निसर्गसुहृत् तत्कालमित्रत्वे सोऽधिमित्र यः समः स मित्रं यः शत्रुः स समः । एवञ्च निसर्गे ये रिपुसमसुहृद् उक्तास्ते तत्कालशत्रुभिश्चतुर्दशद्विव्यतिरिक्तस्थानस्थैर्यथास्वरूपम् अधिशत्रुशत्रुसमाः स्युः । यो निसर्गः शत्रुः स तत्कालशत्रुत्वे अधिशत्रुः यः समः स शत्रुः यः सुहृत्स सम इत्यर्थः । इति ॥

अथ ग्रहाणां पापसौम्यकथनम् ।

अद्धोनेन्द्रकसौराराः पापा ज्ञस्तैर्युतोऽपरे ।

शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ॥ ५३ ॥ ( ज )

अर्थ-अद्धचन्द्र, सूर्य, शनि, मंगल, पापयुक्त बुध, राहु और केतुको पापग्रह कहते हैं, पूर्णचन्द्र, पापराहित बुध, बृहस्पति और शुक्रको शुभग्रह कहते हैं, विष्णु-धर्मोत्तरग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है ॥ ५३ ॥

अथ ग्रहाणामृतुबलमाह ।

शनिशुक्रकुजेन्दुजगुरवः शिशिरादिषु ।

भवन्ति कालबलिनो ग्रीष्मे सूर्यस्तथैव च ॥ ५४ ॥ ( क )

अर्थ-अब ग्रहोंके ऋतुबल कीर्तन करते हैं यथा-शनि, शुक्र, मंगल, चन्द्र, बुध और बृहस्पति यह ग्रह क्रमानुसार शिशिरादि छहों ऋतुओंमें बलवान् होते हैं, अर्थात् शनि शिशिरमें, शुक्र वसन्तमें, मंगल ग्रीष्ममें, चन्द्र वर्षामें, बुध शर-त्कालमें और बृहस्पति हेमन्तमें बलवान् होते हैं और सूर्यभी ग्रीष्मकालमें बल-वान् होता है किन्तु इन ममस्त ग्रहोंका बल पाद ( चौथाई ) मात्र होता है ॥५४॥

अथ चन्द्रबलकथनम् ।

( ख ) मासे तु शुक्ला प्रतिपत्प्रवृत्ते पूर्वं शशी मध्यबलो दशाहे ।

श्रेष्ठा द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदेव ॥ यवनेश्वरः ॥

इति यवनेश्वरः ॥

अर्थ-शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे शुक्ला दशमीपर्यन्त चन्द्र मध्यबली होता है, शुक्ल पक्षकी एकादशीसे कृष्णपक्षकी पञ्चमतिक चन्द्र पूर्णबली होता है और कृष्ण पक्षकी पष्ठीसे अमावस्यातक अल्पबली होता है; किन्तु शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे सर्वदा बलवान् रहता है ॥ ५५ ॥ इति चन्द्रबलकथनम् ।

( ज ) ग्रहाणां पापशुभव्यवस्थामाह-अद्धोनेन्द्राति । अद्धोनेन्द्रो रविः शनिः कुजश्च पापाः तेः पापैर्युतो ज्ञो बुधः पाप इत्यर्थः । एतदितरेऽर्द्धाधिकश्चन्द्रो जीवशुक्रो शुभयुक्तः केवलो वा बुधः शुभः तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरे पापायुक्तौ । अन्येषा मतेन च पापत्वं न च शुभत्वमनयोरित्यर्थः । इति ॥

( क ) ऋतुबलमाह-शनीति । शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु यथासख्यं शन्यादयो बलिनः सूर्यस्तु ग्रीष्मबली एतद्वलं तु एकपादमित्यर्थः । इति ॥

( ख ) पक्षबले चन्द्रस्य विशेषमाह-मासे तिवाति । शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते चान्द्रे मासे पूर्व-दशाहे शुक्लप्रतिपदादितःशुक्लदशमीपर्यन्त चन्द्रो मध्यबलः । द्वितीये दशाहे शुक्लदशम्याः कृष्णपञ्चमापर्यन्त सम्पूर्णबलः । तृतीये दशाहे कृष्णपष्ठ्या अमावस्यापर्यन्तमल्पबलः । एतेन शुभवदनुपातविधिः पूर्वोक्तप्रकारेणैवेति चन्द्रस्य तु पक्षबलं यदुच्यते तदाद्दिगुणं कार्यम् । तथाच " द्विज मानोरयनजबलं पक्षवीर्यं तयेन्द्रोः " इति ॥ अत्र च शुभग्रहैर्दृष्टश्चन्द्रः सर्वदेव बलवानिति ॥



अथ ग्रहाणां बलाविशेषकथनम् ।

स्वोच्चे स्थिताः श्रेष्ठबला भवन्ति मूलत्रिकोणे स्वगृहे च मध्याः ।  
इष्टेक्षिता मित्रगृहाश्रिता वा वीर्यं कनीयः समुपावहन्ति ॥५६॥ ( ग )

अर्थ—ग्रहगण उच्चस्थानमें स्थित होनेसे पूर्णबली होते हैं, मूलत्रिकोणमें रहनेसे त्रिपादबली और अपने गृह ( घर ) में रहनेसे अर्द्धबली होता है, और स्वग्रहकी दृष्टिसे वा मित्रगृहमें स्थित होनेसे पादबली होजाता है ॥ ५६ ॥

स्वक्षेत्रे च बलं पूर्णं पादोनं मित्रमन्दरे ।

अर्द्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते ॥ ५७ ॥

अर्थ—ग्रहगण अपने घरमें रहनेसे पूर्णबली होते हैं, मित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादबली, समगृहमें रहनेसे अर्द्धबली और शत्रुके गृहमें स्थित होनेसे पादबली रहजाते हैं ॥ ५७ ॥

परिपूर्णबलः सूत्रे सुनचि त्वबलो ग्रहः ।

सूत्रसुनीचयोरन्तर्भागहोरात्फलं वदेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—ग्रह उच्चस्थानमें रहनेसे पूर्णबली होते हैं और नीचस्थानमें रहनेसे बलहीन होजातेहैं, उच्च और नीचस्थानमें स्थित ग्रहोंका बलभाग होरासे जानाजाताहै ५८

स्वक्षेत्रतुङ्गांशसुहृद्गृहस्थः स्वोच्चे विलासी सुहृदा समेतः ॥

जीवेन्दुजौ शत्रुनिरीक्षितौ वा ग्रहः स्वकाले शुभमातनोति ५९ ॥

अर्थ—ग्रहगण अपने स्थानमें स्थित होवे, तुंगस्थानमें स्थित हों मित्रके घरमें

( ग ) सामान्येनोक्तानां बलानां विशेषविभागमाह—स्वोच्चे स्थिता इति । उच्चस्था ग्रहाः श्रेष्ठबलिनः सम्पूर्णबलिन इत्यर्थः । किन्तु स्वोच्चराशेः सकाशात्प्रतिराशी दशदशपलैर्हानिनः । तथा सुनीचराशेः सकाशात्तु वृद्धिश्वानुपतेन ज्ञातव्या मूलत्रिकोणस्थाः स्वगृह इत्युपलक्षणं स्वगृहादिवर्गस्थाश्च बलिन इत्यर्थः । सामान्येनोक्तं विशेषस्तद्वयं मूलत्रिकोणे पादोनं बलं स्वगृहादिवर्गेष्वर्द्धबलम् । तथाच “ पादोनञ्च बलं त्रिकोणगृहमे स्वर्द्धे बलञ्च त्रयो वस्वशा द्यधिमित्रमे च चरणौ मित्रे समक्षेऽष्टमः । शत्रुमे मन्त्रिणे पोटशांशकश्चाधिमित्रमवने रदांशकः ” इति । इष्टेक्षिताः शुभदृष्टाः मित्रगृहादिवर्गस्थाश्च कनीयोऽल्पबलं वहन्ति । तत्रार्थं विशेषः । यावन्ती शुभदृष्टिस्तस्याश्चतुर्थांशं बलम् । एवञ्च यावन्ती पापदृष्टिश्चतुर्थांशदानिवलं कार्या । तथा च “ सौम्येदृष्टे दृष्टितुर्थांशदुक्तं वीर्यं पापालोभिते ताद्विहीनम् ” इति । तथा मित्रगृहादिवर्गे पादमात्रं बलम् एतदुपलक्षणं समगृहे विषमगृहे च पादः पुद्गलपुंसस्य गृहेषु ममुस्मान्मध्यमध्यस्थेषु पादमात्रं बलं शुभयोगेऽपि पादमात्रं बलम् । तथाच “ युग्ममांशकमनो राशिशुक्रौ यच्छतो हि यत्पादमदुग्गे । म, शके रभिरुजेऽशुक्रि-ज्ञातावदेव विवर्तन्ति हि सत्पत्न ॥ भान्तमध्यमराशेषु च पादः स्त्रीपुंसकनस्य विषेयः । दण्डरास्यपतयेषु नियो-प्यारूपराज्यवर्णा विनवीर्यम् ” इति ॥

स्थित हों, या उच्चस्थानमें स्थित हों अथवा मित्रयुक्त हों तो शुभफल प्रदान करते हैं, बृहस्पति और बुध शत्रुकी दृष्टि होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥५९॥

**गुरुशुक्रौ पूर्णचन्द्रः सुखदाः परिकीर्त्तिताः ।**

**बुधचन्द्रौ समौ साध्यो शेषाः शत्रव ईरिताः ॥ ६० ॥**

अर्थ—बृहस्पति, शुक्र और चन्द्र अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, बुध और चन्द्र सम हैं और मव ग्रह हीनभावापन्न हैं ॥ ६० ॥

**मूलत्रिकोणे बाणाब्धी तदर्द्धमाधिभिन्नके ।**

**स्वगृहे स्याद्बलं त्रिंशत्तदर्द्धं मित्रमन्दिरे ॥ ६१ ॥**

**तदर्द्धं समराशौ स्यात्तदर्द्धं शत्रुमन्दिरे ।**

**तदर्द्धमधिशत्रौ स्याद्बाल्यं तत्सप्तवर्गजम् ॥ ६२ ॥**

अर्थ—मूलत्रिकोणमें ग्रहोंके स्थित होनेसे त्रिपाद बली होतेहैं, अधिमित्रगृहमें स्थित होनेसे त्रिपादका अर्द्धबल रहताहै । अपने गृहमें रहनेसे अर्द्धबल होताहै और मित्रके गृहमें स्थित होनेसे तदर्द्ध ( पाद ) बल रहताहै समगृहमें रहनेसे पादार्द्ध बल होताहै, शत्रुके घरमें स्थित होनेसे पादपाद बल होताहै और अधिशत्रुके घरमें रहनेसे उसके अर्द्ध बलकी समान बल गृहजाताहै इसी प्रकार मसप्तवर्गज बलको विचारना चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

**युग्मभांशगतौ चन्द्रशुक्रौ बाणेन्दुवीर्यदौ ।**

**अयुग्मभांशगा अन्ये तावन्त एव वीर्यदाः ॥ ६३ ॥**

अर्थ—सम राशिमें स्थित चन्द्र और शुक्र पाद बली होते हैं और विषमराशिमें स्थित अन्य समस्तग्रह भी पादबली होजाते हैं ॥ ६३ ॥

**आदिमध्यान्तराभांशैः पुंषण्ढस्त्रीग्रहा अपि ।**

**केन्द्रादिस्थग्रहस्यौजः षष्टिंशत्तिथिक्रमात् ॥ ६४ ॥**

अर्थ—राशिको तीन भाग करके प्रथम द्रेक्काणमें पुंग्रह ( सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति ) पूर्णबली होते हैं, मध्यद्रेक्काणमें षण्ढग्रह ( बुध और शनि ) अर्द्धबली और शेष द्रेक्काणमें स्त्रीग्रह ( चन्द्र और शुक्र ) पादबली होतेहैं, केन्द्रादिस्थानमें स्थित ग्रहोंकोभी इसी प्रकारसे जानो ॥ ६४ ॥

अथ मूलत्रिकोणकथनम् ।

**सिंहो वृषश्च मेषश्च कन्या धन्वी धटो घटः ।**

अर्कादीनां त्रिकोणानि मूलानि राशयः क्रमात् ॥ ६५ ॥ ( घ )

अर्थ—अब सूर्यप्रभृतिके मूलत्रिकोणको कहते हैं । सूर्यकी सिंहराशि, चन्द्रकी वृषराशि, मङ्गलकी मेषराशि, बुधकी कन्याराशि, वृहस्पतिकी धनराशि, शुककी तुलाराशि और शनैश्वरकी कुम्भराशिकी मूलत्रिकोण कहा है ॥ ६५ ॥

अन्यत्र ।

सिंहवृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः ।

सूर्यादीनां मूलत्रिकोणभवानन्यनुक्रमशः ॥ ६६ ॥

अर्थ—सिंह, वृष, मेष, कन्या, धन, तुला और कुम्भराशिकी क्रमानुसार सूर्यादिसप्तग्रहोंके मूलत्रिकोण कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथ मूलत्रिकोणांशकथनम् ।

रविभौमजीवभार्गवशनैश्वराणां त्रिकोणभागाः स्युः ।

नखरविदिक्तिथिनखरा ज्ञेन्द्रोर्दिग्भांशकाः सूचात् ॥ ६७ ॥ ( ङ )

अर्थ—सूर्यादि सप्तग्रहके सिंहादि सप्तराशि मूलत्रिकोण होनेसेभी सिंहराशिके बीस अंश सूर्यके, मेष राशिके १२ अंश मंगलके, धन राशिके दश अंश वृहस्पतिके, तुलाराशिके पन्द्रह अंश शुकके, और कुम्भराशिके बीस अंश शनैश्वरके मूलत्रिकोणाग्र हैं, बुध और चन्द्रके मूलत्रिकोणांगमें इतनाही विशेष है कि बुधके सौचांशके बाद दश अंश और चन्द्रके सूचांशके बाद सत्ताईस अंश मूलत्रिकोणाग्र है ॥ ६७ ॥

( घ ) यथाक्रम सूर्यादीनां मूलत्रिकोणस्थानान्याह—सिंहेति । स्पष्टार्थमिति ।

( ङ ) अशविभागमाह—रवीति । यथाक्रम रव्यादीनां नखादयो मूलत्रिकोणांशः स्युः । बुधचन्द्रयोः पुनः सूचात् परमोच्चात् यथासंख्य दशांशः सप्तार्धशतिरशाश्च मूलत्रिकोणभागाः यथा स्वेः सिंहे विशत्यशाः मूलत्रिकोणभागाः चन्द्रस्य वृषे प्रथमभागत्रयाद्धर्षे सप्तविंशतिभागपर्यन्तं कुजस्य मेषे द्वादशांशः बुधस्य कन्यायां पञ्चदशांशाद्धर्षे पञ्चविंशत्यंशपर्यन्तम् । शुकोर्धनुषि दशांशः शुकस्य तुलायां पञ्चदशांशः शनेः कुम्भे विशत्यंश इति । अत्र च सौमरिः सिंहे विशत्यंश मूलत्रिकोण ततः परदशांशा एव स्वगृह्याणि एवमन्येषामपि प्रलपति तद्वेयम् । नहि सज्ञायां सज्ञान्तरं व्यध्यते अन्यथा सिंहे विशत्यंशाभ्यन्तरे स्थितस्य रवेः परमायुषो द्विगुणत्व न स्यात् स्वगृहत्वाभावात् यद्वा राश्याधिपत्यमेव ग्रहाणां मुक्तं न तु तदशाधिपत्यं तथा च सर्वत्रैवामेदेन प्रयोगो दृश्यते । यथा बृहज्जातके राशिशीलनिरूपणे ' विंशान्तः स्थिरधीः सुगर्वितमना मातृविधियोऽर्भकः ' इत्यनेनार्भकत्व प्रतिपाद्यं समस्तम्यैव सिंहराशेः शीलत्वमुक्तं यथा मूलत्रिकोणांशानां स्वगृहत्वाभावे साति तेषां पञ्चभागा न स्यात् । अधिपताभावेन क्षेत्रगर्भाभावादिति ॥

अथ तुंगादिकथनम् ।

सूर्यादुच्चात्क्रियवृषमृगश्रिकुलारान्त्ययूके  
दिग्बह्वीन्द्रद्वयतिथिशरान्सप्तविंशान्श्च विंशान् ।

अंशानेतान्वदति यवनश्चान्त्यतुङ्गान्सुतुङ्गान्

तानेवांशान्मदनभवनेष्वाह नीचान्मुनीचान् ॥ ६८ ॥ ( च )

अर्थ—सूर्यादिग्रहोंके तुंगस्थान कहते हैं, मेपादि सप्त राशिके दशमादि अंशको सूर्यादि सप्तग्रहोंके उच्च और परमोच्च स्थान यवनमुनिने कहा है । दशमादिअंशके शेषांशकोही सुतुंग कहते हैं उसको अच क्रमानुसार कहते हैं. यथा; मेपराशिके दशांशको सूर्यका उच्चस्थान और दशांशके शेषांश ( दशमांश ) को परमोच्चस्थान कहते हैं, वृषराशिके तानि अंशको चन्द्रका उच्चस्थान और तृतीयांश अर्थात् परमांशको परमोच्चस्थान सूचस्थान कहते हैं । मकरराशिके अठारह अंशको मंगलका उच्चस्थान और अठारह अंशके शेषांशको परमोच्च स्थान कहते हैं । कन्याराशिके पन्द्रह अंशको बुधका उच्चस्थान और पन्द्रह अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं कर्कराशिके पांच अंशको बृहस्पतिका उच्चस्थान और पांच अंशके शेषांशको सूचस्थान कहते हैं । मीनराशिके सत्ताईस अंशको शुक्रका उच्चस्थान और सत्ताईस अंशके शेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं, तुलाराशिके बीस अंशको शनैश्वरका उच्चस्थान और बीस अंशके अपरशेषांशको परमोच्चस्थान कहते हैं । मेपादि सप्त राशियोंकी जो सप्तम राशि है उसके दशमादि अंशको सूर्यादि सप्त ग्रहके नीच और मुनीचस्थान कहते हैं अर्थात् मेपकी सप्तम तुला राशि है उसके दश अंशको सूर्यका नीचस्थान और दश अंशके अपर शेषांशको मुनीच वा परमनीच स्थान कहते हैं वृषराशिके सप्तम घृश्चिक राशि है उसके तीन अंशको चन्द्रका नीचस्थान और तीन अंशके अपर शेषांशको मुनीचस्थान कहते

( च ) उच्चनीचानाह—सूर्यादिति । क्रियादिराशिषु यथासत्यं दिग्वाचशान् । यवनान्-  
चार्यः सूर्यादीनामुच्चान् उच्चसप्तकान् वदति अन्त्यतुङ्गान्श्च सुतुङ्गान् वदति । तुङ्गाशानां  
मध्ये योऽन्त्योऽंशः स तुङ्ग इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति रेभेपराशौ दशांशा उच्चाः दश-  
मांशाः परमोच्चः चन्द्रस्य वृषे त्रयोऽंशाः उच्चाः तृतीयोऽंशः सूचः मङ्गलस्य मकरे इन्द्रद्वय-  
मष्टाविंशतिरशा उच्चाः अष्टाविंशतिपूर्वोऽंशः सूचः । एवं बुधस्य कन्यायां पञ्चदशांशाः  
गुरोः कर्कटे पञ्चांशाः शुक्रस्य मीने सप्तविंशतिरशाः शनैस्तुलायां विंशत्यंशाः—सर्वेषाम-  
न्त्योऽंशः सुतुङ्ग इत्यर्थः । मेपादीनां तुङ्गानां मदनभवने सप्तमस्थाने यथाक्रमं तानेव दिग्वा-  
चशान् सूर्यादीनां नीचान् मुनीचानाह—यथा तुलायां दशांशा रेवतीचा दशमोऽंशः पर-  
मनीच इत्यादि । अशविभागस्तु विंशान्शस्फुटादेव ज्ञातव्य इति ।

हैं मकरराशिके सप्तम कर्क राशि है उसके अट्ठाईस अंशको मंगलका नीचस्थान और अट्ठाईस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहते हैं कन्याराशिके सप्तम मीन राशि है उसके पन्द्रह अंशको बुधका नीचस्थान और पन्द्रह अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं कर्कराशिके सप्तम मकर राशि है उसके पांच अंशको बृहस्पतिका नीचस्थान और पांच अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं । मीनराशिके सप्तम कन्या राशि है उसके सत्ताईस अंशको शुक्रका नीचस्थान और सत्ताईस अंशके अपर शेषांशको सुनीचस्थान कहते हैं तुलाराशिके सप्तम मेषराशि है उसके बीस अंशको शनैश्वरका नीचस्थान और बीस अंशके अपर शेषांशको परमनीच स्थान कहते हैं इस समस्त अंशभागको त्रिंशोश कहलेना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यत्र ।

मेपो वृपो मृगः कन्या कर्किमीनतुलाधराः ।

भास्करादेर्भवन्त्युच्चा राशयः क्रमशास्तिवमे ॥ ६९ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें उच्चसंज्ञा इस प्रकारसे वर्णित है । मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुलाराशिको क्रमानुसार सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्वर आदिका उच्चस्थान कहते हैं ॥ ६९ ॥

त्रिंशद्भागे दिशो रामा अष्टाविंशस्तिथिस्तथा ।

पञ्च वै सप्तविंशच्च विंशतिः सूच्चसंज्ञकाः ॥ ७० ॥

अर्थ—राशिके तीस अंश करके दशम अंश, तृतीय अंश, अट्ठाईस अंश, पन्द्रह अंश, पांच अंश, सत्ताईस अंश और बीस अंशको सूर्यादि सप्त ग्रहोंके सूच स्थान जानो ॥ ७० ॥

सूचाच्च सप्तमं नीचं प्राग्धद्भागैर्विनिर्दिशेत् ।

उच्चान्तः सूच्चसंज्ञः स्यान्नीचान्तस्तु सुनीचकः ॥ ७१ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त दशमादि अंशको क्रमानुसार उच्चस्थान और उसके सप्तम राशिको नीच स्थान जानो, और उच्चांशके शेषांशका नाम सूचस्थान और नीचांशके शेषांशको सुनीच स्थान कहते हैं ॥ ७१ ॥

अपरञ्च ।

दशांशके रविमेषे त्र्यंशे च चन्द्रमा वृषे ।

अष्टाविंशत्यंशके तु मकरे भूमिनन्दनः ॥ ७२ ॥

बुधः द्विषां त्रियर्माने पञ्चांशे कर्कटे गुरुः ।

सप्तविंशत्यंशके तु भृगुर्मने उदाहृतः ॥ ७३ ॥

विंशत्यंशे शनिर्युके सुतुङ्गस्तुङ्गसंज्ञकः ।

सप्तमे तु पुनः सर्वे सुनीचनीचसंज्ञकाः ॥ ७४ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें ग्रहोंकी सुतुङ्ग, तुंग, सुनीच और नीचसंज्ञा इस प्रकारसे कही है यथा, सूर्य मेपके दश अंशमें, चन्द्र वृषके तीन अंशमें, मंगल मकरके अट्ठाईस अंशमें, बुध कन्याके पन्द्रह अंशमें, वृहस्पति कर्कके पांच अंशमें, शुक्र मीनके सत्ताईस अंशमें और ज्ञेश्वर तुलाके बीस अंशमें सुतुंग और तुंगसंज्ञक होते हैं और इन समस्त राशियोंके सप्तमस्थानमें कहेहुए अंशोंमें सूर्यादि सप्त ग्रहोंकी सुनीच और नीचसंज्ञा होती है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

अथ ग्रहदृष्टिकथनम् ।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे ।

पादवृद्ध्या हि सर्वेषां ग्रहाणां दृष्टिरुच्यते ॥ ७५ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-अथ ग्रहोंकी दृष्टि कीर्त्तन करते हैं । जिस स्थानमें ग्रह स्थित हों उसके तृतीयस्थानमें, दशमस्थानमें, नवमस्थानमें पञ्चमस्थानमें, चतुर्थ स्थानमें, अष्टम स्थानमें और सप्तम स्थानमें क्रमानुसार एक २ पादवृद्धिसं दृष्टि होती है ॥ ७५ ॥

पाददृष्टिस्त्रिदशके अर्द्धदृष्टिस्त्रिकोणके ॥

पादोना चतुरस्रे स्यात्पूर्णदृष्टिश्च सप्तमे ॥ ७६ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ-ज्योतिषसारमें लिखा है कि, तृतीय और दशम स्थानमें ग्रहोंकी पाद ( चौथाई ) दृष्टि होती है । पञ्चम और नवम स्थानमें अर्द्धदृष्टि, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें त्रिपाददृष्टि और मप्रमस्थानमें ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि होती है ॥ ७६ ॥

तृतीये दशमे चैव पाददृष्टिरुदाहृता ।

अर्द्धदृष्टिश्च नवमे पञ्चमे परिकीर्त्तिता ॥ ७७ ॥

चतुर्थे चाष्टमे चैव पादोना परिकीर्त्तिता ।

सप्तमे परिपूर्णा च फलमेवं प्रकल्पयेत् ॥ ७८ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-साधारणग्रहोंकी तृतीय और दशम स्थानमें एकपाददृष्टि होती है, नवम और पञ्चम स्थानमें अर्द्धदृष्टि होती है, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें त्रिपाद दृष्टि होती है और सप्तम स्थानमें ग्रहोंकी पूर्ण दृष्टि होती है, फलाफल इमी प्रकारसे देखना चाहिये ऐसा जातकचन्द्रिकामें लिखा है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमा-  
नवलोकयन्ति चरणाभिवर्द्धिताः ।

रविजामरेज्यरूधिराः परे च ये

क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ॥ ७९ ॥ (छ)

इति दार्पिकायाम् ।

अर्थ-तृतीय और दशम स्थानमें नवम और पञ्चम स्थानमें, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें और सप्तम स्थानमें एक एक पाद क्रमानुसार वृद्धिमें ग्रहाकी दृष्टि होती है, किन्तु तृतीय और दशमस्थानमें अनेश्वरकी पूर्ण दृष्टि होती है, नवम और पञ्चमस्थानमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होती है, चतुर्थ और अष्टमस्थानमें मंगलकी पूर्ण दृष्टि होती है और सप्तमस्थानमें सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक, शनि, बृहस्पति और मंगलकी भी पूर्ण दृष्टि होती है ॥ ७९ ॥

पादं पश्यति खेचरस्त्रिदशभे पञ्चाङ्गभे तु द्वयं

पादानं चतुरस्रभे मदगृहे पूर्णं विशेषस्त्वयम् ।

पादे पादचतुष्टयं रविमुतः पादद्वये गीष्पतिः

पादानेऽवनिजः परन्तु परवन्नान्यत्र दृष्टिः क्वचित् ॥ ८० ॥ (ज)

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, ग्रहोंकी तृतीय और दशमस्थानमें एक पाद दृष्टि होती है इसी प्रकार पञ्चम और नवमस्थानमें अर्द्धदृष्टि चतुर्थ और अष्टमस्थानमें त्रिपाद दृष्टि और सप्तमस्थानमें पूर्ण दृष्टि होती है, किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, तृतीय और दशमस्थानमें शनिकी पूर्ण दृष्टि होती है, पाददृष्टि नहीं होती, पञ्चम और नवमस्थानमें बृहस्पतिकी पूर्ण दृष्टि होती है, अर्द्धदृष्टि नहीं होती । चतुर्थ और अष्टम स्थानमें मंगलकी पूर्णदृष्टि होती है

( छ ) ग्रहाणा दृष्टिमाह-त्रिदशेति । अधिष्ठितराशिसमाशात् त्रिदशो तृतीयदशमौ सर्वे ग्रहाः पादेन चतुर्थमागेनावलोकयन्ति । त्रिकोण नवपञ्चम पादद्वयेन चतुरस्र चतुर्थाष्टमौ पादत्रयेन सप्तम राशे चतुर्भिः पादैरवलोकयन्ति सर्वे ग्रहाः नान्यानि स्थानानि । तत्रैव विशेषमाह-रविजेति । अमेरन्यो देवपूज्यो गुरुरित्यर्थः । किल भिक्षिव शनिगुरुभोमाः एतदन्धे ग्रहाश्च यथासत्प त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तभेऽप्य दर्शनेऽधिकाः अधिकदर्शनः सपूर्णदर्शन इत्ययम् । शनिखिदशे सम्पूर्णं पश्यति जीवत्रिकोणे भोमश्चतुरस्रेऽपरे रवि-चन्द्रबुधशुक्राश्वरात् शनिजीवमीमाः सप्तमे सम्पूर्णं पश्यन्तित्यर्थः । तथाच सागरव-त्याम्-“पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशम त्रिकोणमपि जीवः । चतुरस्र भूमिस्ततो भृग्वर्क-रुपहिमकराः वलत्रश्च” इति ॥

( ज ) “ नवन पञ्चमश्चैव त्रिकोणे परिर्भाषितम् । चतुर्थमष्टमश्चैव चतुरस्र विदुर्ज्ञेयाः ॥”

त्रिपाद दृष्टि नहीं होती, अन्यान्यस्थानोंमें अपर ग्रहोंकी समान दृष्टि होती है किन्तु उपरोक्त स्थानोंके सिवाय और स्थानोंमें ग्रहोंकी दृष्टि नहीं होती है ॥८०॥

**तृतीयदशमावर्कः पश्यन्पूर्णफलप्रदः ।**

**त्रिकोणकान्गुरुश्चैव चतुर्थाष्टमगान्कुजः ॥ ८१ ॥**

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, शनैश्वरकी तृतीय और दशमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होता है, इसी प्रकार बृहस्पतिकी पञ्चम और नवमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्ण फल होता है और मंगलकी चतुर्थ और अष्टमस्थानमें दृष्टि होनेसे पूर्णफल होता है ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहाणामदृष्टिकथनम् ।

**स्वस्थानञ्च द्वितीयञ्च षष्ठमेकादशं तथा ।**

**द्वादशञ्च न पश्यन्ति शेषान्पश्यन्ति ते ग्रहाः ॥ ८२ ॥**

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, जिस २ स्थानमें ग्रहोंकी दृष्टि नहीं होती है उसको कीर्त्तन करते हैं, जिस स्थानमें ग्रह स्थित हों उस स्थानमें और द्वितीय स्थानमें छठे स्थानमें, एकादश स्थानमें और द्वादश स्थानमें ग्रहोंकी कभी भी दृष्टि नहीं होती और अन्य स्थानोंमें पूर्वोक्तके समान दृष्टि होती है ॥८२॥

अथ राहोर्दृष्टिकथनम् ।

**सुतमदननवान्त्ये पूर्णदृष्टिः सुरारे-**

**धुंगलदशमराशौ दृष्टिमात्रत्रयार्हः ।**

**सहजरिपुचतुर्थेष्वष्टमे चार्द्धदृष्टिः**

**स्थितिभवनमुपान्त्यं नैव दृश्यं हि राहोः ॥ ८३ ॥**

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें राहुकी दृष्टि इस प्रकारसे कही है कि; राहु जिस स्थानमें स्थित हो उसके वामदिकसे पञ्चम, सप्तम, नवम और द्वादश स्थानमें पूर्णदृष्टि होती है, द्वितीय और दशम स्थानमें त्रिपाददृष्टि होती है और तृतीय, षष्ठ चतुर्थ और अष्टम स्थानमें अर्द्धदृष्टि होती है, किन्तु यह जिस स्थानमें होके उस स्थानमें और एकादशस्थानमें राहुकी दृष्टि नहीं होती है ॥ ८३ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् ।

**अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ।**

**मृगशिरास्तथा चार्द्रा पुनर्वसुकपुष्यकौ ॥ ८४ ॥**



आश्लेषा च मघा चैव पूर्वाफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनी ।  
हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका ॥ ८५ ॥  
ज्येष्ठा मूला पूर्वाषाढोत्तरा च श्रवणा तथा ।  
धनिष्ठा शतभिषा चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ॥ ८६ ॥  
उत्तरादिभाद्रपदा रेवती भानि च क्रमात् ॥ ८७ ॥

अर्थ—अब सत्ताईस नक्षत्रोंको कीर्तन करते हैं यथा—आश्विनी, भरणी, कृत्तिका, गौहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, ( झ ) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती इन्हींको सत्ताईस नक्षत्र कहते हैं ॥ ८४-८७ ॥

अथ नक्षत्राधिपकथनम् ।

अश्विनमदहनकमलजशशिशूलभृद्ददितिजीवफाणिपितरः ।  
योन्यर्यमादिनकृत्वपृष्वपवनशक्रामिमित्राश्च ॥ ८८ ॥  
शक्रो निर्र्हातिस्तोयंविश्वविरिञ्ची हरिर्वसुर्वरुणः ।  
अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ८९ ॥ ( अ )

अर्थ—अब नक्षत्रोंके अधिष्ठातृदेवताओंको वर्णन करते हैं यथा—आश्विनीनक्षत्रके स्वामी अश्वि हैं. इसी प्रकार भरणीके यम, कृत्तिकके अग्नि, गौहिणीके ब्रह्मा, मृगशिरके चन्द्र, आर्द्राके शिव, पुनर्वसुके अदिति, पुष्यके बृहस्पति, आश्लेषाके सर्प, मघाके पितृगण, पूर्वाफाल्गुनीके योनि, उत्तराफाल्गुनीके अर्यमा-हस्तके सूर्य, चित्राके त्वष्टा, स्वातिके पवन, विशाखाके शक्राग्नि, अनुराधाके मित्र,

( झ ) उत्तराषाढाका धनुर्धर श्रवण और श्रवणके पूर्व श्रवणकोही अभिजित् कहते हैं

( अ ) यथाक्रममग्रांशितिनक्षत्राणां देवता आह—अश्वीति । अत्र या या यस्य यस्य नक्षत्रस्य देवता उक्ता तस्य तस्य नक्षत्रस्य तत्प्रयोगशब्दो वाचक इत्यर्थः । अश्विन्य-अश्विनीकुमारो देवता अश्विनीकुमारपर्यायोऽश्वपर्यायश्च बोद्धव्यः योनिर्भगसंज्ञकदेवता पूषेफाल्गुन्या उत्तरफाल्गुन्याः अर्धमेति स्वरूपमात्रं न तु पर्यायःहस्तायास्तु दिनकृतदेवता रविपर्याय, त्वष्टा चित्रायाः, स्वात्याः पवना देवता, शक्राग्निसंज्ञकदेवता विशाखायाः जलदेवता, पूर्वाषाढायाः उत्तराषाढाभिजितोविश्वविरिञ्ची देवते उत्तराषाढाया विश्वदेवसंज्ञक-देवता, अभिजित्नक्षत्रस्य विरिञ्चिदेवता विरिञ्चिरिति स्वरूपमात्रं न तु पर्यायः । अजपादोऽ-जैकपाद इत्यर्थः । पूषादेवता रेवत्याः पूषेति स्वरूपमात्रं पूषा देवता अरयोति पौष्णशब्दो रेवतीशब्दः । एतच्चार्यादयं पितर इत्यन्तमर्द्धे मित्राश्चेत्यन्तभेकार्था अन्यथाश्च वरुण इत्यन्तमर्द्धमेति ॥

ज्येष्ठाके इन्द्र, मूलके निर्ऋति, पूर्वाषाढके जल, उत्तराषाढके विष्णु, श्रवणके हरि, धनिष्ठाके वसु, शतभिषाके वरुण, पूर्वाभाद्रपदाके अजपाद, उत्तराभाद्रपदाके आर्हिर्बुध्न्य और रेवतीके पूषा हैं ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथ गणकथनम् ।

उग्रः पूर्वमघान्तका ध्रुवगणस्त्रीण्युत्तराणि स्वभू-  
र्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्याश्विहस्ता लघुः ।

चित्रामित्रमृगान्त्यभं मृदुगणस्तीक्ष्णोऽहिरुद्रेन्द्रपुरु

मिश्रोऽग्निःसविशाखभःशुभकराःसर्वे स्वकृत्ये गणाः ॥ ९० ॥ ❀

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन कईएक नक्षत्रोंकी उग्रगणसंज्ञा है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी इन नक्षत्रोंकी ध्रुवगणसंज्ञा है । स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंकी चरगण संज्ञा है, पुष्य अश्विनी और हस्त इन नक्षत्रोंकी लघुगण संज्ञा है, । चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती इन नक्षत्रोंकी मृदुगण संज्ञा है । आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल इन नक्षत्रोंकी तीक्ष्ण गणसंज्ञा है कृत्तिका और विशाखा नक्षत्रकी मिश्रगणसंज्ञा है । उक्त समस्त नक्षत्र अपने २ कार्यमें शुभकारक होते हैं ॥ ९० ॥

अथ उग्रनक्षत्रगणकथनम् ।

उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनादिसाध्येषु योज्यानि ।

बन्धनविषदहनशस्त्रसंघातादिषु च संसिद्धौ ॥ ९१ ॥ ( अ )

अर्थ-अब उग्रगण कीर्त्तन करते हैं-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा यह कईएक उग्रगण नक्षत्र हैं, इनमें शत्रुउच्चाटन, बन्धन, विष प्रयोग दहन और अस्त्रघातादि कार्य करनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ९१ ॥

अथ ध्रुवनक्षत्रगणकथनम् ।

त्रीण्युत्तरातेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणिभैः कुर्यात् ।

अभिपेकशान्तितरुनगरबीजवापधुत्रारम्भान् ॥ ९२ ॥ ( आ )

अर्थ-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणी इन ध्रुवगण

• सक्षोगादी सान् गणान् कथयानि-उग्र इति । इन्द्रयुगति इन्द्रद्वयं ज्येष्ठा मूलं चेत्यर्थः । एते सर्वे गणाः वक्ष्यमाणोक्तस्त्रकीयकर्मणि शुभा इत्यर्थः ।

( अ ) उग्रनक्षत्राग्राह-उग्राणीति । पूर्वं पूर्वात्रयम् उत्सादनं शस्त्राणामुच्चाटनमिति ।

( आ ) ध्रुवनक्षत्राग्राह-त्रीणीति । त्रीण्युत्तराणि रोहिणी च ध्रुवसंज्ञकानि तेभ्यः वक्ष्य-

नक्षत्रोंमें अभिषेक, शान्ति, तरु, ध्रुव और बीजवपन कर्म करना चाहिये। कोई २ मनुष्य कहते हैं कि, अधोमुखनक्षत्रविहित विद्यारम्भ, अर्घ्यदान और भूमि-खननादिकर्मभी इसमें करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ चरनक्षत्रगणकथनम् ।

श्रवणात्रयमादित्यानिलौ च चरकर्मणि हितानि ।

आरामोद्यानानि कर्माणि भवन्ति चरवर्गे ॥ ९३ ॥ ( इ )

अर्थ—श्रवण- धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति इन चरगण नक्षत्रोंमें चरकर्म, आराम ( उपवन ) उद्यान ( फलान्वित वन ) का आगम्भ करना शुभ है ॥ ९३ ॥

अथ लघुगणकथनम् ।

लघुहस्ताश्विनीपुण्याःपुण्यरतिज्ञानभूषणकलासु ।

शिल्पोपधिपण्येषु च सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥ ९४ ॥ ( ई )

अर्थ—हस्त अश्विनी और पुष्य इन लघुगण नक्षत्रोंमें पुण्यकर्म, रतिज्ञान, भूषण कला, शिल्पकर्म औपधिक्रिया और पुण्यकर्म, करनेसे शुभफल प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

अथ मृदुगणकथनम् ।

मृदुवर्गस्त्वनुराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे ।

सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ ९५ ॥ ( उ )

अर्थ—अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिर इन मृदुगण नक्षत्रोंमें मित्र, अर्थ सुरतविधि, वस्त्र भूषण और गीतादिकर्म प्रशस्त हैं ॥ ९५ ॥

अथ तीक्ष्णगणकथनम् ।

मूलशुक्रशिवभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिध्यन्ति ।

—माणश्लोकोक्तविद्यार्घ्यभूमिखननकर्मभ्यः शस्तानीत्यर्थः । तेष्वभिषेकादीनि कुर्यादिति केचित् । केचित्तु तेष्यः सप्तविंशतिनक्षत्रेभ्यः सकाशात् त्रीण्युत्तराणि रोहिणी च नक्षत्राणि ध्रुवसंज्ञकानीति रोहिण्य शक्ति बहुवचनं ताराबाहुल्यादिति ॥

( इ ) चरनक्षत्राण्याह—श्रवणोति । श्रवणादीनि चराणि एतानि चरकर्मण्यास्थिरकर्मणि विहितानि अथ चरवर्गे आरामोद्यानानां कर्माणि शुभानि भवन्तीत्यर्थः । आरामः पुष्प-प्रधानं वनम् उद्यानन्तु फलप्रधानमिति ॥

( ई ) लघुनक्षत्राण्याह—लघुविति । लघुसंज्ञकहस्ताश्विपुण्याः पुण्यादिषु विहिताः तानि च नक्षत्राणि शिल्पोपधिपण्येष्वपि सिद्धिकराणीत्यर्थः । अश्विनीति क्वचिदीपित्यापि ह्रस्वः ।

( उ ) मृदुनक्षत्राण्याह—मृद्विति । मृगमिति ।

अभिघातमन्त्रवेतालभेदवधबन्धनादिकार्याणि ॥ ९६ ॥ (ऊ)

अर्थ-मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा इन तीक्ष्णगण नक्षत्रोंमें अभिघात, मन्त्रकर्म, भूतदानवादिसाधन और वधबन्धनादि कार्यका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होते हैं ॥ ९६ ॥

अथ मृदुतीक्ष्ण ( मिश्र ) गणकथनम् ।

हौतभुजं सविशाखं मृदुतीक्ष्णं तद्धि मिश्रफलकारि ।

हयवृषभकुञ्जराणां वाहनदमनानि सेतुश्च ॥ ९७ ॥ ( ऋ )

अर्थ-कृत्तिका और विशाखा इन मृदुतीक्ष्ण ( मिश्र ) गण नक्षत्रोंमें विहित कर्मका मिश्र फल होता है और अश्व, वृष और इस्त्यादिक वाहन दमन और सेतुकर्म प्रशस्त हैं ॥ ९७ ॥

अथाधोमुखगणकथनम् ।

आश्लेषवाह्नियमपित्र्यविशाखयुक्तं

पूर्वात्रयं शतभिषा च नवाप्युहूनि ।

एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यं

विद्यार्घ्यभूमिखननेषु च भूपितानि ॥ ९८ ॥ ( ऋ )

अर्थ-आश्लेषा, कृत्तिका, मरणा, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वामाद्रपदा और शतभिषा इन कई एक नक्षत्रोंको अधोमुखगण कहते हैं । विद्यारम्भमें, अर्घ्यदानमें और भूमिखननादि कार्यमें शुभकारक हैं ॥ ९८ ॥

अथोर्ध्वमुखगणकथनम् ।

रोहिण्यार्द्रसतिष्यमूलवसवो षिष्णुस्रयोऽप्युत्तरा

एतान्यूर्ध्वमुखानि तानि च नव ज्योतिर्विदो मेनिरे ।

एभिश्चित्रसितातपत्रभवनप्रासादहर्म्यांश्चित्रिष-

( ऊ ) तीक्ष्णगणमाह-मूलेति । वेतालो भूतदानवादिसाधनमिति ।

( ऋ ) मृदुतीक्ष्णनक्षत्राण्यह-हौतभुजमिति । मृदुतीक्ष्णगणः तत्र मृदुगणविहित-कर्मणि तीक्ष्णगणविहितकर्माणि च मिश्रफलं मध्यफलं करोति तत्र च हयादीनां वाहनदमनानि कार्याणि सेतुश्च कार्यइत्यर्थः ।

( ऋ ) अधोमुखनक्षत्राण्यह-आश्लेषेति । अधोमुखगणानिति अधोमुखो गणः समुदायो येषां नक्षत्राणाम् इत्यर्थः ।

प्राकाराट्टविहारतोरणपुरःप्रारम्भणं शस्यते ॥ ९९ ॥ ( ल )

अर्थ—रोहिणी आर्द्रा, पुष्य, मूल, धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-  
षाढा और उत्तरामाद्रपदा इन समस्त नक्षत्रोंको ऊर्ध्वमुखगण ज्योतिर्विद् कहते  
हैं. चित्रकर्ममें, श्वेतच्छप्रधारणमें, गृहारम्भमें, राजपुरगमनमें और अट्टालिकार-  
म्भमें यह समस्तग्रह प्रशस्त हैं और वृक्षारोपणमें, प्राचीरगठनमें, वणिक् गृह-  
ारम्भमें, विहारकर्ममें और विदेशयात्रामें और पुरीगठनमेंभी उक्त नक्षत्रगण  
प्रशस्त हैं ॥ ९९ ॥

अथ पार्श्वमुखगणकथनम् ।

मत्राखण्डलचन्द्रपाणितुरगाश्चित्रास्तथा स्वातयो  
रेवत्योऽथ पुनर्वसुश्च कथितः पार्श्वस्यनामा गणः ॥

एभिर्धन्व्रथादिपातकरणं वेदमप्रवेशोऽपि वा

शस्तोऽयं गजवाजिगर्दभगवां दामे तथा यन्त्रणे ॥ १०० ॥ ( ल )

अर्थ—अनुगधा, ज्येष्ठा, मृगशिर, हस्त, आश्विनी, चित्रा, स्वाति, रेवती और  
पुनर्वसु इन समस्त नक्षत्रोंको पार्श्वमुखगण कहते हैं, उक्त नक्षत्रोंमें यन्त्रादि-  
करण, रथनिर्माण; नौकागठन और गृहप्रवेश प्रशस्त है और हस्ती, अश्व, गर्दभ,  
गोदमन और हलशकटादि योजनकर्म प्रशस्त हैं ॥ १०० ॥

अथ ताराशुद्धिकथनम् ।

तारास्तु जन्मसम्पद्धिपक्षेमपापशुभकष्टाः ।

मित्रांतिमित्रसंज्ञाश्चैताः संज्ञानुरूपफलाः ॥ १०१ ॥ ( ए )

अर्थ—अब ताराशुद्धि कीर्तन करते हैं । जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, पाप,

( ल ) ऊर्ध्वमुखनक्षत्राण्यह—रोहिणीति । तिष्यः पुष्याः प्रसादो राजगृह हर्म्यं सौध-  
गृहम् अट्टं वणिक्पण्यगृहामेति ।

( ल ) पार्श्वमुखनक्षत्राण्यह—भ्रैत्रेति । एभिर्नक्षत्रैर्धन्व्रथादिनीकाकरणं स्यात्सश्व-  
प्रवेशः स्यात् अयं पार्श्वमुखगणः गजादीनां दामे प्रथमदमने यन्त्रणे प्रथमशकटादियोजने  
च शस्त इत्यर्थः ।

( ए ) ताराशुद्धिमाह—तारास्त्विति । जन्मनक्षत्रत्रिंशत्तित्तिशक्तिप्रमाजन्मादयस्ताराः स्युः ।  
एतास्तारा नामरूपफलदा इत्यर्थः । अतिमित्रः अत्यन्तमित्रमित्यर्थः । तथाच स्वरोदये ॥  
जन्मसम्पद्धिपक्षेमः प्रत्ययिः साधको वधः । मित्रं परममित्रश्च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥  
अत्र च केचिदतिमित्रतारा न शुभेति प्रलपन्ति तदशुद्धं दृश्यमानमतीकारकथनाभावात् ।  
तथाच । यानाप्रकरणे । “ यात्रायाम् शोभनास्ताराः समाः कर्मान्त्यसंयुताः ” इति छिरित्त-  
स्वगोदपत्रधनात् । तथाच राजमार्तपेठे । “ परमे भ्रैत्रे शुभः प्रतिदयिता ध्वहागोर्गतिपुष्यः ”  
इति । तथाच तत्रैव ताराफलधनम् “ रोगो जन्मशु तारकासु कथितः कार्यप्रणशोऽचि-

शुभ, कष्ट, मित्र और अतिमित्र इन नौ ( ९ ) की तारासंज्ञा है. जन्मनक्षत्रसे गणना करके तीनवार सत्ताईस नक्षत्रोंको देखना चाहिये । प्रत्येक मनुष्यकेही जन्म ३ सम्पत् ३ विपत् ३ क्षेम ३ पाप ३ शुभ ३ कष्ट ३ मित्र ३ और अति-मित्र ३ तारा होता है और यह समस्त तारा नामानुरूप फल प्रदान करते हैं अर्थात् जन्म, विपत्, पाप और कष्ट तारा अशुभ फलके देनेवाले हैं और सम्प-दादि तारा शुभ फलके देनेवाले हैं ॥ १०१ ॥

**जन्मसम्पद्धिपक्षेमप्रत्यारिः साधको वधः ।**

**मित्रं परममित्रञ्च नवताराः प्रकीर्तिताः ॥ १०२ ॥**

ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमेंभी कहाहै कि जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यारि, साधक-वध, मित्र और परममित्र यह नौ तारासंज्ञक हैं ॥ १०२ ॥

अथ पञ्चमादितारानिर्णयः ।

**पापाख्यास्त्रिविधाःपञ्च चतुर्दशविंशतिस्त्रियुताः ।**

**सिद्धिफला वृद्धिकरी विनाशसंज्ञा क्रमात्कथिताः ॥ १०३ ॥ ( ऐ )**

अर्थ-पापतारा तीन हैं अर्थात् जन्मनक्षत्रसे पांचों नक्षत्रतक प्रथम, चौदहवों नक्षत्र दूसरा और तेईसवें नक्षत्रको तीसरा जानो, इन तीनों ताराके मध्यमें प्रथम पापतारा जन्मनक्षत्रसे पञ्चमतारा सिद्धिफलप्रदान करता है द्वितीय पापतारा वृद्धिप्रदान करता है और तृतीय पापतारा विनाशसाधन करता है ॥ १०३ ॥

अथ जन्मताराफलम् ।

**यात्रायां पथि बन्धनं कूपिविधौ सर्वार्थनाशो भवे-**

**ज्ञैपज्ये मरणं तथा सुनियतं दाहो गृहारम्भणे ।**

**क्षौरे रोगसमागमो बहुविधः श्राद्धेऽर्थनाशस्तथा**

**वादे बुद्धिविनाशनं त्वरिभयं प्राप्नोत्यसौ जन्मभे ॥ १०४ ॥**

अर्थ-अथ जन्मताराका फल कहते हैं जन्मतारामें यात्रा करनेसे मार्गमें बन्धन

—रादारोग्यं द्रविणञ्च वाञ्छितफलावाप्तिः सदा सम्पदि । तारायां विपदो भवन्ति विपदि प्रारब्धकार्षक्षयः क्षेमरोग्यधनप्रमोदमुदित क्षेमाभिधानेष्वपि । पञ्चम्यामाचिरान्मनोऽति-तरलं कार्यप्रसिद्धिं प्रति सद्वृद्धद्रविणप्रमोदमतुलं प्राप्नोति पष्ठ्यामिति । सप्तम्यामपि कोश-नाशमशुभं नानागदव्याहतिश्चाष्टम्यां धनमानसीख्यविजयान्येवं नक्श्यामपि ॥ ” इति ।

( ऐ ) पापतारायां विशेषमाह-पापाख्या इति । त्रियुता विंशतिस्त्रयोविंशतिरित्यर्थः । तथा च “ सिद्धिदा क्राद्धिदा चैव मृत्युदा च विशेषतः । प्रत्यरिर्नामतस्तारात्रिककाराः प्रकीर्तिताः ॥ ” इति ॥

होता है इसी प्रकार कृपिकार्य करनेसे शस्यादिका विनाश होता है, औषधिके सेवन करनेसे मृत्यु होती है, गृहारम्भके करनेसे गृहमें दाह होता है, क्षौरकर्म करनेसे रोग होता है श्राद्ध करनेसे अर्थनाश होता है, विवाद करनेसे बुद्धिका नाश होता है और शत्रुद्वारा भय उपस्थित होता है ॥ १०४ ॥

**सर्वमङ्गलकार्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् ।**

**विवादश्राद्धभैषज्ययात्राक्षौराणि वर्जयेत् ॥ १०५ ॥**

अर्थ—त्रिजन्मतारामें समस्त शुभ कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये केवल विवाद श्राद्ध, औषधसेवन, यात्रा और क्षौरकर्मको वर्जितकरै ॥ १०५ ॥

अथ ताराप्रतीकारः ।

**विपत्तारे भुङ् दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम् ।**

**प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यान्निजन्मनि ॥ १०६ ॥ (ओ)**

अर्थ—अब तारादोषके प्रतीकारको कहते हैं। विपत्तारामें गुड दान करना चाहिये। इसी प्रकार वधतारामें तिलोंके साथ काञ्चनदान करै, प्रत्यरि ( पाप ) तारामें लवणदान करै और जन्मतारामें शाकदान करनेसे अशुभतारा शुभ फल प्रदान करते हैं ॥ १०६ ॥

अथ दिवसस्य पञ्चदशनक्षत्रमुहूर्त्तकथनम् ।

**शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरिञ्चिपङ्कजप्रभवाः ।**

**इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाहि ॥ १०७ ॥ (औ)**

अर्थ—अब दिनके पन्द्रह मुहूर्त्तोंके स्वामी नक्षत्र कीर्त्तन करते हैं, दिनमानको पञ्चदश भागमें विभक्तकरै उसके एक २ भागका नाम मुहूर्त्त है। प्रथम मुहूर्त्तका स्वामी आर्द्रा नक्षत्र है, इसी प्रकार द्वितीय मुहूर्त्तका स्वामी आश्लेषा नक्षत्र है, तीसरे मुहूर्त्तका अनुराधा, चौथेका मघा, पांचवेंका धनिष्ठा, छठेका पूर्वाषाढा, सातवेंका उत्तराषाढा, आठवेंका अभिजित, नववेंका रोहिणी, दशवेंका विशाखा, ग्यारहवेंका ज्येष्ठा, बारहवेंका मूल, तेरहवेंका शतभिषा, चौदहवेंका उत्तराफाल्गुनी और पन्द्रहवें मुहूर्त्तका स्वामी पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है ॥ १०७ ॥

( ओ ) तारादोषप्रतीकारमाह—विपदिति । प्रत्यरिः पापतारा निधन कष्टा तारा तिलकाञ्चनं तिलसहितकाञ्चनमित्यर्थः ।

( औ ) दिवसस्य पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्राण्यह—शिवेति । पञ्चदशमागीकृतस्य दिवामानस्य यथाक्रमं शिवादीनि नक्षत्राणि अधिपानि विरिञ्चिः अभिजिदिति ।

अथ रात्रेः पञ्चदशनक्षत्रमुहूर्त्तकथनम् ।

रुद्राजाहिर्बुध्न्यपूपाश्विसौरिवाह्निरहगलौसुराम्बाश्च विष्णुः । ( अं )  
पुष्या हस्ता त्वष्टवायू तथैते रात्रेरुक्ता वै मुहूर्त्ताधिनाथाः ॥ १०८ (अः)

अर्थ-अथ रात्रिके पन्द्रह मुहूर्त्तोंके स्वामी नक्षत्र कहे जाते हैं । रात्रिमानको पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त होता है । रात्रिके प्रथम ( पहिले ) मुहूर्त्तका स्वामी आर्द्रा नक्षत्र है इसी प्रकार दूसरे मुहूर्त्तका स्वामी पूर्वाभाद्रपद है, तीसरे मुहूर्त्तका स्वामी उत्तराभाद्रपद, चौथेका रेवती, पाचवेंका अश्विनी, छठेका सौरि कहिये यमदेवताका भरणी, सातवेंका कृत्तिका, आठवेंका रोहिणी, नववेंका मृगशिर, दशवेंका सुराम्बा कहिये अदिति देवताका पुनर्वसु नक्षत्र, ग्यारहवेंका श्रवण, बारहवेंका पुष्य, तेरहवेंका हस्त, चौदहवेंका चित्रा और पन्द्रहवें मुहूर्त्तका स्वामी स्वातिनक्षत्र है ॥ १०८ ॥

अथ नक्षत्रमुहूर्त्तफलम् ।

अह्नः पञ्चदशांशे रात्रेश्चैवं मुहूर्त्त इति संज्ञा ।

नक्षत्रे यदिहितं तत्कार्यं तन्मुहूर्त्तंऽपि ॥ १०९ ॥ ( १ )

अर्थ-दिनमानको पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त है रात्रिमानकोभी पन्द्रह भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम मुहूर्त्त होता है । जिस नक्षत्रमें जो कार्य विहित है उस नक्षत्रमें उसी कार्यको करे ॥ १०९ ॥

अथ नाडीनक्षत्राणि ।

जन्माद्यं कर्म ततोपि दशमं सांघातिकं षोडशभम् ।

समुदयमष्टादशमं विना संज्ञं त्रयोविंशम् ॥ ११० ॥

आद्याजु पञ्चविंशं मानसमेवं नरः पृथक् स्यात् ।

( अं ) गुरुहरीति पुस्तकान्तरे पाठः । (अः) रात्रेः पञ्चदशमुहूर्त्ताधिपनक्षत्राण्याह-  
रुद्र इति । पञ्चदशभागीकृतस्य रात्रिमानस्य रुद्रादिनक्षत्रसंज्ञकाः क्षणा मुहूर्त्ताः स्युस्त-  
दधिपत्वेन तत्रक्षत्रसंज्ञाभाजः क्षणाः ॥ इति ।

( १ ) मुहूर्त्तसंज्ञाफलमाह-अह्न इति । रात्रिमानं दिवामानं यावद् भवति तावदेव  
पञ्चदशांशे मुहूर्त्तसंज्ञक इत्यर्थः । अत्र च दण्डद्वयं मुहूर्त्त इति निगदतः सौभरेन्द्रा-  
ज्ञानाभ्यसनमेव कारणमिति । अत्र च यत्रक्षत्रे यत्कर्म विहितं तत्रक्षत्रमुहूर्त्तंऽपि तत्कर्म  
कर्त्तव्यमित्यर्थः । इति ॥



## नवनक्षत्रो नृपतिः स्वजातिदेशाभिषेकक्षैः ॥ १११ ॥ ( २ )

अर्थ—अब नाडीनक्षत्र कहते हैं । जिस नक्षत्रमें मनुष्यका जन्म हो उस नक्षत्रको उसकी जन्मनाडी कहते हैं, जन्मनाडीसे गिनकर दशवें नक्षत्रको कर्मनाडी कहते हैं, इसी प्रकार सोलहवें नक्षत्रको सांघातिकनाडी, अठारहवें नक्षत्रको समुद्रयनाडी, वेईसवें नक्षत्रको विनाशनाडी और पचासवें नक्षत्रको मानसनाडी कहते हैं, इन्हीं छः नक्षत्रोंको मनुष्यके पणनाडी नक्षत्र कहते हैं । राजाओंकी तीन नाडी और होती हैं यथा—स्वजातनाडी देशनाडी और अभिषेकनाडी—उपरोक्त छः नाडियोंको और इन तीन नाडियोंको मिलाकर राजाओंकी नौ नाडी होती हैं । स्वीयजातिनिरूपित नक्षत्रका नाम स्वजातिनाडी, देशनामानुसार जो नक्षत्र उसका नाम देशनाडी और जिस नक्षत्रमें राजा अभिषिक्त हो उसका नाम अभिषेकनाडी है ॥ ११० ॥ १११ ॥

अथ नाडीनक्षत्रफलम् ।

ईहादेहार्थहानिः स्याज्जन्मक्षे चोपत्तापिते ।

कर्मक्षकर्मणां हानिः पीडा मनसि मानसे ॥ ११२ ॥

मूर्त्तिद्रविणवन्धूनां हानिः सांघातिके तथा ॥ ११३ ॥

सन्तप्ते सामुदायिके मित्रभृत्यार्थसंक्षयः ।

वैनाशिके विनाशः स्याद्देहद्रविणसम्पदान् ॥ ११४ ॥

अर्थ—अब नाडीनक्षत्रका फल वर्णन करते हैं । मनुष्यकी जन्मनाडी ( जन्म-

( २ ) ताराणां सज्ञान्तरेण फलमार्थाद्वयेनाह—जन्माद्यामीति । आद्य यत्र पुमाञ्ज्ञातं तज्जन्ममज्ञं नक्षत्रमित्यर्थः । तस्माद्दशम कर्मनाडी षोडशम सांघातिकम् अष्टादशमसामुदायिकं त्रयोविंश वैनाशिकं तथा आद्याज्जन्मनक्षत्रात् पञ्चविंशतक्षेत्रं मानससंज्ञमित्यर्थः । एवप्रकारेण नरः पटुक्षः स्यात् पटुनक्षत्राणि यस्योति विग्रहः । नृपतिर्नवनक्षत्रं पूर्वप्रोक्तानि पटुस्वजातिदेशाभिषेकक्षैः सह नवनक्षत्राणीत्यर्थः । जातिदेशनक्षत्राणि च योगयात्रायामुक्तानि यथा—पूर्वात्रयं सानलमग्रजाना राजान्तं पुष्येण सहोत्तराणि । सपीष्णमेत्रं पितृद्वैतश्च प्रजापतेर्भक्षं कुपीनरानाम् ॥ आदित्यहस्ताभिजिदाग्निनिनि वणिग्जनाना प्रवदन्ति भानि । मूलाग्निनेत्रातिलारणानि भान्यन्त्यजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥ मीम्येन्द्रात्रिजामुदेतानि सेवाजनैः साम्यमुपागतानि । सपे विशाराश्रवणाभरण्यश्चाण्डालजातेरपि निर्दिशन्ति । नक्षत्रत्रयर्गराश्रेयाद्यैर्व्यस्यितेनेया । भारतवर्षमध्ये प्रागादिभिर्भाजिता देशाः ॥ ” तथा “ मिमेक्षिभिरपि वृत्तिराद्येन पीडिते भूपतयोऽभिषेक्या । पञ्चालनाथो मगधाधिपश्च कलिङ्गराजुज्यिनीपतिश्च । आनन्तराष्ट्रमेष्यहारहोरो मद्रेश्वरोऽथ कुरुतनायः । एते हि कर्माङ्गसमाश्रिताना भाना मगन्ति क्षितिपातु नायाः ” । तथा— ‘ कर्मोपादिष्टानि हि देशभानि राजोऽभिषेकाहनि षाभिषेकः ॥ ” इति ॥

उपतापित होनेसे चेष्टा, देह और अर्थकी हानि होती है इसी प्रकार कर्मनाडी अर्थात् जन्मनक्षत्रसे दशवाँ नक्षत्र उपतापित होनेसे कर्मकी हानि होती है, मानसनाडी उपतापित होनेसे मानसिकपीडा होती है, सांवातिक नाडीके उपतापित होनेसे देह, धन और बान्धवोंकी हानि होती है, मासुदियक नाडी उपतापित होनेसे मित्र, भृत्य और अर्थका नाश होता है और वैनाशिक नाडी उपतापित होनेसे शरीर, धन और नम्पत्का नाश होजाता है ॥ ११-१४ ॥

अथ नाडीनक्षत्रपीडाशान्तिकथनम् ।

सर्वेषामेव पीडायां दिनमेकमुपोपितोऽनलं जुहुयात् । ( ३ )

सावित्र्या क्षीरतरोः समिद्धिरमरद्विजानुरतः ॥ ११५ ॥

अर्थ-अब नाडीके नक्षत्रोंका प्रतीकार कहते हैं । जन्मप्रभृति छः नाडियोंके मध्यमें मनुष्यकी कोई एक नाडी अथवा ममस्त नाडियें यदि दूषित हों तो उन दोषोंके शान्तिके अर्थ देवब्राह्मणानुरक्त मनुष्य एक दिन उपवास करके गायत्रीपाठपूर्वक अग्निमें क्षीरवृक्षकी समिधद्वाग अष्टोत्तरसहस्र होम करे ॥ ११५ ॥

अथाशुभनक्षत्रनिर्णयः ।

नक्षत्रपटुकिरणं पश्चात्सन्ध्यागतं ग्रहैर्भिन्नम् ।

ऋरनिपीडितमुत्पातदूषितञ्चाशुभं सर्वम् ॥ ११६ ॥ ( ४ )

अर्थ-अथ अशुभ नक्षत्रोंका निर्णय करने हैं । अश्विन्यादि मत्तार्हम नक्षत्रोंके

( ३ ) नाडीनक्षत्रदोषप्रतीकारमाह-सर्वेषामिति । सर्वेषां नाडीनक्षत्राणां क्रमेण समुदायेन वा पीडायां गायत्र्या होम कुर्यादित्यर्थः । देवद्विजानुरक्तपुरुषः देवब्राह्मणपूजापि कर्त्तव्येति तात्पर्यम् । अनुक्तपर्यग्रहोमेऽष्टोत्तरसहस्रमायाविधानाद्ब्राह्मण्यष्टोत्तरसहस्रहोम इति । यथा पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्-“येषां जपे च होमे च संप्रिया नोक्ता मनीषिभिः । तेषामष्टसहस्रन्तु संप्रिया स्याज्जपहोमयोः ॥ ” अत्र च नाडीदोषशान्तिक्रान्तमुक्तं योगयात्रायाम् । यथा- “गोक्षीरसितवृषभशङ्कुमूत्रैः पत्रैश्च पूर्णकोपायाः । स्नानं जन्मदिने दुष्टे स्वाचार्यतां हृगते पापम् ॥ कर्मणि घृतमधुहोमो दशाहमक्षारमद्यमांसादः । दूर्वाप्रियंगुलाजशतपुष्पशतावगच्छानम् । सांघानिके तु दुष्टे मांसमधुक्रौर्यमन्मयां स्तयत्वा । स्नानञ्च तत्र कुर्यात्प्रियंगुमिद्धार्थविन्दलेः । ममिश्चितेन पयसा सुगह्वयचन्दनद्वितीयमुस्नेः । दान्तो दूर्वा जुहुयादान दद्याद्यथाशक्तिः । सामुदायिके तु दद्यात्काञ्चनरजताक्षत हतेपीष्टे । वैनाशिकेऽन्नपान यमुधाञ्च गुणान्विते दद्यात् । मानसनापे होमः सरोरुहैः पार्यसैद्विजा भोज्याः । गजमदशिरापचन्दनवलात्तिलवारिणा स्नानम् । सितसिद्धार्थकर्मश्रेद्दूर्वादधिचन्दनोशीरः । स्नायात्तद्दशमन्त्रेन्नागदोषप्रशमनाय ॥ ” इति ॥

( ४ ) अशुभनक्षत्रमाह-नक्षत्रामिति । अपटुकरणम् अफुटग्रहैर्मोहनक्षत्रस्य पूर्वोपर्यं नक्षत्रद्वयम् अल्पग्रहीत्यर्थः । पश्चात्सन्ध्यागतम् अन्तगतं सूर्यभोग्यनक्षत्र-

मध्यम पट्टकिरण ( सूर्यभोग्य ) नक्षत्रोंके पूर्व और परनक्षत्र, पश्चात् सन्ध्यागत ( सूर्यभोग्य ) नक्षत्र और शुभाशुभ ग्रहयोगद्वारा भिन्न नक्षत्र, अशुभ नक्षत्र, पापग्रह भोग्य नक्षत्र और उत्कापातादि त्रिविधोत्पातद्विषित नक्षत्रोंको अशुभ नक्षत्र कहते हैं उक्त समस्त शुभ नक्षत्रोंमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥११६॥

अथ पुनक्षत्रकथनम् ।

**हस्तो मूलः श्रवणः पुनर्वसुमृगशिरास्तथा पुष्यः ।**

**पुंसंज्ञिते च कार्ये पुंनामाऽयं गणः स्मृतः ॥ ११७ ॥ ( ५ )**

अर्थ—हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर और पुष्य इन समस्त नक्षत्रोंको पुनक्षत्र कहते हैं, पुंकार्यमें उक्त नक्षत्र मशस्त हैं ॥ ११७ ॥

अथ राशिनक्षत्रविभागः ।

**अश्विनीमृगमूलादौ भेषसिंहहयादयः ।**

**विषमक्षांनिवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥ ११८ ॥ ( ६ )**

अर्थ—अब राशियोंके नक्षत्रोंका विभाग वर्णन करते हैं । अश्विनी मघा और मूल नक्षत्रसे विषम ( अयुग्म ) नक्षत्रके एक एक पाद वृद्धिसे क्रमानुसार चथा संख्य करके सिंहादि और धनुगादि राशिको जानो ॥ ११८ ॥

अथ स्पष्टमाह ।

**अश्विन्या सह भरणी कृत्तिका पादश्च कथितो मेषः ।**

**वृषभः कृत्तिकाशेषं रोहिण्यर्द्धञ्च मृगशिरसः ॥ ११९ ॥**

—मित्यर्थः । ग्रहेः शुभाशुभग्रहेः सर्वग्रहयोगतारोयोगेन शकटभेदेन वा भिन्नमित्यर्थः । इरनिषीदित पापग्रहभोग्यनक्षत्रमित्यर्थः । उत्पातद्विषितम् उत्कादित्रिविधोत्पातद्विषितमित्यर्थः । एतत्सर्वं नक्षत्र सर्वग्रहभोग्यशुभमित्यर्थः । इति ॥

( ५ ) पुंनामगणमाह—हस्त इति । पुंसंज्ञिते पुंनामादौ तु कार्ये इत्यर्थः ॥

( ६ ) राशिनक्षत्रविभागमाह—अश्विनीति । अश्विन्याद्रौश्वेषान्त मघादिज्येष्ठान्त यथासंख्य भेषादयश्चत्वारः सिंहादयश्चत्वारो धनुरादयश्चत्वारो राशयः स्युः । ते च मेषादयः सिंहादयो हयादयश्चत्वारो राशयः विषमनक्षत्राद्यथोत्तर पादक वृद्ध्या निवर्तन्ते । एतदुक्तं मनाति प्रथमराशिर्मेषः तृतीयकृत्तिकानक्षत्रस्य मघादाद्द्वितीयराशिर्वृषः पञ्चममृगशिरोनक्षत्रस्य षाडहयात्, तृतीयराशिमियुनः सप्तमपुनर्वसुनक्षत्रस्य पादत्रपात्, अष्टमराशिः कर्कटःनवमाऽऽश्लेषानक्षत्रस्य पादचतुष्टयात् । एतं सिंहादयो हयादयश्च मघादितो मूलादितश्च बोद्धव्याः । सीमन्ति विषमगणशोदित्यस्य सम्बन्धं प्रदत्तान्ति ॥

मृगशिरोऽर्द्धाद्वाद्रा पुनर्वसोस्त्रिपादं मिथुनः ।

पादः पुनर्वसोरम्भः पुष्याश्लेषा च कर्कटः ॥ १२० ॥

सिंहोऽथ मघापूर्वाफाल्गुनीपाद उत्तरायाः ।

तच्छेषं हस्तचित्रार्द्धश्चकन्याख्या ॥ १२१ ॥

तौलिनि चित्रार्द्धश्चस्वातिविशाखायाः पादत्रयम् ।

अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ १२२ ॥

मूलं पूर्वापाठा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी ।

मकरस्तत्परिशेषं श्रवणार्द्धं धनिष्ठायाः ॥ १२३ ॥

धनिष्ठाद्धं शतभिषा पूर्वभाद्रपदत्रयं कुम्भः ।

भाद्रपदा शेषस्तथोत्तरारेवती मीनः ॥ १२४ ॥

अर्थ-अश्विनीप्रभृति सत्ताईस नक्षत्रोंके द्वारा द्वादश राशिका विभाग स्पष्ट-रूपसे कीर्तन करते हैं यथा-अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाके प्रथमपादतक मेष राशि होती है इसी प्रकार कृत्तिकाके शेष तीनपाद, रोहिणी और मृगशिरके प्रथमार्द्धतक वृषराशि, मृगशिरका शेषार्द्ध आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन पादतक मिथुन राशि, पुनर्वसुका शेष पाद, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रतक कर्क राशि । मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथमपादतक सिंहराशि, उत्तराफाल्गुनीके शेष तीन पाद हस्त और चित्राके पूर्वार्द्धतक कन्या राशि । चित्राका उत्तरार्द्ध, स्वाति और विशाखाके तीन पादतक तुला राशि विशाखाका शेष पाद, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रतक वृश्चिकराशि । मूल, पूर्वापाठा और उत्तरापाठाके प्रथमपादतक धनराशि । उत्तरापाठाके शेष तीन पाद, श्रवण और धनिष्ठाके दो पादतक मकर राशि । धनिष्ठाका शेषार्द्ध, शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदके तीनपादतक कुम्भराशि । पूर्वाभाद्रपदका शेष पाद, उत्तराभाद्रपद और रेवतीनक्षत्रतक मीन राशि होती है ॥ ११९-१२४ ॥

अथ तिथिनिरूपणम् ।

अर्काद्विनिःसृतः प्रार्चा यद्यात्यहरहः शशी ।

भागैर्द्वादशभिस्तत्स्यात्तिथिश्चान्द्रमसं दिनम् ॥ १२५ ॥

इति सूर्यसिद्धान्तः ।

अर्थ-अब तिथिनिरूपण करते हैं-सूर्यमण्डलसे विनिर्गत होकर पूर्व दिशामें चन्द्रके द्वादशभागगमनका नाम तिथि वा चान्द्रदिन है ॥ १२५ ॥

त्रिंशांशकस्तथा राशेर्भाग इत्यभिधीयते ।

आदित्याद्विप्रकृष्टस्तु भागं द्वादशकं यदा ।

चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते ॥ १२६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—रात्रिको त्रिंशत्श करनेसे उसके एक एक अंशका नाम भाग है चन्द्र सूर्यमण्डलसे विनिर्गत होकर इसी प्रकार द्वादशभाग गमन करनेसे उसका नाम एक तिथि होता है ॥ १२६ ॥

तत्र पक्षावुभौ मासे शुक्लकृष्णौ क्रमेण हि ।

चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥ १२७ ॥

इति पट्टत्रिंशन्मतम् ।

अर्थ—चान्द्रके तीस तिथियोंका एक चान्द्रमास होता है, उस चान्द्रमासके मध्यमें शुक्ल और कृष्णनामक दो पक्ष होते हैं । शुक्लपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमानुसार बढ़ती है और कृष्णपक्षमें चन्द्रकी कला क्रमसे घटती है ॥ १२७ ॥

पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात्पञ्चदश स्मृताः ।

दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके ॥ १२८ ॥

अर्थ—प्रतिपदासे आदि लेकर अमावस्यातक १५ पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमें और इमी प्रकार प्रतिपदासे पूर्णमासीतक पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमें होती हैं ॥ १२८ ॥

अथ तिथिसंज्ञाकथनम् ।

प्रतिपद्वितीया तृतीया चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी सप्तम्यष्टमी ।

नवमी दशम्येकादशी द्वादशी त्रयोदशी चतुर्दशी पूर्णिमा-

मावस्या इति तिथयः ॥ १२९ ॥ ( ७ )

अर्थ—अथ तिथियोंके नाम कहते हैं । यथा—प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा यह पन्द्रह तिथि शुक्लपक्षमें और प्रतिपदासे अमावस्यातक पन्द्रह तिथि कृष्णपक्षमें होती हैं ॥ १२९ ॥

अथ तिथीनां विशेषमंज्ञाकथनम् ।

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाः प्रतिपदः क्रमात् ॥ १३० ॥

अर्थ—प्रतिपदादितिथिके क्रमानुसार नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा यह पांच प्रकारके नाम हैं ॥ १३० ॥

( ७ ) अथ तिथ्यभिदेयतामाह—“अग्निः प्रजापतिर्गौरी गणेशोऽहिर्युक्त रविः । शिवो दुर्गान्तको विश्वो हरिः कामो हरः शशी । पितरः प्रतिपदादीनां तिथीनामभिप्राः क्रमात् ॥ ” इति ॥

अन्यच्च ।

प्रतिपदेकादशी पष्ठी नन्दा ज्ञेया मनीषिभिः ।

द्वितीया द्वादशी चैव भद्रा प्रोक्ता च सप्तमी ॥ १३१ ॥

त्रयोदश्यष्टमी चैव तृतीया च तथा जया ।

चतुर्थी नवमी चैव रिक्ता चतुर्दशी तथा ॥ १३२ ॥

पञ्चमी दशमी चैव ह्यमावस्या च पूर्णिमा ।

पूर्णेति तिथयो ज्ञेयाः सर्वदा च मनीषिभिः ॥ १३३ ॥ ( ८ )

अर्थ-प्रतिपदादि तिथियोंकी नन्दादिसंज्ञा विस्तारसहित वर्णन करते हैं । प्रतिपदा, एकादशी और पष्ठी तिथिकी नन्दासंज्ञा है । इसी प्रकार द्वितीया द्वादशी और सप्तमीकी भद्रासंज्ञा है । त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीयाकी जयासंज्ञा है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशीकी रिक्तासंज्ञा है और पञ्चमी अमावस्या और पूर्णिमाकी पूर्णासंज्ञा है ॥ १३१-१३३ ॥

अथ नित्ययोगकथनम् ।

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यः शोभनस्तथा ।

अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च ॥ १३४ ॥

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा ।

वज्रसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान्परिघः शिवः ।

साध्यः सिद्धःशुभः शुक्रो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिस्तथा ॥ १३५ ( ९ )

अर्थ-विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, साध्य, सिद्ध, शुभ, शुक्र, ब्रह्म, इन्द्र और वैधृति इन सत्ता-ईसको नित्ययोग करते हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

( ८ ) अथ तिथिविशेषे कर्मविशेषादिः । “ नन्दासु चित्रोत्सववास्तुयज्ञशेवादि कुर्वीत तथैव नित्यम् । विवाहभूपाशकटाध्वयान भद्रासु कार्याण्यपि पीष्टिकानि । जयासु सन्नामबलोपयोगी कार्याणि सिध्यन्ति हि निर्भितानि । रिक्तासु विद्विद्वधबन्धनादि विपात्रेश्चादि च याति सिद्धिम् । पूर्णासु मांगल्यविवाहयात्रासपीष्टिकं शान्तिकर्म कार्यम् । सदैव दर्शे पितृकर्म युक्तं नान्यादिदध्यान्नुभमङ्गलादि ” । इति ज्योतिःसारे ।

( ९ ) नित्ययोगानाह-विष्कम्भेति । सुगममिति ।

अथ योगानां त्याज्यकालकथनम् ।

परिघस्य त्यजेदहं शुभकर्म ततः परम् ।

त्यजादौ पञ्च विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिकाः ॥ १३६ ॥

गण्डव्याघातयोः पट्टकं नव हर्षणवज्रयोः ।

वैधृतिं च व्यतीपातं समस्तं परिवर्जयेत् ।

शेषा यथार्थनामानः शुभकार्येषु शोभनाः ॥ १३७ ॥ ( १० )

अर्थ—अथ विष्कम्भादियोगका त्याज्यकाल कहते हैं । यथा—परिघ योगका अहं परित्याग करके शुभ कर्म करे । इसी प्रकार विष्कम्भयोगके प्रथम पांच दण्ड, शूलयोगके प्रथम सात दण्ड, गण्ड और व्याघातयोगके छः दण्ड, हर्षण और वज्र योगके नौ दण्ड, और वैधृति और व्यतीपात योगके समस्त परित्याग करके शुभ कार्य करना चाहिये । उक्त समस्त योग भिन्न जो योग हैं उनमें शुभकर्मका अनुष्ठान करनेसे शुभ फल प्राप्त होता है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

अन्यच्च ।

विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेपामनिष्टः खलु पाद आद्यः ।

सवैधृतिस्तु व्यतीपातनामा सर्वेऽप्यानिष्टाः परिघस्य चार्द्धम् ॥ १३८ ॥

तिघ्नस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञं नवपञ्च शूले ।

गण्डेऽतिगण्डे च पडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥ १३९ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें योगका त्याज्यकाल इस प्रकारसे कहा है । यथा—विरुद्ध जो समस्त योग हैं उनके आद्यपाद दूषणीय होते हैं, वैधृति और व्यतीपात योग समस्त दूषित हैं, परिघ योगका अर्द्ध दूषित होता है । किन्तु विष्कम्भ योगके प्रथम तीन दण्ड, वज्र और व्याघात योगके नौ दण्ड, शूल योगके पांच दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड योगके छः दण्ड परित्याग करके शुभ कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

अपरञ्च ।

विष्कम्भे घटिकास्तिघ्नः शूले पञ्च तथैव च ।

गण्डातिगण्डयोः सप्त नव व्याघातवज्रयोः ॥ १४० ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, विष्कम्भके तीन दण्ड, शूलके पांच दण्ड,

( १० ) एतेषां शुभाशुभत्वमाह—परिघस्येत्यादि । विष्कम्भयोगे आदौ पञ्चनाडिका दंडोत्थारस्या तत्परं शुभकर्म कुर्यादित्यन्वयः । अतिगण्डे गण्डे च पडित्यन्वयः । एतच्छेषा नामातुरूपफलाः सर्वकार्येषु शुभा इत्यर्थः ।

गण्ड और अतिगण्डके सात दण्ड, व्याघात और वज्रयोगके नौ दण्ड परित्याग करके शुभकर्मको करे ॥ १४० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दण्डमेकं त्यजेत्साध्ये व्याघाते घटिकाद्वयम् ।

सप्तशूले षट् च वज्रे नव गण्डातिगण्डयोः ॥ १४१ ॥

वैधृतौ परिषे चार्द्धं विष्कम्भे घटिकाद्वयम् ।

व्यतीपाते च निःशेषं दण्डात्मकञ्च हर्षणे ॥ १४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रंथमें लिखाहै कि, शुभकर्ममें साध्य योगका एक दण्ड, व्याघातयोगके दो दण्ड, शूलयोगके सात दण्ड, वज्रयोगके छः दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड योगके नौ दण्डोंको परित्याग करे । इसी प्रकार वैधृतियोगका अर्द्धभाग, विष्कम्भके दो दण्ड, व्यतीपातके समस्त और हर्षणयोगका एक दण्ड परित्याग करके शुभकर्म करे ॥ १४१ ॥ १४२

सर्वेषु देशेष्वविशेषतोऽमी

विष्कम्भकाद्या मुनिभिस्तु योगाः ।

वारक्षयोगास्तितिथिवारयोगा

वङ्गेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे ॥ १४३ ॥ ( क )

अर्थ—विष्कम्भादि सत्ताईस नित्य योगोंका शुभाशुभ फल सब देशोंमेंही समान होताहै, किन्तु वक्ष्यमाण अमृत और पाप योगादि, वार नक्षत्रनिमित्तक योग सिद्धियोग और दग्धादि और तिथिवारनिमित्तक योगोंका शुभाशुभ फल वङ्गदेशमेंही होताहै । और देशोंमें इन समस्त योगोंका व्यवहार और फल नहीं देखाजाताहै, मुनिगणकाभी इसी प्रकार मत है ॥ १४३ ॥

अथ करणकथनम् ।

बवबालवकौलवतैतिलगरवाणिजाविष्टयः सप्त ।

शकुनिचतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानिधुवाणि करणानि ॥ १४४ ॥

अर्थ—बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वाणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न यही ग्यारह कर्ण हैं ॥ १४४ ॥

( क ) सर्वेषां शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाह—सर्वेष्विति । वारक्षयोगा वक्ष्यमाणा अमृतपापादयः तिथिवारयोगाः सिद्धिदग्धादयः वङ्गेषु योज्याश्चान्यदेशे युगदोषा न सन्तीत्यर्थः ।



अथ साधिपववादिकथनम् ।

वववालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम् ।

पतयःस्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ॥ १४५ ॥ (x)

अर्थ—अब साधिप करण कहते हैं । बव, बालव; कौलव, तैतिल, गर, वणिज, और विष्टि इन सात करणोंके क्रमानुसार इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथ्वी, लक्ष्मी और यमको स्वामी जानो ॥ १४५ ॥

अथ साधिपशकुन्यादिकथनम् ।

कृष्णचतुर्दश्यन्तार्द्धाद्द्रुवाणि शकुनिचतुष्पदनागाः ।

किंस्तुघ्नमथ च तेषां कलिवृषफणिमारुताःपतयः ॥ १४६ ॥ (१)

अर्थ—अब शकुन्यादि करणचतुष्टय कहते हैं । कृष्णाचतुर्दशीके शेषार्द्धसे औगम्य होकर शुकप्रतिपदाके पूर्वार्द्धपर्यन्त तिथ्यर्द्धभोगक्रममे शकुनि चतुष्पद नाग, और किंस्तुघ्न यह चार करण होते हैं इनको ध्रुव ( निश्चल ) कहते हैं उक्त चारों करणोंके स्वामी कालि, वृष, फणी और मारुतको यथासंख्यक क्रमसे जानो ॥ १४६ ॥

शुक्लादितिथिशेषार्द्धे पञ्चमे तचुरीयके ।

आद्यान्तर्द्धात्क्रमेण स्युरष्टावृत्त्या ववादयः ॥ १४७ ॥

अर्थ—किस तिथिमें कौन करण होताहै, अब उसको वर्णन करतेहैं । शुकप्रति, पदाके शेषार्द्धमें शुकपञ्चमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्लाष्टमीके शेषार्द्धमें, शुक्लाद्वादशीके पूर्वार्द्धमें, पूर्णिमाके शेषार्द्धमें; कृष्णाचतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णासप्तमीके शेषार्द्धमें, और कृष्णा एकादशीके पूर्वार्द्धमें बवकरण होताहै । शुक्लाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमें, शुकपञ्चमीके शेषार्द्धमें, शुक नवमीके पूर्वार्द्धमें, शुक द्वादशीके शेषार्द्धमें, कृष्णा प्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें, कृष्णा चतुर्थीके शेषार्द्धमें कृष्णाष्टमीके पूर्वार्द्धमें, और कृष्णा एकादशीके शेषार्द्धमें बालव करण होताहै शुक्ला द्वितीयाके शेषार्द्धमें, शुक पष्ठीके पूर्वार्द्धमें, शुक नवमीके शेषार्द्धमें, शुक त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमें कृष्णा प्रतिपदाके शेषार्द्धमें, कृष्णापञ्चमीके पूर्वार्द्धमें कृष्णापष्ठीके शेषार्द्धमें, और कृष्णाद्वादशीके पूर्वार्द्धमें कौलवकरण होताहै । शुक्लचतुतीयाके पूर्वार्द्धमें, शुक्ला पष्ठीके शेषार्द्धमें, शुक दशमीके पूर्वार्द्धमें, शुक त्रयोदशीके शेषार्द्धमें कृष्णाद्वितीयाके पूर्वार्द्धमें, कृष्णापञ्चमीके शेषार्द्धमें, कृष्णानवमीके पूर्वार्द्धमें और कृष्णा

( x ) करणानि तदधिपान्याह—बनेति । सुगममिति ।

( १ ) शकुन्यादेकरणचतुष्टयमाह—कृष्णोति । कृष्णचतुर्दश्या अन्तादन्तार्द्धं शुकप्रतिपदाद्यर्द्धपर्यन्त तिथ्यर्द्धभोगक्रमेण यथाक्रमे शकुन्यादयः स्युः । एनानि ध्रुवाणि निश्चलानि एकतिथाधेर स्थितत्वात् बरादीनि अधुराणि चलनानि अष्टवृत्त्या अनेकतिथिभ्रमणात् शेष सुगममिति ।

द्वादशीके शेषार्द्धमें तैतिलकरण होता है । शुक्ल तृतीयाके शेषार्द्धमें, शुक्ल सप्तमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल दशमीके शेषार्द्धमें, शुक्ल चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णा द्वितीयाके शेषार्द्धमें, कृष्णा पष्ठीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णानवमीके शेषार्द्धमें, और कृष्णा त्रयोदशीके पूर्वार्द्धमें गरकरण होता है । शुक्ल चतुर्थीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल सप्तमीके शेषार्द्धमें, शुक्ल एकादशीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल चतुर्दशीके शेषार्द्धमें, कृष्णा तृतीयाके पूर्वार्द्धमें, कृष्णा पष्ठीके शेषार्द्धमें कृष्णा दशमीके पूर्वार्द्धमें और कृष्णा त्रयोदशीके शेषार्द्धमें, वाणिज्य करण होता है । शुक्ल चतुर्थीके शेषार्द्धमें, शुक्ल अष्टमीके पूर्वार्द्धमें, शुक्ल एकादशीके शेषार्द्धमें पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमें कृष्णा तृतीयाके शेषार्द्धमें, कृष्णा सप्तमीके पूर्वार्द्धमें, कृष्णा दशमीके शेषार्द्धमें और कृष्णा चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें विष्टि करण होता है ॥ १४७ ॥

**कृष्णपक्षे चतुर्दश्याः शेषार्द्धे शकुनिर्भवेत् ।**

**चतुष्पादश्च पूर्वाद्धे नागः शेषार्द्धे संस्थितः ।**

**शुक्लप्रतिपदाद्यद्धे किंस्तुघ्नः शेषतो ववः ॥ १४८ ॥**

अर्थ—कृष्णाचतुर्दशीके शेषार्द्धमें शकुनि करण होता है, अमावास्याके पूर्वार्द्धमें चतुष्पादकरण, शेषार्द्धमें नागकरण, शुक्लप्रतिपदाके पूर्वार्द्धमें किंस्तुघ्न करण और शेषार्द्धमें ववकरण होता है । शकुनि, चतुष्पाद, नाग और किंस्तुघ्न करणका अङ्ग व्यवहारमें नहीं आता; शकुनिका “ श ” चतुष्पादका “ च ” नागका “ ना ” किंस्तुघ्नका “ कि ” अङ्गके परिवर्तनमें लिखा जाता है ॥ १४८ ॥  
इति करणानिरूपणम् ।

अथ विष्टिभद्राकथनम् ।

**तृतीयादशमीशेषे तत्पञ्चम्यास्तु पूर्वतः ।**

**कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि ॥ १४९ ॥**

अर्थ—विष्टि भद्रा ( विष्टिकरण ) विशेष प्रकारसे वर्णन कहते हैं । कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें विष्टिकरण होता है इस प्रकार उक्त दोनों तिथियोंके पञ्चम कृष्णा सप्तमी और कृष्णा चतुर्दशी तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिकरण होता है । शुक्ल पक्षमें तृतीया और दशमीके परतिथि चतुर्थी और एकादशीके परार्द्धमें और अष्टमी और पूर्णिमासीके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है ॥ १४९ ॥

( • ) सुरयोधार्थं विष्टिनिर्णयमाह—तृतीयोति । कृष्णपक्षे तृतीयादशम्योः शेषार्द्धे विष्टिः स्यात्तत्पञ्चम्योः तृतीयादशमीपञ्चमतिथ्योः सप्तमीचतुर्दशयोः पूर्वतः पूर्वाद्धे विष्टिरित्यर्थः । सिते शुक्लपक्षे तासां तृतीयादीनां परतिथिषु चतुर्थ्यांकादश्यांस्तद्वत्तेषां अष्टमीपूर्णिमास्योः तद्वत्पूर्वाद्धे विष्टिरित्यर्थः ।

अन्यच्च ।

एकादश्याश्चतुर्थ्याश्च शेषार्द्धे शुक्लपक्षके ।

अष्टमीपूर्णिमास्योस्तु पूर्वार्द्धे विष्टिसम्भवः ॥ १५० ॥

अर्थ-शुक्लपक्षमें एकादशी और चतुर्थीके शेषार्द्धमें और अष्टमी और पूर्णिमाके पूर्वार्द्धमें विष्टि भद्रा होती है ॥ १५० ॥

कृष्णपक्षे तृतीयाया दशम्यास्तु परार्द्धतः ।

सप्तम्याश्च चतुर्दश्याः पूर्वार्द्धे विष्टिरीरिता ॥ १५१ ॥

अर्थ-कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें और सप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वार्द्धमें विष्टि भद्रा होती है ॥ १५१ ॥

अपरञ्च ।

कृष्णे तृतीयादशमीपरार्द्धे पूर्वार्द्धभागे मुनिभूततिथ्योः ।

सिते चतुर्थीशिवयोः परस्तात्पूर्वऽष्टमीपूर्णिमयोश्च विष्टिः ॥ १५२ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, कृष्णपक्षमें तृतीया और दशमी तिथिके परार्द्धमें, सप्तमी और चतुर्दशीतिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है, और शुक्लपक्षमें चतुर्थी और एकादशीतिथिके परार्द्धमें अष्टमी और पूर्णिमा तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा होती है ॥ १५२ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

तृतीयादशमीशेषे पूर्वं सप्त चतुर्दशी ।

पूर्वं पूर्णाष्टमी शुक्ले चतुर्थ्येकादशी परे ॥ १५३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-प्रकारान्तरसे सारसंग्रह नामकग्रन्थमें लिखा है कि, तृतीया और दशमीके शेषार्द्धमें भद्रा होती है, शुक्लपक्षमें पूर्णिमा और अष्टमीके पूर्वार्द्धमें, चतुर्थी और एकादशीके परार्द्धमें भद्रा होती है ॥ १५३ ॥

अथ विष्टिमद्रोत्पत्तिः ।

दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्ट्वा-

स्तत्कायात्किञ्च निर्गता खरमुखो लांगूलिनी च त्रिपात् ।

विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगण्डका स्थूलोदरी प्रेतगा

दैत्यघ्नी मुदिता सुरैस्तु करणप्रान्ते निष्पुक्ता सदा ॥ १५४ ॥

अर्थ-अथ विष्टिमद्राकी उत्पत्ति वर्णन करते हैं । पूर्व समय देवासुरसंग्राममें जब

देवगण असुरोंसे पराजित होकर शिवके निकट आकर समस्त वृत्तान्त सुनाया तब महादेवजी अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए उसी समय महादेवजीके शरीरसे गर्दभके समान मुखवाली पुच्छधारिणी ( पूँछको धारण कियेहुए ) त्रिपादविशिष्टा ( तीन पाओंवाली ) सप्तभुजा ( सात भुजाओंको धारणकिये ) सिंहके समान जिसका गलेदेश है, स्थूलोदरी, ( बड़े पेटवाली ) भ्रतके समान शरीरको धारणकिये विष्टि भद्रा नाम्नी एक मूर्त्तिने निकलकर असुरगणको विनाशकरके देवताओंसे स्थानकी प्रार्थना करी, तो देवतागण प्रसन्न होकर विष्टिभद्राको करणके प्रान्तभागमें सड़ोक लिये नियुक्त करदेतेहुए ॥ १५४ ॥

अथ विष्टिभद्राया अङ्गविभागः ।

नाड्यस्तु पञ्च वदनं गलकस्तथैका ।

वक्षो दशैकसहिता त्रियतं चतस्रः ॥

नाभिः कटिः षडथ पुच्छतलं च तिस्रो ।

विष्टेभ्रुवं निगदितोऽङ्गविभाग एषः ॥ १५५ ॥

अर्थ-अब विष्टिभद्राका अंगविभाग वर्णन करते हैं । जिस २ त्रियिके पूर्वाद्ध वा पराद्ध विष्टिसंज्ञामें कहेगये हैं उनको त्रिंशांश करनेसे प्रथमके पांच अंशोंका विष्टिभद्राका मुख है- इसी प्रकार एक अंशका गलदेश ( गला ) है- ग्यारह अंशक वक्षःस्थान है, चार अंशकी नाभि है, छः अंशकी कटि है और तीन अंशकी पूँछ है । इन समस्त स्थानोंका फलाफल नीचे लिखा है ॥ १५५ ॥

अथांगविभागफलम् ।

मुखे कार्यध्वस्तिर्भवति मरणञ्चाथ गलके

धनग्लानिर्वक्षस्यथ कटितटे बुद्धिविलयः ॥

कलिर्नाभिदेशे विजयमथ पुच्छे च जगदुः ।

शरीरे भद्रायाः पृथगिति फलं सर्वमुनयः ॥ १५६ ॥

अर्थ-अब विष्टि भद्राके अंगविभागका फल कहा जाताहै । विष्टिभद्राके मुखमें अर्थात् ( प्रथम पांच दण्डके मध्यमें ) कार्यकी हानि होती है, इसी प्रकार गलदेशमें मृत्यु, वक्षदेशमें धनकी हानि, कटिदेशमें बुद्धिनाश, नाभिदेशमें कलह और पुच्छदेशमें ( शेष तीन दण्डके बीचमें ) कार्य करनेमें विजय अर्थात् वह सिद्ध होताहै ॥ १५६ ॥

अथ भद्रास्थितिनिर्णयः ।

मेपोक्षकौर्पमिथुने घटसिंहमीन-

कर्केषु चापमृगतौलिमुतासु सूर्ये ।

स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति ॥

विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे ॥ १५७ ॥

अर्थ—अब विष्टिभद्राकी स्थिति निर्णय कहते हैं । सौर वेशाख, ज्येष्ठ, मार्ग-शीर्ष और आषाढमें विष्टिभद्राका स्वर्गलोकमें वास होता है, फाल्गुन भाद्रपद चैत्र और श्रावण मासमें भद्राकावास मृत्युलोकमें होता है और पौष, माघ, कार्तिक आश्विनमासमें भद्राका नागलोकमें वास होता है । विष्टिभद्राके किस स्थानमें वास करनेसे क्या फल होता है उसको लिखते हैं ॥ १५७ ॥

अथ विष्टिभद्राफलम् ।

स्वर्गे भद्रा शुभं कुर्यात्पाताले च धनागमम् ।

मर्त्यलोके यदा भद्रा सर्वकार्यविनाशिनी ॥ १५८ ॥

अर्थ—भद्रा स्वर्गमें रहनेसे शुभफल प्रदान करती है, पाताल ( नागलोक ) में रहनेसे धनका सञ्चय होता है और मृत्युलोकमें रहनेसे समस्त कार्यका विनाश होता है ॥ १५८ ॥

केषु केष्वपि कार्येषु सर्वाण्येव तु योजयेत् ।

विहाय विपरोद्गाणि विष्टिं सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १५९ ॥ ( ख )

अर्थ—अब करणका फल कहते हैं, किस २ कार्यविशेषमें बधादि समस्त करण प्रशस्त हैं अब उनको कीर्तन करते हैं, यात्रादिकार्यमें गर, वाणिज और विष्टिकरण (विष्टिभद्रा) विपप्रदान और युद्धादि कार्यमें प्रशस्त हैं, किन्तु और किसी कार्यमें शुभकारक नहीं, केवल पुच्छके तीन दण्ड समस्त शुभकार्यमें शुभ होते हैं १५९ ॥

( ख ) करणानां फलमाह—काष्वाति । केषु केषु कर्मसु सर्वाण्येव करणानि योजयेत् । केचित्पित्यनेन यात्रादिषु गरवाणिजविप्रयस्त्याज्या इत्यर्थः । तथाच वक्ष्याति “ गरवाणिज-विष्टिपिग्वाङ्गतानि करणानि यात्रारिणानि ” इति विपरोद्गकर्माणि त्यक्त्वा विष्टिं सर्वत्र वर्जयेत् विपप्रदाने तु युद्धादिरोद्गकर्माणि च विष्टिर्विहितेत्यर्थः । तथाच व्यतीपातविष्टिं केशुतिपापत्र हलश्रदिवसेषु चौयावस्कन्दानृतसग्रामाः सिद्धिमायान्ति तत्र च विष्टेः शेष-दण्डत्रये पुच्छभागे शुभकर्म कर्तव्यम् । तथाच राजमासंश्लेषे “ विष्टिं भुजङ्गमाकारं केचि-दिच्छन्ति दारुणाम् । मुजङ्गस्य मुखे ज्योतिर्न तु पुच्छे कदाचन । आद्यं तस्या भवति षटिकाः पञ्च कण्ठस्तथैका वक्षश्चकादश निगदिता नाभिदेशश्चतस्रः । पुच्छास्तिस्र-काटिरपि तथा पट्टं च पूर्वं मुनीन्द्रेगरयातेषां न शुभफलदा वर्जयेदुत्तमस्ताम् ॥ ” पुच्छस्य पूर्वं पट्टं षटिका काटिः तत्परं दण्डत्रयं पुच्छमित्यर्थः । तथाच तत्रैव—“ कार्यं न सिध्यति शुभे मरणं मलस्यादर्शयौ हादि कटावापि द्वाद्दिनाशः । नाभी भयं विजयलम्बितेन पुच्छे विष्टिप्रमाणफलने तद्दशान्ति सन्तः ॥ ”

अन्यच्च ।

विहाय विपरोद्राणि विष्टिं सर्वत्र वर्जयेत् ।

विष्टिशेषे त्रिदण्डेऽपि पुच्छे कार्यं शुभावहम् ॥ १६० ॥ ( ख )

अर्थ-वचनान्तरमें लिखा है कि, विपदानादि और युद्धादिकार्यके सिवाय और समस्त कार्यमेंही विष्टिभद्रा परित्याग करनी चाहिये, विष्टिपुच्छ ( शेषके तीन दण्ड ) में कार्य करनेसे सिद्ध होता है ॥ १६० ॥

प्रतिप्रसवो यथा ।

दिवा परार्द्धजा विष्टिः पूर्वार्द्धा स्यात्तथा निशि ।

तदा भद्रा न दोषाय सा भद्रा भद्रदायिका ॥ १६१ ॥

अर्थ-जिस तिथिके शेषार्द्धमें विष्टिभद्रा दिनमें हो अथवा जिस तिथिके पूर्वार्द्धमें विष्टिभद्रा रात्रिमें हो तो विष्टिभद्राजन्य दोष नहीं होता है ॥ १६१ ॥

अथ नवग्रहसंज्ञा ।

सूर्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधश्चापि बृहस्पतिः ।

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति नव ग्रहाः ॥ १६२ ॥

अर्थ-अब नवग्रहोंके नाम कहते हैं । रवि, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन्हींको नवग्रह कहते हैं ॥ १६२ ॥

अथ वारकथनम् ।

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।

एतेषां नामतो वाराः सप्तैव परिकीर्तिताः ॥ १६३ ॥

अर्थ-अब सात ग्रहोंके नामानुसार वार कहते हैं-रवि, सोम, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर इन्हींको सात वार कहते हैं ॥ १६३ ॥

अथ वारगुणकथनम् ।

सितेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।

( ख ) घुजाटिनी सिते पक्षे देफिने वा सिते परे । अक्षरेण तिथिः प्रोक्ता स्वरे दण्डाः प्रकीर्तिताः । तद्यथा । “ चतुर्थ्यां पञ्चदण्डाश्च एकादश्यां त्रिदण्डकाः । दण्डद्वयं तथाष्टम्यां पौर्णमास्यां चतुष्टयम् । तृतीयायां दशम्यान्तु दण्डैकादशकं तथा । सप्तम्याश्च चतुर्दश्यां दण्डानाश्च चतुष्टयम् । विष्टिपुच्छ तु विशेषं तत्र स्याद्विजयो नृणाम् ” ॥ इति हृदयानन्दकृतसारसंग्रहधृतवचनम् ॥

भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वापि ॥ १६४ ॥ ( ग )

अर्थ—शुक्र, सोम, बुध और वृहस्पतिवार समस्त शुभकार्यमें प्रशस्त है. रवि, मङ्गल और शनिवार यह किसी किसी कार्यविशेषमें शुभदायक होते हैं ॥ १६४ ॥

नृपाभिषेको नृपतिप्रयाणं नृपस्य कार्यं नृपदर्शनञ्च ।

पञ्चाग्निकार्यं भुवि बीजपातं सर्वं तदादित्यदिने प्रशस्तम् ॥ १६५ ॥

अर्थ—राजाके अभिषेकमें, राजाके गमन ( जाने ) में, राजकार्यमें, राजदर्शनमें, आग्निकार्यमें और बीजवपनमें रविवार प्रशस्त है ॥ १६५ ॥

भेदाभिघातं नगरे पुरे वा सेनापतित्वञ्च तथैव राज्ञाम् ।

व्यायामशस्त्रव्यसनानि चौर्यं कुर्यादिने भूमिसुतस्य सर्वम् ॥ १६६ ॥

अर्थ—नगरमें अथवा पुरमें भेदाभिघात, राजाकी सेनापतित्वमें व्रती होना, व्यायाम, शस्त्र, व्यसन क्रिया और चौर्यक्रिया इन समस्त कार्यमें मङ्गलवार प्रशस्त है ॥ १६६ ॥

स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशं गजवाजिवाहम् ।

ग्रामे प्रवेशं नगरे पुरे वा कुर्यादिने सूर्यसुतस्य सर्वम् ॥ १६७ ॥

अर्थ—यूप ( यज्ञियकाष्ठ ) का स्थापन वा विसर्जन, गृहप्रवेश, हाथी और घोड़ेपर चढ़ना, ग्रामप्रवेश अथवा पुरप्रवेश इन सब कार्यमें शनिवार प्रशस्त है ॥ १६७ ॥

इतिवंशावरेलीनिवासिकान्यकुञ्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रत्रिपाठशुपनामकेनपण्डित  
बौकिलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीकया विभूषिते च  
ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे संज्ञारख्यः प्रथमस्तरंगः ॥ १ ॥

( ग ) वारशुद्धिमाह—सितेति । सर्वत्र सर्वकर्मस्वित्यर्थः । रविभौमशनीनां वारः केष्वापि शुभकर्मसु शोभनाः न तु सर्वकर्मसु । तथाच राजमार्त्तण्डे—“ जीवार्कभौम- वाराश्च अस्ताः पुसवने विधी ” तथा पशुपतिदीपिकायाम्—“ स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूप- काष्ठम् ” इत्यादि । एतेन केष्वापि शुभकर्मसु शुभाः अर्थादशुभकर्मसु सर्वेष्वपि पापग्रह- वागः शुभा इति तात्पर्यम् । तथाच—“ व्यतीपातविष्टिविष्टृतिपापग्रहलगादिवसेषु । चौर्या- वरकन्दानृतसप्तमाः सिद्धिमायान्ति ॥ ” इति ।

## द्वितीयस्तरङ्गः २.



अथ विवाहः ।

तत्रादौ कन्यापरीक्षामाह ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां दाराः संप्राप्तिहेतवः ।

परीक्ष्यन्ते प्रयत्नेन पूर्वमेव करग्रहात् ॥ १ ॥

अर्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थोंके देनेवाली, पत्नी है, अतएव विवाहके पूर्वमें भाविपत्नीके लक्षणालक्षणको अवश्य विचारना चाहिये ॥१

अथ कन्यालक्षणम् ।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।

तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्रहेत्स्त्रियम् ॥ २ ॥ ( अ )

इति मनुः ।

अर्थ-अब कन्याके लक्षण कहते हैं । अविकलाङ्गी, शुभनामवाली, हंस और हाथीके समान चलनेवाली; रोम, केश और दाँत जिसके अतिसूक्ष्म हों इस प्रकारकी कोमलाङ्गी कन्या विवाहके उपयुक्ता होतीहि, इस प्रकार मनुजीने कहाहै ॥२

हंसस्वर्णां मेघवर्णां मधुर्पिङ्गललोचनाम् ।

तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः सुखमेधते ॥ ३ ॥

अर्थ-हंसके कण्ठध्वनिके समान जिसके कण्ठकी ध्वनि हो, मेघके समान वर्णवाली, जिसके मधुर्पिङ्गल नेत्र हों इस प्रकारकी कन्याको विवाहनेसे गृहस्थी-गणको सुख प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

प्रतिष्ठिततलाः सम्यग्रक्ताम्भोजसमात्विपः ।

तादृशाश्चरणा धन्या योषितां भोगवर्द्धनाः ॥ ४ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

( अ ) कन्यालक्षणमाह-अव्यङ्गाङ्गीमिति।अव्यङ्गाङ्गीम् अविकलाङ्गी सम्पूर्णाङ्गीमित्यर्थः । सौम्यनाम्नी मनोहरनाम्नी यशोदा, सुभद्रा, गौरीत्यादि । उग्रनाम्नीस्तु वर्ज्ये-च्चासुण्डाभिरवीत्यादि । हंसहस्तिगामिनी मन्दगामिनीमित्यर्थः । तनुलोत्री सूक्ष्मलोत्रीम् अरुर्केशलोत्रीमित्यर्थः । अरुर्केशेशा तनुदन्ताम् आयामे दैर्घ्यं दन्तस्य सूक्ष्मत्वे ज्ञेयम् । मृदङ्गीं कोमलाङ्गीम् इदृशीं स्त्रियं विनहेदित्यर्थः ॥



अर्थ—जिस कन्याके पदतल (पैरोंका तलवा) रक्तपद्मके समान अथ च भूमिलग्न हो इस प्रकारकी चरणयुक्त कन्या प्रशंसाके योग्य है ॥ ४ ॥

नोद्धहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।

नालोमिकां नातिलोम्नीं न वाचालां न पिङ्गलाम् ॥ ५ ॥

नक्षत्रवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।

न पक्ष्यहिप्रैष्यनाम्नीं नच भीषणनामिकाम् ॥ ६ ॥

इति मनुः ।

अर्थ—जो कन्या कपिलवर्णा, अधिकाङ्गी, रोगिणी, लोमहीना, अधिकलोम-युक्ता, वाचाला, पिङ्गलवर्णा और नक्षत्र, वृक्ष, नदी अन्त्यज, पर्वत, पक्षी, सर्प, दूती और भीषणनामिका हो उसका विवाह न करना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ प्रतिप्रसवमाह ।

गङ्गा च यमुना चैव गोमती च सरस्वती ।

नदीष्वासां नाम वृक्षे मालतीतुलसी अपि ।

रेवती चाश्विनी भेषु रोहिणी शुभदा भवेत् ॥ ७ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ—पूर्व वचनमें जो नक्षत्र, वृक्ष और नदीनामिका कन्याको वर्जित किया है, अब उसके प्रतिप्रसव कहते हैं यथा,—नदीके मध्यमें गङ्गा, यमुना, गोमती और सरस्वती, वृक्षके मध्यमें मालती और तुलसी और नक्षत्रके मध्यमें रेवती आश्विनी और रोहिणी नामकी कन्या विवाहमें शुभदायिका होती हैं ॥ ७ ॥

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा

स्याद्दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च ।

कूपौ यस्या गण्डयोः सस्मिताया

निःसन्दिग्धां बन्धकीं तां वदन्ति ॥ ८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—जिस कन्याके दोनों नेत्र केकर वा पिङ्गलवर्ण अथवा चञ्चल हों जिसके हँसते समय दोनों गालोंमें कूप ( कुआँ ) के समान आकारका चिह्न दिखाई देवे, वह कन्या निश्चयही बन्धकी अर्थात् व्यभिचारिणी इसप्रकार शास्त्रवित्पाण्डित-गणोंने कहा है ॥ ८ ॥

श्यामा सुकेशी तनुलोमराजी सुभ्रः सुशीला सुगतिः सुदन्ता ।  
वेदीविमध्या यदि पङ्कजाक्षी कुलेन हीनापि विवाहनीया ॥ ९ ॥

इति नन्दिकेश्वरपुराणम् ।

अर्थ-श्यामा (१) सुकेशधारीणी, जिसके सूक्ष्म लोम हों, दोनों भ्रुकुटीमें शोभनीय हो, जो कन्या सुशीलवती हो, जिसकी चाल हंसके समान हो. दाँत जिसके अत्यंत सुन्दर हों, कटिदेश जिसका अतिक्षीण हो, पङ्कजके समान जिसके दोनों नेत्र हों इस प्रकारकी कन्या यदि हीनकुलमें भी उत्पन्न हुई हो तोभी बुद्धिमान् मनुष्यको उसका विवाह करना चाहिये ॥ ९ ॥

धृष्टा कुदन्ता यदि पिङ्गलाक्षी लोम्ना समाकीर्णसमांगयाष्टिः ॥  
मध्ये च पुष्टा यदि राजकन्या कुलेऽपि योग्या न विवाहनीया ॥ १० ॥

अर्थ-जो कन्या लज्जाहीन हो, कुत्सित जिसके दाँत हों, पिङ्गलवर्ण दोनों नेत्र हों अत्यन्त लोम जिसके शरीरमें हों, अङ्गयष्टि जिसकी समान हो और जिसकी मध्यदेश स्थूल हो इस प्रकारकी कन्या यदि उत्तम कुलमें भी उत्पन्न हुई हो तोभी उसका विवाह न करना चाहिये ॥ १० ॥

रोमहीने समे स्निग्धे जङ्घे च क्रमवर्जुले ।

सा राजपत्नी भवति विशिरे सुमनोहरे ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस कन्याकी दोनों जाँघें लोमशून्य समान स्निग्ध, गोलाकार और सुन्दर हों तो वह अवश्यही राजभार्या ( रानी ) होती है ॥ ११ ॥

गम्भीरा दक्षिणावर्त्ता नाभिः स्यात्सुखम्पदे ।

वामावर्त्ता समुत्ताना व्यक्तग्रन्थी न शोभना ॥ १२ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीकी नाभि गम्भीर और दक्षिणावर्त्त हो तो वह सम्पत्तिकी मालिक होकर सुखभोग करती है और जिसकी नाभि वामावर्त्त, उन्नत, ( उठी हुई ) अथवा ग्रन्थी स्पष्ट दिखाई दे वह चिरकाल दुःससे जीवन व्यतीत करती है ॥ १२ ॥

स्निग्धाः समुन्नतास्ताम्रा वृत्ताः पादनखाः शुभाः ।

राज्ञीत्वसूचकं स्त्रीणां पादपृष्ठं समुन्नतम् ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस स्त्रीके पैरके नाखून स्निग्ध, उन्नत, ताम्रवर्ण, वर्तुलाकार और

( १ ) “ स्तनी च कठिनौ यस्या नितम्बे च विशालता । मध्यक्षीणा च या नारी सा श्यामा परिकीर्त्तिता ॥ ”

सुन्दर हों और जिसके पैरोंके ऊपरका भाग उठा हो वह स्त्री राजभार्या ( रानी ) होती है ॥ १३ ॥

यस्याः पादतले रेखा सा भवेत्क्षितिपाङ्गना ।

भवेदखण्डभोगा च या मध्याङ्गुलिसङ्गता ॥ १४ ॥

अर्थ—जिस कन्याके चरणतलमें शुभाचिह्न हो तो वह रानी होती है । और जिसकी मध्यमाङ्गुली दूसरी अङ्गुलीसे मिलीहुईहो, तो वह चिरकालपर्यन्त सुख भोगती है ॥ १४ ॥

उन्नतो मांसलोऽङ्गुष्ठो वर्तुलोऽतुलभोगदः ।

वक्रो ह्रस्वश्च चिपिटः सुखसौभाग्यभञ्जकः ॥ १५ ॥

अर्थ—जिस बराङ्गनाका अँगूठा मांसल, वर्तुलाकार और उठा हो तो वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी होती है, जिसका अँगूठा वक्र, ह्रस्व और चपटा हो तो उसको सुख नहीं होता है ॥ १५ ॥

दीर्घाङ्गुलीभिः कुलटा कृशाभिरतिनिर्द्धना ।

ह्रस्वाभिः स्याच्च ह्रस्वायुर्भग्नाभिर्भग्नवर्तिनी ।

चिपिटाभिर्भवेदासी विरलाभिर्दारिद्रिणी ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीकी अङ्गुली दीर्घाकार हो, वह कुलटा होतीहै । अङ्गुली कृश होनेसे निर्द्धनी होतीहै और जो ह्रस्व हो तो उस स्त्रीकी आयु ( उमर ) कम होती है । अङ्गुली भग्नके समान होनेसे वह स्त्री भग्नदशमें अविवाहित रहकर जीवन व्यतीत करतीहै, चपटी अँगुली होनेसे वह दासी होती है और परस्पर जिसकी सब अँगुली विरल हों तो वह दरिद्रा होती है ॥ १६ ॥

परस्परं पदाङ्गुल्यः समारूढा भवन्ति हि ।

हत्वा वहूनपि पतीन्परप्रेष्या तदा भवेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीकी समस्त अँगुली परस्पर संयुक्त हों वह अनेकपति नष्ट करके दूसरेकी दासी होती है ॥ १७ ॥

समपार्ष्णी शुभा नारी मृदुपार्ष्णी सुदुर्भगा ।

कुलटोन्नतपार्ष्णी स्याद्दीर्घपार्ष्णी च दुःखभाक् ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस बराङ्गनाकी पीठ समान हो तो उसके शुभ लक्षण होते हैं, जिसकी

पीठ स्थूल हो वह दुर्भगा होती है, जिसकी पीठ उठी हो, वह कुलटा होती है और जिसकी पीठ दीर्घ हो वह स्त्री दुःखभागिनी होती है ॥ १८ ॥

**वृत्तं पिशितसंलभं जानुयुग्मं प्रशस्यते ।**

**निर्मांसं स्वैरचारिण्या दरिद्रायाश्च विशुथम् ॥ १९ ॥**

अर्थ—जिस स्त्रीकी दोनों जांघे गोलाकार और मांसल हों वह सौभाग्यवती होती है जिसकी दोनों जांघोंमें मांस न हो और जिसकी दोनों जांघें श्लथ-हों वह दरिद्रा और दुश्चारिणी होती है ॥ १९ ॥

**विशिरैः करभाकारैरुरुभिर्मसृणोर्वनैः ।**

**सुवृत्तै रोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्लभाः ॥ २० ॥**

अर्थ—जिस बराङ्गनाकी दोनों जांघें शिराशून्य, करिशावकके शुण्डकी समान सुगठित, घन, मसृण, गोलाकार और रोमशून्य हो तो वह स्त्री राजाको प्रिय ( प्यारी ) लगती है ॥ २० ॥

**चतुर्भिरंगुलैः शस्ता कटिविंशतिसंयुतैः ।**

**समुन्नतनितंबाढ्या चतुरस्रा मृगीदृशाम् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जिस स्त्रीके चूतर उठे हुए हों, मोटे और स्थूल हों अत्यन्त विभवशालिनी होती है. किन्तु इसके विपरीत होनेसे दुःखभागिनी होती है ॥ २१ ॥

**उदरेणातितुच्छेन विशिरेण मृदुत्वचा ।**

**योपिद्भवति भोगाढ्या नित्यमिष्टान्नसेविनी ॥ २२ ॥**

अर्थ—जिस स्त्रीके जठर ( पेट ) का चर्म मुलायम हो, उदर कृश और रोमशून्य हो तो वह अत्यन्त सुख भोगती है और सर्वदा मिष्टान्नभोजन करती है ॥ २२ ॥

**कुम्भाकारं दरिद्राया जठरञ्च मृदङ्गवत् ।**

**कूष्माण्डाभं यवाभञ्च दुष्पूरं जायते स्त्रियाः ॥ २३ ॥**

अर्थ—जिस स्त्रीका जठर ( पेट ) कुम्भाकार वा मृदङ्गके समान हो तो वह दरिद्रा होती है, जिसका जठर कूष्माण्ड ( कुँभडे ) के तुल्य हो वा यवके समान हो तो उसके उदरको कोई भी परिपूर्ण नहीं करसकता है ॥ २३ ॥

**निर्लोप हृदयं यस्याः समं निम्नत्ववर्जितम् ।**

**ऐश्वर्यं चाप्यवैधव्यं प्रियप्रेमा च सा भवेत् ॥ २४ ॥**

अर्थ—जिस बराङ्गनाका हृदय निर्लम्ब हो और वक्षस्थल जिसका निम्न नहीं है वह ऐश्वर्यशालिनी और चिरकाल सौभाग्यवती रहती है और पतिकी अत्यन्त प्यारी होकर सर्वदा सुखभोग करती है ॥ २४ ॥

वनौ वृत्तौ पृथुदृढौ पीनौ शस्तौ पयोधरौ ।

स्थूलाग्रौ विरलौ सूक्ष्मौ वामोरूणां न शर्मदौ ॥ २५ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके दोनों स्तन वर्तुल, उच्च, कठिन और स्थूल हों तो वह स्त्री प्रशंसा करनेके योग्य है और दोनों स्तन सूक्ष्म और विरल हों तो अमङ्गलदायक होती है ॥ २५ ॥

दक्षिणोन्नतवक्षोजा पुत्रिणीष्वग्रणीर्मता ।

वामोन्नतकुचा सूते कन्यां सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ २६ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीका दहना स्तन उठा हो तो वह पुत्रवती और गृह ( घर ) की कर्त्री होकर मुखसे जीवन व्यतीत करती है और जिसका बायाँ स्तन उठा हो तो वह सौभाग्यशालिनी होकर सुन्दरी कन्याको उत्पन्न करती है ॥ २६ ॥

मूले स्थूलौ क्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौ पयोधरौ ।

सुखदौ बाल्यकाले तु पश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ २७ ॥

अर्थ—स्त्रीके स्तनोंका मूलभाग स्थूल होवै ऊपरका भाग क्रमसे कृश होकर और अग्रभाग अत्यन्त सूक्ष्म हो तो वह स्त्री प्रथम अवस्थामें सुखभोगकर अनन्तर बहुत कष्ट भोगती है ॥ २७ ॥

अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्ठांगुलिसम्मुखम् ।

हस्तद्वयं मृगाक्षीणां बहुभोगाय जायते ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस स्त्रीके दोनों अंगुठोंका अग्रभाग पद्मके समान हो तो वह सुखोंको भोगती है ॥ २८ ॥

मृदुमध्योन्नतं रक्तं तलं पाण्योरन्ध्रकम् ।

प्रशस्तं शस्तरेखाढ्यमल्परेखं शुभप्रदम् ॥ २९ ॥

अर्थ—स्त्रीगणके करतल यदि शोणितवर्ण हों, छिद्रशून्य हों कोमल हों, अल्प रेखायुक्त हों और शुभरेखाविशिष्ट हों और मध्यस्थल उठाहो तब वह सौभाग्य-शालिनी होती है ॥ २९ ॥

विधवा बहुरेखेण विरेखेण दरिद्रिणी ।

भिक्षुकी सुशिराब्धेन नारी करतलेन वै ॥ ३० ॥

अर्थ-स्त्रियोंके करतलमें बहुत रेखा होनेसे वह विधवा होजाती है नियमित रेखा न रहनेसे वे दरिद्रा होती हैं और यदि करतलमें शिरा हों तो वे खगिण भिक्षाद्वारा अपने जीवनका निर्वाह करती हैं ॥ ३० ॥

मत्स्येन सुभगा नारी स्वस्तिकेन तु सुप्रजाः ।

पद्मेन भूपतेः पत्नी जनयेद्भूपतिं सुतम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके करतलमें मत्स्यरेखा होनेसे वे सौभाग्यशालिनी होती हैं, स्वस्तिकाकार चिह्न होनेसे वे उत्तम पुत्रको प्रसव ( उत्पन्न ) करती हैं और पद्मका चिह्न होनेसे राजपत्नी ( रानी ) होती हैं और उनके पुत्रभी राजा होते हैं ॥३१॥

अथ वैवाहिकनक्षत्रादिकथनम् ।

रेवत्युत्तररोहिणीभृगुशिरोमृलानुराधामघा-

हस्तास्वातिषु तौलिपष्टमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः ।

सप्ताष्टान्त्यबहिःशुभैरुदुपतावेकादशे द्वित्रिगे ( आ )

कूरेह्रयायपडष्टमेन तु भृगौ पष्टे कुले चाष्टमे ॥ ३२ ॥ ( इ )

अर्थ-अथ विवाहके विहित नक्षत्रादि कीर्त्तन करतेहैं यथा-रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिरा, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वातिनक्षत्रमें, तुला, कन्या और मिथुन लग्नमें विवाह प्रशस्त है । यदि लग्नके मत्स्य, अष्टम और द्वादश स्थानमें शुभग्रह न हों और लग्नसे चन्द्र यदि एकादश द्वितीय अथवा तृतीय स्थानमें स्थित हो और पापग्रहगण तृतीय, एकादश, पष्ट और अष्टम स्थानमें हों तब शुभदायक होताहै, किन्तु लग्नके पष्टस्थानमें शुक्र और अष्टम स्थानमें मङ्गल रहनेसे निषिद्ध होताहै ॥ ३२ ॥

( आ ) लग्नादित्यनेन सप्तादिना सम्बन्ध इत्यर्थः ।

( इ ) वैवाहिकनक्षत्रादीन्त्याह-रेवतीत्यादि । रेवत्युत्तरादिनक्षत्रेषु कन्यातुलामिथुनेषु उद्यत्सु लग्नेषु पाणिग्रहो विवाहः कार्यः । तथा लग्नात्सप्ताष्टान्त्यबहिःस्थितैः सप्ताष्टादशस्थानानि वर्जयित्वा अन्यत्र स्थितैः शुभग्रहैः तथा लग्नादेकादशद्वितीयतृतीयगते चन्द्रे तथा लग्नात् त्रयायपडष्टमेः पापैः पाणिग्रहः कार्य इत्यन्वयः । अत्र च शुक्रस्य पष्ट-स्थाने शुभफलदत्त्वे प्राप्ते कुजस्य चाष्टमे शुभफलदत्त्वे प्राप्ते निषेधमाह-न तु भृगौ पष्टे कुजे चाष्टम इति ॥

दंपत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते दाराऽनुकूले स्त्री  
चन्द्रे चार्ककुजाकिंशुकवियुते मध्येऽथवा पापयोः।  
हित्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिश्च रिक्तां तिथिं  
क्रराहायनचैत्रपौषराहिते लग्नांशके मानुषे ॥ ३३ ॥ (इं)

अर्थ—दम्पतीके अर्थात् वर और कन्याके द्विद्वादश, नवमपञ्चम और पडष्टकादि

(इं) सक्षेपेण दम्पत्योर्योऽट्कादीन्याह—दम्पत्योरिति । दम्पत्योरन्योऽन्ये द्विनवाष्टरा-  
शिरहितं रहितामिति भावे क्तः । द्विद्वादशनवपञ्चकपडष्टकराशियोट्कृत्यामे सति पाणि-  
ग्रहः कार्यः इति पूर्वश्लोकेनान्वयः । स्त्री दारस्य वरस्य अनुकूले सति तथातिग्मफिर-  
णश्च पुस इत्यक्तमेव । तथा चाभिधानं स्याद्दारयो माणयक इति । चन्द्रे च शनिऽनुज-  
विशुक्रयोगरहिते सति केचित्तु संप्रग्राहयुक्त इत्याहुः । यथा राजमार्त्तण्डे—“ दारिद्र्यं  
रविणा कुजे च मरण सौम्येन नष्टप्रजा दीर्घाय गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रे च सापत्न्य-  
कम् । प्रवज्याकमुतेन सेन्दुजगुरो वाञ्छन्ति केचिच्चन्द्रं हृद्याद्यैर्मृत्युरसद्ग्रहेः शुभयुतर्दी-  
र्घप्रवासोऽपि वा ” । तथा राहुयुक्तश्चन्द्रोऽपि न शुभः । यथा राजमार्त्तण्डे—“ राहुसमेते  
चन्द्रे प्राप्ता पाणिग्रहन्तु या कन्या।परपुरुषासक्तहृदया नीचैरपि प्रयाति संसर्गम् ” इति ।  
अथवा शब्दसमुच्चये । चन्द्रे च पापयोर्मध्ये स्थिते सति विवाहो न कार्य इत्यर्थः । यथा,  
तत्रैव—“सकृमे वा शशिनि क्रूरद्वयमध्ये विलग्रे वा । शुभकर्माणि स्तम्भेच्छन्नेवोपादेशेऽन्ने-  
न्द्राणाम्” तथा व्यतिपातवैधृतियोगयुक्तादिन त्यक्त्वा विष्टिकरणं रिक्ता तिथिश्च त्यक्त्वा  
पाणिग्रहः कार्य इत्यन्वयः।अत्र च—“नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्या विजन्मनि । तत्र आह  
न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात्” इति सातकाशश्राद्धनिषेधात् नन्दातिथौ त्रयोदश्याश्च श्राद्धा  
सम्भवे विवाहो निषिद्ध इत्यर्थः । क्रराहायनचैत्रपौषरहित इति । क्रराहायनचैत्रपौषाणाग्रहिते  
त्यागे सतीत्यर्थः । क्रराहाः पापग्रहशाराः एतेन सोमबुधगुरुशुक्रशाराः प्रशस्ता इत्यर्थः । अत्र  
च नन्दायां भार्गवदिने इत्यादिना सातकाशश्राद्धनिषेधेऽपि शुक्रवारे विवाहः कार्यः शुक्र-  
वारस्य शब्दोपात्तत्वे तत्तद्विधेयध्यापत्तेः । यथा पशुवतिदीपिकाया “पौष्णानुराधमध-  
रोहिणिमूलहस्ताः स्वात्युत्तरामृगशिरश्च शुभाधियाहे । वागस्तया बुधबृहस्पतिशुक्रचन्द्रा  
रिक्तैतरश्च तिथयः खलु विष्टिहीनाः ॥” एतेन यत्र सामान्यविधिस्तत्र सावकाशश्राद्ध-  
निषेधः । यत्र नशब्दो विशेषविधिस्तत्र कर्तव्यमेवेति निर्गलितार्थः । तथा क्रूरग्रहस्था-  
पन सञ्ज्ञादिनम् केचित्तु क्रूरायन दक्षिणायनामित्याहुः । तत्र । पौषनिषेधस्यव्यर्थत्वा-  
दिति तथा पौषचैत्रमासयोस्त्यागे सतीत्यर्थः । राजमार्त्तण्डे—“मात्रह्येषु विवाहेषु कन्या  
संरूपेण च । दशमासाः प्रशस्पन्ते चैत्रपौषविनाजिताः ॥” केचित्तु याम्यायने निषेध-  
माहः । यथा तत्रैव—“ऊर्वा दक्षिणमार्गगे दिनपतौ नेव प्रतिष्ठा ब्रजेत्कन्येत्याह समस्त-  
शास्त्रकृजालो वैशो मुनीना मतम् । साध्वीत्पुत्तरमार्गगे सुतधनोपेता विहायापरे चैत्र पौष  
सुत हरेश्च शयन शेष जगुः शोभनम् ॥” इति । अत्रच मुनिमतद्वेषे वैकल्पित एव शास्त्रार्थः  
पौषशिशुग्रहाग्रहणवदिति । अत्र च कन्याया वस्तरशुद्धिमाह । राजमार्त्तण्डे “भासत्र-  
याद्धर्ममयुग्मवर्षे” इत्यादि । “अत्रर्षा भवेद्वीरी ननर्षा तु रोहिणी।दशवर्षा भजेत्कन्या

न रहनेसे वरके सूर्य और कन्याके चन्द्र शुद्ध रहनेसे और सूर्य, मङ्गल, शनि और शुक्रके साथ अथवा पापद्वयके मध्यमें चन्द्रकी स्थिति न होनेसे और व्यतीपात, वैधृति, विष्टिकरण, रिक्ता तिथि, पापग्रहके वार दक्षिणायन चैत्र और पौषमास त्यागकरके द्विपद लग्नके नवांशमें विवाह प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

अथ निषिद्धमासकथनम् ।

आपाढे धनधान्यभोगरहिता नष्टप्रजा श्रावणे

वेश्या भाद्रपदे इषे च मरणं रोगान्विता कार्तिके ।

पौषे प्रेतवती वियोगबहुला चैत्रे मदोन्मादिना

अन्येष्वेव विवाहिता पतिरता नारी समृद्धा भवेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ—अब विवाहके निषिद्ध मास कहतेहैं यथा—आपाढमासमें कन्याका विवाह होनेसे धनधान्यभोगसे रहित होतीहैं, श्रावणमासमें विवाह होनेसे सन्तानका नाश होजताहै. इसी प्रकार भाद्रपदमें वेश्या, आश्विनमें मृत्यु, कार्तिकमें रोगवती, पौषमें प्रेतगा और वियोगान्विता और चैत्रमासमें विवाह होनेसे वह कन्या मदोन्मत्ता होती है । वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशिर, माघ और फाल्गुन मासमें कन्याका विवाह होनेसे पतिपरायण और समृद्धिशालिनी होतीहैं ॥ ३४ ॥

अथ प्रशस्तमासाः ।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमार्गाःशुभावहाः ।

उक्तस्तथैव चापाढः कथितः शुभदो बुधैः ॥ ३५ ॥

अर्थ—मतान्तरमें कहाहै कि, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, अगहन और आपाढ मास विवाहमें शुभदायक हैं ॥ ३५ ॥

माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च ।

दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः ॥ ३६ ॥ राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, कन्याके शुभ विवाहमें चैत्र और पौष-मासको छोडकर और दशमासही प्रशस्त हैं ॥ ३६ ॥

—परतस्तु रजस्वला ॥” ( नववर्षांतुकन्यका । सप्तमि द्वादशे वर्षे ज्ञात तु पाठः ) “माता चैव पिता चैव ज्येष्ठमाता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यान्ति वृषा कन्यां रजस्वलाम् । यस्तां विनाहयेत्कन्यां ब्राम्हणो मद्मोहितः । असम्भाष्यो ह्यपाठस्यैव स विप्रो वृषली-पातिः ।” अतिप्रौढायान्तु कालनियममाह—“ अतिप्रौढा तु या कन्या नानुक्लं प्रती-क्षते” इति । लग्नांशके मानुष इति कन्यातुलाभियनलग्ने लग्नांशे च पाणिग्रहः कार्य इत्यर्थः । सौभरिणा तु कुम्भधनुषोरप्युक्त तदशुद्धम् “ कन्यातुलाभृन्मिथनेषु साध्वी शेषे-ष्वसाध्वी धनवर्जिता च ” इति वक्ष्यमाणत्वात् । उक्तञ्च तौलिपष्टमिथनेषुवन्स्विति ॥



अथ प्रशस्ताप्रशस्तवारकथनम् ।

गुरुशुक्रबुधेन्दूनां दिनेषु सुभगा भवेत् । ❀

सूर्याकिंभूमिपुत्राणां दिनेषु कुलटा मता ॥ ३७ ॥

अर्थ—अब विवाहके शुभाशुभ वार कहते हैं । बृहस्पति, शुक्र, बुध और सोमवारमें विवाह होनेसे कन्या सौभाग्यशालिनी होतीहै और रवि, शनि और मङ्गल वारमें विवाहिता कन्या कुलटा होजातीहै ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

अङ्गारकदिने चैव या कन्या परिणीयते ।

न तृप्तिं पुरुषैर्याति काष्ठैरिव हुताशनः ॥ ३८ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें कहाहै कि, मङ्गलवारमें यदि कन्याका विवाह हो तो काष्ठदाहसे अग्निकी जिस प्रकार तृप्ति नहीं होतीहै, उसी प्रकार विवाहिता कन्याभी पुरुष द्वारा तृप्तिलाभ नहीं करसक्ती है ॥ ३८ ॥

अन्यञ्च ।

अर्काकिंभूमिपुत्राणां दिनेषु कलहप्रिया ।

सापत्न्यं समवाप्नोति तुपारकरवासरे ॥ ३९ ॥ ( उ )

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, रवि, शनि और मङ्गल वारमें विवाह होनेसे कन्या कलहकारिणी होती है और सोमवारमें विवाहिता कन्या सपत्नीके साथ कलहकारिणी होतीहै ॥ ३९ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

अमावस्यायां रिक्तासु करणे विष्टिसंज्ञके ।

यः करोति विवाहं स शीघ्रं याति यमालयम् ॥ ४० ॥ ( ऊ )

अर्थ—अमावस्या रिक्ता ( चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी ) और विष्टि मद्रातिथिमें जो मनुष्य विवाह करे, वह अवश्यही यमभवनमें गमन करताहै ॥ ४० ॥

\* “ गुरुशुक्रबुधाहेषु विवाहः शुभदः सदा ” इति ।

( उ ) “ अङ्गारकदिने नारी कान्तं दृष्ट्वा पलायते । सूर्यपुत्रादिने चैव धनपुत्रविनाशिनी ॥ उवा चार्कदिने कन्या धृष्टा भवति निश्चितम् ” इति च ।

( ऊ ) तिथयः प्रतिपदश्राष्टमीरिक्ता विना शुभाः इति । “ प्रतिपदुःखजननी द्वितीया प्रीतिवर्द्धिनी । सौभाग्यदा तृतीया च चतुर्थी चार्थनाशिनी । पञ्चम्या सुखवित्तानी षष्ठी वित्तप्रदायिनी । विद्याशीलसुखाप्तिः स्यात्सप्तम्यामफलाष्टमी । नवमी शोकफलदा आनन्दो दशमीदिने । सुखदेकादशी चैव सफला द्वादशी स्मृता ॥ मानपुत्रो त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तु दोषदे । फल बहुविध नित्यं पञ्चदश्यां विशेषतः ॥ ” इति च ।

रिक्तासु विधवा कन्या दर्शऽपि स्याद्विवाहिता ।

शनैश्चरदिने चैव यदि रिक्ता तिथिर्भवेत् ।

तस्यां विवाहिता कन्या पतिसन्तानवर्द्धिनी ॥ ४१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-रिक्ता और अमावस्या तिथिमें विवाहिता कन्या विधवा होती है। किन्तु शनिवारमें यदि रिक्ता तिथि हो तब उसमें कन्याका विवाह होनेसे वह कन्या पतिके संसर्गसे बहु संतान प्रसव ( उत्पन्न ) करती है ॥ ४१ ॥ ( ऋ )

तिथिश्चतुर्थी नवमी चतुर्दशी तथाष्टमी देवकुहूदिनञ्च ।

विष्टिव्यतीपातदिवाविवाहे वैधव्यमाप्नोत्यपि देवकन्या ॥ ४२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, विष्टि भद्रा तिथिमें, व्यतीपातयोगमें और दिनमें विवाह होनेसे नारी देवकन्या होनेसेभी उसको वैधव्य प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अथ नक्षत्रकथनम् । ( ऋ )

पूर्वात्रये विशाखायां शिवाद्यभचतुष्टये ।

ऊढा चाण्डे भवेत्कन्या विधवातो विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अथ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रमें विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होती है अतएव यह सब नक्षत्रोंमें विवाह निषिद्ध है ॥ ४३ ॥

विष्णुभाद्ये त्रिके चित्रे ज्येष्ठायां ज्वलने त्रिके । ❀

एभिर्विवाहिता कन्या भवत्येव सुदुःखिता ॥ ४४ ॥

अर्थ-श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, ज्येष्ठा, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें विवाहिता कन्या अत्यन्त दुःखभागिनी होती है ॥ ४४ ॥

( ऋ ) मङ्गलवारमें जया ( त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथि ) होनेसे अष्टमी-तिथिका दोष ग्राह्य नहीं होता है ॥

( ऋ ) “ मूला मघानुराधा च रोहिण्युत्तररेवती । हस्ता मृगाशिराः स्वातिविवाहे च सुशोभनाः ” । इति प्रशस्तनक्षत्रम् ।

\* ज्वलने त्रिके ज्वलनान्तात्रिके इत्यर्थः इति मांघवाचार्यः । प्जरने यमे इत्यपि काचित्पाठः ।

कन्यायाः पार्णि गृहीयात्रिषु त्रिपूत्तरादिषु  
स्वातौ मृगशिररोहिण्यां वा ॥ ४५ ॥ ( लृ )

इति पास्करः ।

अर्थ-पारस्करने कहाहै कि, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तरापाढा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, स्वाति मृगशिर और रोहिणी इन नक्षत्रोंमें कन्याका विवाह करे । चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्रमें यजुर्वेदियोंका विवाह होताहै । कोई २ यजुर्वेदी आपत्कालमें इन चार नक्षत्रोंका व्यवहार कहते हैं ॥ ४५ ॥

आद्ये मघाचतुर्भागे नैर्ऋतस्याद्य एव च ।

रेवत्यन्तचतुर्भागे विवाहः प्राणनाशकः ॥ ४६ ॥ ( लृ )

इति गण्डपादवर्जनम् । \*

अर्थ-विवाहमें विहित नक्षत्र मघा, मूल और रेवतीको विशेष कहते हैं यथा मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम पादमें और रेवती नक्षत्रके शेष पादमें विवाह होनेसे प्राणनाश होताहै अतएव मघा और मूलनक्षत्रके प्रथमपाद और रेवती नक्षत्रका शेष पाद इनको त्याग करके विवाह करे ॥ ४६ ॥

अथ त्याज्ययोगकथनम् ।

व्याघातशूले परिघातिगण्डे गण्डे व्यतीपातपुरन्दरान्ते ॥

पाणिग्रहं यो विदधाति शीघ्रं यमालयं याति सर्वैधृतौ च ॥४७॥ ( ए )

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-विवाहमें नित्य योगोंमेंसे कौन योग त्याज्य होता है अब उसको कहते हैं । व्याघात, शूल, परिघ, अतिगण्ड, गण्ड, व्यतीपात, इंद्र और वैधृतियोंमें विवाह होनेसे शीघ्रही यमालयको जाता है, अतएव उक्त समस्त योगोंमें विवाह न करना चाहिये ॥ ४७ ॥

( लृ ) चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विनिनक्षत्र यजुर्वेदिविषयमापद्विषय वेति । सत्कृत्यमुत्ता चक्ष्याम् ।

( लृ ) गण्डपादवर्जनमाह-आद्यइति । मघाया आद्ये चतुर्थभागे प्रथमपादे नैर्ऋतस्य मूलायाश्च प्रथमे पादे रेवत्या अन्तपादे विवाहः प्राणनाशकः अन्येषान्तु गण्डानामवैवाहिकनक्षत्रत्वेन स्वत एव निषेध इति ।

\* “ मासान्ते म्रियते कन्या तिथ्यन्ते स्यादप्राणिणी । नक्षत्रान्ते च वैधव्य वर्षान्ते वर्गनाशनम् ” इति ॥

( ए ) “ वैधृतिकैः परिणीता विकलेन्द्रिया व्यतीपाते । विष्ट्यां भरणं नित्यं सुभगा पश्यन्ति करणेषु । ध्रुवगणैः शकुनाद्यैः परिगृह्याद्भ्रुवं मृत्युम् ॥ ”

अन्यच्च ।

कुलच्छेदो व्यतीपाति परिघे स्वामिघातिनी ।  
 वैधृती विधवा नारी विपदाहोऽतिगण्डके ॥ ४८ ॥  
 व्याघाते व्याधिसंघातः शोकार्त्ता हर्षणे तथा ।  
 शूले च व्रणशूलं स्याद्गण्डे रोगभयं तथा ॥ ४९ ॥  
 विष्कम्भेऽप्यहिदंशः स्याद्ब्रजके मरणं भवेत् ।  
 एते वै दारुणाः सर्वे दश योगाः प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

इति रत्नमालायाम् ।

अर्थ-रत्नमालानामक ग्रन्थमें लिखा है कि, व्यतीपातयोगमें विवाह होनेसे कुलच्छेद होता है, इसी प्रकार परिघयोगमें स्वामीका नाश, वैधृतिमें विधवा, अतिगण्डमें विपदाह, व्याघातमें समस्त रोग, हर्षणमें शोक, शूलमें व्रण और शूलरोग, गण्डमें रोगभय, विष्कम्भमें सर्पदंशन और ब्रजयोगमें विवाह होनेसे मृत्यु होती है, यह दशयोग अतिभयानक हैं अतएव इनमें कदापि विवाह न करे ॥ ४८-५० ॥

अथ लग्नकथनम् ॥

कन्यातुलाभृन्मिथुनेषु साध्वी शोपेप्वसाध्वी धनवर्जिता च ।  
 निन्द्येऽपि लग्ने द्विपदांशइष्टःकन्यादिलग्नेष्वपि नान्यभागः ॥ ५१ ॥ (ऐ)

अर्थ-कन्या तुला और मिथुन लग्नमें विवाहिता कन्या साध्वी होती है, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, कर्क और सिंह लग्नमें विवाहिता नारी असाध्वी होती है, किन्तु इनके बीचमें विशेष यही है कि, कन्या, तुला और मिथुन लग्नके द्विपदांश ( १ ) इष्टफलदायक होकर साध्वीत्व प्रदान करती है और अन्यभागमें केवल साध्वीत्व प्रदान करती है । और निन्द्य लग्नके मध्यमेंभी द्विपदांश इष्ट फल दान करती है; किन्तु कन्यादि लग्नके मद्राव होनेसे और लग्नके द्विपदांश शुभ नहीं होता है ॥ ५१ ॥

अपरञ्च ।

व्यूढा धनुषि कुलटा तत्पूर्वाद्धिं सतीत्यपरे जगुः ॥ ५२ ॥

( ऐ ) विहितलग्ननशांनाह-कन्येति । निन्द्ये लग्नेः कन्यादिव्यतिरिक्तलग्ने द्विपदानां कन्यादीनां नवांश इष्टःकन्यादिलग्न्यादिभावे तत्रनाशे वा कस्तव्यमित्यर्थः । तथा कन्यादिलग्नेष्वपि अन्यनशांशे न कार्यः किन्तु तेषां नवांश एव इति ।

( १ ) मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वाह्निका नाम द्विपद है और इनके नवांशको द्विपदांश कहते हैं ॥

अर्थ—धन लग्नके परार्द्धमें विवाहिता कन्या कुलटा होती है, किन्तु पूर्वार्द्धमें विवाह होनेसे सती होती है ॥ ५२ ॥

अन्यत्र ।

कन्यातुलामन्मथांशे भवेत्पाणिग्रहो यदि ।

तद्रेक्षाणे च कन्याया वैधव्यं मरणं भवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, कन्या, तुला और मिथुनके अपने २ नवांशमें और अपने २ द्रेक्षाणमें कन्या परिणीता होनेसे उसको वैधव्य और मृत्यु प्राप्त होताहै, अतएव कन्यादि लग्नके अपने २ नवांशमें और द्रेक्षाणमें विवाह निषिद्ध है ॥ ५३ ॥

अथ युतयामित्रवेधादेवर्जनकथनम् ।

पञ्चपाणिग्रहे दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।

वैधव्यं कुलटामृत्युर्दारिद्र्यमनपत्यता ॥ ५४ ॥

युतयामित्रवेधो च तथा सप्तशलाकजः ।

इन्द्रप्रमगतः पापः खर्जुरश्चापि पञ्चमः ॥ ५५ ॥

अर्थ—विवाहमें युतवेध, यामित्रवेध, सप्तशलाका, इन्द्रप्रमगतपाप और खर्जुरवेध यह पांच योग अवश्यही वर्जनीय हैं. क्योंकि युतवेधसे वैधव्य प्राप्त होताहै. इसी प्रकार यामित्रवेधसे कुलटादोष, सप्तशलाकासे मृत्यु, इन्द्रप्रमगतपापसे दरिद्रता और खर्जुरवेधसे वंध्यत्व प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ यामित्रवेध ।

रविमन्दकुजाक्रान्तं मृगाङ्गात्सप्तमं त्यजेत् ।

चूडाविवाहयात्रासु गृहकर्मप्रवेशने ॥ ५६ ॥ (ओ)

अर्थ—चन्द्रमा जिस राशिमें हो उस स्थानसे सप्तमराशिमें यदि रवि, अग्नि अथवा मङ्गलका वास हो तब यामित्रवेध होताहै, इसमें चूडा, विवाह, गृहारम्भ और गृह-प्रवेश न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

( ओ ) सप्तमस्थे पापे चन्द्रवेधमाह—स्वीति । यस्य चन्द्रस्य सप्तमे रविः शानिः कुजो वा तिष्ठति त चन्द्र विनाहादिषु वर्जयेदिति तात्पर्यम् । तथाच राजमार्त्तण्डे 'पापात्सप्तमगः शशी' इत्यादि । मित्रगृहादौ दोषाभावमाह—राजमार्त्तण्डः । "मित्राश्रमे मित्रसमीक्षितो वा मित्रांशके मित्रसमाश्रितो वा । क्रूरग्रहाद्वग्नोऽपि सोमः समीहितार्थं वित्तेन्नराणाम् " तथा । "यातः स्वमित्रवचने सुहृदीक्षितो वा भास्वन्मूलखविमलीकृन्-दिहसुखो वा । यामित्रदोषमपहत्य पर करोति सोमः समीहितफलं खलु मानवानाम् " इति ।

यामित्रसंस्थे म्रियते महीजे प्रजाविहीना कुलटा च सूर्ये ॥

सुरारिपूज्ये रजनीकरे वा कन्यान्यरक्ता पतिवातिनी च ॥५७॥

इति सारसग्रहधृतवचनम् ( औ )

अर्थ—यामित्र स्थानमें ( चन्द्रके सप्तम ) मङ्गल होनेसे मृत्यु होती है, इसी प्रकार सूर्य रहनेसे सन्तानहीना और व्यभिचारिणी होती है और चन्द्र शुक्रके साथ युक्त होनेसे नारी पर पुरुषके वशमें होकर अपने पतिका वध करती है । यह वचन दीपिकामें विवाहप्रश्नसम्बन्धमें लिखा है ॥ ५७ ॥

अथ यामित्रवेधप्रतिप्रसवमाह ।

यस्मिन्नक्षे वसेच्चन्द्रस्तस्मादक्षे चतुर्दशे

पापग्रहे स्थिते चैव यामित्रवेध इष्यते ॥ ५८ ॥

इति सारसग्रहे ।

अर्थ—अब यामित्रवेधके प्रतिप्रसव कहते हैं । जिस नक्षत्रमें चन्द्र स्थित हो उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमें यदि पापग्रह हो तोभी यामित्रवेध होता है ॥ ५८ ॥

मूलत्रिकोणनिजमन्दिरगोऽथ पूर्णो

मित्रक्षसौम्यगृहगोऽथ तदीक्षितो वा ।

यामित्रवेधविहितानपहृत्य दोषान्

दोषाकरः सुखमनेकविधं विधत्ते ॥ ५९ ॥

अर्थ—चन्द्रमा यदि मूलत्रिकोण ( \* ) में वा अपने घरमें ( कर्कमें ) स्थित हो, पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो मित्र ( सूर्य वा बुध ) के घरमें हो, अथवा शुभग्रहके क्षेत्रमें स्थित हो वा शुभग्रहकी दृष्टि हो तब यामित्रवेधका दोष नष्ट होकर शुभफल होता है ॥ ५९ ॥

अथ यामित्रयुतवेधः ।

पापात्सप्तमगः शशी यदि भवेत्पापेन युक्तोऽथवा

( औ ) योगान्तरमाह—यामित्रेति । सप्तमस्थे मङ्गले कन्या म्रियते सूर्ये सप्तमस्थे पुत्र विहीना कुलटा च स्यात् कुलटात्वञ्च लग्ने सूर्ये चोति बोद्धव्यम् । तथाच “ दिवसमग्नि सप्तमगो लग्नात्कन्या मृतप्रजां कुर्यात् । कुलटामुदयोपेतः कुरते नैवान् सन्देहः ” ॥ रजनीकरे वेति वाशब्दः समुच्चये शुक्रे चन्द्रे मिलित्वा सप्तमस्थे परपुरुषगामिनी पतिवाः तिनी च स्यात्तथा च दैनज्ञालभायाम् । “ सङ्करी कुरतोऽमृतांशुशशिर्जा पथे त्रिय दुर्भगा- कुर्याति शशिभार्गवी च कुलटामाथे च जायास्थितौ ” इति ॥

• चन्द्रकी मूलत्रिकोण वृषराशि है ।

यत्नेनाशुविवर्जयेन्मुनिमतो दोषोऽप्ययं कथ्यते ।  
यात्रायां विपदो गृहे सुतवधः क्षौरे च रोगोद्भव-  
श्चोद्वाहे विधवा व्रते च मरणं शूलञ्च पुंकर्माणि ॥ ६० ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब यामित्रयुतवेध कहते हैं । पापग्रहसे सप्तम स्थानमें यदि चन्द्र स्थित हो तब यामित्रवेध होता है और पापग्रहके साथ युक्त होनेसे युत वेध होता है । युतवेधमें यात्रा करनेसे अनिष्ट होता है. इसी प्रकार गृहारम्भमें पुत्रनाश, चूडाकर्ममें रोग, विवाहमें वैधव्य, उपनयन ( यज्ञोपवीत ) में मरण और पुंसवन करनेसे शूलरोग उत्पन्न होता है । अतएव उक्त सब कार्य युतवेधमें न करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच्च ।

यत्र राशौ भवेच्चन्द्रोऽशुभग्रहो यदा भवेत् ।  
युतिदोषस्तदा ज्ञेयो विना शुक्रं शुभे शुभम् ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, जिस राशिमें चन्द्र स्थित हो उसी स्थानमें अशुभ ग्रहके स्थित होनेसे युतिवेध होता है और शुक्रभिन्न शुभ ग्रह चन्द्रके साथ होनेसे शुभप्रद होता है ॥ ६१ ॥

फलम् ।

रविणा संयुते हानिर्भौमेन निधनं शशी ।  
करोति मूलनाशं च राहुकेतुशनैश्वरैः ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिषसारे ।

अर्थ—अब युतिवेधका फल कहते हैं । चन्द्र रवियुक्त होनेसे हानि होती है । इसी प्रकार मङ्गलयुक्त होनेसे मृत्यु और राहु, केतु वा शनैश्वर युक्त होनेसे मूलनाश होजाता है ॥ ६२ ॥

अथ युतियामित्रादीनां प्रतिप्रसवः ।

वृषाजालिधनुःकर्कसिंहहीने च चन्द्रमाः ।  
न दोषः पापयोर्मध्ये युतियामित्रयोरपि ॥ ६३ ॥ ( अं )

अर्थ—वृष, मेष, वृश्चिक, धन, कर्क, सिंह वा मीन राशिमें चन्द्रमा होनेसे

( अ ) “ स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो यदि । युतिदोषाय न भवेद्दम्पत्योऽश्रयसे सदा ॥ ” इति ग्रन्थान्तरे युतिवेधप्रतिप्रसवः ।

यदि युतिवेध वा यामित्रवेध हो तब उसका दोष नहीं होता है और पापद्वयमध्य-  
गत चन्द्र यदि उक्त सब राशिमें स्थित होय तबभी दोष नहीं होता है ॥ ६३ ॥

अथ सप्तशलाकावेधः ।

कृत्तिकादिचतुःषट्शराराशौ परिभ्रमन् ।

ग्रहश्चेदेकरेखस्थो वेधः सप्तशलाकजः ॥ ६४ ॥ ( अः )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-कृत्तिकादि अठ्ठाईस रेखामें चन्द्र नित्यही भ्रमण करता है किन्तु चन्द्रा-  
तिरिक्त ग्रह यदि वेधराशि वा उसके वेधनक्षत्रमें स्थित हो तब सप्तशलाकावेध  
होता है । पाठकगणके हितार्थ आगे सप्तशलाकाचक्र निर्माण किया है ॥ ६४ ॥

अथ सप्तशलाकाचक्रम् ।

सप्तसप्तविलिखेचुोखिकास्तियर्षगूर्द्धमथ कृत्तिकादिकम् ।

लेखयेदभिजिता समन्वितं चैकरेखगखगेन विध्यते ॥ ६५ ॥

इति राजमार्त्तण्डः ।

अर्थ-ऊर्ध्वभावेसे सात और तिर्यग्भावेसे सात रेखा खींचे ऊर्ध्व रेखासे कमा-  
नुसार कृत्तिकादि नक्षत्र लिखे अभिजित् नक्षत्रके साथ गणना करनेसेही रेखा  
पूर्ण होती हैं एक रेखामें ग्रह स्थित होनेसे वेध होता है ॥ ६५ ॥

क. रो. घ. आ. पु. सु. आ.

|     |   |   |   |   |   |   |     |
|-----|---|---|---|---|---|---|-----|
| भ   | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | म.  |
| अ   | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | प.  |
| रे. | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | उ.  |
| ए   | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ह.  |
| प.  | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | चि. |
| श.  | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ग.  |
| ध   | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | ॥ | नि. |

अ. अ. उ. प. सु. र्ज्ये. अ.

अश्विनीपूर्वफाल्गुन्या रेवत्योत्तरफाल्गुनी ।

हस्तेनोत्तरभाद्रश्च पूर्वभाद्रश्च चित्रके ॥ ६६ ॥

( अः ) सप्तशलाकावेधमाह-कृत्तिकादि कृत्वा अनभिन्नभवेण सार्द्धं चतुःसप्तरेखा  
राशौ अष्टाविंशतिरेखासमूहे ऊर्ध्वः क्रमेण परिभ्रमन् ग्रहो यथेकरेखारथः स्यात्तदा सप्त  
शलाकजो वेधः स्यात् ।



स्वात्याशतभिषा विद्धा विशाखा च धनिष्ठया ।

कृत्तिका श्रवणाविद्धा रोहिण्यभिजिता तथा ॥ ६७ ॥

मृगशीर्षोत्तरापाठे पूर्वापाठे तथार्द्रया ।

पुनर्वसौ च मूले च तथा पुष्यं च ज्येष्ठया ॥ ६८ ॥

आश्लेषयानुराधा च मघया भरणी तथा ।

विद्वान्येतानि राजेन्द्र अश्विन्यादिभतःक्रमात् ॥ ६९ ॥

अर्थ—किस नक्षत्रके साथ किस नक्षत्रका वेध होता है अब उसको वर्णन करते हैं यथा—अश्विनीके साथ पूर्वाफाल्गुनीका वेध होता है इसी प्रकार रेवतीके साथ उत्तराफाल्गुनीका, हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, स्वातिके साथ शतभिषाका, विशाखाके साथ धनिष्ठाका, कृत्तिकाके साथ श्रवणाका, रोहिणीके साथ अभिजितका, मृगशिरके साथ उत्तरापाठका, आर्द्राके साथ पूर्वापाठका, पुनर्वसुके साथ मूलका, पुष्यके साथ ज्येष्ठाका, आश्लेषाके साथ अनुराधाका और मघाके साथ भरणीनक्षत्रका वेध होता है । इस वेधको अश्विन्यादिक्रमसे जानना चाहिये ॥ ६६-६९ ॥

अन्यत्र ।

हयंभी अभिजिद्विधी मृगशिरोविश्वौ कबन्धेश्वरौ

रक्षोऽद्री गुरुवज्रिणावथ च मित्राही मघासूरजौ ।

योन्यश्वावथ चार्य्यमान्तगतभे हस्ताहिबुधावज-

त्वष्टारौ वरुणानिलौ वसुविशाखे भप्रभिन्ने इमे ॥ ७० ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—अब ज्योतिषसारेके अनुसार सप्तशलाकाचक्रमें किस नक्षत्रके साथ किस नक्षत्रका वेध होता है, उसको कीर्त्तन करते हैं । श्रवणनक्षत्रके साथ कृत्तिकानक्षत्रका वेध होता है, इसी प्रकार अभिजितके साथ रोहिणीका, उत्तरापाठके साथ, मृगशिरका, पूर्वापाठके साथ, आर्द्राका, मूलके साथ पुनर्वसुका, ज्येष्ठाके साथ पुष्यका, अनुराधाके साथ आश्लेषाका, मघाके साथ भरणीका, पूर्वाफाल्गुनीके साथ अश्विनीका, उत्तराफाल्गुनीके साथ रेवतीका, हस्तके साथ उत्तराभाद्रपदका, चित्राके साथ पूर्वाभाद्रपदका, स्वातिके साथ शतभिषाका और विशाखानक्षत्रके साथ धनिष्ठानक्षत्रका वेध होता है ॥ ७० ॥

अथाभिजिन्नक्षत्रकथनम् ।

वेश्वस्य चतुर्थांशे श्रवणादौ लितिकाचतुष्के च ।

अभिजित्तस्थे खचरे विज्ञेया सा रोहिणीविद्या ॥७१॥ (क)

अर्थ-उत्तराषाढनक्षत्रका शेष चतुर्थांश ( चौथापाद ) और श्रवणनक्षत्रके आदिके चार दण्डका नाम अभिजित् है इस अभिजिन्नक्षत्रमें ग्रह रहनेसे रोहिणीके साथ वेध होता है ॥ ७१ ॥

अथ सप्तशलाकावेधफलम् ।

यस्याः शशी सप्तशलाकाभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे ॥

रक्तांशुकैव सरोदमाना श्मशानभूमि प्रमदा प्रयाति ॥७२॥ (ख)

अर्थ-जिसके विवाह समय सप्तशलाकाचक्रमें चन्द्रके साथ पापग्रहका वा शुभ-ग्रहका वेध हो तब वह कन्या विवाहके रक्तवस्त्रपीरधानपूर्वक रोदनकरती हुई श्मशानभूमिमें अग्निमें प्रवेश कर गमन करती है ॥ ७२ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रातिरिक्तखचरैर्यद्यत्र वधसम्भवः ।

चिताभूमिं विशेषतः भर्ता च प्रविशेद्गनम् ॥ ७३ ॥

इति सप्तशलाकावेधफलम् ।

अर्थ-विवाहसमय सप्तशलाकाचक्रमें चन्द्र भिन्न ग्रहके साथ यदि वेध हो तब वह कन्या चिताभूमिमें प्रवेश करती है अर्थात् उसकी मृत्यु होती है और उक्त कन्याका स्वामीभी वनकी निःशलाका है ॥ ७३ ॥

अथ इन्द्रष्टमगतपापकथनम् ।

इन्द्रष्टमगान्पापान्वजयेन्नैधनं विलग्नञ्च ।

चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वाश्मभप्रयोगेषु ॥ ७४ ॥ (ग)

अर्थ-अब इन्द्रष्टमगत पाप कहते हैं । चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे

( क ) अभिजिन्नक्षत्रस्थानमाह-वेश्वस्येति । वेश्वस्य उत्तराषाढायाः चतुर्थे पादे श्रवणाया आदिलितिकाचतुष्के प्रथमचतुर्दण्डे अभिजिन्नक्षत्र तत्रस्थे ग्रहे रोहिणी विद्या ज्ञेया इति ।

( ख ) विवाहे सप्तशलाकादोषमाह-यस्याइति सुगममिति ।

( ग ) सर्वकर्मसु चन्द्रलग्नयोर्वर्जनमाह-इन्द्रष्टमेति । इन्द्रोः लग्नादष्टमस्थाने च गतान् चन्द्रसङ्गतान् लग्नाष्टमगतांश्च पापान् वजयेत् । पापानिति बहुवचनमविश्रितम् । यथा राजमार्त्तण्डे-“निधन निधनविलग्नै वित्तनाशो विनाशगे हिमगौ पापग्रहे निधनगे चन्द्र-

उसको इन्द्रधमगत पाप कहते हैं, इस इन्द्रधमगत पापको, लग्नाष्टमगत पापको और अष्टमस्थ चन्द्रको समस्त कार्योंमें परित्याग करना चाहिये ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

जन्मक्षान्निधने शशी यदि भवेत्लग्नाच्च पापोऽष्टमः

पापात्सप्तमगोऽथवा हिमकरः पापेन वा संयुतः ।

लग्नाच्चाष्टमं नृणां यदि भवेत्स्वाज्जन्मलग्नात्तदा

यात्रापुंसवनव्रतादिषु महान्दोषो विवाहे ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे अष्टमस्थानमें चन्द्रमा हो, लग्नके आठवें पापग्रह हो वा पापग्रहके सातवें चन्द्रमा हो या पापग्रहयुक्त चन्द्रमा हो अथवा जन्मलग्नसे अष्टमलग्नमें यात्रा, पुंसवन उपनयन और विवाहादि शुभकार्य करनेसे अत्यन्त अमङ्गल होताहै ॥ ७५ ॥

इन्द्रधमगतफलम् ।

७ अष्टमस्थः कुजश्चैव नेत्ररोगं ददाति हि ।

मृत्युं मार्त्तण्डजो दद्यान्मार्त्तण्डो बुद्धिनाशनम् ॥ ७६ ॥

संहिकेयो महाव्याधिं चन्द्रान्निधनगो यदा ।

चन्द्रान्निधनगाः पापा लग्नाद्वा निधनोपगाः ॥

कर्तुर्मृत्युप्रदा नित्यं सर्वदा शान्तिकर्मसु ॥ ७७ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, विवाहादि शुभकर्ममें चन्द्रसे आठमें मङ्गल होनेसे नेत्ररोगको प्रदान करते हैं, शनैश्चर चन्द्रके आठवें होनेसे मृत्युदान करते हैं, इसी प्रकार अष्टम सूर्यसे बुद्धिका नाश, अष्टम राहु होनेसे महाव्याधिरोगसे युक्त होताहै और शुभकर्ममें लग्नके आठवें पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होतीहै। ७६।७७

—गतेऽप्यनेकवैश्वर्यम् ॥” तथा “सङ्करे वा शशिनि क्रूरद्वयमध्यमे विलम्बे वा। शुभकर्माणि शुभेच्छुर्नवोपीदेशेत्रेन्द्राणाम् ॥ यस्य व्रतोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरोऽष्टमो भवति वाय शशी विलग्रात् ।” इत्यादिलिलिप्यमाणवचनश्च । इन्द्रोऽष्टमगतान् पापान् वर्जयेदिति तथा जन्मराशेरष्टम लग्न वर्जयेत्तथा इष्टलग्नस्याष्टमस्य चन्द्रश्च वर्जयेत् । अत्र सीमरिः जन्मराशेरष्टमस्थमिति वदाति तन्न तस्य गोचराशुद्धत्वेन स्वत एव निवृत्तत्वात् पुनर्विपेधोऽनर्थकः स्यादिति । तथाच राजमात्तण्डे “यस्य व्रनोपनयनादिशुभक्रियासु क्रूरोऽष्टमो भवति वाय शशी विलग्रात् । तस्याचिरणे मरणं परिकीर्तयन्ति सन्तः सुरेन्द्रसचिवोऽपि च कण्ठकस्ये” इति ।

मृत्युस्थाने शशांकाज्जनयति च भयं तिग्मरोचिर्नराणां  
 बन्धूनां शोकमुग्रं विविधगदभयं भूमिजो भूमिनाशम् ।  
 मार्त्तण्डिवज्रपातं जठरगदभयं सर्वदा शान्तिकर्म  
 तस्मात्पीयूषभानोर्निपतनभवने नैव पापाः प्रशस्ताः ॥ ७८ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखाहै कि, शुभकार्यमें चन्द्रके अष्टमस्थानमें सूर्य होनेसे अतिशोक और अनेक प्रकारका रोगभय होताहै. मङ्गलचन्द्रके आठवें होनेसे भूमिका नाश होताहै, शनैश्वर चन्द्रके आठवें होनेसे मनुष्यके मस्तकमें वज्रपात और उदरपीडा होतीहै अतएव चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे शुभकार्य न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

चन्द्रान्निधनगे पापे निधनं परिकीर्तितम् ॥ ७९ ॥

इति भैरवभट्टः ।

अर्थ—चन्द्रके अष्टमस्थानमें पापग्रह होनेसे कर्त्ताकी मृत्यु होतीहै. इसप्रकार भैरवभट्टने कहाहै ॥ ७९ ॥

इन्द्रष्टमप्रतिप्रसवमाह ।

चन्द्रस्थितक्षाद्यदि षोडशक्षं सूर्यारमन्दाः समुपावहन्ति ।

तदा विवाहं व्रतबन्धचूडं सर्वं न कार्यं मुनयो वदन्ति ॥ ८० ॥

अर्थ—अब इन्द्रष्टमगत पापके प्रतिप्रसव कहतेहैं—कर्मकालमें चन्द्र जिस स्थानमें हो उस नक्षत्रसे षोडश ( १६ ) नक्षत्रमें यदि सूर्य, मङ्गल वा शनि स्थित हों तभी दोष होताहै । इसमें विवाह, उपनयन और चूडादि शुभकर्म न करना चाहिये किन्तु षोडश नक्षत्र गत न होनेसे विवाहादिकर्ममें कुछ बाधा नहीं होतीहै ॥ ८० ॥

अथ सर्जूरवेधः ।

तिथ्यङ्गवेदैकदशानविंशभैकादशाष्टादशविंशसंख्याः ।

इष्टोडुना सूर्ययुताडुना च योगादमूर्ध्वदशयोगभङ्गः ॥ ८१ ॥ ( घ )

अर्थ—अब सर्जूरवेधका कीर्त्तन करनेहैं । चन्द्रनक्षत्रके साथ सूर्यका नक्षत्र

( घ ) विद्वानक्षत्रमाह—तिथ्यङ्गेति । इष्टनक्षत्रेण सूर्याक्रान्तनक्षत्रेण च योगात् यदि तिथ्यङ्गादयोऽमूर्ध्वदशसंख्या भवन्ति तदा दशयोगभङ्गः स्यात्सप्तविंशाधिके तु सप्तविंशं वर्जयित्वा शेषेण दशयोगभङ्गो विचार्यः । यथा राजमार्त्तण्डे “ साध्यक्षमिन्दुयुतमक-समन्वितञ्च भागः प्रदेय उद्धभिर्दशयोगचक्रम् ” इति ।

योगकरनेसे, यदि पन्द्रह, छः चार, एक, दश, उन्नीस, सत्ताईस, ग्यारह, अठारह अथवा बीस इन संख्यामेंसे जो कोई अङ्क हो तभी खर्जूरवेध होता है खर्जूरवेधका नामान्तर दशयोगभङ्ग है और इसको विद्वानक्षत्रभी कहते हैं ॥८१ ॥

ऊर्ध्वमेका तथा रेखा तिर्यग्रेखास्त्रयोदश ।

आश्लेषां मस्तके दत्त्वा दक्षिणाक्रमयोगतः ॥ ८२ ॥

मघादीन्यपि देयानि चेत्यं खर्जूरवेधतः ।

इएनक्षत्ररेखायां यदि तिष्ठति भास्करः ।

वेधस्तदा स्यान्नोद्गाहः कायस्तत्र कदाचन ॥ ८३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—अब खर्जूरवेध देखनेकी प्रणाली ( रीति ) लिखते हैं । ऊर्ध्वदिशामें एक रेखा खींचकर तिर्यग्भावमें तेरह रेखा खींचना चाहिये । अनन्तर ऊर्ध्वरेखाके ऊपरमें आश्लेषानक्षत्र रखकर दक्षिणावर्त्तमें मघादिनक्षत्रको स्थापन करे, उसको ही खर्जूरवेध कहते हैं । कर्मकालीन नक्षत्र और सूर्यभोग्य नक्षत्र एक रेखामें पडनेसे खर्जूरवेध होता है, इसमें विवाह कदापि न करना चाहिये ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

पाठकवर्गके मुभीतार्थ नीचे खर्जूरवेधका चक्र लिखा है—

श्ले

|     |      |
|-----|------|
| पु. | म.   |
| पु. | पु.  |
| जा. | उ.   |
| मृ. | द.   |
| मी. | धि.  |
| कु. | म्या |
| भ.  | नि.  |
| अ.  | अ.   |
| रे. | त्ये |
| उ.  | म.   |
| पु. | पु.  |
| श.  | उ.   |
| घ.  | अ.   |

श्र.

• कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुंसवने तथा ।

प्राशने चाद्यचूडायां विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ ( ङ )

अर्थ—कर्णवेधमें, विवाहमें, उपनयनमें, पुंसवनमें, अन्नप्राशनमें और चूडा-  
कर्ममें विद्धनक्षत्रोंको परित्यागकरै ॥ ८४ ॥

अथ खर्जूरवेधप्रतिप्रसवः ।

आद्यपादे स्थिते सूर्ये तुरीयांशं प्रदुष्यति ।

द्वितीयस्थे तृतीयन्तु विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ८५ ॥ ( च )

अर्थ—खर्जूरवेध वा दशयोगमङ्गके प्रतिप्रसव वर्णन करते हैं—सूर्य यदि नक्षत्रके  
प्रथमपादमें स्थित हो तब कर्मकालीन नक्षत्रके चतुर्थपाद और द्वितीयपादमें रह-  
नेसे तृतीयपाद दूषित होता है और चतुर्थपादमें सूर्य स्थित हो तब प्रथमपादमें  
और तृतीयपादमें रहनेसे द्वितीय पाद दूषणीय होता है ॥ ८५ ॥

स्पष्टमाह ।

आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन चादिभम् ।

द्वितीयेन तृतीयन्तु तृतीयेन द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥

इति स्वरोदये ।

अर्थ—वचनान्तरमें लिखा है कि, प्रथमपादमें सूर्य स्थित होनेसे चतुर्थांश  
त्याज्य है, चतुर्थांशमें रहनेसे प्रथमपाद दूषणीय है और द्वितीयपादमें रहनेसे  
तृतीयपाद दूषित है और तृतीयपादमें रहनेसे, द्वितीयपाद दूषणीय होता है ॥ ८६ ॥

अथ सुतहिबुकयोगः ।

सुतहिबुकविषद्विलम्बधर्मेऽ-

प्वमरगुरुर्दानवार्चितो वा ।

यदशुभमुपयाति तच्छुभत्वं

शुभमपि वृद्धिमुपैति तत्प्रभावात् ॥ ८७ ॥ ( छ )

अर्थ—वैवाहिक लग्नें वा लग्नके पांचवें, चौथे, दशवें अथवा नववें स्थानमें

( ङ ) विद्धनक्षत्रवर्जनमाह—कणेश इति । प्राशने अन्नप्राशने आद्यचूडाया प्रथम-  
क्षार इत्यर्थः । विद्ध दशयोगनेधमित्यर्थः । यथा राजमासंण्डे—“ विवाहेऽर्धप्रतिष्ठाया  
व्रते पुंसवने तथा । कर्णवेधादिचूडाया विद्धमृक्षं विवर्जयेत् ” इति ॥

( च ) विद्धनक्षत्रस्य विशेषमाह—आद्य इति । आक्रान्तनक्षत्रस्य प्रथमपादस्थिते  
सूर्ये इष्टनक्षत्रस्य चतुर्थपादो दुष्यति । अन्यत्पादत्रयमदृष्टमिति तात्पर्यम् । एव द्वितीय  
पादस्थे सूर्ये तृतीयपादो दुष्यति ततोऽन्यथा विपरीत चतुर्थपादस्थे सूर्ये आद्यपादः ।

यदि बृहस्पति वा शुक्र हों तो लग्नादिमें जो दोष होता है उसका खण्डन होजाता है और विशुद्ध लग्न अधिकतर प्रशस्त ( शुभ ) होती है ॥ ८७ ॥

अन्यच्च ।

सप्तमेतरकेन्द्रस्थस्त्रिकोणस्थश्च वा पुनः ।

शुक्रो गुरुर्विवाहे तु हन्ति दोषान्विलग्नगान् ॥ ८८ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें लिखा है कि, वैवाहिक लग्नके सप्तमस्थान भिन्न केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें बृहस्पति वा शुक्रके होनेसे लग्नके समस्त दोषोंका नाश होजाताहै ॥ ८८ ॥

अपरञ्च ।

लग्ने गुरौ चन्द्रसुते मृगौ वा चतुर्थधर्मात्मजकर्मगैर्वा ।

पाणिग्रहं प्राप्य सुतार्थं सौख्यं प्राप्नोति वित्तं धनलाभसंस्थैः ॥ ८९ ॥

अर्थ-प्रकारान्तरमें सुतहिबुक्क योगको इस प्रकार कहा है कि, वैवाहिक लग्नमें वा लग्नके चतुर्थ, नवम, पञ्चम अथवा दशम स्थानमें बृहस्पति, बुध वा शुक्रके होनेसे पुत्रार्थी पाणिग्रहण कर्त्ताको अत्यन्त सुख होता है । और द्वितीयस्थानमें वा एकादशस्थानमें उक्त ग्रहोंके होनेसे वित्तलाभ होता है ॥ ८९ ॥

प्रकारान्तरम् ।

लग्ने तत्पञ्चमे तुयै नवमे दशमे तथा ।

गुरुर्भृशुर्वा दोषघ्नो विवाहे वर्द्धते शुभम् ॥ ९० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, लग्नके पांचवें, चौथे, नववें, वा दशवें स्थानमें यदि बृहस्पति वा शुक्र स्थित होय तो लग्नगत दोषका नाश होकर विवाहमें शुभकी वृद्धि होती है ॥ ९० ॥ इति सुतहिबुक्कयोगः ।

अथ गोघ्नलियोगः । ( ज )

सन्ध्यातपारुणितपश्चिमदिग्विभागे

व्योम्नि स्फुरत्तरलतारकसन्निवेशे ॥

तथाच तृतीयस्थे द्वितीयपादो दुष्यतीत्यर्थः-। तथाच स्वरोदये “ आद्यांशेन चतुर्थांशं चतुर्थांशेन ” इत्यादि-इति ॥ ( छ ) सुतहिबुक्कयोगमाह-सुतहिबुक्केति । सुगमाभिति ।

( ज ) गोघ्नलियोगमाह-सन्धयेति । गतां सुखल्लिभिव्योम्नि अर्द्धे आच्छादिते सतीत्यर्थः । सुगुणेन मार्गशुनिना गोघ्नलियोगः कथितः । रात्रमात्तण्डे च कालमेदेन गोघ्नल्लिभेद् उक्तो यथा “ गोघ्नलि भ्रिविधां गदन्ति मुनयः ” इत्यादि-इति ।

रुद्धे गवां खुरपुटोद्गलितै रजोभि-  
गोधूलिरेप कथितो भृगुजेन योगः ॥ ९१ ॥

अर्थ-अब गोधूलियोग कीर्तन करते हैं । सूर्यकी किरणोंद्वारा पश्चिमादिशा अरुण वर्ण होनेसे आकाशमें नक्षत्र विमलभावसे प्रकाशित होते हैं उसी समय वनसे चरकर समस्त गौरों घर आने लगती हैं मार्गमें उनके खुरोंसे जो धूलि ऊर्ध्वदिशामें उड़ती है । भृगुमुनिने उस समयकोही गोधूलि योग कहाई ॥ ९१ ॥

अथ गोधूलिव्यवस्था ।

लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकां तत्र शुभां वदान्ति ।

लग्ने विशुद्धे सति वर्थियुक्ते गोधूलिका नैव फलं विधत्ते ॥ ९२ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जिस समय विशुद्धलग्न न पाया जाय मुनिगणोंने उसी समयको गोधूलि-योगकी व्यवस्था करी है, किन्तु विशुद्धलग्नके सम्भव होनेसे गोधूलि लग्न प्रशस्त नहीं होता है ॥ ९२ ॥ ( झ )

अथ गोधूलीनिर्णयः ।

गोधूलिं त्रिविधां वदान्ति मुनयो नारीविवाहादिके

हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते भास्करे ।

ग्रीष्मेऽर्द्धास्तमिते वसन्तसमये भानौ गतेऽदृश्यतां

सूर्यं चास्तमुपागते च नियतं प्रावृट्छरत्कालयोः ॥ ९३ ॥

अथ-नारीके विवाहादिकार्यमें मुनिगणोंने तीन प्रकारके गोधूलि योग कहे हैं । हेमन्त और शिशिरकालमें सूर्य पिण्डीकृत होकर अपने तेजको मन्दीभूत करनेसे गोधूलि योग होता है. इसी प्रकार ग्रीष्मकालमें अर्द्धास्तके बाद, वसन्त-कालमें सूर्यके अदृश्य होनेसे और वर्षा और शरत्कालमें सूर्य देवके अस्तसे प्रवृत्त होनेसेही गोधूलियोग होता है ॥ ९३ ॥

अथ गोधूलिप्रशंसा ।

नास्मिन्ग्रहा न तिथयो न च विष्टिवारा

ऋक्षाणि नैव जनयन्ति कदापि विघ्नम् ।

( झ ) “ पष्ठाष्टमे मूर्तिगते शशाङ्के गोधूलिके मृत्युमुपैति कन्या । कुजेऽष्टमे मूर्ति-गतेऽथवास्ते वरस्य नाश प्रवदति गर्गाः ” इति ग्रन्थान्तरे ।



अव्याहृतः सततमेव विवाहकाले ।

यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन योगः ॥ ९४ ॥ ( अ )

अर्थ-गोधूलिकालमें विवाह होनेसे ग्रहशुद्धि, तिथिशुद्धि विष्टि भद्रा दोष वा नक्षत्रशुद्धि इनका कुछभी विचार न करना चाहिये, जिस प्रकार गोधूलिकामें ग्रह-नक्षत्रादि विघ्नकारक नहीं होते हैं, विवाहकालमेंभी गोधूलियोग प्रशस्त है और यात्रामेंभी गोधूलियोग ब्राह्म है इसी प्रकार भृगुमुनिने कहा है ॥ ९४ ॥

अथ गोधूलिनिन्दा ।

मार्गशीर्षे तथा माघे गोधूलिः प्राणनाशिनी ॥ ९५ ॥

अर्थ-किस २ मासमें गोधूलियोग निषिद्ध है अब उसको कीर्त्तन करते हैं । अग्रहायणमास और माघमासमें गोधूलियोग प्राणनाशक होता है अतएव उक्त दोनों मासोंके गोधूलियोगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

मार्गे गोधुलिके सुता च विधवा स्यान्माघमासे तथा

पुत्रायुर्धनयौवनेन सहिता कुम्भे स्थिते भास्करे ।

वैशाखे सुखदा प्रजाधनवती ज्येष्ठे पतेर्मानदा

आपाठे धनधान्यपुत्रवहुला पाणिग्रहे कन्यका ॥ ९६ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, अग्रहायण और माघमासमें गोधूलियोगमें विवाह होनेसे कन्या विधवा होती है और फाल्गुनमासमें गोधूलियोगमें विवाह होनेसे धन, पुत्रादिकी वृद्धि होतीहै इसी प्रकार वैशाखमें सुख, सन्तान और धनवती होतीहै, ज्येष्ठमें पतिकी मानदात्री और आपाठमें गोधूलियोगके समय विवाह होनेसे वह कन्या धन, धान्य और बहुपुत्रान्विता होती है ॥ ९६ ॥

विवाहोद्दीनवर्णस्यगोधूलौतुंप्रशस्यते ॥ ९७ ॥

इति भैरवाचार्यधृतवचनम् ।

अर्थ-भैरवाचार्य धृतवचनमें लिखाहै कि, उत्तम वर्णका विवाह विशुद्धलभमेंही करना चाहिये, दीनवर्णका विवाह गोधूलियोगमें प्रशस्त है ॥ ९७ ॥

इति गोशूलियोगकथनम् ।

( अ ) गोशूलिप्रशस्तामाह-नाम्नित्रिति । सुगमम् । एतच्च स्तुतिमात्र किन्तु गोशूलि-योगेऽपि शुभाशुभ समिध विचार्यम् । तथा राजमार्त्तण्डे “ शुभाशुभयुतं नूनं राशेर्दो-पक्ष निन्दितम् । विवाहलक्षणवन्देप गोशूलिमाह मार्गिकः ” इति ।

अथ योत्कविचारः ।

तत्रादौ गणकथनम् ।

हस्तस्वातिमृगोऽश्विनीहरिगुरूपौष्यानुराधेऽदिति-  
श्चाद्रारोहिणि चोत्तराणि भरणी पूर्वाह्वयं भ्रमयम् ।

ज्येष्ठासर्पविशाखमूलवरुणावस्वाग्निचित्रामघाः

कथ्यन्ते मुनिभिर्यथाक्रमवशाद्देवा नरा राक्षसाः ॥ ९८ ॥

इति सारसग्रहे ।

अर्थ-किस नक्षत्रमें जन्म होनेसे कौन गण होताहै अब उसको वर्णन करते हैं । हस्त, स्वाति, मृगशिर, अश्विनी, श्रवण, पुष्य, रेवती, अनुराधा और पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें जन्म होनेवाले मनुष्यका देवगण होताहै । इसीप्रकार आर्द्रा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे मनुष्यका नरगण होताहै । और ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा, मूल, शतभिषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, चित्रा और मघा, इन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे मनुष्यका राक्षसगण होताहै ॥ ९८ ॥

अन्यच्च ।

हस्तास्वातिश्रुतिमृगशिरःपुष्यमैत्राश्विभानि

पौष्णादित्ये जगुरिह बुधा देवसंज्ञानि भानि ॥ ९९ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमेंभी लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, श्रवण, मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, अश्विनी, रेवती और पुनर्वसु नक्षत्रको पण्डितगणने देवसंज्ञक कहा है ॥ ९९ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वास्तिस्रः शिवभभरणीरोहिणी चोत्तराश्च ।

ग्राहुर्मर्त्याह्वयमुडुगणं नूनमेतं मुनीन्द्राः ॥ १०० ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद, आर्द्रा, भरणी, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रोंको मुनिगणने मनुष्य ( नर ) संज्ञक कहाहै ॥ १०० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चित्राश्लेषानिर्ऋतिपितृभे वासवं वासवर्क्षं

शक्राग्न्याभे वरणदहनर्क्षं च राक्षोगणोऽयम् ॥ १ ॥ इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—चित्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, विशाखा, शतभिषा और कृत्तिका इन नक्षत्रोंको राक्षसगणसंज्ञक कहते हैं ॥ १ ॥

अथ गणफलम् ।

स्वकुले चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे ।

देवासुरे वैरिता च मृत्युमर्तुषराक्षसे ॥ २ ॥ इति गणफलकथनम् ।

अर्थ—अब गणफलको वर्णन करते हैं । वर और कन्याका यदि एकगण हो, तब दोनोंमें अत्यन्त प्रीति होतीहै । देवगण और मनुष्यगणमें विवाह होनेसे मध्यम प्रीति होतीहै । देवगण और राक्षसगणमें विवाह होनेसे वैरिता अर्थात् सर्वदा कलह ( लडाई ) होतीहै और मनुष्यगणके साथ राक्षसगणका विवाह होनेसे मनुष्यगणकी मृत्यु होतीहै ॥ २ ॥

अथ नाडीवेधः ।

आश्विन्यादि लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम् ।

तत्र वेधवशाञ्ज्ञेयं विवाहादौ शुभाशुभम् ॥ ३ ॥ ( ८ )

अर्थ—सर्पाकार तीन नाडीविशिष्ट एकचक्र अङ्कित ( खींच ) कर उसमें आश्विन्यादि नक्षत्रोंको तीन भागमें स्थापनकरे । अनन्तर वरके नक्षत्रके साथ कन्याके नक्षत्रका वेध है वा नहीं उसको देखे, विवाहमें वेध होनेसे शुभ और वेध न होनेसे अशुभ होताहै ॥ ३ ॥

एकनाडीस्थाधिष्ण्यानि यदि स्युर्वरकन्ययोः ।

तदा वेधं विजानीयाद्दुर्वादिषु तथैव च ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि वर और कन्याका नक्षत्र एकनाडीमें स्थित होनेसे वेध होताहै, मंत्रके अष्टगणकरने समय गुरु और शिष्यकोभी उक्त प्रकारसे नाडीवेध देखना चाहिये ॥ ४ ॥

( ८ ) “ आश्विन्यादि लिखेच्चक्रं त्रिपङ्क्त्या नवसंख्यया । नक्षत्रैश्च त्रिभिर्नाडीवेधनं स्यादुपर्यधः ॥ ” अन्यत्र । “ सप्तविंशतिविन्दुश्च लिखित्वा स्याग्दिले शुभे । रेखात्रयेण रचयेत्सर्पाकारं त्रिभिस्त्रिभिः ॥ सर्पाकारो घटनविशेषः कुत्तिकादियमदैवतशेषाः । पृष्ठे सुनहनपतिगतरोम क्रौटे वनितावित्तवियोगः । मध्यमरेरे भवति विवाह उमयोर्मरणं वदति वराहः ॥ मध्ये क्रौटे बहुसन्मानं क्रौटे पृष्ठे यश उद्यानम् । मध्ये पृष्ठे भवति विवाहो बहुसन्धनधुतमिति तु वराहः ॥ ” इति ।

प्रकटं यस्य जन्मक्षी तस्य जन्मक्षतो व्यधः ।

प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामक्षतो भवेत् ॥ ५ ॥

द्वयोर्जन्मभयोर्वेधे न कर्तव्यः कदाचन ।

द्वयोर्जन्मभयोर्वेधो द्वयोर्नामभयोस्तथाः

नामजन्मक्षयोर्वेधो न कर्तव्यः कदाचन ॥ ६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य अपने जन्मनक्षत्रको जानता है उस मनुष्यके जन्मनक्षत्रद्वाराही वेध देखै, जन्मनक्षत्र न जाननेसे नामक्षत्रद्वारा वेध देखना चाहिये । दोनोंके जन्मनक्षत्रका वेध होनेसे कदापि विवाह न करै, कन्या और वरके जन्मनक्षत्रका वेध निषिद्ध है और दोनोंका नामक्षत्रवेध होनेसेभी उसमें विवाह न करना चाहिये किन्तु एकका नामक्षत्र दूसरेका जन्मक्षत्रद्वारा वेधको न देखना चाहिये ॥५॥६॥

एका नाडी स्थिता चेत्स्याद्भर्तुर्नाशाय चाङ्गना ।

तस्मान्नाडीव्यधो वीक्ष्यो विवाहे शुभमिच्छता ॥ ७ ॥

अर्थ-एक नाडीमें दोनोंका जन्मनक्षत्र होनेसे अङ्गना ( स्त्री ) पतिके नाशका कारण होती है अतएव मङ्गलकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको अवश्यही वेध देख लेना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ नाडीवेधफलम् ।

प्राङ्नाड्या वेधतो भर्ता मध्यनाड्योभयं तथा ।

पृष्ठनाडीव्यधे कन्या म्रियते नात्र संशयः ॥ ८ ॥

अर्थ-प्रथम नाडीमें वेध होनेसे विवाहित पुरुषकी मृत्यु होती है । मध्यम नाडीमें वेध होनेसे स्त्री और पुरुष दोनोंकीही मृत्यु होती है और पृष्ठ ( अन्त्य ) नाडीमें वेध होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होती है ॥ ८ ॥

एकराश्यादियोगे तु नाडीदोषो न विद्यते ।

अन्यत्र तु विचार्यैषा स्वभावाच्छोभनाश्च ते ॥ ९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-स्त्रीपुरुषके एकराश्यादि योग होनेसे पूर्वोक्त नाडीका दोष नहीं होता है, जिस स्थानमें एकराश्यादि योग नहीं उसकाही नाडीवेधमें दोष होता है ॥ ९ ॥

समसप्तमादिफलम् ।

एकराशौ च दम्पत्योः शुभं स्यात्सप्तमसप्तके । ( ठ )

( ठ ) समग्रहणादिपसप्तके दोषः ।

चतुर्थ दशमे चैव तृतीयैकादशे तथा ॥ ११० ॥ ( ६ )

अर्थ—नाडी गिननेमें स्त्रीपुरुषकी एकराशि ( १ ) होनेसे शुभ होता है, और वरकी राशिसे कन्याकी राशि वा कन्याकी राशिसे वरकी राशि यदि सम सातमें अर्थात् समराशि होकर सातवें हो तब शुभप्रद होती है, दोनोंकी राशि परस्पर गिननेमें यदि चतुर्थ, दशम, तृतीय अथवा एकादश हो, तौमी शुभ होता है. इस वचनमें समसप्तक लिखा है विपमसप्तक होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ११० ॥

विपमसप्तमादिफलम् ।

योटकै सप्तके मेपे तुले युग्महयौ तथा ।

सिंहघटौ सदा वज्या मृति तत्रात्रवीच्छिवः ॥ १११ ॥

अर्थ—मेप, तुला, मिथुन, धन, सिंह अथवा कुम्भ इन्हीं छः को विपमराशि कहते हैं, योटक ( नाडी ) गिननेमें विपमराशि सप्तम होनेसे मृत्यु होती है, अतएव विपमसप्तमको अवश्यही त्याग करना चाहिये इसप्रकार शिवजीने कहा है ॥ १११ ॥

राजमार्त्तण्डे ।

न राजयोगे ग्रहधरिता च न ताराशुद्धिर्न गणत्रयं स्यात् ।

न नाडिदोषो न च वर्णदुष्टिर्गार्गादयस्ते मुनयो वदन्ति ॥ ११२ ॥

इति राजयोत्कप्रशंसा ।

अर्थ—राजयोग होनेसे ग्रहशुद्धि, ताराशुद्धि, गणशुद्धि, नाडीदोष अथवा वर्णदोष इनका कुछभी विचार नहीं होता है ॥ ११२ ॥

अरिपडष्टकम् ।

मकरः कारिकुलरिपुणा कन्या मेपेण सह झपस्तुलया ।

कर्किकटौ वृषपधनुषी बुध्रिकमिथुनौ चारिविधौ ॥ ११३ ॥

अर्थ—मकर, सिंह, कन्या, मेप, मिथुन, तुला, कर्क, कुम्भ, वृष और धन इन्हींको राशिके पडष्टक अरिपडष्टक कहते हैं ॥ ११३ ॥

( ८ ) योटकशुद्धिमाह—एकराशिविति । दम्पत्योरेकराशौ सति शुभम् । अत्र च नक्षत्रेक्षेऽतीव शुभम् । यथा “ नक्षत्रमेक यदि भिन्नराशिर्न दम्पती तत्र सुखं लभेताम् । अभिन्नराशिर्यादि चैकमुक्ष कार्या विवाहो बहुसाध्यदाता ॥ ” एवञ्च समसप्तके तृतीयैकादशे दशमचतुर्थे राशौ शुभमित्यर्थः । एतदन्यत्र द्विद्वादशे पटष्टके नक्षत्रेक्षे चाशुभमिति तात्पर्यम् ।

( १ ) वर कन्याकी एकराशि, समसप्तक दोनोंकी राशि परस्पर गिननेमें धन, दशम, तृतीय और एकादश इन्हीं सातोंको ‘ राजयोत्क ’ कहने हैं—इति ।

अथ मित्रपडष्टकम् ।

मकरसमेतं मिथुनं कन्याकलशौ मृगेन्द्रमनौ च ।

वृषभतुलेऽलिमेपौ कर्कटधनुषी च मित्रविधौ ॥ १४ ॥

अर्थ-मकर, मिथुन, कन्या, कुम्भ, सिंह, मीन, वृष, तुला, वृश्चिक, मेष और कर्क धन इन पडष्टकका नाम मित्रपडष्टक है ॥ १४ ॥

यदि कन्याष्टमे भर्ता भर्तुः पष्टे च कन्यका ।

पडष्टकं विजानीयाद्भर्जितं त्रिदशैरपि ॥ १५ ॥

अर्थ-यदि कन्याके अष्टमस्थानमें बरकी राशि और बरके पष्ट स्थानमें कन्याकी राशि हो तब यह पडष्टक अत्यंत गर्हणीय (दूषणीय) होता है अर्थात् देवतागणभी इस पडष्टकको परित्याग करदेते हैं ॥ १५ ॥

मित्रादियोगेऽपि पडष्टकादौ ताराविपत्प्रत्यारिनेधनाख्याः ।

वर्ज्या विवाहे पुरुषोद्धतो हि प्रीतिः परा जन्मसु तारकासु ॥ १६ ॥

अर्थ-पडष्टकयोगमें यदि बर और कन्याकी राशिके अधिपति ( स्वामी ) के बीचमें परस्पर मित्रता हो तौभी बरके नक्षत्रसे गिननेमें कन्याका जन्मनक्षत्र यदि विपत्, प्रत्यारि वा बधतारा होय तब विवाह नहीं होसकता है, किन्तु जन्मतारा होनेसे वह विवाह अत्यन्त प्रीतिदायक होता है ॥ १६ ॥

अथ पडष्टकादिफलम् ।

मरणं नाडीयोगे कलहः पट्टकाष्टके विपत्तिर्वा ।

अनपत्यता त्रिकोणे द्विद्वादशे च दारिद्र्यम् ॥ १७ ॥

अर्थ-बर और कन्याकी नाडीवेध होनेसे मृत्यु होती है, पडष्टकमें सर्वदा कलह होता है, नवपञ्चकमें अनपत्यता दोष होता है और द्विद्वादशमें दरिद्रता होती है ॥ १७ ॥

नवपञ्चकादौ विशेषफलम् ।

पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या

धर्मं स्थिता सुतवती पतिवृद्धभा च ।

पुंसो गृहाद्धनगृहे धनहा च कन्या

रिःफे स्थिता धनवती पतिवृद्धभा च ॥ १८ ॥ ( ढ )

अर्थ-यदि बरकी राशिसे कन्याकी राशि पञ्चम हो तो उस कन्याके मृत पुत्र ( ढ ) नवपञ्चमद्विद्वादशपौरपमादमाह-पुस इति । सुगमम् । पट्टकाष्टकेऽपि विशेषमाहुः केचित् । “ पुरुषस्याष्टमे भागे कन्या तिष्ठति वै यदा । कन्यायाः पट्टसु स्थानेषु न दोषो वै प्रजायते । यदि कन्याष्टमे भर्ता भर्तुः पष्टे च कन्यका ” इत्यादि । इति ।

होता है, और वरकी राशिमें कन्याकी राशि नवम हो तो पुत्रवती पतिप्रिया होती है द्वादश गिननमें पुरुषकी राशिसे कन्याकी राशि द्वितीय होनेसे वह कन्या धनराशिनी होती है और वरकी राशिमें कन्याकी राशि द्वादश होनेसे वह विवाहिता कन्या धनवती और पतिके अत्यन्त प्यारी होती है ॥ १८ ॥

अथ वर्णकथनम् ।

कार्किमीनालयो विप्राः क्षत्राः सिंहतुलाहयाः ।

वैश्या युग्माजकुम्भार्याः शूद्रा वृषमृगाङ्गनाः ॥ १९ ॥

अर्थ—अथ राशिगणके वर्ण कहे जात हैं—यथा—कर्क, मीन और वृश्चिक राशिका ब्राह्मणवर्ण है, सिंह, तुला, और धन राशिका क्षत्रियवर्ण है, मिथुन, मेष और कुम्भ राशिका वैश्यवर्ण है और वृष मकर और कन्या राशिका शूद्रवर्ण है ॥ १९ ॥

अथ वर्णफलम् ।

वर्णश्रेष्ठा च या नारी वर्णहीनश्च यः पुमान् ।

तयोर्विवाहे मृत्युः स्यात्पणमासान्नात्र संशयः ॥ १२० ॥

अर्थ—यदि वरके वर्णसे कन्याका वर्ण श्रेष्ठ हो और वरका वर्ण हीन होय तब उस वर कन्याके विवाह होनेमें विवाहकालसे छः महीनेके बीचमें दोनोंकी मृत्यु होती है इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ १२० ॥

अथ चोटेकापवादः ।

एकराश्यादियोगे तु नाडीदोषो न विद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ—वर और कन्याकी एक राशि होनेसे नाडीविधका दोष नहीं होता है ॥२१॥

नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराशिर्नदम्पती तत्र सुखं लभेताम् ।

विभिन्नमृक्षं यदि चैकराशिस्तदा विवाहः सुतसौरुष्यदायी ॥२२॥

अर्थ—वर और कन्याके यदि एक नक्षत्र होकर भिन्न २ राशि होय तब उस विवाहमें वर और कन्याको कभी सुख नहीं होता है और भिन्न २ नक्षत्र होकर यदि दोनोंकी एक राशि हो तो वह विवाह पुत्र और सुखके देनेवाला होता है ॥२२॥

अन्यथा ।

एकक्षा तु यदा कन्या राशयेका च यदा भवेत् ।

धनपुत्रवती नारी भर्ता च चिरजीवकः ॥ २३ ॥

अर्थ—यचनान्तरमें लिखा है कि, वर और कन्याका एक नक्षत्र होकर यदि

एकही राशि होय तो वह कन्या धनशालिनी और पुत्रवती होती है और उसका पति दीर्घजीवी होता है ॥ २३ ॥

सुहृदेकाधिपे योगे तारावले वश्यराशौ वा ।

अपि नाड्यादिविरोधे भवति विवाहो द्वितार्थाय ॥ २४ ॥

अर्थ-वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी यदि परस्पर मित्रता हो वा अन्य-तर्गके नक्षत्र गिननेमें ताराशुद्ध हो अथवा अन्यतर्ग राशिके वश्यता ( \* ) हो तब नाडीवेधादि होनेसेभी विवाहमें दोष नहीं होता है ओर उस विवाहमें शुभ फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अपरञ्च ।

सौहृद्ये ह्युभयोर्द्वयोरेपि तयोरकाधिपत्येऽपि च

तारापष्टसुमित्रमित्रभवने क्षेमाख्यसम्पद्यदि ।

पट्कापे नवपञ्चके व्ययवने योगेऽपि पुंयोपितोः

प्रीत्यायुःसुखवृद्धिपुष्टिजनकः कार्यो विवाहस्तदा ॥ २५ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें ऊहाहि कि, वर और कन्याकी राशिके स्वामीकी परस्पर यदि मित्रता हो वा दोनोंकी राशिका स्वामी एक ग्रह होय अथवा अन्यतर नक्षत्र गिननेमें यदि पष्ट ( साधक ) सुमित्र मित्र क्षेम सम्पत् हो तब पडपट्क, नवपञ्चक और द्विद्वादशादि योगमें भी विवाह होसक्ता है, अधिकतर वह विवाह प्रायः आयु सुखकी वृद्धि करना है और पुष्टिजनक होता है ॥ २५ ॥

द्विद्वादशादौ विशेषमाह ।

एकाधिपत्यं भवनेशमैत्रं वश्यं यदि स्यादुभयोडुशुद्धौ ।

द्विद्वादशे वा नवपञ्चके वा कार्यो विवाहो न पडपट्के तु ॥ २६ ॥ (ण)

अर्थ-द्विद्वादशादि योगमें जो विशेष है उन उन्को कहते हैं । यदि वर और

( \* ) “अश्वेभानफणिद्वयश्च वृषसुद्धमेपोन्दुरी मूपिश्चागुर्गोः क्रमशस्ततोपि महिषी व्याघ्रः पुनः सीगनी । व्याघ्रिणी मृगशुक्रुर्गो कपिरथोग्रद्वय वानरः सिंहोऽश्वो मृगराट् पशुश्च क्रुटी पौनिश्च मानाभियम् ॥ गोव्याघ्र गजसिंहमश्वमहिष श्येणश्च वभ्रग वेरं वानरभेपट्श्च मुमहत्तद्विहालान्दुग्म् । लोकानां व्ययहागतोऽन्यदापि च ज्ञात्वा प्रयत्ना-दिद् दम्पर्योर्त्पुनृत्ययोगपि सदा वश्यं जन्मभारिभिः ॥ ” इति रत्नमालायाम् ।

( ण ) द्विद्वादशान्नपञ्चकयोगप्रादान्तर्गमाह-एकाधिपत्यमिति । उभयो राशयोरेको-धिपतिर्यदि स्यात्तदा द्विद्वादशं नपञ्चके च न दोष इति । तथा उभयो गन्धधिपयो-



कन्याकी राशिका स्वामी एक ग्रह हो उनकी परस्पर मित्रता हो अथवा दोनों राशिके बीचमें एक राशि अन्यके वशमें हो वा एकके नक्षत्रसे गिननेमें दूसरेका नक्षत्र शुद्ध होय तो द्विद्वादश वा नवपञ्चक होनेसेभी विवाह होसक्ता है । किन्तु षडष्टकमें विवाह निषिद्ध है ॥ २६ ॥

अथ भ्रमप्रमादोत्पन्नषडष्टकादिप्रतीकारः ।

षडष्टके गोमिथुनं प्रदेयं कांस्यं सरूप्यं नवपञ्चके तु ।

द्विद्वादशाख्ये कनकात्रताम्रं विप्रार्चनं हेम च नाडिदोषे ॥२७॥(त)

अर्थ—भ्रमसे वा प्रमादके वशसे यदि कदाचित् षडष्टकादियोगमें विवाह हवै, तब उस दोषके ज्ञान्तिके अर्थ दान करनेना चाहिये. षडष्टकमें विवाह होनेसे दो गौवै बछड़ों करके युक्त दानकरै, इसी प्रकार नवपञ्चकमें सरूप्य कास्यपात्र और द्विद्वादशमें सुवर्ण तण्डुल और ताम्र दान करनेसे दोषकी शान्ति होती है । षडष्टकमें विप्रार्चन और सुवर्ण दान करनेसे दोषकी शान्ति होती है ॥ २७ ॥

मित्रत्व वा स्यात् यदि वा—उभयो राशयोऽभिन्न स्यात्तथापि विवाह कार्यइत्यर्थः। एतच्च उभयोद्दशद्वारेण कार्यं नान्यथा । उभयोद्दशद्वारे अन्योन्यन्तसम्पदादिताराशुद्धारित्यर्थः । यथा राजमार्त्तण्डे “ सीहधे ह्युभयोर्भवेद्यादि तयोरेकाभिपत्येऽपि वा ताराभिन्नसमिजन्मशुभदा क्षेमा च सम्पत्कारा । षष्ठाष्टे नवपञ्चमे व्ययधने योगेऽपि पुयोपितोः प्रीत्यायु सुतवित्तशुद्धिजनक कार्या विवाहस्तदा । मैत्रादियोगेऽपि षट्षकादी ताराभिपत्त्यरिनेवनारयाः । कार्या विवाहादियु र्जातता तु प्रीतिः परा जन्मसु तारकासु ॥ ” एतेनोभयोद्दशद्वारेणान्योन्यादीनक्षत्रशुद्धाविति केनचिद्द्वारयात तदशुद्धम् । अन्यथा नाटीयोगस्य सप्त एव निषिद्धत्वेनोभयोद्दशद्वारित्यनर्थकं स्यात् इति । न षडष्टके त्विति षट्षष्टे तु एवमेकाधिपत्यादिनिचागे न कार्यं । तस्य सर्वदा निषिद्धत्वादिति । अत्र च राजमार्त्तण्डादी षट्षष्टेऽपि एकाधिपत्यादी विवाहो वक्षितः । यथा सीहधेत्यादित्रयत्रय प्रसिद्धिस्तस्मात्ते । तथा बृहद्दशहस्तण्डरास्य “ षट्षष्टकेऽपि भवनाधिपमित्रभावेनैकाधिपत्यमवलोक्य च वशराशिम् । कार्या विवाहसमयः शुभकृत्रराणा तारा भवेद्यादि परम्परतो निशुद्ध ” ॥ तथा राजमार्त्तण्डे—एकाधिपत्यादिगङ्गीनाह—“ मङ्गलमेव मिथुन कन्यारत्नी मृगेन्द्रमीनौ च । वृषभवद्वानजरीदी कर्कश्वनयो मित्रविवी ॥ ” तथा त्रैत्र्याभिगङ्गीनाह—“ मकर करिकुलशिपुणा योपा भेषेण मह झपन्मुलया । षट्षष्टेऽपि वृषभनुषी वृश्चिकमिथुनौ चारिभिर्भौ ” ॥ एतच्च मतद्वयभिरेषे युक्ति कल्प्यते षट्षष्टस्य दोषद्वय कलहो विन तश्चेति तत्र चैकाधिपत्यादी विपत्तिदोषामात्रेण कलहमात्रस्यापदोपत्त्याद्राजमार्त्तण्डादी विवाहो दाशतः इति ग्रन्थवृत्तापि कलहस्य दोषत्वादिनिषिद्धाविति न विरोधः ।

(त) तदाधिपत्प्रमादेन षट्षष्टादी विवाहं सति प्रतीकारमाह—षट्षष्टइति । गोमिथुन रोगीकरिणवर्णित्यर्थः ।

अथ कन्यायाः प्रहादिशुद्धिकथनम् ।

**ग्रहशुद्धिमब्दशुद्धिं शुद्धिं मासायनर्तुदिवसानाम् ।**

**अर्वाग्दशवर्षेभ्यो मुनयः कथयन्ति कन्यकानाम् ॥ २८ ॥**

अर्थ—विवाहमें कन्याके प्रहादिशुद्धि कहते हैं । दशवर्षकी आयुके मध्यमें कन्याका विवाह होनेमें ग्रहोंकी गोचरशुद्धि, अब्दशुद्धि ( युग्मायुग्मवर्षका विचार ) मासशुद्धि, अयनशुद्धि, ऋतुशुद्धि, और दिवस ( वार ) शुद्धि देखना चाहिये-मुनिगणने कन्याके विवाहसम्बन्धमें इस प्रकार कहाहै ॥ २८ ॥

**अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत् ।**

**तस्माद्गर्भान्वितो युग्मे विवाहे सा पतिव्रता ॥ २९ ॥**

अर्थ—कन्याके अयुग्मवर्षमें विवाह होनेसे दुर्भगा होतीहै और युग्मवर्षमें विवाह होनेसे विधवा होती है, अतएव गर्भान्वित ( \* ) युग्मवर्ष गिनकर उसमें विवाह करना चाहिये, इसी प्रकार गर्भान्वित युग्मवर्षमें विवाह होनेसे वह कन्या पतिव्रता होती है ॥ २९ ॥

**मासत्रयादूर्द्धमयुग्मवर्षे युग्मेऽपि मासत्रयमेव यावत् ।**

**विवाहशुद्धिं प्रवदन्ति सर्वे वात्स्यादयो ज्योतिषि जन्ममासात् ॥ १३० ॥**

अर्थ—वात्स्यप्रभृति ज्योतिर्विद् पण्डितोंने कहाहैकि, अयुग्मवर्षमें तीन मासके अनन्तर ( बाद ) और युग्मवर्षमें तीन मासके अन्तर्गत विवाहमें काल शुद्ध होताहै ॥ १३० ॥

**प्रसूत्याधानतः शुद्धिर्विषमेषु सप्तै क्रमात् ।**

**विवाहे योपितां चन्द्राकैज्यशुद्धिर्नृयोपितोः ॥ ३१ ॥**

अर्थ—कन्याके विवाहमें प्रसूतिके गर्भग्रहणसे विषम ( अयुग्म ) वर्षमें विचारना चाहिये और सम ( युग्म ) वर्षमें जन्मसेही विचार करना चाहिये । सूर्य-चन्द्र, और बृहस्पति शुद्धि यह स्त्री और पुरुष दोनोंकेही देखना चाहिये ॥३१॥

**सभर्तृकक्रियारम्भे भर्तुर्गोचरशुद्धितः ।**

**यात्रोद्वाहे गर्भकृत्ये स्वशुद्ध्याप्नोति तत्फलम् ॥ ३२ ॥**

अर्थ—स्त्रियोंको पतिके साथ जो कर्म करना चाहिये उसमें पतिकी गोचर-शुद्धिका विचारकरें, किन्तु यात्रा, विवाह और गर्भकृत्यमें स्त्रियोंकीही गोचरशुद्धि होनेसेही उसमें शुभफल होताहै ॥ ३२ ॥

( \* ) जन्मसमयके पूर्वके नौमास ग्रहण रग्नेकोही गर्भान्वित कहते हैं ।

प्रारभ्य जन्मसमयाद्युवतोर्विवाहं  
 ओजेऽब्दकेषु मुनयः शुभमादिशन्ति ।  
 आधानतः प्रभृतितः समवत्सरेषु  
 प्रोक्तस्तयोर्न शुभदस्तु विलोमवर्षे ॥ ३३ ॥

अर्थ—अयुग्मवर्षमें जन्मसमयसे वर्षको गिनने, युग्मवर्षमें आधान (गर्भग्रहण) से वर्षको गिनना चाहिये । अयुग्मवर्षमें गर्भग्रहणसे गिनना और युग्मवर्षमें जन्मसे गिनना अशुभ है, विवाह विषयमें मुनिगणने इसी प्रकार कहाहै ॥ ३३ ॥

युग्माब्दकेषु युवतेरपि जन्ममासा-  
 न्मासत्रयं विवहने परमब्दशुद्धिम् ।  
 प्राहुः समस्तमुनयो विषमे तु वर्षे  
 मासत्रयादुपरितः खलु जन्ममासात् ॥ ३४ ॥

अर्थ—कन्याके विवाहमें जन्ममाससे गिननेमें युग्म वर्षके तीन मासके मध्यमें वर्ष शुद्धि होतीहै और अयुग्मवर्षमें तीन मासके अनन्तर ( बाट ) वर्षशुद्धि होती है, समस्त मुनिगणने इसी प्रकार कहाहै ॥ ३४ ॥

अथ विवाहे अयनादिशुद्धिः ।

आश्वलायनः ।

उदगयने आपूर्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे चूडोपनयन-  
 गोदानाविवाहाः, विवाहः सार्वकालिक इत्येके ॥ ३५ ॥

अर्थ—आश्वलायनने कहाहै कि, उदगयणमें, शुक्लपक्षमें और शुभ नक्षत्रमें चूडाकर्म उपनयन, गोदान और विवाह होताहै और किमी २ विद्वानने कहाहै कि, विवाह सब कालमेंही होसकते ॥ ३५ ॥

हरौ प्रसुते नच दक्षिणायने तिथौ च रिक्ते शशिन क्षयं गते ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीहर्षकी अयनावस्थामें, दक्षिणायनमें, रिक्तातिथिमें और जमावान्चामें विवाह निषिद्ध है ॥ ३६ ॥

राज्यस्ते तथा युद्धे पितृणां प्राणसंशयं ।

अतिप्रौढा च या कन्या नानुकूलं प्रतीक्षते ॥ ३७ ॥

अर्थ—राजासे अमित होनेमें वा युद्धमें यदि पिताके प्राणोंका संशय होव तब

प्रौढा ( यौवनवती ) कन्याके प्रहगोचरशुद्धि वा जग्दादि शुद्धिको न विचारकर उसका विवाह करदेना चाहिये ॥ ३७ ॥

**अतिप्रौढा च या कन्या कुलधर्मविरोधिनी ।**

**अविशुद्धापि सा देया चन्द्रलग्नवलेन तु ॥ ३८ ॥**

अर्थ—अतिप्रौढा कन्या अविवाहिता रहनेसे कुलधर्मका नाश होताहे, अतएव कालादिशुद्धि न होनेसेभी चन्द्रबल ( चन्द्रशुद्धि ) और शुभ लग्न देखकर विवाह कर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

**कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न विद्यते ॥ ३९ ॥**

इति दशमोऽर्षात्परम् ।

अर्थ—विवाहका समय व्यतीत होनेसे जो कालदोष ग्राह्य नहीं होता ह उसको दशवर्षके बाद जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

**मलमासादिकालानां विवाहादौ प्रयत्नतः ।**

**पुंसः प्रति सदा दोषात्सर्वदैवाहि वर्ज्यता ॥ १४० ॥**

अर्थ—विवाहादि शुभकर्ममें मलमाम ( अधिकमास लौघमाम ) का निषेध हे अतएव सर्वदाही उसका परित्याग करना चाहिये ॥ १४० ॥

अथ कालाशुद्धिकथनम् ।

**गुर्वादित्ये गुरो सिंहे नष्टे शुक्रं मलिग्लुचे ।**

**याम्यायने हरो सुते सर्वकर्मणि वर्जयेत् ॥ ४१ ॥ ( थ )**

अर्थ—अथ अशुद्ध (निन्दनीय-वर्जित) कालको कीर्त्तन करते हैं—वृहस्पति और सूर्य यदि एकनक्षत्रगत होकर एकराशिमें स्थित होय अथवा भिन्न २ नक्षत्रमें रहकर ओग एकराशिमें स्थित होवे तो गुर्वादित्ययोग होताह, उक्तयोगम बृह-

( थ ) सर्वकर्मणि कालाशुद्धिमाह-गुर्वादि । गुर्वादित्यम् द्विप्रकारे भवति । गुरो जीवाभेऽकराशिनौ एतन्नक्षत्रगतौ च एतन्नक्षत्रगतत्वाच्च भिन्नराशिगतत्वे सतीति बोद्धव्यम् । तथा च काश्यप “ ऋतुमन्दिनगतौ यदि जीवभानू ग्रहोपग मुरपरेऽगुरुश्चामहे । नारभ्यते व्रतविनाहृद्गृहप्रतिष्ठा क्षौरादिकर्म गमनागमनञ्च धीरे ॥ ” नागभ्येते इत्यनेनारब्धप्रतन्तु पूर्वसङ्कल्पितप्रत वृत्तव्यभिनि तात्पर्यम् । तत्र सर्वकर्मणोऽत्यत्र कर्मशब्द काम्यकर्मपर देवार्चनन्तु नित्यकर्म वृत्तव्यमेव एव सर्वत्र । तथा सिंहागशिम्बे गुरो सर्वकर्मणि वर्जयेत् । तथा राजमार्त्तण्डे- यात्रा बृडा विनाश अतिपरिषिध याग रात्रप्रेतशो प्रासादोद्यानहर्म्यामरनरम्भनारम्भविद्याप्रदानम् । मौञ्जीधन्य प्रतिष्ठा मणि-रत्नकनकाधारण कुर्वते ये मृत्युस्नेहा हर्षात्ते गुरुदिनकरयोरेकरागिस्थयोश्च” । अत्र च सिंहास्थवृहस्पतौ विवाहे विशेषमाह । राजमार्त्तण्डे- गुरोहर्षिभ्ये न पिनाहमाहुर्गौतम गैप्रमुखा ” इत्यादि । तथा ‘ मषाऋतु परित्यज्य यदा सिंहे गुरुभवेत् । पिनाहमत्र वृत्तव्यो मुनिभि परिशीर्त्तनः” । अत्र च वक्रातिचारेण गम्यन्तगमने सिंहास्थवृहस्पति

स्पति सिंहराशिमं होनेसे शुक्रास्तमें सायंकालमें अस्त वा उदय होनेमें मलमासमें दक्षिणायनमें और हरिजयनमें समस्तकार्योंको परित्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

वापीकूपतडागयागगमनं क्षौरप्रतिष्ठा व्रतं  
विद्यामंदिरकर्णवेधनमहादानं वनं सेवनम् ।

तीर्थस्नानविवाहदेवभवनं मन्त्रादिदेवैक्षणं

दूरेणैव निजीविपुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे ॥ ४२ ॥

अर्थ—वापी ( जलाशयविशेष बाउली ) कूप ( कुँवा ) तडाग ( तालाब )  
इति कृत्यचिन्तामणौ ।

दोषो नास्ति किन्ताहं वक्रातिचागेक्तदोषमात्रभेदेत्यर्थः । तथा नष्टे शुके सर्वकाम्य-  
कर्माणि वर्जयेत् । विक्रागपत्तिनष्टत्वं तच्चतुर्द्धा भवति वृद्धत्वसन्ध्यागतत्वास्तत्त्वबालत्व-  
भेदेन । अत्रच अन्तात्पूर्वं वृद्धत्व सन्ध्यागतत्वं च अस्तात्परतो बालकत्वं तथा राज-  
मात्तण्डे—“भवेत्सन्ध्यागत पश्चादस्तमेति दिनत्रयम् । दिनानि पञ्च पूर्वेण सर्वकर्म विव-  
र्जयेत् ॥ बालो दिनचतुष्कं स्याद्बृद्धः पश्चाद्दशमुच्यते । ज्येष्ठ सन्ध्यागतः शुक्रादिधाप्येनं  
विवर्जयेत् । बाले भृगो परिणीता युवतिस्साध्या भवेद्वश्यमित्थम् । वृद्धे तस्मिन्वृद्ध्या  
सन्ध्यास्ते मृत्युमाप्नोति” । मलिन्मुच इति । मलमासे सर्वकाम्य कर्माणि वर्जयेत् । मल-  
मासकारणमुक्त्वा यथा—“दिवसस्य हरत्यर्कपट्टिभागमृत्तो ततः । करोत्येक महच्छेदं तथे-  
वेकश्च चन्द्रमाः । एवमर्द्धवृत्तीपानामब्दानामधिमासकम् । ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पश्चा-  
द्वान्ते तु पञ्चमम् ” इति । अत्र च शुक्रप्रतिपदादि वर्षान्ते चान्द्रमासे यदि रविस्त-  
श्चागे न स्यात्तदा स मासो मलिन्मुचः स्यात् । तथा च “ अमावस्यापरिनिष्ठत्र रविस्त-  
कान्ति वर्जयेत् । मलमास निजानीयाद्वाहिनं सर्वकर्मसु ” ॥ तथा “ रविणा लपितो मास-  
श्चान्द्रः स्यातो मलिन्मुचः । तत्र यदिहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत् ” तथा “ पञ्च-  
दशेऽपि स्रकातियेदि न स्यात्सितेसिते । तदा तन्मासविहितमुत्तरे मासि कारयेत् ” ।  
तथाच “ अग्न्याधेय प्रतिष्ठाश्च यज्ञदानव्रतानि च । देवव्रतगुणोत्सर्गब्रुडाकरणभेदालः ।  
माद्रल्यमभिषेकश्च मलमासे विवर्जयेत् ” । तथा “ वापीकूपतडागानि प्रतिष्ठा यज्ञकर्म  
च । न वृषान्मलमासेऽपि महादानव्रतानि च । ” अत्र कर्मपिडोपम्य कर्त्तव्यतामाह  
हागीत “ गर्भे वाद्भृषिकृते च मृताना पिण्डकर्मसु । सपिण्डीकरणं चैव नाधिमास विदु-  
वुधाः ” । तथा बृहस्पतिः । “ नित्यनेमित्तिके कुर्यात्प्रयतः सन्मलिन्मुचे । तीर्थस्नानं  
गजचूषायां प्रेतश्चाद् तथैव च ” । नित्यम् अहरहः कर्त्तव्यं नित्यश्चाद्ब्रह्मोभयानादि ।  
नेमित्तिकं पुत्रजन्मनिमित्तञ्चाद्ब्रह्मित्यर्थः । गजचूषाया चन्द्रसूर्यग्रहण “ हस्तीसूत्या  
श्रभान्तुः ग्रसते ” इति श्रुतेः । साम्यायने दक्षिणायने आपादे तु हरिजयनमभ्यासं हर्षे  
मुनश्चि पुनरुक्तः । अत्र च गुणोदित्यादिजालाशुद्धौ आरब्धपद्मपञ्चम्यादिव्रतत्वं कर्त्तव्य-  
मेव पिडोपमिर्भियव्यति यथा गम्मावनीयादिव्रते शिग्रहस्ये “ मासे मलिन्मुचेऽप्येव  
यजेद्देवां सशङ्कम् । किन्तु नोद्यापनं यार्थमित्याह भगवान्शिवः । एतच्च यत्र यत्र  
पिडिम्नत्र विधीयस्यंभयात्तत्तरजम् कर्त्तव्यमेव यथा साम्यायने अनन्तव्रतादि तथा  
श्रापणे मामि गृहगन्ध इत्यादि-इति ॥

यज्ञ, गमन, चूडाकर्म, प्रतिष्ठा, उपनयन, विद्यारम्भ, गृहारम्भ, कर्णवेध, महादान, वनसेवन, अनावृत्त, तीर्थस्नान, विवाह, देवभवनारम्भ, मन्त्रादिग्रहण और अनावृत्त अनादिदेवतादर्शन इतने कार्य शुक्र अस्त होनेमें जीवनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य परित्याग करै अर्थात् शुक्रास्तादिके लिये अकाल होनेसे उक्त समस्त कार्य न करना चाहिये ॥ ४२ ॥

सर्वाणि शुभकर्माणि कुर्यादस्तं गते सिते ।

विवाहं मेखलाबन्धं यात्राञ्च परिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ ( \* )

इति बृहद्राजमार्तण्डे ।

अर्थ-बृहद्राजमार्तण्डमें लिखा है कि, सभी शुभकर्म शुक्रास्तमें करना चाहिये-परन्तु विवाह, उपनयन और यात्रादि ( \* ) को परित्याग करे ॥ ४३ ॥

बाले शुके वृद्धे शुके नष्टे शुके जीवे नष्टे ।

बाले जीवे वृद्धे जीवे सिंहादित्ये गुर्वादित्ये ॥ ४४ ॥

तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे ।

वापीकूपतडागादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ-शुक्रके बाल्य, ( उदय ) वार्द्धक्य और अस्तसमयमें, बृहस्पतिके अस्त बाल्य और वार्द्धक्यकालमें सिंहादित्यमें, गुर्वादित्यमें, मलमासमें और बृहस्पतिके अतिचारी होनेमें पूर्वोक्त वापी, कूप और तडागादि कर्मको परित्याग करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अतिचारगते जीवे वक्त्रे चैव बृहस्पतौ ।

कामिनी विधवा प्रोक्ता तस्मात्तो परिवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-बृहस्पतिके अतिचारी वा वक्त्री होनेमें यदि विवाह हो तब विवाहिता कन्या विधवा होती है, अतएव बृहस्पतिके अतिचारी या वक्त्री होनेमें विवाह निषिद्ध है ॥ ४६ ॥

अतिचारं गते जीवे वक्त्रे वास्तमुपागते ।

व्रतोद्वाहौ न कुर्यात् जायते मरणं ध्रुवम् ॥ ४७ ॥ ( दृ )

अर्थ-बृहस्पतिके अतिचारी होनेमें वक्त्री होजानेमें अथवा अस्तादि होनेमें

( \* ) यात्रां चेति चरारो रथनान्तर्गेक्त प्रातिरिचननिषिद्धमन्त्रि मशुच्चिनोति ।  
( • ) यात्रादि इत् आदिग्रहणमें अन्यान्यचर्तौक्त प्रातिरिचननिषिद्धमं जानना चाहिये ।

( दृ ) व्रतातिचारे दोषमाह-अतिचार इति । व्रतातिचारे गुरो व्रतोद्वाहौ न कुर्यात्

उपनयन ओर विवाहादिकार्यं न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य करे तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

अतिचारं गतो जीवःपूर्वभं नैव गच्छति ।

समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥

अर्थ—बृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करे वा समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होता है ॥ ४८ ॥

वाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।

उद्गाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्यने कहा है कि, शुक्रके बाल्य ( उदय ) बादिकय वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोंमेंसे एककी मृत्यु होती है ॥ ४९ ॥

प्रागुद्यतःशिशुरहस्रितयं सितः स्या-

त्पश्चाद्दशाहमिति पञ्चदिनानि वृद्धः ।

प्राक्पक्षमेव कथितोऽत्रिवसिष्ठगणै-

र्जावस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विवर्ज्यः ॥ १५० ॥

अथ—शुक्र पूर्व दिशामें उदित ( शिशु ) होनेसे तीन दिन अकाल होता है, इसी प्रकार पश्चिम दिशामें बालक ( उदित ) होनेसे दश दिन अकाल होता है

ब्रह्मसुपनयनम् । एतच्चोपलक्षणम् यथा गजमात्तण्डे—अतिचारं गते जीवे वर्जयेत्तद्वनन्तरम् । ब्रह्मोद्गाहाद्विद्युत्प्रायामप्रापिशतित्वामगन् । ” अप्रापिशतित्वदिनमात्रवर्जनन्तु राशिरशे-  
नात्पक्षेक्षणीयत्वादिति । अत्र च राभ्यन्तस्सञ्चारे सन्त्येव वक्रातिचारदेशो नाप्यवेति ।  
एव च वक्रातिचारगो गुरुयमिन् राशी याति तस्यैव फल ददानि । यथा—गजमात्तण्डे—  
‘ यगहमाण्ड्यपराशराद्या गर्गाद्दिगद्या मुनयो वदन्ति । वक्रातिचारे सुरराजमन्त्री  
यत्रागनन्त्र फल ददानि ” ॥ एव महातिचारे मत्सरेभव मङ्गल न वक्तव्यम् । तथाच  
‘ अनोचारं गतो जीवस्तत्रैव कुरुते स्थितम् । तथा महातिचारः स्यान्त्यतमत्स-  
रियः । ” तथा अस्त गते जीवे ब्रह्मोद्गाहा न कुर्यात् अत्राप्युपलक्षणं यथा गजमा-  
त्तण्डे— ‘ अस्त प्रयाते च भृगो गुणो वा सूर्ये निरशो हिमगो प्रनष्टे । न रूपसाप्पादिक-  
मन्दिगार्थं शुभं प्रविष्ट धनकान्तिनाशान् । अस्मिन्ने भृगुपुत्रे कन्या श्रियते बृहस्पते  
पुत्र्यः । उभयोरपि मरण म्यात्क्रेतो पाणिग्रहेऽभ्युदिने ” ॥ तथा अस्तगतत्वमुपलक्षणं  
सा यावाल इद्वत्त्वेऽपि शुभमर्म न कर्तव्यम् । यथा गजमानण्डे—‘ बाले वृद्धे च मन्धाशे  
चतुःपधाश्रितमगन् । जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ” इति ।

पश्चिम दिशामें अस्त ( वृद्ध ) होनेसे पाच दिन ( जापद्विपयम् ) अकाल होताहे और पूर्वदिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे और बृहस्पतिके बालक ( उदय ) वा वृद्ध ( अस्त ) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वेण दशाहं पञ्चमेन तु ।

प्रत्यग्बालो दशाहन्तु पूर्वेण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—शुक्र पूर्वदिशामें स्थित होकर वृद्ध ( अस्त ) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहे । पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशादिन अकाल होताहे पश्चिमदिशामें बालक होनेसे दशादिन अकाल होताहे और पूर्वदिशामें बालक ( उदय ) होनेसे तीनदिन अकाल होताहे ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तो ।

बाले वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान् ।

जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें अत्यन्त अशक्त विपयम् कहा हे कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पाचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्यको करे ॥ ५२ ॥

वने चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुप्ते

गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकरारिषा वाक्पता चैत्रपापे ।

विष्ट्यां केतुद्रमे वा शरादि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे

वर्षादाप्नोति प्रौढासुनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ—बृहस्पतिके वनी वा आनिचारी होनेसे हरिश्चयनम्, गुर्वादित्ययोगम्, अधिमासमें, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे चैत्रमासमें और पौषमासमें, विष्टिमद्रा-तिथिमें, शरत्कालम्, केतुद्रम होनेसे, आर बृहस्पति सिंहगशिम स्थित होनेमें यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उससे पतिकी मरत्मके मध्यमेंही मृत्यु होतीहे ॥ ५३ ॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पती ।

विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—वचनान्तरम् लिखाह कि, राहु और बृहस्पति यदि एकराशिम म्रिये होय तो विवाह व्रत और यज्ञादि कार्यको परित्याग कर ॥ ५४ ॥

( १ ) ' एकराशौ यदि स्यात्तमेव ऽपि यदि ।

गुर्वादित्ये तदा त्याग्या मज्जेद्वाहादिक्रिया ॥ ”



उपनयन ओर विवाहादिकार्यं न करना चाहिये, उक्त समयमें यदि कोई कार्य करे तो उसकी मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

**अतिचारं गतो जीवःपूर्वमं नैव गच्छति ।**

**समचारेऽपि कर्माणि नैव तत्रैव संस्थिते ॥ ४८ ॥**

अर्थ—वृहस्पति अतिचारी होकर यदि पूर्वराशिमें गमन न करे वा समाचार होकरभी यदि उसी राशिमें स्थित हो तब अकालजन्यकर्म निषिद्ध होता है ॥ ४८ ॥

**वाले वृद्धे तथैवास्ते कुरुते दैत्यमन्त्रिणि ।**

**उद्धाहितायां कन्यायां दम्पत्योरेकनाशनम् ॥ ४९ ॥**

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ—भैरवाचार्यने कहा है कि, शुक्रके बाल्य ( उदय ) वादिक्य वा अस्तजन्य अकालमें यदि विवाह हो तो दोनोंमेंसे एककी मृत्यु होती है ॥ ४९ ॥

**प्रागुद्यतःशिशुरहास्त्रितयं सितः स्या-**

**त्पश्चाद्दशाहमिति पञ्चदिनानि वृद्धः ।**

**प्राक्पक्षमेव कथितोऽत्रिवासिष्टगर्ग-**

**र्जावस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विषयः ॥ १२० ॥**

अर्थ—शुक्र पूर्व दिशामें उदित ( शिशु ) होनेसे तीन दिन अकाल होता है, इमी प्रकार पश्चिम दिशामें बालक ( उदित ) होनेसे दश दिन अकाल होता है

व्रतमुपनयनम् । एतच्चोपलक्षणम् यथा राजमातंण्डे—“अतिचारं गतो जीवो वर्जयेत्तदनन्तरम् । व्रतोद्वाहादेच्छायामप्रायश्चित्वासनम् ॥” अष्टाविंशतिदिनमात्रवर्जनन्तु कार्येवशेनानुपेक्षणीयत्वादिति । अत्र च रात्र्यन्तरसञ्चारे सत्त्वेव व्रजातिचारदोषो नान्यथेति । अत्र च व्रजातिचारगो गुरुर्यन्मिन् राशौ याति तस्यैव फल ददाति । यथा—राजमातंण्डे—“पराहमाण्डव्यपराशराद्या गगर्गाद्दिग्द्या मुनयो वदन्ति । व्रजातिचारे सुरराजमन्त्री यत्रागतस्तत्र फल ददाति ॥” एवं महातिचारं सप्तस्तरमेव मद्गल न कर्तव्यम् । तथाच “अतिचारं गतो जीवस्त्वेव कुरुते स्थितम् । तथा महातिचारः स्यान्वृत्तमवत्सङ्क्रियः ।” तथा अस्तं गतो जीवो व्रतोद्वाहो न कुर्यात् अत्राप्युपलक्षणं यथा राजमातंण्डे—“अस्तं प्रयाने च भृगो गुरो वा सूर्ये निरक्षो हिमगो प्रनष्टे । न रूपद्रव्यादिकमन्त्रिगर्भ्य शुभं प्रद्विष्ट धनकालिनाशात् । अस्तमिते भृगुपुत्रे कन्या त्रियने वृहस्पतेः शुभः । उभयोरपि मरणं स्यात्केतो पाणिग्रहेऽभ्युदिते ॥” तथा अस्तं गतत्त्वमुपलक्षणं सध्यावालवृहत्तेऽपि शुभं कर्म न कर्तव्यम् । यथा राजमातंण्डे—“वाले वृद्धे च सन्ध्याशे चतुःपञ्चात्रासगम् । जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥” इति ।

पश्चिम दिशामें अस्त ( वृद्ध ) होनेसे पांच दिन ( आपाद्विषयमें ) अकाल होताहै और पूर्वदिशामें वृद्ध होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै और बृहस्पतिके बालक ( उदय ) वा वृद्ध ( अस्त ) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै ॥ १५० ॥

पक्षं वृद्धस्तु पूर्वेण दशाहं पञ्चमेन तु ।

प्रत्यग्बालो दशाहन्तु पूर्वेण तु दिनत्रयम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—शुक्र पूर्वदिशामें स्थित होकर वृद्ध ( अस्त ) होनेसे पन्द्रह दिन अकाल होताहै । पश्चिमदिशामें वृद्ध होनेसे दशादिन अकाल होताहै पश्चिमदिशामें बालक होनेसे दशादिन अकाल होताहै और पूर्वदिशामें बालक ( उदय ) होनेसे तीनादिन अकाल होताहै ॥ ५१ ॥

अत्यन्ताशक्तौ ।

बाल वृद्धे च सन्ध्यांशे चतुःपञ्चत्रिवासरान् ।

जीवे च भार्गवे चैव विवाहादिषु वर्जयेत् ॥ ५२ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें अत्यन्त अशक्त विषयमें कहा है कि, बृहस्पति वा शुक्रके बालक होनेसे चार दिन, वृद्ध होनेसे पांचदिन और सन्ध्यागत होनेसे तीन दिन परित्याग करके विवाहादि शुभ कार्यको करे ॥ ५२ ॥

वक्रे चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ देवपूज्ये च सुते

गुर्वादित्येऽधिमासे दिवसकररिषां वाक्पतां चैत्रपौषे ।

विष्ट्यां केतूद्रमे वा शरादि सुरगुरौ सिंहसंस्थे मनोज्ञे

वर्षादाप्नोति प्रौढासुनियतमरणं देवकन्यापि भर्तुः ॥ ५३ ॥

अर्थ—बृहस्पतिके वक्रा वा आतिचारी होनेसे हरिश्चयनमें, गुर्वादित्ययोगमें, अधिमासमें, राहुके साथ बृहस्पति होनेसे, चैत्रमासमें और पौषमासमें, विष्टिभद्रा-तिथिमें, शरत्कालमें, केतूद्रम होनेसे, और बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होनेसे- यदि कन्याका विवाह होय तब वह देवकन्या होनेसेभी उसके पतिकी संवत्सरके मध्यमेंही मृत्यु होतीहै ॥ ५३ ॥

एकराशिस्थितौ स्यातां यदि राहुबृहस्पती ।

विवाहव्रतयज्ञादि तदा सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ५४ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें लिखाहै कि, राहु और बृहस्पति यदि एकराशिमें स्थित होय तो विवाह व्रत और यज्ञादि कार्यको परित्याग करे ॥ ५४ ॥

( १ ) “ एकराशी यदि स्यातामेकक्षेत्रे विषये यदि ।

गुर्वादित्यो तदा स्यान्त्या यज्ञोद्वाहादिक्रिया ॥ ”

वाले च दुर्भगा नारी वृद्धे नष्टप्रजा भवेत् ।

नष्टे च मृत्युमाप्नोति सर्वमेतद्गुरावपि ॥ ५५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें लिखाहै कि, शुक्र वा वृहस्पतिके उदयकालमें विवाहिता नारी दुर्भगा होती है, इसी प्रकार शुक्र वा वृहस्पतिके अस्तसमय विवाहिता नारी मृतवत्सा होतीहै और अस्तभावमें होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै ॥५५॥

सिंहगुरौ परिणीता पतिमात्मानमात्मजान्हन्ति ।

ऋषाक्षिषु पित्रादिषु वसिष्ठगर्गादयः प्राहुः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वसिष्ठ और गर्गादिमुनिगणने कहाहै कि, सिंहराशिमें स्थित वृहस्पति मघा नक्षत्रमें होनेसे विवाहिता कन्याके पतिका नाश होताहै, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें स्थित होनेसे विवाहिता कन्याकी मृत्यु होतीहै और यदि उत्तराफाल्गुनी-नक्षत्रमें वृहस्पति होय तब विवाहिता कन्याकी सन्तानकी मृत्यु होती है ॥५६॥

गुरौ हरिस्थे न विवाहमाहुर्दारीतगर्गप्रमुखा मुनिन्द्राः ।

यदा न माघी मघसंयुता स्यात्तदा तु कन्योद्धहनं वदन्ति ॥ ५७ ॥

अर्थ—वृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होनेसे विवाह निषिद्ध होताहै, दारीत गर्ग प्रभृति श्रेष्ठ मुनिगणने इसीप्रकार कहाहै, परन्तु उनके मध्यमें विशेष यही है कि, यदि मघानक्षत्र माघीपूर्णिमामें होय तब सिंहराशिमें स्थित गुरुजन्य अकाल होताहै और यदि माघी पूर्णिमाके दिन मघानक्षत्र न होय तो सिंहराशिमें स्थित वृहस्पति समानकालीन विवाहिता कन्याके शुभ होताहै ॥ ५७ ॥

अत्रैव माण्डव्यः ।

मघाऋक्षं परित्यज्य यदा सिंहे गुरुर्भवेत् ।

तत्राच्चे कन्यका चोढा सुभगा सुप्रिया भवेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—मघानक्षत्रभिन्न अन्य नक्षत्रमें स्थित होकर यदि सिंहराशिमें वृहस्पति होय तब उममें विवाहिता कन्या सुभगा होती है ॥ ५८ ॥

अतिचारं गते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः ।

यज्ञोद्वाहादिकं कुर्यात्तत्र कालो न लुप्यते ॥ ५९ ॥

इति हारीतः ।

अर्थ—हारीतने कहाहै कि, वृहस्पति अतिचारी होकर यदि वृष, वृश्चिक वा

कुम्भराशिमें गमनकरै तब उसमें अकाल नहीं होताहै, प्रत्युत यज्ञ और विवाहादि-  
सर्व कार्य करना चाहिये ॥ ५९ ॥

**अतिचारंगते जीवे वृषे वृश्चिककुम्भयोः ।**

**तत्र विवाहिता कन्या संप्रीणीयात्कुलद्वयम् ॥ १६० ॥**

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखा है कि, बृहस्पति अतिचारी होकर यदि  
वृष, वृश्चिक वा कुम्भराशिमें गमनकरै तब उसमें विवाहिता कन्या दोनों कुलोंको  
सुख देती है ॥ १६० ॥

**यदातिचारं सुरराजमन्त्री करोति गोमन्मथमनिसंस्थः ।**

**न याति चेद्यद्यपि पूर्वराशिं शुभाय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ६१ ॥**

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-भीमपराक्रममें वसिष्ठ मुनिने कहा है कि, बृहस्पति यदि अतिचारी  
होकर वृष, मिथुन वा मीनराशिमें स्थित होय और पूर्व राशि न गमन करै, तब  
उसमें विवाह शुभ होता है ॥ ६१ ॥

**अतिचारं गते जीवे स्थिरराशौ च संस्थिते ।**

**तत्र न लुप्यते कालो वदत्येवं पराशरः ॥ ६२ ॥**

अर्थ-पराशरने कहा है कि, बृहस्पति यदि अतिचारी होकर स्थिरराशिमें  
स्थित होय तो बृहस्पति अतिचारजन्य अकाल नहीं होता है ॥ ६२ ॥

**वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ ।**

**मकरस्थे तु तत्कार्यं न दोषः काललोपजः ॥ ६३ ॥**

अर्थ-बृहस्पतिक सिंहराशिमें होनेसे वापी, कूप और तडागप्रभृतिका बनवाना  
निषिद्ध है, किन्तु मकर राशिमें बृहस्पति स्थित होनेसे वापी, कूप और तडा-  
गादि सभी बनवाना चाहिये अर्थात् अकाल नहीं होता है ॥ ६३ ॥

**कन्यावृश्चिकमेपेपु मिथुने च झपे वृषे ।**

**अतिचारेऽपि कर्तव्यं विवाहादि बुधैः सदा ॥ ६४ ॥ (\*)**

अर्थ-कन्या, वृश्चिक, मेष, मिथुन, मीन और वृषराशिमें बृहस्पति अतिचारी

होकर गमन करनेसे अकाल नहीं होता है अर्थात् विवाहादि कर्म होसक्ता है इमी प्रकार पण्डितोंने कहा है ॥ ६४ ॥

त्रिकोणजायाधनलाभराशौ वक्रातिचारेण गुरुः प्रयातः ॥ यदा  
तदा प्राह शुभे विलम्बे हिताय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ॥ ६५ ॥ ( \* )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—बृहस्पति वक्रा वा अनिचारी होकर यदि कर्म करनेवालेके नवम, पञ्चम, सप्तम, द्वितीय वा एकादश राशिमें स्थित होय तो शुभलग्नमें विवाह होसक्ता है, और वह विवाह मङ्गलदायक होता है इस प्रकार वसिष्ठने कहा है ॥ ६५ ॥

मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पञ्चमांशकम् ।

शोषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः ॥ ६६ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, पहले मकर राशिमें स्थित होनेसे बृहस्पतिमें विवाहका निषेध कियाहै उसको पञ्चमांशमें जानना चाहिये. अन्य भागमें विवाह शुभदायक होताहै ॥ ६६ ॥

गण्डक्या उत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे ।

सिंहरस्थं मकरस्थञ्च गुरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ६७ ॥

अर्थ—गण्डकी नदीके उत्तरमें और हिमालयके दक्षिणमें स्थित जो देश है उनमेंही सिंहराशिमें और मकरराशिमें स्थित बृहस्पतिको यत्नसे परित्याग करे ॥ ६७ ॥

अथ प्रसङ्गादनादिदेवदर्शनादिनिषेधकथनम् ।

अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे ।

मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानमपि त्यजेत् ॥ ६८ ॥ ( घ )

इति भृगुकीशिकाव्यः ।

अर्थ—नष्ट शुक्रमें और मलमास( अधिमास )में अनावृत्त अनादि देवताओंका

( • ) वक्रानिचारे विवाहे विशेषमाह—त्रिकोणिति । जन्मराशेः सकाशात् नवमपञ्चमसप्तमादितीर्थैकादशराशौ वक्रातिचारेण यदि गुरुः प्रयातो गतः तदा शुभे लग्ने पाणिग्रहण हिनाय वसिष्ठः प्राह अन्यथा न कुर्यादित्यर्थः ।

( घ ) “ आवृत्ते तीर्थगमने प्रतिज्ञाति च कर्मणि । कालात्यये च कन्यायाः कालदोषो न विद्यते ॥ ” इत्यादिगः । शुचः शोकाः नष्टभार्गव इति अशुद्धकालमात्रोपलक्षणम् एवं मलमासेऽपि तथापि । शुचः शोकाः दुःस्वर्णाति यावत् । नष्टभार्गव इति अशुद्धकालान्तरीयलक्षणम् इदञ्च सकामपरं सुमुक्षणा अकालेऽप्यनादिदेवतादर्शनं कर्तुमर्हति शान्तिरुत्तरेति चिन्त्यम् । अनावृत्तत्वञ्च प्राथमिकत्वमिति ।

दर्शन करनेसे शोक प्राप्त होता है और मलमासादिरूप अधिमासमें अनावृत्त तीर्थमेंभी स्नान न करना चाहिये ॥ ६८ ॥

वाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तमुपागते ।

मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् ॥ ६९ ॥ ( न )

इति वृद्धमनुप्रभृतयः ।

अर्थ-मलमासमें जिस प्रकार अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन करना मने है तिसी प्रकार शुक्रके बाल्य ( उदय ) में, वृद्धिमें ( अस्नमें ) भी अनावृत्त अनादि देवताओंका दर्शन न करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अनादिदेवता ( \* ) चांसु कालदोषो न विद्यते ।

नित्यास्वभ्यासयोगेन तथैवैकादशीव्रते ॥ १७० ॥ ( प )

अर्थ-आवृत्त अनादि देवताके पूजनमें कालदोष नहीं होता है और जिस प्रतिमाकी नित्यपूजा होय उसमेंभी कालदोष नहीं होता है और एकादशीके व्रतमेंभी कालदोष नहीं होता है ॥ १७० ॥

गयायां प्रतिप्रसवमाह ।

गयायां सर्वकालं तु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

अधिमासे जन्मदिने अस्ते च गुरुशुक्रयोः ।

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ ७१ ॥

इति तीर्थचिन्तामणौ-वायुपुराणम् ।

अर्थ-गयाक्षेत्रमें पिण्डतगण सर्वदाही पिण्डदान करते हैं अधिमास (मलमास) में जन्मदिनमें, बृहस्पति और शुक्रके अस्तसमयमें वा बृहस्पतिके सिंहराशमें स्थित होनेसेभी गयाश्राद्धको परित्याग न करना चाहिये ॥ ७१ ॥

अथाकालवृष्टिकथनम् ।

चतुर्मासे निवृत्ते तु चक्रणौ समुत्थिते ।

( न ) यथा मलमासे अनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शन वर्जनीय तथा बालशुक्रादावप्यनावृत्तमेव अनादिदेवतादर्शन वर्जयेत् । न तु आवृत्तमापि । शुक्रास्त इति एतच्चोपलक्षणम् इति ॥

( \* ) अनादिदेवतात्वञ्च पुराणभारतादिप्रसिद्ध श्रीपुरुषोत्तमविश्वेश्वरप्रभृतित्व तेनानावृत्तादिदेवतादर्शन तीर्थस्नानञ्च शुक्रास्ने मलमासे च न्यजेत् इति।मलमासतत्त्वे स्मार्त्त-नोक्तम् ।

( प ) यासु अर्चासु नित्य पूजा क्रियते ताम्बित्यर्थः । अभ्यासोति प्रत्यह पूजयेदित्यर्थः ।

अकालवृष्टिं जानीयाद्यावन्न सुप्यते हरिः ॥ ७२ ॥ ( फ )

अर्थ—चतुर्मासके अन्तमें श्रीहरिके उत्थान ( उठने ) से शयनके पूर्वकालपर्यन्त जो समय है उसमें वृष्टि होनेसे अकालवृष्टि कही जाती है । जीमूत ( मेघ ) वाहन “यावन्न सुप्यते हरिः” इस स्थलमें “यावद्विष्णुमहोत्सवः” इस प्रकार पाठ करके फाल्गुनीपूर्णिमापर्यन्त अकालवृष्टिका समय कहा गया है ॥ ७२ ॥

पौषादिचतुरो मासाञ्ज्ञेया वृष्टिरकालजा ।

व्रतयज्ञादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥ ७३ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—सौर पौषसे चैत्रपर्यन्त वर्षनेसे अकालवृष्टि जानना चाहिये तीन दिन क्रमसे चरणाङ्कित वर्षनेसे शेष दिनसे सप्ताहपर्यन्त अकाल होता है, इसमें व्रतयज्ञादि काम्य कर्मका आरम्भ न करना चाहिये ॥ ७३ ॥

मार्गा ( \* ) न्मासात्प्रभृति मुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गाः

श्वेत्रं यावत्प्रवर्षणविधौ नेति कालं वदन्ति ।

नाडीजङ्घः सुरगुह्यसुनिर्वाक्ति वृष्टेरकालौ

मासावेतावशुभफलदौ पौषमाघौ न शेषाः ॥ ७४ ॥

अर्थ—पौषमाससे चैत्रमासपर्यन्त वृष्टिका अकाल होता है, व्यास, वाल्मीकि और गर्गमुनिने इस प्रकार कहा है, किन्तु नाडीजङ्घ और बृहस्पतिके मतसे पौष और माघमें वृष्टिसे अकालवर्षण होता है, एतद्विन्नमासमें वृष्टि होनेसे कालवर्षण होता है ॥ ७४ ॥

वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः ।

यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ॥ ७५ ॥

अर्थ—जिस वर्षामें मनुष्य और पशुओंके चरणोंका चिह्न पृथिवीमें अङ्कित न हो तो उस अकालवृष्टि होनेसे दोष नहीं होता है ॥ ७५ ॥

प्रकृतमनुसरामः ।

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिद्धिकासूनुदर्शने ।

( फ ) अथ यावद्विष्णुमहोत्सव इति जीमूतवाहनः पठति । महोत्सवः फाल्गुनपूर्णिमाते व्याचष्टे च ।

( \* ) मार्गादित्यधौ पश्चमी नाभाविधौ पीषादित्यनेनेकतावत्वात् ।

**सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादि मङ्गलम् ॥ ७६ ॥ ( ब )**

अर्थ-दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष ( \* ) इन तीन प्रकारके उत्पातोंमें और ग्रहण पडनेसे सात दिनपर्यंत यात्रा और विवाहादि मङ्गल कार्य न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विशेषमाह ।

**एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ।**

**प्रयाणे सप्तरात्रन्तु त्रिरात्रं व्रतबन्धने ॥ ७७ ॥**

अर्थ-ग्रहणका एक दिन परित्याग करके विवाहकरै सात दिन परित्याग करके यात्रा करै और तीन दिन परित्याग करके उपनयन ( यज्ञोपवीत ) करै ॥७७॥

**दिग्दाहे दिनमेकञ्च ग्रहे सप्तदिनानि च ।**

**भूकम्पे च समुद्रूते त्र्यहाणि परिवर्जयेत् ॥ ७८ ॥**

( ब ) अस्य कालशुद्धिमाह-अनिष्ट इति । त्रिविधोत्पातो दिव्यभौमान्तरिक्षरूपः । दिव्यो ग्रहयुद्धधूमकेतुदयादिः । भौमो भूकम्पनिर्घातादिः । आन्तरिक्षो दिग्दाहोल्कादिः एतेषाञ्चाग्न्यादिमण्डलपातेनानिष्टफलत्वमिष्टफलत्वञ्च एतत्सर्वं स्थानान्तरे विवृतम् । अत्र चानिष्टफले त्रिविधोत्पाते सप्तरात्र यात्रोद्वाहादि मङ्गल कर्म न कुर्यात् इष्टफले तु कर्त्तव्यमेवेति तात्पर्यम् । तथा राहुदर्शनेऽपि सप्तरात्र मङ्गल न कुर्यात् । ननु दिव्य ग्रहैर्विकृत्यमित्यनेन राहुदर्शनस्यापि दिव्योत्पातत्वात् पुनरुक्तिः सत्येव राहुदर्शने सत्येव निषेधः । यस्तु कदाचित् राहु न पश्यति तेन मङ्गल न कर्त्तव्यमेव । यथा राहुदर्शन एव स्नानादेः कर्त्तव्यता नादर्शने । अन्यथा भेषाच्छन्नतया दर्शनाभावेऽपि निषेधः स्यादिति दर्शनपदन्तु चाक्षुषज्ञानपर ज्ञानमात्रपरत्वे लक्षणाप्रसङ्गात् एतत्सर्वं समयप्रकाशे विस्तृतमिति अतो राहुदर्शने सत्येव निषेधः । अन्योत्पातानां तु दर्शनेऽपि निषेध इत्य-पुनरुक्तिः । किञ्चात्र राहुदर्शने इष्टे आनिष्टे च सामान्यतो निषेध इति । तथा चानिष्ट-मुक्त वराहसहितायाम् । “ जन्मसप्ताष्टरिप्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि वा ” ॥ जन्मर्क्षे त्रिजन्मनक्षत्र निधन त्रयोविंशतक्षत्रम् । अत्रापि दृष्ट इति विशेषार्थप्रसङ्गात् दर्शनादेवारिष्टप्रदस्य राहुदर्शनादिति । अत्र च राहौ यत्र विधुन्तुदेन तरणिरित्यादिवचन पठन्ति । समूलाभिती समूलत्वे च गोचरविशेषोऽयम् । एवञ्चाकालवृषावापि सप्तरात्र मङ्गल न कर्त्तव्यम् । तथा च राजमार्त्तण्डे-“ पौषादिच-तुरो मासाञ्जोया वृष्टिराएराजा । व्रत यात्रादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरात्र ॥ दृष्टिः करोति दोष तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः । यावन्न भवाति गमने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ” इति । यावत्कर्द्धमाक्ता पृथिवी न स्यादित्यर्थः ।

( • ) ग्रहयुद्ध और धूमकेतु उदयादि दिव्योत्पात, भूकम्पनिर्घातादि भौम उत्पात और दिग्दाह उल्कापातादि आन्तरिक्षोत्पन्न उत्पात हैं ॥



उल्कापाते च त्रिदिनं धूमे पञ्चदिनानि च ।

वज्रपाते दिनमेकं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ ७९ ॥

अर्थ—दिग्दाहमें एक दिन, ग्रहणमें सात दिन, भूकम्पमें तीन दिन, उल्कापातमें तीन दिन, धूमकेतुके दर्शनमें पांचदिन और वज्रपतन ( गिरने ) में एक दिन परित्याग करके समस्त मङ्गलकार्य कर्मा चाहिये ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ जन्ममासादौ विवाहादिनिषेधः ।

न जन्ममासे नच चैत्रपौषे क्षौरं विवाहो न च कर्णवेधः ।

अर्थस्य हानिं बहुदुःखपीडां मूलस्यनाशं मुनयो वदन्ति ॥ १८० ॥

अर्थ—अब जन्ममासादिमें विवाहादिका निषेध कहते हैं जन्मके मासमें, चैत्रमासमें वा पौषमें क्षौरकर्म विवाह और कर्णवेध न करना चाहिये जो मनुष्य इन मासोंमें उक्त कार्यको करते हैं उनके द्रव्यका नाश होता है अनेकप्रकारके दुःख होते हैं, रोग होता है और मूलका विनाश होता है इसप्रकार मुनिगणोंने कहा है ॥ १८० ॥

आपिच भोजदेवः ।

यो जन्ममासे क्षुरकर्मयात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते विवाहम् । ( भ )

नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो वधवन्धनानि ॥ ८१ ॥

अर्थ—भोजराजने कहा है कि, जो मनुष्य जन्ममासमें क्षौरकर्म, यात्रा, कर्णवेध और विवाह करता है उसके धन और पुत्रका नाश होता है और वह मनुष्य रोगी होता है और वध बन्धन होता है ॥ ८१ ॥

प्रातिप्रसवमाह ।

जातं दिनं दूषयते वसिष्ठश्चाष्टौ च गर्गो यवनो दशाहम् ।

जन्माख्यमासं किल भागुरिश्च चौले विवाहेक्षुरकर्णवेधे ॥ ८२ ॥

अर्थ—वासिष्ठने कहा है कि, जन्मदिन परित्याग करके चूडा, विवाह, क्षौरकर्म और कर्णवेध करना चाहिये । इसी प्रकार गर्गमुनिके मतसे आठ दिन और यवन मुनिके मतसे दशदिन त्यागकरके उक्त कार्य करना चाहिये किन्तु भागुरिमुनिके मतमें जन्ममासकोटी परित्याग करके उक्त कार्य करना चाहिये ॥ ८२ ॥

( भ ) श्रुते च मोहादिति पाठान्तरम् ।

अपिच ।

स्नानं दानं तपो होमः सर्वमाङ्गल्यवर्द्धनम् ।

उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ॥ ८३ ॥

इति श्रीपतिसमुच्चये ।

अर्थ-स्नान, दान, तपस्या, होम और समस्त मङ्गलके बढानेवाले कार्य और कन्याका विवाह जन्ममासमें प्रशस्त हैं ॥ ८३ ॥

अन्यच्च ।

जन्ममासे च पुत्राढ्या धनाढ्या च धनोदये ।

जन्मभे जन्मराशौ च कन्या हि ध्रुवसन्ततिः ॥ ८४ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ

अर्थ-कृत्याचिन्तामणिग्रन्थमें लिखाहै कि, जन्ममासमें कन्याका विवाह होनेसे पुत्रवती होती है, जन्ममाससे द्वितीयमासमें विवाहिता कन्या धनशालिनी होती है और जन्मनक्षत्रमें वा जन्मराशिमें जिस कन्याका विवाह होय तो उसके शीघ्र ही सन्तति होती है ॥ ८४ ॥

अपञ्च ।

ज्येष्ठे मासि तथा मार्गे क्षौरं परिणयं व्रतम् ।

ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-प्रथम गर्भोत्पन्न पुत्र वा कन्याको ज्येष्ठ मासमें, वा अप्रहायण मासमें चूडाकरण, विवाह और पुत्रका उपनयन इनको यत्नके साथ परित्याग करना चाहिये । इस प्रकार गर्गमुनिने कहा है ॥ ८५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

न जन्ममासे न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् ।

आद्यगर्भभवपुत्रकन्ययोर्ज्येष्ठे मासि न च जातु मंगलम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-जन्ममानमें, जन्मनक्षत्रमें और जन्मदिनमें पुरुषका माङ्गल्य कर्म न करे और ज्येष्ठ मासमें प्रथम गर्भके पुत्र वा कन्याका माङ्गल्य कर्म न करना चाहिये ८६

अपिच ।

कृत्तिकास्थरविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत् ।

उत्सवेषु च सर्वेषु दिग्दिनानि च, वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्रमें स्थित सूर्य अर्थात् ज्येष्ठ मासके प्रथम कृष्ण पक्षके दश दिन परित्याग करके ज्येष्ठ पुत्र वा ज्येष्ठ कन्याका समस्त मङ्गलकार्य करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अन्यच्च ।

कूपिवपनविवाहाः पट्टवद्धाभिषेकः  
प्रथमयुवातिसेवा गन्धमाल्यानुलेपः  
इति वदति समस्तं जन्मवारे प्रशस्तं  
पथिगमनविरुद्धं क्षौरकर्मातिरुद्धम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—सस्यरोपण ( खेतमें बीज बोना ) विवाह ( \* ) पट्टवद्ध, आभिषेक, गर्भाधान, गन्ध, माल्य, ( माला ) और अनुलेपनकरण ( उवटन करना ) जन्मवारमें प्रशस्त है, चात्रा और क्षौरकर्म जन्मवारमें अत्यन्त निषिद्ध है, अतएव इन दोनों कार्योंको जन्मवारमें कभी न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अथ विवाहादौ ग्रहशुद्धिकथनम् ।

अष्टवर्गशुभैः श्रीमान्कर्म कुर्यान्नभश्चरैः ।  
गोचरस्थैस्तदप्राप्तौतत्प्राप्तौ चैव वेधगैः ॥ ८९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, अष्टवर्गमें ग्रहशुद्धि देखकर कर्म करना चाहिये, अष्टवर्गमें ग्रहोंकी शुद्धि न होनेसे गोचर शुद्धि देखे, गोचरमेंभी यदि ग्रहगण शुद्ध न हो तो वामवेधमें वा दक्षिणवेधमें शुद्ध होनेसे कार्य करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अथाष्टवर्ग कथनम् ।

तत्रादौ खेरष्टवर्गः ।

स्वाहिनकृच्छ्रमुदः क्षितिपक्षसमुद्रनगादिकपञ्चगतो-१ । २ । ४ । ७ । ८ ।  
९ । १० । ११ ५थ विभावारिभर्तुर्ह्यङ्गदशेशगतो, ३ । ६ । १० । ११ ५थ कुजा-  
हिनकरवत् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ बुधाञ्जिशरर्तुनवादिषु जातो ३  
५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ देवगुरोर्विषयर्तुनवेशगतो. ५ । ६ । ९ । ११ ५थ  
शुरारियुरोः समयाचलमास्करयातः ६ । ७ । १२ वीक्षणमरीचिसुतादपि भास्करव-  
१ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ ५थ लग्नग्रहान्निकृताङ्गदशादिषु यातः ३ । ४ । ६ । १० ।

( \* ) कन्याके विवाहमें जन्ममास, जन्मराशि, और जन्मनक्षत्र प्रशस्त है । अतएव जन्मवारभी कन्याके विवाहमें प्रशस्त है ।

११ १२ ॥ (x) ॥ रविरेखाः (४८) तथाच । सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ ।  
८ । ९ । १० । ११ चन्द्रात् ३ । ६ । १० । ११ । कुजात् १ । २ । ४ ।  
७ । ८ । ९ । १० । ११ । बुधात् ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ जीवात्  
५ । ६ । ९ । ११ शुक्रात् ६ । ७ । १२ मन्दात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ ।  
१० । ११ लग्नात् ३ । ४ । ६ । १० । ११ । १२-४८ ॥ १९० ॥

अर्थ-अब अष्टवर्ग कीर्तन करते हैं । जन्मसमयका राशिचक्र अर्थात् मनुष्यके जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिमें स्थित हों उन सब ग्रहोंको राशिचक्रमें स्थापन कर जो लग्न होय उनकोभी " ल " चिह्नद्वारा, यथास्थानमें अङ्कित करै । अनन्तर सूर्यके अष्टवर्ग करनेमें सूर्यग्रह जिस स्थानमें स्थित होय उसी स्थानसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करनी चाहिये । एवं चन्द्रसे तृतीय, पष्ठ, दशम और एकादश घरमें एक २ रेखापात करै । इसी प्रकार मङ्गलसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश घरमें, बुधसे तृतीय, पञ्चम, पष्ठ, नवम, दशम, एकादश और द्वादश घरमें, बृहस्पतिसे पञ्चम, पष्ठ, नवम और एकादश घरमें, शुक्रसे पष्ठ, सप्तम और द्वादश घरमें, शनिसे प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम और एकादश घरमें, और लग्नसे तृतीय, चतुर्थ, पष्ठ, दशम, एकादश और द्वादश घरमें एक २ रेखा अङ्कित करनी चाहिये । अष्टवर्गमें ग्रहगण शुद्ध है वा नहीं इसके देखनेकी रीति आगे लिखी गई है ॥ १९० ॥

इति रेखेष्टवर्गः ।

अथ चन्द्रस्याष्टवर्गः ।

चन्द्रः शुभोऽर्कात्रिकालाद्रिदन्तावलाशाशिवस्थः ३ । ६ । ७ । ८ । १० ।  
११-ततः स्वात्कुरामर्त्वंगाशाशिवस्थः १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ क्षमाजाद्वि-  
वह्नीषुपडङ्कदिगोशेष्वथ २ । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । ज्ञात् कुगमाब्धि-  
षाणागदन्तावलाशाशिवस्थो १ । २ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० । ११ ५य  
जीवात्कुह्रभेदशैलेभकाष्ठाशिवस्थो १ । १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ५य  
शुक्रात्रिवेदेषुशैलप्रहाशाशिवस्थः ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १० । ११ । तीक्ष्णांशु-

(\*) अष्टवर्गोक्तगोचरफलमाह-स्वादिनकृादिति । जन्मकाले यत्र ग्रहास्तिष्ठन्ति तस्माद्दक्ष्यमाणप्रकारेण शुभाशुभत्व बोद्धव्यम् । तत्र च यस्मिन्स्थाने शुभस्य वक्ष्यते तत्र रेखा दातव्या यत्र च नोक्त तत्र विद्वो दातव्या इति प्रकारः । अत्र च रविः स्वादात्मन क्षित्यादिगः शुभः विभावरीभर्तृश्चन्द्रात् श्यादिषु रविः शुभः विभावरीति याकारौ स्त्रीकृतौ हस्वी कश्चिदिति दीर्घस्य हस्यता । कुजात्सूर्यत रविः शुभः बुधात्रिशरादिषु रविः शुभः । गुरोविषयादिषु रविः शुभः । शुक्रात् पडादिषु रविः शुभः । शनेः सूर्यत रविः शुभः । लग्नात् श्यादिषु रविः शुभः ॥ इति ।

देहोद्भवाद्रामबाणर्तुशंभुस्थितो ३ । ५ । ६ । ११ । ऽथोदयाद्व्यवाहर्तुकाष्ठाशि-  
 वस्यः ३ । ६ । १० । ११ ॥ ( × ) ॥ चन्द्ररेखा ( ४९ ) तथाच सूर्यात् ३ ।  
 ६ । ७ । ८ । १० । ११ । चन्द्रात् १ । ३ । ६ । ७ । १० । ११ कुजात् २ ।  
 ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । बुधात् १ । १ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ । १० ।  
 ११ जीवात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ शुक्रात् ३ । ४ । ५ । ७ ।  
 ९ । १० । ११ मन्दात् ३ । ५ । ६ । ११ । लग्नात् ३ । ६ । १० । ११ ।  
 ४९ ॥ ९१ ॥

इति चन्द्रस्याष्टवर्गः । ( \* )

अथ कुजस्याष्टवर्गः ।

कुजोऽर्काचतुभो वद्विबाणर्तुदिकच्छम्भुगो ३ । ५ । ६ । १० । ११ ऽथेन्दुतो गम-  
 कालेशगः ३ । ६ । ११ । ततः स्वात्कुहृद्वेदसप्ताष्टदिकच्छम्भुगो १ । २ । ४ । ७ । ८ ।  
 १० । ११ । ऽथ निजानाथपुत्रादृणेष्वङ्गुरुद्रोपयातः ३ । ५ । ६ । ११ । ततो  
 जीवतः कालकाष्ठाशिवाकौपयातो ६ । १० । ११ । १२ ऽथ देवारिपृज्यादनेहो  
 ( १ ) गजेशार्कसंस्थः ६ । ८ । ११ । १२ ततः सूर्यपुत्रात्कुवेदागनागग्रहाशा-  
 मवस्यो १ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ ऽथ लग्नात्कुरामाङ्गदिकच्छम्भुयातः  
 १ । ३ । ६ । १० । ११ । कुजरेखाः ( ३९ ) तथा च सूर्यात् ३ । ५ । ६ ।  
 १० । ११ । चन्द्रात् ३ । ६ । ११ कुजात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ।  
 बुधात् ३ । ५ । ६ । ११ । जीवात् ६ । १० । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ८ ।  
 ११ । १२ मन्दात् १ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् १ । ३ । ६ ।  
 १० । ११ । ३९ ॥ ९२ ॥

इति कुजस्याष्टवर्गः ।

अथ बुधस्याष्टवर्गः ।

ज्ञः शुभोऽर्कतः शरर्तुगोशिवार्कगो ५ । ६ । ९ । ११ । १२ । ऽथ चन्द्रतो द्विवेद  
 कालनागदिहृमेहेश्वरेषु २ । ४ । ८ । १० । ११ भूमिजात् कुहकृतागनागगोदिगे-  
 शगः १ । २ । ४ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । ततः स्वात्कुवद्विषधपण्णवादिषु १ ।  
 ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ । १२ वाकपते रसाष्टमसुसूर्यगो ६ । ८ । ११ ।

( \* ) चन्द्रोऽर्कात्रिभालादिषु शुभः । स्वादात्मनश्चन्द्रः कुगमादिषु शुभ । कुजा  
 द्यादिषु चन्द्रः शुभः । बुधश्चन्द्र कुगमादिषु शुभः । गुरोः कुहगादिषु चन्द्रः शुभः ।  
 शुक्राभ्यादिषु चन्द्रः शुभः । अने रामादिषु चन्द्रः शुभः । लग्नादिषु चन्द्रः शुभः । एव-  
 मन्येषामपि ग्रहाणा कर्त्तव्यम् ।

( \* ) चान्द्रादि ग्रहोऽपि अष्टवर्गोऽपि अनुवाद करनेमें विशेष लाभ नहीं है विधानपूर्-  
 वक रेखापातसे अष्ट देवसेही पाठक्रम उक्त अष्ट देवक्रम अष्टवर्गचक्र खीच सकते है ।

( १ ) कुजद्वि । अनेहः पट् द्वि ।

तः ३ । ६ । ९ । ११ गुरोः शराष्टरन्ध्रादिङ्गमहेशगः । ५ । ८ । ९ । १० । ११ ततः  
 स्वात् कुपञ्चकाष्टरन्ध्रादिविछोपगः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ शने-  
 गुणाधिपञ्चनागमोदशेशगो ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ ५थ लग्नतः कुपञ्चका-  
 ष्मोशिवस्थितः १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । ११ शुक्ररेखाः ( ५२ ) तथाच  
 सूर्यात् ८ । ११ । १२ । चन्द्रात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । ११ । १२  
 कुजात् ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ११ । १२ बुधात् ३ । ५ । ४ । ९ । ११ जीवात् ५ ।  
 ८ । ९ । १० । ११ । शुक्रात् १ । २ । ६ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ मन्दात्  
 ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ लग्नात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । ११-५२ ॥ ९५ ॥  
 इति शुक्रस्याष्टवर्गः ।

अथ शनेष्टवर्गः ।

पङ्कगुरुर्काच्छुभः क्षमायाम्भोधिशीलाष्टदिङ्गम्भुगो-१ । २ । ४ । ७ । ८ । १० ।  
 ११ ५थेन्दुतो गमकालेशगः । ३ । ६ । ११ क्षमासुताद्द्विवाणर्जुकाष्टशिवाकोपगो ३ ।  
 ५ । ६ । १० । ११ । १२ ५थ ज्ञतः कालदन्तावला ( ग ) विस्थितः ६ । ८ । ९ ।  
 १० । ११ । १२ अथ जीवतो बाणकालेशमार्त्तण्डगः ५ । ६ । ११ । १२ ततो दैत्य-  
 पूज्यादनेहः शिवाकोपगः ६ । ११ । १२ स्वाद्वताशेषुकालेशयातः ३ । ५ । ६ । ११ ।  
 ततो लग्नतः क्षमागुणाम्भोधिपङ्कदिङ्गमहेशस्थितः १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११  
 चन्द्रात् शनिरेखाः ( ४९ ) तथाच सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ ।  
 चन्द्रात् ३ । ६ । ११ कुजात् । ३ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ बुधात् ६ । ८ । ९ । १० ।  
 ११ । १२ जीवात् ५ । ६ । ११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात् ३ । ५ ।  
 ६ । ११ लग्नात् १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११-३९ ॥ ९६ ॥

इति शनेष्टवर्गः ।

अथ लग्नाष्टवर्गः ।

सूर्यादेकाद्विचतुःसप्ताष्टशैकादशेषु १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ सोमात्रि-  
 पडेकादशेषु ३ । ६ । ११ मौमात्रिपञ्चपडेकादशेषु ३ । ५ । ६ । ११ बुधात् पडष्टनवद-  
 शैकादशेषु ६ । ८ । ९ । ११ । गुरोः पञ्चपडेकादशद्वादशेषु ५ । ६ । ११ । १२  
 शुक्रात् पडेकादशद्वादशेषु ६ । ११ । १२ । शनिरेखाः पञ्चपडेकादशेषु ३ । ५ । ८ ।  
 १० । ११ लग्नादेकात्रिचतुःपङ्कशैकादशेषु १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ लग्नरेखाः  
 ( ३७ ) तथाच सूर्यात् १ । २ । ४ । ७ । ८ । १० । ११ चन्द्रात् ३ । ५ । ६ ।

( ग ) दन्तावलो हस्ती तदादि द्वादशपमेन्तमित्पथः । अथाष्टमं गविग्या ४८ चन्द्रस्य  
 ४१ पुत्रस्य ३९ बुधस्य ५६ गुरोः ५६ शुक्रस्य ५२ जनेः ३९ ॥

११ । कुजात् ३ । ५ । ६ । ११ बुधात् ८ । ९ । १० । ११ जीवात् ५ । ६ ।  
 ११ । १२ शुक्रात् ६ । ११ । १२ मन्दात् ३ । ५ । ८ । १० । ११ लग्नात् १ ।  
 ३ । ४ । ६ । १० । ११-३७ ॥ ९७ ॥

इति एशाष्टवर्गः ।

अथाष्टवर्गगणनक्रमः ।

यावती यावती रेखा ग्रहाणामष्टवर्गके ।

तावती द्विगुणीकृत्य चाष्टाभिः परिज्ञोधयेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ-अब अष्टवर्गके गिननेका क्रम लिखतेहैं । पूर्वाक्षरीतसे रेखापात करनेमें जिस घरमें जिननी रेखा पातित हो उनको द्विगुणी ( दूनी ) करके आठसे भाग देवै ॥ ९८ ॥

अष्टोपरि भवेद्रेखा अष्टाभ्यान्तरविन्दवः ।

अष्टभिश्च समो यत्र समस्तोऽत्र निगद्यते ॥ ९९ ॥

अर्थ-आठसे भाग देनेसे जो अङ्क शेष बचे उनको उती घरमें रखना चाहिये दूनी करनेसे यदि आठसे कम हों तो जितने बिन्दुओंसे आठ होसके उतने बिन्दु उस घरमें रखना चाहिये और दूनी करनेसे यदि आठ होवें तब उस घरमें सम लिखना चाहिये ॥ ९९ ॥

स्पष्टमाह ।

शून्ये तु विन्दवश्चाष्टौ रैखैके रसविन्दवः ।

चत्वारो विन्दवो युग्मे द्विविन्दू रामरेखके ॥ २०० ॥

समा रेखा चतुष्के तु पञ्चमे नेत्ररेखिका ।

पङ्क्रेखासु चतूरेखा सप्तमे रसरेखिका ॥ १ ॥

इति जातरुचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-अब आठों वर्गमें रेखा और शून्य लिखनेकी रीति कही जातीहै । जिस घरमें रेखा, रेखापात न हो, उस घरमें आठ शून्य लिखना चाहिये. इसी प्रकार जिस घरमें एक रेखापात हो, उसमें छः शून्य जिस घरमें दो रेखा हों, उसमें चार शून्य, जिस घरमें तीन रेखा हों उसमें दो शून्य, लिखै और जिस घरमें चार रेखा हों उसमें सम लिखै, जिस घरमें पाच रेखा हो उसमें दो शून्य, जिस घरमें छः रेखा हों उसमें चार शून्य और जिस घरमें सात रेखा पातित हों उस घरमें छः शून्य लिखना चाहिये ॥ २०० ॥ १ ॥

अथ रेखाविन्दादीनां फलम् ।

श्रीरानन्दस्तथा श्रेयो योगो राज्यप्रदस्तथा ।

व्यादिद्विगुणरेखाणां फलमेतदनुक्रमात् ॥ २ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब द्व्यादिद्विगुण रेखाका फल कीर्तन करतेहैं । दो रेखा होनेसे श्री ( लक्ष्मी ) प्राप्त होती है, इसी प्रकार चार रेखामें आनन्दका अनुभव होताहै, छः रेखामें मङ्गल होताहै और आठ रेखा होनेसे राज्यप्राप्ति होती है ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

रेखाद्वये शुभं कुर्याद्वनी रेखाचतुष्टये ।

रेखापङ्के प्रभुरख्यातिरष्टरेखे महीपतिः ॥ ३ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, अष्टवर्गके घरमें दो रेखा होनेसे शुभ होताहै, चार रेखा होनेसे धनवान् होताहै, छः रेखा होनेसे प्रभुत्वलाभ होताहै और आठ रेखा होनेसे राजा होताहै ॥ ३ ॥

मलिनोऽथ विपद्धानिर्योगो मृत्युप्रदस्तथा ।

द्व्यादिद्विगुणविन्दूनां फलमेतदनुक्रमात् ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—द्व्यादिद्विगुणशून्यका फल वर्णन करतेहैं । अष्टवर्गमें दो शून्य पडनेसे मलिनता होती है इसी प्रकार चार शून्यमें विपत् छः शून्यमें हानि और आठ शून्य पडनेसे मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

अपरश्च ।

शून्यद्वये भवेन्मृत्युश्चतुःशून्ये प्रपीडनम् ।

पट्शून्ये रोगदारिद्र्यमष्टशून्ये मृतिर्भवेत् ॥ ५ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें अष्टवर्गके शून्योंका फल इस प्रकारसे कहाहै कि, दो शून्य होनेसे मृत्युके समान फल होताहै, इसी प्रकार चार शून्य होनेसे पीडा होतीहै छः शून्य होनेसे रोग और दरिद्रता होतीहै और आठ शून्य होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

शुभा रेखाः समाख्याता विन्दवश्चाशुभा मताः ।

यत्र रेखा न विन्दुश्च तत्समं परिकीर्तितम् ॥ ६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अष्टवर्गमें यदि रेखापात हो तब शुभ होता है, विन्दु पडनेसे अशुभ



होता है और जिस स्थानमें रेखा वा बिन्दु ( शुन्य ) कुठभी न होवे उसको सम कर्तते है. उस स्थानसेभी शुभ फल होता है ॥ ६ ॥

अविशुद्धाष्टवर्गस्य फलमाह ।

अष्टवर्गेषु ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु ।

अशुभाश्चाष्टवर्गेषु सर्वत्रैवाशुभा मताः ॥ ७ ॥

इति जातकचन्द्रियायाम् ।

अर्थ-ग्रहगण अष्टवर्गमें शुद्ध होनेसे समस्त कर्ममें शुभफल प्रदान करते है, यदि अष्टवर्गमें अशुद्ध होवे तो समस्त कार्योंमें अशुभ दते है ॥ ७ ॥

व्रतारम्भे विवाहे च यात्रायां क्षुरकर्माणि ।

अविशुद्धाष्टवर्गस्य समस्ता निष्फला भवेत् ॥ ८ ॥

इति ज्योति सारे ।

अर्थ-ज्योतिषसारमें लिखा है कि, व्रतारम्भमें, ( उपनयनमें ) विवाहमें, यात्रामें और चूडाकर्ममें इन समस्त कार्योंमें यदि अष्टवर्गमें ग्रह शुद्ध होनेसे कर्म निष्फल होता है । अतएव कर्म करनेके समय अष्टवर्गमें ग्रहोंकी शुद्धि अवश्य देखना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ ग्रहाणा गोचरशुद्धिः । ( म )

केतूपप्लवभौममन्दगतयः पष्टत्रिसंस्थाः शुभा- ( य )

श्चन्द्रार्कावपि ते च तौ च दशमौ चन्द्रः पुनः सप्तमः ।

जीवःसप्तनवद्विपञ्चमगतौ युग्मेषु सोमात्मजः

शुकःपद्दशसप्तवर्जमितरे सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः ॥ ९ ॥

इति माण्डव्य ।

अर्थ-अब माण्डव्योक्त गोचरशुद्धि कही जाती है जन्मराशिसे तृतीय, पष्ट

( म ) केतूपप्लवभौममन्दगतगोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरैव फले अतीव शुभफल द्वयोर्विरोधे मध्यफल द्वयोरयुग्मेऽतीनाशुभफलमिति युक्ति । अत्र सोमरिणा इत्यष्टवर्ग गोचर यत्रिगदित तद्विष्टम् अन्यत्केतूपप्लवभौमदिना यदुक्त तत्रेष्ट न सम्यक्फलदायकमिति प्रलपित तद्वेद्यमेव । "स्थानेष्वेतेषु हिता शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम् । अशुभ शुभावशेषफल ग्रहा प्रयच्छन्ति चरगता ॥ " इति लघुजातवचनविरोधात् । श्लोक स्थानन्वयापत्तेश्च बृहज्जातके केतूपप्लवभौमदिगोचरस्थानुरक्तत्वेनाष्टवर्गगोचरस्थानन्तर मस्य वचनस्य पाठादस्या व्याख्याया अघटनाच्चेत्यल बहुना ।

( य ) गोचरशुभाशुभमाह-केतूपप्लवेति । उपप्लवो राहु केतुराहुभौममन्दा जन्मकालीनचन्द्राध्युपितराशेः पष्टस्थास्तृतीयस्थाश्च शुभदा । चन्द्रार्कावपि पष्टस्थौ तृतीयस्थौ च शुभदौ ते च केतूपप्लवभौममन्दगतय दशमस्था अमदा तौ च चन्द्रार्कौ दशमौ शुभदौ दशमाविति । समीपस्यसख्यागृहीतौ वक्रन्तु सप्तमस्थोऽपि शुभदः ।

और दशमस्थानमें स्थित केतु, गहु, मङ्गल, शनि और सूर्य ग्रह होनेसे शुभफल प्रदान करते हैं। तृतीय, षष्ठ, दशम और सप्तम स्थानमें चन्द्रग्रह स्थित होनेसे शुभफल प्रदान करता है बृहस्पति जन्मराशिमें सप्तम, नवम, द्वितीय और पञ्चम स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल होता है। बुध द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम और द्वादशवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफलको देता है। शुक, षष्ठ, दशम और सप्तम भिन्न स्थानमें शुभ होता और जन्मराशिमें एकादश स्थानमें समस्तग्रहही शुभफल प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥

**सूर्यः पट्टत्रिंशस्य स्थितस्त्रिंशस्य पट्टसप्तमस्य चन्द्रमा  
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रोर्कजौ पट्टत्रिंशौ ।**

**सौम्यः पट्टद्विचतुदंशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः**

**शुकः पट्टदशसप्तमर्क्षसहितः शार्दूलवत्रासकृत् ॥ २१० ॥ (२)**

इति वराहः ।

अर्थ—अथ वगरोक्त गोचरशुद्धि कही जाती है जन्मराशिमें छठे, तीसरे और दशवें स्थानमें स्थित सूर्यग्रह शुभ होता है। तीसरे, दशवें, छठे सातवें और जन्म-राशिमें स्थित चन्द्र शुभ होता है। सातवें, नववें, दूसरे और पाचवें स्थानमें स्थित बृहस्पति शुभ होता है। मङ्गल और शनि छठे और तीसरे स्थानमें स्थित होनेसे शुभ होता है। छठे दूसरे चौथे, दशवें और आठवें स्थानमें स्थित बुध शुभ होता है। जन्मराशिमें ग्यारहवें स्थानमें समस्तग्रह स्थित होनेसे शुभप्रद होते हैं और छठे, दशवें और सातवें स्थानमें स्थित शुक होनेसे व्याघ्रके समान प्राप्त उत्पन्न करता है ॥ २१० ॥

एते च गह्वरेतु जमन्दसूयास्तृतीयषष्ठदशमगाः शुभदाः । चन्द्रः तृतीयषष्ठदशमसप्त-  
मम शुभ इत्यर्थः । जन्मराशि सप्तमगात् गुरु सप्तनवपञ्चमगतः शुभदः । बुधस्तु सुमेधु  
द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशेषु स्थितः शुभदः । शुकस्तु षष्ठदशमसप्तमगार्क्षस्य सत्त्वा  
इतरे अन्यस्थाने एकद्वित्रिचतुःपञ्चाष्टमनवमेवादशद्वादशेषु शुभदः इत्येति माण्डव्यमुनि-  
नीत्यात् सर्वनामार्थभावा इति चेन्न । तत्रिचतु षष्ठदशमसप्तमर्क्षसहित इति पाठ  
नगति । तन्मत्तस्तु इतरे इति परेण महान्वयः तत्रैव व्याख्या । शुकः षष्ठदशसप्तमन-  
मराशिप्रगतिषु जन्मद्विविचतुःपञ्चाष्टमनवमेवादशद्वादशेषु शुभदः । एतेन शुकस्यै-  
वादशस्थाने जन्मसमावाप्तेर इत्येऽन्येषु सर्वे एकादशे शुभाः । अत्र प्रापिशुद्धोऽपि  
सार्था इति अन्तम्य समीपमुपान्तमेवादश सर्वे ग्रहा एवादशस्थाः ज्ञात इत्यर्थः ।

( २ ) एतन्माण्डव्योक्तमेव वराहोक्तगोचरेण भाट्टदयनि-सूयति । अत्र जन्मराशि-  
नवराश्वः शुभद इति विधिः । तत्रार्थो पट्टत्रिंशत्तृतीयषष्ठदशमगाः इत्यप्युक्तम् । बुधश्च  
द्वादशमः शुभ इत्यप्युक्तम् ॥

रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहो ।

क्षौरं तारकशुद्ध्या शेषं चन्द्राश्रितं कर्म ।

सर्वदा सर्वकार्येषु चित्तशुद्धिर्विशेषतः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-अब गृहारम्भमें सूर्यशुद्धिको कहते हैं, उपनयन और विवाहमें सूर्य और बृहस्पति शुद्ध होना चाहिये चूडाकर्ममें नक्षत्रशुद्धिका प्रयोजन है और अन्यान्य कार्यमें चन्द्रशुद्धिको विचारना चाहिये किन्तु सर्वदा समस्त कार्यमेंही चित्त शुद्ध रचना चाहिये अर्थात् चित्तशुद्धि न होनेसे कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ११ ॥

पुंसामर्कः स्मृतो योनियोपितामृतद्युतिः ।

अतः पुंयोपितोः शस्तं बलमर्कशशाङ्कजम् ॥ १२ ॥

इति विद्याधरीविलासे ।

अर्थ-पुरुषको सूर्यका बल और स्त्रीको चन्द्रका बल विचारकरके पुरुष और स्त्रीका कार्य करना चाहिये ॥ १२ ॥

गोचरशुद्धाविन्दुं कन्याया यत्नतः शुभं वीक्ष्य ।

तिग्मकिरणञ्च पुंसः शेषैर्वलैरपि विवाहः ॥ १३ ॥ ( \* )

अर्थ-विवाहके समय कन्याके गोचरमें चन्द्रशुद्धि होनेसे और पुरुषके गोचरमें सूर्यशुद्धि होनेसे और अन्य समस्त ग्रह शुद्ध न होनेसे भी विवाह करना चाहिये ॥ १३ ॥

( \* ) चन्द्रशुद्धि रविशुद्धिश्चाह-गोचरशुद्धाविति । सप्तमोपचयइत्यादिना गोचरशुद्धौ कन्याया यत्नेन शुभं चन्द्रं दृष्ट्वा विवाहः कार्य इत्यर्थः । एतेनैतदुक्तं भवति । उभयोरेव चन्द्रशुद्धिः कार्या किन्त्वत्र कन्यायाः यत्नेनापश्य चन्द्रशुद्धिः कार्या वरस्य तु कदाचित् कार्यवशात् प्रतीकारेणापि विवाहः कार्या न त कन्याया इत्यर्थः । अत एव वामवेधादिशुद्धिरस्य सर्वत्र कल्पनीयेत्यर्थः । यथा राजमार्त्तण्डे-“तारानुरूपफलदः स्वगृहे स्वर्गं स्वाञ्छेऽपि शीतकिरणः सुहृदस्त्रिभागे । शस्तोऽष्टवर्गपरिशोधितगोचरेण पश्चादिशुद्धिविपरीतविशुद्धिशुद्धः” इति । यथा जन्मराशेः शुभः सूर्य इत्यादिना शुद्धौ सूर्यं च पुंसः शुभं वीक्ष्य विवाहः कार्यः । अत्राप्युभयोरेव विशुद्धिः कार्या । किन्तु पुंसो यत्नेनावश्य रविशुद्धिः कार्या कन्यायाः कदाचित्कार्यवशात् प्रतीकारेण रविशुद्धचभावोपि विवाहः न तु वरस्येत्यर्थः । अतः कन्याया अपि रविशुद्धिः । यथा राजमार्त्तण्डे-“जन्मानि भानो विधवा पतिसुतयुक्ता भवत्युपचयर्क्षे । शेषगृहस्थे कन्या नानाशोकातुरा नूनम् ॥” इति । अत्र च गुरुशुद्धिरपि किन्त्या यथा तत्रैव । “रविशुद्धौ गृहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहो । क्षौरं तारकशुद्धौ शेषं कर्म चन्द्राश्रितम् ॥” इति । गुरुशुद्धिस्तु

अथ रविशुद्धिः ।

जन्मराशेः शुभः सूर्यस्त्रिपदशलाभगः ।

द्विपञ्चनवमोऽपीष्टस्योदशदिनात्परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—अथ सूर्यशुद्धिको कीर्त्तन करते हैं । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे, छठे दशवें और ग्यारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य सर्वदा शुभ होता है और जन्म-राशिसे दूसरे, पांचवें वा नववें घरमें स्थित होनेसे सूर्य तेरह दिनके बाद शुभ होता है ॥ १४ ॥

फलम् ।

त्रिपददशैकादशगोदिनेशः सुतार्थसौभाग्यसुतप्रदः स्यात् ॥

वैधव्यदाताष्टमराशिसंस्थः शेषेषु ह्यदुःखशुचः करोति ॥ १५ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य पुत्र, अर्थ, सौभाग्य और मङ्गलदायक होता है, आठवें घरमें रहनेसे स्त्रीको विधवा कर देता है । और जन्मराशिमें स्थित हो वा दूसरे, चौथे, पांचवें, सातवें, नववें और बारहवें घरमें स्थित होनेसे सूर्य, रोग दुःख और अनेक प्रकारके शोक प्रदान करता है ॥ १५ ॥

अन्यच्च—शुद्धिमाह ।

द्विपञ्चनवमस्थोपि भवेच्छुभकरो रविः ।

उभौ यदि शुभौ स्यातां हरिणा बृहस्पतौ ॥ १६ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—यदि चन्द्र और बृहस्पति गोचरमें शुद्ध होंगे तो दूसरे, पांचवें, वा नववें स्थानमें स्थित सूर्यभी तेरह दिनके मध्यहीमें शुभ होजाता है ॥ १६ ॥

—“जीवः सप्तनवाहिपञ्चमगतः” इत्यादिना बोध्या । तथा “जन्माष्टमद्वादशगः सुरेण्यो वैधव्यदः स्त्रीक्षयकृत्रिपष्टः । दीर्घायदाता दशमश्चतुर्थः शेषेषु सौभाग्यसुखायकृत्स्यात्” शेषेति एतच्छेषैर्मङ्गलादिभिरवर्गैर्गोचराशुद्धेरपि विवाहः कार्य इत्यर्थः । एतच्च गोहृदशैयानां यथा “यद्यापि सुरगुरुसूर्योऽशुक्ती कथितौ विवाहयोगेऽपि । सकलशुणो-दयदात्री भानोःशुद्धिः परा गौडे ।” तथा राजमातङ्गटे “बृहस्पतौ गोचरशोभनस्ये विवाहमिच्छन्ति हि दाक्षिणात्याः । रवौ विशुद्धे प्रवदन्ति गौडा न गोचरे माणवके प्रमा-पम् । भीमे विशुद्धे यमुनातटोद्रवा हिमालयोत्थाः शशिजे शुभप्रदे । कैलासदेशप्रमवाः शनिश्चरे हीपान्तरोत्था भृगुजे जगुः शुभम्” । अत्रच ग्रहा मित्रादिग्रहे स्थिता अनिष्टा अपि शुभदाः । यथा पशुपतिदीपिकायाम् “सुहृद्ब्रह्मस्त्रीभगतोऽपि वा स्यान्मित्रेदितो वा स्वग्रहं गतो वा । अनिष्टसंग्योऽपि ध्रुवं नगणां सर्वे ग्रहाः श्रेष्ठफलं ददन्ते” इति ।

अपरञ्च ।

द्वितीयपुत्राङ्कगतः प्रभाकरः स्रयोदशाहात्परतः शुभप्रदः ।  
न जन्मसप्तव्ययरन्ध्रगस्तथा करोति पुंसामपि तादृशं फलम् ॥ १७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें कहाहै कि, जन्मराशिसे दूसरे, पांचवें और नववें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे मासके तेरह दिनके अनन्तर ( बाद ) शुभप्रद होतेहैं; किन्तु जन्म राशिमें स्थित वा सातवें, चारहवें और आठवें घरमें सूर्य स्थित होनेसे किसी समयभी शुभ फल प्रदान नहीं करते हैं ॥ १७ ॥

अथ निषिद्धरविफलम् ।

जन्मन्यकै भवति विधवा बन्धुहीना द्वितीये

निःस्वा पातालसंस्थे सुतगृहधनहा सप्तमे नष्टकामा ।

मृत्यो प्राप्नोति मृत्युं व्ययनवमगते रोगशोकाभिभूता

शोषे राशौ विवाहे विपुलधनवती धर्मकामार्थयुक्ता ॥ १८ ॥

अर्थ-जन्मके सूर्यमें विवाहिता कन्या विधवा होतीहै, इसी प्रकार दूसरे सूर्यमें बन्धुहीना, चौथेमें धनहीना, पांचवेंमें धननाशिनी, सातवेंमें कामनाभ्रष्टा और आठवें सूर्यमें मरण होताहै, चारहवें और नववें सूर्यमें विवाह होनेसे रोगशोकादिसे ग्रसित होतीहै । तीसरे, छठे, दशवें और ग्यारहवें सूर्यमें विवाहिता नारी विपुल-धनशालिनी और धर्मकामार्थयुक्ता होतीहै ॥ १८ ॥

अन्यच्च ।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च दिवाकरे ।

कन्या वैधव्यमाप्नोति नियतं पाणिपीडने ॥ १९ ॥

अर्थ-चचनान्तरमें कहाहै कि, विवाहसमय जन्मराशिसे चौथे, आठवें और चारहवें घरमें सूर्य होनेसे विवाहिता कन्या शीघ्रही विधवा होजातीहै ॥ १९ ॥

अथ वृहस्पतिशुद्धिः ।

चतुर्थे चाष्टमे चैव द्वादशे च वृहस्पतौ ।

विवाहितो नरो मृत्युं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥ २२० ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जन्मराशिसे चौथे आठवें वा चारहवें घरमें वृहस्पति होनेसे विवाहित

गुरुपकी निःसंदेह मृत्यु होती है. अतएव उक्त स्थानोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें रहनेसे बृहस्पति विवाहमें शुभ होता है ॥ २२० ॥

अथ चन्द्रशुद्धिः ।

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्रशोभनः । ( \* )

शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥ २१ ॥

अर्थ—जन्मचन्द्रसे सातवें, ग्यारहवें और छठे स्थानमें स्थित चन्द्र सर्वदाही शुभप्रद होता है, शुक्लपक्षमें दूसरे, पांचवें वा नववें स्थानमें स्थित चन्द्रमाभी शुभ प्रद होता है ॥ २१ ॥

आपिच ।

दशपष्टतृतीयादशसप्तमगः शुभः ।

चन्द्रमा जन्मचन्द्रोऽपि जन्मक्षपरिवर्जितः ॥ २२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिसे दशवें, छठे, तीसरे और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र शुभप्रद होता है और जन्मनक्षत्रगत न होनेसे जन्मचन्द्रमाभी शुभ होता है ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।

क्षौरभेषजवादाध्वकर्तनेषु च तं त्यजेत् ॥ २३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र समी कार्यमें प्रशस्त है. केवल क्षौरकर्ममें, औषधप्रयोगमें, विवादमें, यात्रामें, और छेदनकर्ममें जन्मनक्षत्रगत जन्मचन्द्र परित्याग करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रताराशुद्धिप्रशंसा ।

ताराचन्द्रवले प्राप्ते दोषाश्चान्ये भवन्ति ये ।

ते सर्वे विलयं यान्ति सिंहं दृष्ट्वा गजा इव ॥ २४ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अथ चन्द्र और ताराशुद्धिकी उत्कर्षता प्रतिपादन करते हैं । ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, जिस प्रकार सिंहको देखकर हाथी भाग जाते हैं विसी प्रकार तारा और चन्द्रशुद्धिके होनेसे समस्त दोष दूर होजाते हैं ॥ २४ ॥

अपिच ।

सर्वकर्मण्युपादया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः ।

तच्छुद्धावेव सर्वेषां ग्रहाणां फलदातृता ॥ २५ ॥ ( क )

अर्थ-चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धिकी प्रशंसा करतेहैं । समस्त कर्ममेंही चन्द्र-तारा शुद्धिकी उत्कर्षता कहीहै, अतएव चन्द्र और ताराकी शुद्धि होनेसेही समस्त ग्रह शुभफल प्रदान करतेहैं ॥ २५ ॥

अन्यथा ।

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव चतुर्दश । ( \* )

ऋशं षोडशमित्याहुयोगश्चापि शताधिकः ॥ २६ ॥

सहस्रादाधिकः सूर्यश्चन्द्रो लक्षगुणः स्थितः ।

वर्जयित्वा बलं सर्वं तस्माच्चन्द्रबलं बलम् ॥ २७ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, कर्मकालीन तिथिका एकगुण कहाहै, इसी प्रकार वारके चौदह गुण कहे हैं, नक्षत्रके सोलह गुण, योगके शताधिक गुण, सूर्यके सहस्राधिक गुण और चन्द्रके लक्षगुण कहे गये हैं, अतएव अन्य सब बल परित्याग करके और भी चन्द्रका बल अवश्यही ग्रहण करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपरश्च ।

तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र चन्द्रो बलान्तरः ।

स्वामिना परितुष्टेन भृत्यक्रोधो निरर्थकः ॥ २८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-जिस प्रकार भृत्य ( नौकर ) का स्वामी प्रसन्न होनेसे भृत्यका क्रोध निरर्थक होता है, उसी प्रकार जिस स्थानमें चन्द्रका बल होय तो उसमें ताराबल नहीं देखा जाता है ॥ २८ ॥

( क ) सर्वकर्मोत्प्रेषु चन्द्रताराशुद्धेः प्राशस्त्यमाह-सर्वकर्मणीत्यादि । तस्मात्तच्छुद्धी चन्द्रताराशुद्धौ सत्यामेव सर्वकर्मसु ग्रहाणां फलदायकत्वमिति । यथा राजमार्त्तण्डे-“ चन्द्रबलेन विहीनो न मनःपरितोपदः क्रियारम्भः । अन्यगुणैरपि युक्तो नर इवाबलो वरस्त्रीणाम् । ” तथा “ तिथिरेकगुणा प्रोक्ता वारश्चैव ” इत्यादि । तथाच “ तत्रैव तारास्तत्र न गण्यन्ते यत्र ” इत्यादि “ कृष्णे बलवती तारा ” इत्यादि । “ ताराबलेन कर्त्तव्य चन्द्रमा ” इत्यादि ।

( \* ) वाराश्चैव चतुर्गुणा इत्यापि पाठः ।

प्रकारान्तरञ्च ।

ऋकचा मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।

शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहंता इव ॥ २९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—जिसप्रकार वज्रसे वृक्षका नाश होताताहै, तिसी प्रकार ऋकचयोग, मृत्यु-  
योग, दग्धादिन और अन्यान्य अशुभ दोषोंका चन्द्र शुद्ध होनेसे नाश होता है २९ ॥

अपिच ।

कृष्णे बलवती तारा शुक्ले चन्द्रो बलोत्तरः ।

तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन सुशुद्धे चन्द्रतारके ॥ २३० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—कृष्णपक्षमें ताराबल अधिक होता है और शुक्लपक्षमें चन्द्रका बल  
अधिक होताहै अतएव चन्द्र और तारा इन दोनोंके शुद्ध होनेसेही कर्म करना  
चाहिये ॥ २३० ॥

अन्यच्च ।

ताराबलेन कर्त्तव्यं चन्द्रमा यदि दुर्बलः ।

दुर्बलेनैव शक्तः स्यात्प्रारब्धे विषये यतः ॥ ३१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—यदि चन्द्रमा क्षीण होनेसे दुर्बल होय तो ताराबल ग्रहण करना चाहिये  
जैसे प्रारब्ध विषयमें भी दुर्बल चन्द्र शक्त नहीं होताहै ॥ ३१ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावस्ताराबलं तत्र विचारणीयम् ॥

विदेशसंस्थे विकलेऽपि पत्यौ सर्वाणि कर्माणि करोति नारी ॥ ३२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखाहै कि, जिस प्रकार विदेशगामी या विक-  
लाङ्गादियुक्त पतिवर्तमान होनेसे समस्त कर्म उसकी स्त्री करतीहै, तिसी प्रकार  
कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कला क्षीण होनेसे ताराबलकोही ग्रहण करना चाहिये ३२ ॥

अथ चन्द्रताराद्यशुभप्रतीकारः ।

कर्म कुर्यात्फलावाप्तौ चन्द्रादिशोभने बुधः ।

सुस्थकाले त्विदं सर्वं नात्तः कालमपेक्षते ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अर्थ—कर्म करनेके समय यदि अवकाश होवे वा विशेष फल पानेके अर्थ चन्द्र



तारादिके शुद्ध होनेसेही कर्म करना चाहिये, किन्तु जब कर्म करनेका अवकाश न होय तब निम्न ( नीचे ) लिखेहुए प्रतीकारको करके कर्म करै ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रे च शंखं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च ॥

धान्यञ्च दद्यात्करणक्षंवारे घौमे तिलान्हेम मणिञ्च लग्ने ॥ ३४ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-अब चन्द्रतारादिके अशुद्ध होनेसे उनका प्रतीकार कहते हैं यथा,—  
चन्द्र अशुद्ध होनेसे शंखदान करना चाहिये, इसी प्रकार तारा अशुद्ध होनेसे लवणदान, तिथि अशुद्ध होनेसे शुभ्र तण्डुलदान करै अशुद्ध करण अशुभनक्षत्र वा अशुद्ध वार होनेसे धान्य ( नाज ) दान करै और अशुभ योगमें तिलदान और अशुद्ध ( अशुभ ) लग्न होनेसे उसके प्रतीकारके निमित्त स्वर्ण और मणि-दान करना चाहिये ॥ ३४ ॥

चन्द्रस्य विशेषः ।

श्वेतं वासः सिता धेनुः शंखो वा क्षीरपूरितः ।

देयो वा राजतश्चन्द्रश्चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३५ ॥ ( क )

अर्थ-चन्द्र अशुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ श्वेतवस्त्र, शुक्लवर्णकी गौ और दूधसे भराहुआ शङ्ख अथवा चाँदीका चन्द्रमा बनवाकर दान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ चन्द्रदोषोपशान्तिसान्मम् ।

उशीरञ्च शिरीषञ्च चन्दनं पद्मकं तथा ।

शंखे न्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषोपशान्तये ॥ ३६ ॥

अर्थ-चन्द्र अशुभ होनेसे उशीर, शिरीष, चन्दन और पद्ममिश्रित जल शङ्खमें भरकर उसके द्वारा स्नान करनेसे चन्द्रका दोष दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

अथ गोचरे चन्द्रशुद्धिफलम् ।

सप्ताद्यचन्द्रे ध्रुवमर्थलाभः पष्ठे तृतीये धनभोगमायुः ॥

सर्वार्थसिद्धिं दशमे लभन्ते एकादशे सर्वसुखानि चैव ॥ ३७ ॥

अर्थ-अब चन्द्रशुद्धिका फल वर्णन करते हैं, सातवें स्थानमें स्थित वा जन्मके

( क ) चन्द्रदोषशान्तिदानमाह-श्वेतामिति वस्त्रादीनां प्रत्येकमेव दोषहन्तृत्वं सप्त-  
द्विंशे तु फलभूमा कल्पनीयः ।

चन्द्र होनेसे अर्थ ( द्रव्य ) लाभ होता है इसी प्रकार छठे और तीसरे चन्द्रमें भोग और आयुकी वृद्धि होती है । दशवें चन्द्र होनेसे सर्वार्थलाभ होता है और ग्यारहवें चन्द्र होनेसे सर्वप्रकारके सुख प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरापवादमाह ।

त्रयोदशदिनान्यको दशपङ्कधरणीसुतः ।

साह्रं दिनञ्च शितांशुर्मासमेकादशं तमः ॥ ३८ ॥

सौरिः पादाधिकं वर्षं मासानष्टौ बृहस्पतिः ।

भवनाह्रं भृगुः सौम्यो यावद्राश्यशुभाः फलम् ।

कष्टं व्रतादिके दद्युर्न तथा शेषभागगाः ॥ ३९ ॥

अर्थ—सूर्य एक राशिमें एक मास स्थित रहते हैं । यदि सूर्य विरुद्ध हों तब तेरह दिनके बाद शुभ फल प्रदान करते हैं, मङ्गल तीन पक्ष एक राशिमें रहते हैं यदि विरुद्ध हो तो सोलह दिनके बाद शुभ फल करते हैं, इसी प्रकार चन्द्र सवादो दिन एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे डेढदिनके बाद शुभफल करता है, राहु डेढ वर्ष एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे ग्यारह मासके बाद शुभ फल करता है, शनि अट्ठाई वर्ष एक राशिमें वास करता है विरुद्ध होनेसे एक वर्ष तीन महीनेके बाद शुभ फल करता है; बृहस्पति एक वर्ष एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे आठ महीनेके बाद शुभ फल करता है; शुक्र अट्ठाईस दिन एक राशिमें रहता है विरुद्ध होनेसे चौदह दिनके बाद शुभ फल करता है और बुध अठारह दिनतक एक राशिमें वास करता है विरुद्ध होनेसे नौ दिनके बाद शुभ फल प्रदान करता है; किन्तु उक्त नियतकालके पूर्वमें विरुद्ध ग्रह होनेसे उनमें उपनयनादि कार्य न करना चाहिये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ । ( ख )

तत्रादौ रवेः ।

लाभविक्रमस्वशत्रुतः स्थितः शोभनो निगदितो दिवाकरः ॥

स्वचरैः सुततपोजलान्त्यगैर्व्याकिंभिर्यादि न विध्यते तदा ॥ २४० ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ—अन ग्रहोंकी दक्षिणवेध और वामवेधमें शुद्धि कही जाती है यथा, जन्म-राशिसे ग्यारहवें तीसरे, दशवेंमें और छठे स्थानमें स्थित सूर्य दक्षिणवेधमें शुद्ध होते

( ख ) वामवेधत्वञ्च द्यूनजन्मोति इति स्मार्ताः । सप्तानां ग्रहाणां दक्षिणवेधवामवेधौ इत्यपि ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्तनोक्तम् ।

हैं । यदि शनि ग्रह पांचवें, नववें चौथे और बारहवें स्थानमें हो अर्थात् ग्यारहवें स्थानके सूर्य शुभ होतेहैं यदि पांचवें शनि होय इसी प्रकार तीसरे स्थानके सूर्य शुभ होतेहैं यदि नववें स्थानमें शनि होय, दशमें स्थानका सूर्य शुभ होताहै यदि चौथे शनि होय और छठे स्थानमें स्थित सूर्य शुभफल प्रदान करतेहैं यदि बारहवें स्थानमें शनि ग्रह होय जन्मराशिसे पांचवें, नववें, चौथे और बारहवें सूर्य वामवेधमें शुद्ध ( शुभ ) होते हैं यदि शनिग्रह ग्यारहवें, तीसरे, दशवें और छठे स्थानमें स्थित न होवै अर्थात् पांचवें सूर्य शुभ होते हैं यदि शनि ग्यारहवें न होय, इसी प्रकार नववें सूर्य शुभ होताहै, जो तीसरे स्थानमें शनि न होय, चौथे सूर्य शुभ होताहै, यदि दश शनि न होय और बारहवें स्थानके सूर्य वामवेधमें शुभफल प्रदान करतेहैं, यदि शनि छठे स्थानमें स्थित न होय ॥ २४० ॥

चन्द्रस्य ।

घ्नूनजन्मरिपुलाभखत्रिगश्चन्द्रमाः शुभफलप्रदस्तथा ।

स्वात्मजास्तमृतिबन्धुधर्मगैर्विध्यते न विबुधैर्यादि ग्रहैः ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जन्मराशिसे सातवें, प्रथम, छठे, ग्यारहवें, दशमें और तीसरे स्थानमें स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमें शुभफल प्रदान करताहै, यदि दूसरे, पांचवें, बारहवें, आठवें, चौथे और नववें स्थानमें बुध ग्रह स्थित होय अर्थात् सातमें चन्द्र शुभ होताहै, यदि दूसरे स्थानमें बुध स्थित होय, इसी प्रकार जन्मराशिका चन्द्र शुभ होताहै यदि पांचवें बुध होय, छठे स्थानका चन्द्र शुभ होता है, यदि बारहवें बुध होय, ग्यारहवें चन्द्र शुभ हो नहैं, जो आठवें बुध होवै, दशमें स्थानका चन्द्र शुभ होताहै जो चौथे स्थानमें बुध होय और तीसरे स्थानमें स्थित चन्द्र दक्षिणवेधमें शुभफल प्रदान करतेहैं यदि नववें स्थानमें बुध ग्रह स्थित होय, जन्मराशिसे दूसरे, पांचवें, बारहवें, आठवें, चौथे और नववें स्थानमें स्थित चन्द्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करते हैं, यदि सातवें जन्मराशिमें, छठे, ग्यारहवें दशवें और तीसरे स्थानमें बुध ग्रह न होय अर्थात् दूसरे स्थानमेंका चन्द्रमा शुभ होता है यदि सातवें स्थानमें बुध न होय इसी प्रकार पांचवें चन्द्र शुभ होताहै यदि जन्मराशिमें बुध न होय, बारहवें चन्द्र शुभ होता है यदि छठे बुध न होय आठवें चन्द्र शुभ होताहै जो ग्यारहवें बुध न होवै, चौथे चन्द्र शुभ होताहै जो दशमें बुध न होय, और नववें स्थानमें स्थित चन्द्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि तीसरे स्थानमें बुध ग्रह स्थित न होवै ॥ ४१ ॥

प्रकारान्तरे वामवेधे चन्द्रशुद्धिकथनम् ।  
 सितशनिकुजनीवार्कास्त इन्दुनराणां  
 व्ययसुखनवमस्थोऽपीष्टदाताथ तेषाम् ।  
 खसुतनिधनगश्चेन्मृत्युपुत्रार्थगोऽपि  
 प्रचुरशुभफलं स्याद्वामवेधेन शुद्धः ॥ ४२ ॥ ( ग )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अत्र प्रकारान्तरकी रीतिसे वामवेधमें स्थित चन्द्रकी शुद्धि कही जाती है

( ग ) चन्द्रस्य वामवेधेन शुद्धिमाह—सितेति । नराणां व्ययसुखनवमस्थो विरुद्ध-  
 श्वन्द्रः शुक्रशनिकुजनीवार्काणाम् अस्ते सप्तमे स्थितो नराणामिष्टदाता स्यात् एतत्तु रवि-  
 मन्दकुजाक्रान्तमित्यादिना यामित्रवेधनिषिद्धादन्येषु कर्मसु बोद्धव्यम् । अथ नराणां  
 मृत्युपुत्रार्थगोऽपि चन्द्रः यथासंख्यं तेषां सितादीनां खसुतनिधनगो यदि स्यात्तदा वाम  
 वेधेन शुद्धः प्रचुरशुभफलो भवति । प्रचुर शुभफलं यस्मात्स प्रचुरशुभफल इत्यर्थः । अय-  
 मर्थः नृणामष्टमगोऽपि सितादीनां दशमगश्चेच्छुभः । नृणां पञ्चमगोऽपि सितादीनां  
 पञ्चमगश्चेच्छुभः । नृणां द्वितीयगोऽपि सितादीनामष्टमगश्चेच्छुभः इति । तथाच बृहद्या-  
 ज्ञार्या “ पञ्चमायदशपट्टत्रिजन्मगो नेष्टदो द्विनिधनोपगैर्ग्रहेः । बन्धुरिः फनवपञ्चमस्थितै-  
 श्वेष्टदो यदि विलोमवेधगः ” अस्यार्थः । जन्मराशेः सप्तमायदशपट्टत्रिजन्मगश्चेन्द्रो यथा-  
 संख्यं जन्मराशोद्विनिधनोपगैर्बन्धुरिः फनवपञ्चमस्थेश्च ग्रहो विद्धो न शुभदः स्यात् । अत्रच  
 पूर्वोक्तद्वयजन्मेत्यादिबधनाद् बुधं त्यक्वेति बोद्धव्यम् । तद्यथा जन्मराशेः सप्तमश्चेन्द्रो  
 जन्मराशोद्वितीयस्थेन बुधवर्जितेन ग्रहेण विद्धो न शुभः । एव जन्मराशेरैकादशस्थे  
 जन्मराशेरष्टमस्थेन दशमस्थो बन्धुस्थेन पष्टस्थो रिः फस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन  
 दशमस्थो बन्धुस्थेन पष्टस्थो रिः फस्थेन तृतीयस्थो नवमस्थेन जन्मगः पञ्चमस्थेन  
 विद्धो नेष्टद इत्यर्थः । यदि तु विलोमवेधकश्चेन्द्रः स्यात्तदा इष्टद इत्यर्थः ।  
 एतदुक्तं भवति विपरीतगश्चेन्द्रो द्विनिधनबन्धुरिः फनवपञ्चमस्थो यथासंख्यं विपरीतस्थैः  
 जन्मराशेः सप्तमायदशपट्टत्रिजन्मस्थैर्बुधवर्जितेर्ग्रहो विद्धश्चेन्द्रः शुभदः स्यात् । तद्यथा  
 जन्मराशोद्वितीयस्थश्चेन्द्रो जन्मराशेः सप्तमस्थेन ग्रहेण विद्धः शुभः । अतएव जन्मराशेः  
 सप्तमात् जन्मराशोद्वितीयस्याष्टमत्वेन ग्रन्थकृता अर्थगश्चेन्द्रः सितादीनां निधनगश्चेच्छुभ  
 इत्युक्तः । एवञ्चाष्टमस्थ एकादशस्थेन विद्धः शुभः अतोऽष्टमस्य एकादशाद्दशमस्थत्वेन  
 ग्रन्थकृता मृत्युगश्चेन्द्रः सितादीनां दशमगश्चेत् शुभ इत्युक्तः । एव बन्धुस्थो दशमस्थेन  
 विद्धः शुभः । अतश्चतुर्थस्य दशमात् सप्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता सुखगश्चेन्द्रः सितादीनां  
 सप्तमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । एव रिः फस्थः पष्टस्थेन विद्धः शुभः । अतो रिः फस्य पष्टात्स-  
 प्तमस्थत्वेन ग्रन्थकृता व्ययस्थश्चेन्द्रः सितादीनां सप्तमस्थश्चेत् शुभः इत्युक्तः । एव नवम-  
 स्थरृतीयस्थेन विद्धः शुभः अतो नवमस्य तृतीयात्सप्तमस्थत्वेन सितादीनामस्तस्य इत्यु-  
 क्तम् । एव पंचमस्थो जन्मराशिगततेन ग्रहेण विद्धः शुभः अतः पञ्चमस्य जन्मराशितः  
 पञ्चमत्वेन ग्रन्थकृता पञ्चमश्चेन्द्रः सितादीनां पञ्चमस्थश्चेच्छुभ इत्युक्तः । तथाच वासिष्ठः ।  
 “ जन्मराशिगतश्चेन्द्रो जन्मतः पञ्चमो ग्रहः । स्थितो यदा तदा चेन्बुधेधगो नेष्टदः

मनुष्यके बारहवें, चौथे और नववें स्थानमें स्थित विरुद्ध चन्द्र यदि शुक्र, शनि, मङ्गल वृहस्पति वा सूर्यके सातवें स्थानमें स्थित होय तो वाम-वेधमें शुद्ध होकर शुभफल प्रदान करता है, इसी प्रकार मनुष्यके आठवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र जो शुक्र, शनि, मङ्गल, वृहस्पति वा सूर्यके दशवें स्थानमें स्थित होय तो शुभफल होता है, पांचवें स्थानका विरुद्ध चन्द्र इन्हीं शुक्रादि ग्रहोंके पांचवें स्थानमें स्थित होनेसे शुभफल करता है और दूसरे स्थानका विरुद्ध चन्द्र यदि उक्त शुक्रादिग्रहोंके आठवें स्थानमें स्थित होय तो वामवेधमें शुद्ध होकर प्रचुर शुभफल प्रदान करता है ॥ ४२ ॥

कुजशान्योः ।

विक्रमायारिपुगः कुजः शुभः स्यात्तदान्त्यसुतधर्मगैः खगैः ।

चेन्न विद्ध इनसूनुरप्यसौ किञ्च धर्मघृणिना न विध्यते ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानमें मङ्गल होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होव इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका मंगल शुभ होता है जो पाचवें धरमे कोई ग्रह न होय और छठे स्थानका मंगल शुभफल करता है जो नववें स्थानमें कोई ग्रह न होय । जन्मराशिसे बारहवें स्थानका मङ्गल वामवेधमें शुभ होता है. यदि तीसरे धरमें कोई ग्रह होय. इसी प्रकार पाचवें स्थानका मङ्गल शुभ होता है. जो ग्यारहवें स्थानमें कोई ग्रह होय और नववें स्थानका मङ्गल शुभ होता है जो छठे स्थानमें किसी ग्रहका वास होवै । मनुष्यकी जन्मराशिसे तीसरे स्थानका शनि दक्षिणवेधमें शुभ होता है जो बारहवें स्थानमें सूर्य न होय. इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका शनि शुभ होता है जो पांचवें स्थानमें सूर्य न हो और छठे स्थानका शनि शुभ होता है जो नववें धरमें सूर्य न हो मनुष्यकी जन्मराशिसे बारहवें स्थानका शनि शुभ होता है यदि ग्यारहवें स्थानमें सूर्य स्थित होय और नववें स्थानका शनि वामवेधमें, शुभ होता है जो छठे स्थानमें सूर्य स्थित होवै ॥ ४३ ॥

बुधस्य ।

स्वाम्बुशत्रुमृतिस्त्रायगः शुभो ज्ञस्तदा न खलु विध्यते यदा ।

आत्मजात्रिनवकाद्यनैधनप्रान्त्यगैर्विविधुभिर्नभश्चरैः ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें बुध होनेसे दक्षिणवेधमें शुद्ध होता है यदि स्मृतः । पञ्चमस्थानगश्चन्द्रो जन्मराशिगतो ग्रहः । यदा तदा विपर्ययो वेधगः शुभदः स्मृतः । एव तृतीयपद्मसप्तमदशमे शतशोषगः । धर्मिणः फलिवन्धनप्रस्थितैर्विद्वन्बु नेष्टदः । विपरितेन विद्धस्तु शुभदः परितोतिनः ॥” इति ।

पांचवें स्थानमें चन्द्र ग्रह होय, इसी प्रकार चौथे बुध शुभ होता है जो तीसरे स्थानमें चन्द्र होय छठे बुध शुभ होता है जो नववें स्थानमें चन्द्रमा होय आठवें बुध शुभ होता है जो जन्मराशिमें चन्द्र होय; दशवें बुध शुभ होता है जो आठवें चन्द्रमा होय और ग्यारहवें बुध दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें चन्द्रातिरिक्त ग्रह न होय । जन्मराशिसे पांचवें स्थानमें बुध वामवेधमें शुभ होता है । यदि दूसरे स्थानमें चन्द्रमा न होय इसी प्रकार तीसरे स्थानका बुध शुभ होता है जो चौथे घरमें चन्द्रग्रह न होय नववें स्थानका बुध शुभ फल करता है यदि छठे स्थानमें चन्द्र न होय, जन्मराशिमें स्थित बुध शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें चन्द्र न होय, आठवें बुध शुभ होता है यदि दशवें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होय और बारहवें स्थानमें स्थित बुध वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र ग्रह न होय ॥ ४४ ॥

शुभः ।

स्वायधर्मतनयद्युनस्थितो नाकनायकपुरोहितःशुभः ।

रिःफरन्ध्रखजलत्रिगैर्यदा विध्यते गगनचारेभिर्नाहि ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मराशिसे दूसरे स्थानमें स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होय. इसी प्रकार ग्यारहवें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह न होय. नववें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है जो दशवें स्थानमें कोई ग्रह न होय. पांचवें स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि चौथे घरमें कोई ग्रह न होय और सातवें स्थानमें स्थित बृहस्पति दक्षिणवेधमें शुभ फल प्रदान करता है जो तीसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय. जन्मराशिसे बारहवें स्थानमें स्थित बृहस्पति वामवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि दूसरे घरमें कोई ग्रह होय, इसी प्रकार आठवें बृहस्पति शुभ होता है यदि ग्यारहवें घरमें कोई ग्रह स्थित होय, दशवें बृहस्पति शुभ होता है यदि नववें स्थानमें कोई ग्रह होय, चौथे स्थानका बृहस्पति शुभ होता है यदि पांचवें स्थानमें कोई ग्रह होय और तीसरे स्थानमें स्थित बृहस्पति वामवेधमें शुभफल प्रदान करता है यदि सातवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय ॥ ४५ ॥

शुक्रस्य ।

आसुताष्टमतपोव्ययायगो विद्ध आस्फुजिद्शोभनः स्मृतः ।

नैधनास्ततनुकर्मधर्मधीलामवैरिसहजस्थखचरेः ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—मनुष्यकी जन्मराशिमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ होता है यदि आठवें

स्थानमें कोई ग्रह न होय इसी प्रकार दूसरे स्थानमें स्थित शुक्र शुभ होता है यदि सातवें स्थानमें ग्रह न होय, तीसरे शुक्र शुभ अशुभ होता है यदि कोई ग्रह जन्मराशिमें स्थित न होय चौथे स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि दशवें घरमें कोई ग्रह न होय, पांचवें स्थानके शुक्र शुभ होते हैं यदि नववें स्थानमें कोई ग्रह न होय, नववें स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि ग्यारहवें स्थानमें कोई ग्रह न होय, बारहवें स्थानके शुक्र शुभ होता है यदि छठे घरमें कोई ग्रह न होय और ग्यारहवें स्थानमें स्थित शुक्र दक्षिणवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि तीसरे स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान न होय मनुष्यकी जन्मराशिसे आठवें स्थानमें स्थित शुक्र वामवेधमें शुभफल प्रदान करते हैं यदि जन्मराशिमें कोई ग्रह स्थित होय, इसी प्रकार सातवें स्थानका शुक्र शुभ होता है, यदि दूसरे स्थानमें किसी ग्रहका वास स्थान होय जन्मराशिमें स्थित शुक्र शुभ होता है यदि तीसरे स्थानमें कोई ग्रह होय, दशमें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि चौथे स्थानमें कोई ग्रह होय, नववें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि पांचवें स्थानमें कोई ग्रह होय, पांचमें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि आठवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय, ग्यारहवें स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि नवमें स्थानमें कोई ग्रह होय, छठे स्थानका शुक्र शुभ होता है यदि बारहवें स्थानमें कोई ग्रह स्थित होय और तीसरे स्थानका शुक्र वामवेधमें शुभ फल प्रदान करता है यदि ग्यारहवें स्थानमें किसी ग्रहका वासस्थान होय ॥ ४६ ॥

इति ग्रहाणा दक्षिणवेधनामपेधो ।

अथ वेधफलम् ।

एवमत्र खचरा व्यधान्विताः सत्फलं न हि दिशन्ति गोचरे ।

वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभफलं दिशन्त्यलम् ४७ (•)

अर्थ-दक्षिणवेधमें जिस २ स्थानमें ग्रहोंके होनेसे वेध होता है वह पूर्वमें कह-

( • ) यथोक्तस्थानग्राह्या ग्रहा एवमुक्तप्रकारेण व्यधान्विता जन्मराशियथास्य पूर्वोक्तस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा गोचरे शुभा अपि शुभफलं न दिशन्ति । विपरीतपेधाविधिना तु विद्धाः शुभाः । वेधकस्थानानि यान्युक्तानि वामवेधे तानि वेधकस्थानानि यानि च वेधकस्थानान्युक्तानि वामवेधे तानि च वेधकस्थानानि नगणां वामवेधवेध्यस्थानग्राह्या ग्रहाः जन्मराशिनो वामवेधकस्थानस्थैर्ग्रहैर्विद्धा अशुभफलं अपि शुभफलमत्यर्थं दिशन्तीति । तथाच खेरुदाहियते । नराणां लाभविक्रमराशत्रुषु स्थितो दिशकरो जन्मराशिनो यथास्य सुततपोजलान्वयगोः शनिर्वाजितैर्ग्रहैर्विद्धः सन् शुभफलं न ददाति । तथाच वामवेधे नगणां सुततपोजलान्वयगो दिशकरोः जन्मराशिनो यथास्य लाभविक्रमराशत्रुषु स्थिते ग्रहेः शनिर्वाजितैर्विद्धः सन् शुभफलं ददातीत्यर्थः । एवमन्येषामपि बोद्धव्यम् इति ॥

दियाहै उस २ स्थानमें ग्रह होनेसे गोचरमें ग्रहोंके शुद्ध अशुद्ध होनेसेभी शुभफल प्रदान नहीं करते हैं; किन्तु वामपेधमें ग्रहोंके विद्ध होनेसेभी उनके द्वारा शुभफल प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥

इति वेधफलम् ।

अथ दिवाविवाहनिषेधः ।

विवाहे तु दिवाभागे कन्या स्यात्पुत्रवर्जिता ।

विवाहानलदग्धा सा नियतं स्वामिघातिनी ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—दिनमें विवाह होनेसे कन्या पुत्रहीना होती है और विवाहानल द्वारा दग्ध होकर वह घी स्वामीघातिनी होतीहै ॥ ४८ ॥

अथ कुलिकारूपयोगकथनम् ।

सूर्ये च सप्तमी सोमे षष्ठी भौमे च पञ्चमी ।

बुधे चतुर्थी देवेज्ये तृतीया भृगुनन्दने ॥ ४९ ॥

द्वितीया वर्जनीया स्यात्प्रतिपच्च शनैश्चरे ।

कुलिकारूपो हि योगोऽयं विवाहादौ न शस्यते ॥ २५० ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रविवारको सप्तमी, सोमवारको षष्ठी, मङ्गलवारको पञ्चमी, बुधवारको चतुर्थी, वृहस्पतिवारको तृतीया, शुक्रवारको द्वितीया और शनिवारको प्रतिपदा तिथि होनेसे कुलिकारूपयोग होताहै, इस योगमें विवाह न करना चाहिये ॥ ४९ ॥ २५० ॥

अथ दग्धकथनम् ।

द्वितीया मीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकुम्भयोः ।

मेपकर्कटयोः षष्ठी कन्यामिधुनकेऽष्टमी ॥ ५१ ॥

दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले । (x)

एभिर्जातो न जीवेत् यदि शत्रुसमो भवेत् ॥ ५२ ॥

विवाहे विधवा नारी यात्रायां मरणं भवेत्

निष्फलं कृषिवाणिज्यं विद्यारम्भे च सूखता ॥ ५३ ॥

(x) “सिता च कृष्णा दशमी हरावली विष्णुमृगे तीलधरेऽवलक्षे” इति ग्रन्थान्तरे ।



गृहप्रवेशे भङ्गः स्याच्चूडायां मरणं ध्रुवम् ।

ऋणदाने फलं नास्ति व्रतादाने च निष्फले ।

शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्याद्विचक्षणः ॥ ५४ ॥

इति राजमार्तण्डादी ।

अर्थ-अब दग्धातिथि वर्णन करते हैं, मीन और धन राशिमें सूर्य होनेसे द्वितीया दग्धा तिथि होती है इसी प्रकार वृष और कुम्भके सूर्य होनेसे चौथ दग्धा तिथि होती है, मेष और कर्कके सूर्य होनेसे षष्ठी दग्धा होती है, कन्या और मिथुनके सूर्य होनेसे अष्टमी दग्धा होती है, वृश्चिक और सिंहके, सूर्य होनेसे दशमी दग्धा होती है, मकर और तुला राशिमें सूर्य होनेसे द्वादशी तिथि दग्धा होती है । इन्हींको मासदग्धा कहते हैं । इनमें उत्पन्न हुआ मनुष्य इन्द्रके समान होनेसे भी नहीं जीसक्ता है, मासदग्धामें विवाह होनेसे कन्या विधवा होजाती है इसी प्रकार यात्रा करनेसे मृत्यु होता है, कृषि ( खेती ) और वाणिज्य करनेमें कर्म निष्फल होता है, विद्या रम्भ करनेसे मूर्ख होता है, गृहप्रवेशमें गृहभङ्ग होजाता है, चूडाकरण करनेमें मृत्यु होती है । ऋणदानमें फलका अभाव होता है, और उपनयन और दान करनेसे निष्फल होता है । अतएव पण्डितगणको चाहिये कि, किसी प्रकारका शुभ कर्म मासदग्धामें न करें ॥ ५४ ॥

अन्यच्च ।

आद्या धनुःपु शफरीपु परा द्वितीया

एकान्तरे दिनकरे तिथयः प्रदग्धा ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-धनराशिमें सूर्य होनेसे शुरु पक्षकी द्वितीया दग्धा तिथि होती है । और मीन राशिमें सूर्य होनेसे कृष्णपक्षकी द्वितीया दग्धा होती है एकएक तिथिअन्तर प्रदग्धा होती है ॥ ५५ ॥

कार्मुके च तथा कुम्भे मेषे युग्मे हरौ धटे ।

एषु शुक्ला द्वितीयाद्या दग्धाः कृष्णा झपादिपु ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-धन, कुम्भ, मेष, मिथुन, सिंह और तुला राशिमें सूर्य होनेसे शुक्लपक्षकी द्वितीयादि एक २ तिथिके अन्तरमें दग्धा होती है और कृष्णपक्षकी द्वितीयादि मीनादिराशिमें सूर्यके होनेसे दग्धा होती है ॥ ५६ ॥

राश्योश्चन्द्रस्य च रे स्थित्या वाच्यं फलं बुधैः ।

याः प्रोक्तास्तिथयो दग्धा मेपादिषु च राशिषु ।

शुक्लास्ता विषमे राशौ समे कृष्णाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्व वचनमें जो दोदो राशिमं द्वितीयादि तिथि दग्धा कही है उनको चन्द्र और सूर्य-इन दोनों तिथिके द्वाराही जानना चाहिये इसमें विशेष यही है कि, विषम राशिमं शुक्लपक्षकी तिथि दग्धा होती है और समराशिमं कृष्णपक्षकी तिथि दग्धा होती है ॥ ५७ ॥

रात्रिषु चन्द्रस्थित्या दग्धायां व्यक्तत्वमाह ।

पृष्ठी मेपकुलीरयोर्हिमकरे कन्या युगे चाष्टमी

सिंहे वृश्चिकराशिगे च दशमी तौलौ मृगे द्वादशी ।

चापे चाथ झपे द्विका यदि वृषे कुम्भे चतुर्थी यदा

दग्धारुयास्तिथयो वदन्तिमुनयस्त्याज्याः सदा कर्मसु ॥ ५८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—राशिमं चन्द्रके स्थित होनेसे जो तिथिदग्धा होती है अब उनको कीर्त्तन करते हैं। मेप और कर्क राशिमं चन्द्र होनेसे पृष्ठी तिथि दग्धा होती है इसी प्रकार कन्या और मिथुन राशिमं चन्द्रके होनेसे अष्टमी दग्धा होती है, सिंह और वृश्चिक राशिमं चन्द्रके होनेसे दशमी दग्धा होती है, तुला और मकर राशिमं चन्द्रके होनेसे द्वादशी दग्धा होती है, धन और मीन राशिमं चन्द्रके होनेसे द्वितीया दग्धा होती है और वृष और कुम्भराशिमं चन्द्रके स्थित होनेसे चतुर्थी तिथि दग्धा होती है। इन समस्त दग्धा तिथियोंको समस्त शुभकर्ममें परित्याग करना चाहिये इस प्रकार शुनिगणने कहा है ॥ ५८ ॥

अथावमत्रयहस्पर्शा ।

तिथ्यन्तद्वयमेको दिनवारः स्पृशति यत्र ॥ तद्भवत्यवमादिनं

त्रिदिनस्पृक्तिथित्रयस्पर्शनाद्द्वः ॥ ५९ ॥ ( १ )

अर्थ—अब अवम और त्रयहस्पर्शको कहते हैं एक दिनरात्रिके मध्यमें दो

( १ ) अवमत्रयहस्पर्शदिनमाह—तिथ्यन्तेति । एको दिनवारः एक एव वारास्तिथ्यन्तद्वयं यत्र दिने स्पृशति तद्दिनमवमसंज्ञकं भवति अहस्तिथित्रयस्पर्शनात् त्रिदिनस्पृग्दिनं स्यात् षट्हास्तिथित्रयं स्पृशति तद्दिनं त्रिदिनस्पृगित्यर्थः । यथा दण्डद्वयमेका तिथिस्तदनन्तरमपरदिनसुर्योदयावाधि समस्तदिनव्यापिनी चान्या तद्दिनमवमं स्यादिति । यत्र

तित्थियोंका अवसान होनेसे उस दिनको अवम ( २ ) कहते हैं और एक दिन रात्रिके मध्यमें तीन तित्थियोंका स्पर्श होनेसे उसको त्र्यहस्पर्श कहते हैं ॥५९॥  
आपिच ।

**द्वौ तित्थ्यन्तावेकवारे यत्र स स्याद्दिनक्षयः ॥ २६० ॥**

इति कीर्तिपात्रयोः ।

अर्थ-कूर्मपुराण और पद्मपुराणमें लिखा है कि, यदि एक दिनरात्रिके मध्यमें दो तित्थियोंका अन्त होय तब उसको दिनक्षय ( त्र्यहस्पर्श ) कहते हैं ॥२६०॥  
अन्यच्च ।

**एकस्मिन्श्रावणे त्वह्नि तित्थिनां त्रितयं यदा ।**

**तदा दिनक्षयःप्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम् ॥ ६१ ॥ ३ ॥**

इति वसिष्ठः ।

अर्थ-वशिष्ठने कहा है कि, श्रावणमासमें एक दिनके मध्यमें यदि तीन तित्थि हों तो उसको दिनक्षय ( त्र्यहस्पर्श ) कहते हैं; इस दिनमें माङ्गल्यके इतर वैदिक कर्म करनेसे सहस्रगुण फल प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

च दण्डद्वयमेका तित्थिरन्या च सप्तपञ्चाशद्दण्डात्मिका तदनन्तरमन्यातित्थियोगः अत-  
स्तिथित्रयस्पर्शात् त्र्यहस्पृगिति साम्प्रदायिकाः । वस्तुतस्तु दिनवार इत्यनेन वारप्रवृत्ति-  
कालात् परदिनसूर्योदयावाधितित्थ्यन्तद्वयस्पर्शोऽवमदिन स्यात् । त्र्यहस्पृग्दिनन्तु अह्नः  
सूर्योदयकालात् तित्थित्रययोगो यदा स्यात्तदा इत्यर्थः । तथाच गीटदेशे साङ्ख्येकदण्डा-  
दूर्ध्वं वारप्रवृत्तिः । तदनन्तर परदिनसूर्योदयावाधितित्थ्यन्तद्वयस्पर्शं तद्दिनमवम स्यात्  
यथा दण्डत्रयमेका तित्थिर्दण्डैकान्या च पट्टपञ्चाशद्दण्डात्मिका इति तथा यस्मिन् दिने  
सूर्योदयाद् वारप्रवृत्तेः पूर्वमेका तित्थिर्दण्डैकान्या च सप्तपञ्चाशद्दण्डात्मिका चेत्तस्मिन्-  
त्रेव दिनेऽन्यतित्थियोगः स्यात्तदा त्र्यहःस्पृक् तद्दिन स्यात् । तथा करणरत्नेश्वराचार्येण  
लिखितम् । “ अथमं तद्द्वारादिन तित्थ्यन्तद्वययोगि यत् । त्र्यहस्पर्शन्तु त्रितित्थिस्पर्शादी-  
दायिक विदुः ” इति । केचित्तु अह्नस्त्रयस्पर्शादितिपाठं कृत्वा व्याचक्षते अह्नस्त्रयस्पर्शा-  
द्दिनत्रयस्पर्शात् त्रिदिनस्पृक् तित्थिः स्यादिति पष्टिदण्डात्मिकतया वर्द्धमाना या तित्थिः  
सा त्रिदिनस्पृगित्यर्थः।एतच्च सम्प्रदायविरुद्धमाचाराविरुद्ध शास्त्रविरुद्धञ्च तथाच शूलपा-  
णिना एकादशीविवेके विष्णुरहस्यवचन लिखितम् । “एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे  
त्रयोदशी। त्र्यहस्पर्शकद्दहोरात्रमुपोष्या सा सदा तित्थिः । ” इति । तथाच राजमासंष्टे-  
‘एकस्मिन् श्रावणे त्वाह्नि तित्थिनाम्’ इत्यादि । “ त्र्यहस्पृग्दिवसश्चैव महापुण्यतमः  
स्मृतः । तित्थित्रयस्य सस्पर्शात्र्यहस्पृग्समुदाहनः ॥ ”

( २ ) जो तित्थि सूर्योदयके ( वारप्रवृत्तिके ) बाद कुछ समय रहकर यदि परतित्थि  
परदिन सूर्योदयके पूर्वकालपर्यन्त रहे तब उसको ‘ अवम ’ कहते हैं ।

( ३ ) साहस्रिक फलमिति माङ्गल्येतरवैदिककर्मपरमिति स्मार्त्तनोक्तम् ।

अपरञ्च ।

अधिमासे दिनपाते ( ४ ) धनुषि खौ भानुलङ्घिते मासि ।

चक्रिणि सुते कुर्यान्नो माङ्गल्यं विवाहञ्च ॥ ६२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें कहा है कि, अधिमासमें, दिनक्षयमें, सौरपौषमें, मलमासमें और श्रीहरिके शयनावस्थामें विवाहादि मङ्गलजनक कार्य न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

त्र्यहस्पृशन्नाम यदेतदुक्तं यत्र प्रयत्नः कृतिभिर्विधेयः ।

विवाहयात्राशुभपुष्टिकर्म सर्वं न कार्यं त्रिदिनस्पृशे तु ॥ ६३ ॥ ( ५ )

इति त्र्यहस्पर्शनिन्दा ।

अर्थ—जिस दिनमें त्र्यहस्पर्श कहा गया है, उस दिनमें विवाह और यात्रादि शुभ कर्मको पण्डितगण यत्नपूर्वक परित्याग करदेवें ॥ ६३ ॥

एकादिने सोदराणां विवाहनिषेधः ।

एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्नपि वासरे । ( ६ )

विवाहो नैव कर्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा ॥ ६४ ॥

इति बृहस्पतिः ।

अर्थ—बृहस्पतिने कहा है कि, “गर्ग मुनिके मतसे एक दिनमें एक गर्भसे उत्पन्न सहोदर वा सहोदर गणके मध्यम एकाधिक विवाह निषिद्ध है” गौडादि देशमेंभी इसी प्रकारही व्यवहार होता है किन्तु औडिष्यावासीगण उक्त वचनसे “वासरे” इस स्थलमें “वत्सरे” इसी प्रकार पाठ करके एकवर्षके मध्यमें एक गर्भसे उत्पन्न हुए दो भाईयोंका वा दो बहनोंका विवाह नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥

अपिच ।

एकस्मिन्दिवसे चैव सोदराणां तथैव च ।

युग्ममाद्वाहिकं वर्ज्यं कन्यादानद्वयं तथा ॥ ६५ ॥

इति मत्स्यसूक्ते महातंत्रे ।

( ४ ) दिनपाते दिनक्षये इति स्मार्त्ताः ।

( ५ ) त्र्यहस्पर्शनिन्दामाह—त्र्यहस्पृशामिति । त्र्यहस्पर्शदिनं यदुक्तं तत्र पण्डितैः प्रयत्नः कार्ययत्नेन तद्वर्जनीयमित्यर्थः । विवाहादि सर्वं शुभकर्म तत्र न कार्यमित्यर्थः ।

( ६ ) वासरे इत्यत्र वत्सरे इति औडिष्यीयगणाः पठन्ति व्यवहरन्ति च । इति उद्वाहत्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ।

अर्थ-मत्स्यसूक्त महातन्त्रमे भी लिखाहै कि, एक दिनमें दो सगे भाइयोंका विवाह निषिद्ध है और दो कन्या दानभी एक दिनमें न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गुणबाहुल्ये अल्पदोषस्य त्याज्यताकथनम् ।

न सकलगुणसम्प्लभ्यतेऽल्पैरहोभि-

र्बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु ।

प्रभवति हि न दोषो भूरिभावे गुणानां

सलिललव इवाग्नेः संप्रदीप्तेन्धनस्य ॥ ६६ ॥ ( × )

अर्थ-समस्तगुण अल्प ( थोड़े ) दिनमें नहीं प्राप्त होते हैं अतएव विवाहादि मङ्गलकार्यमें वह गुणयुक्त दिनका सुहूर्त रखने कारण प्रज्वलितकाष्ठ जिस प्रकार जलके बिन्दुसे निवारण होता है तिसी प्रकार वह गुणयुक्त दिनभी अल्पदोषसे दूषित नहीं होता है ॥ ६६ ॥

बहुगुणसत्त्वे गुरुतरैकदोषस्य निन्दाकथनम् ।

गुणशतमपि दोषः कश्चिदेकोऽतिवृद्धः

क्षपयति यदि नान्यस्तद्विराधी गुणोऽस्ति ।

घट इव परिपूर्णं पञ्चगव्येन सद्यो

मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥ ६७ ॥ ( ❀ )

अर्थ-एक बड़े दोषसेही सौ गुणोंका नाश होजाता है यदि दोषका विरोधी कोई गुण न होवै, जिस प्रकार पञ्चगव्यसे भराहुआ घट एक बूँदसे शराबके मिलनेसे ही दूषित होजाता है ॥ ६७ ॥

इति वंशावरेलीनिवासिकान्यकुब्जकुलभूपणभारद्वाजगोत्रेण त्रिपाठ्युपनामकेन

पण्डितबौकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीकया विभू-

षिते च ज्योतिषतत्त्वसुधाऽर्णवे विवाहप्रकरणनाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

× उपसहारमाह-नसकलेति । अल्पदिनेः सैर्गुणा न लभ्यन्ते तस्माद्विवाहादिमङ्गलकर्मसु बहुगुणयुक्त दिन योजयेत् । हि यस्माद् गुणानां भूरिभावे बहुत्वे दोषो न प्रभवति । दृष्टान्तमाह-स लिललव इति ।

( \* ) बहुगुणे सत्यपि एकरूपापि दोषस्य अतिगुरुत्वे निषेधमाह-गुणशतमिति । एकोऽप्यतिगुरुः कश्चिद्विरोधी गुणशतमपि नाशयति यदि तद्विरोधिविरोधी गुणोऽन्यो नास्ति विरोधिगुणे तिष्ठति सति गुरुदोषोऽपि न दोषावह इति । दृष्टान्तमाह-घटमिति । यथा पञ्चगव्येन पूरित घट सद्यस्तत्क्षणात् सुराविन्दुर्मलिनयति वरणे तृप्त्यर्थयोरिति वरणे षष्ठी । एष सर्वो विचारो मुर्यकर्मण्येव विवाहे तु केचित्पाणिग्रहणं मुर्य वदन्ति केचि

## तृतीयस्तरङ्गः ३.

अथ नववध्वागमनम् ।

युग्माङ्कबाणाद्रिदिने विवाहाद्द्वधागमः षोडशवासरान्तः ।

शुभस्तदूर्ध्वं विषमाब्दमासघत्नेषु यावन्नच पञ्चमाब्दम् ॥ १ ॥

अर्थ—अब नववध्वागमन कहते हैं विवाहके बाद सोलह दिनके मध्यमें युग्म दिनमें और अयुग्म दिनके मध्यमें नववें, पांचवें और सातवें दिनमें नववधूको पतिके घरमें लाना चाहिये । सोलह दिनके बाद पांच वर्षके मध्यमें अयुग्म वर्षमें अयुग्म मासमें और अयुग्म दिनमें नववधूको पतिके घरमें लावै ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

आरभ्योद्वाहदिवसात्पष्टे वाप्यष्टमे दिने ।

वधूप्रवेशः सम्पत्तौ दशमेऽथ समे दिने ॥ २ ॥

अर्थ—विवाहके दिनसे छठे, आठवें वा दशवें दिनमें अथवा अन्यान्य युग्म दिनमें नववधूको पतिके घरमें लानेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है ॥ २ ॥

अपरञ्च ।

वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने ।

नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले ॥ ३ ॥

अर्थ—विवाहके दिनसे पांचवें, सातवें, वा नववें दिनमें शुभग्रहके वारमें शुभलग्ने चन्द्र बलवान् होनेसे नववधूको पतिके घरमें लावै ॥ ३ ॥

प्रकारान्तरम् ।

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।

वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ ४ ॥

अर्थ—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा और स्वाति नक्षत्रमें, रिक्तारिक्त तिथिमें, मङ्गल, इतवार और बुधभिन्न वारमें नववधूको पतिके घरमें लाना चाहिये ॥ ४ ॥

ज्ञान्योऽन्यमुखावलोकनामिति । यथा राजमार्त्तण्डे—“ वृत्तदधिमधुपर्कप्राशनादग्निस्वास्ता-  
द्यादि शुभमशुभ वा पाणियोंगेऽङ्गनायाः । बहुमुनिमतमेतस्मिन्प्रदान प्रधान ह्यभयवदन-  
चन्द्रालोकन इत्यत्र केचित् ” इति । एतेन ह्ययमेव शुभलक्षणे कार्यामिति प्रतीम इति ।

माटेष्पणीक-भाषार्थसहितः ।

अथ बालबन्धः ।

ध्रुवमृदुलघुवर्गे विष्णुमूलानिलर्शे  
शनिशशिदिनवर्ज्यं गोद्विदेहोदयेषु ।  
उपचयगतपापे सत्सु केन्द्रत्रिकोणे  
सुतिथिकरणयोगे बालबन्धः शुभेन्दो ॥ ५ ॥ ( ❀ )



अर्थ-विवाहके बाद केशबन्धन शुभदिन कीर्तन करते हैं । उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुगाधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, आश्विनी, हस्त, श्रवण, मूल और स्वाति नक्षत्रमें शनि और सोमभिन्न वारमें वृष, मिथुन, कन्या, धन, और मीन लग्नमें, तीसरे, ग्यारहवें, छठे और दशमें स्थानमें स्थित पापग्रह होनेसे लग्नमें, चौथे, सातवें, दशवें, नववें और पांचवें स्थानमें शुभ ग्रह स्थित होनेसे शुभ तिथिमें, शुभ करणमें और शुभयोगमें चन्द्र शुद्ध होनेसे कामिनीके विवाहके बाद प्रथम केशबन्धन करना चाहिये ॥ ५ ॥

अथ द्विरागमनम् ।

वृत्ते पाणिग्रहे गेहात्पितुःपतिगृहं प्रति ।

पुनरागमनं वध्वास्तद्विरागमनं विदुः ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धतौ ।

अर्थ-अब द्विरागमनका मुद्रुत्त कहते हैं । विवाह होनेके बाद पिताके घरसे वधू पतिके घरमें दूसरीबार जो जाती है उसकोही पण्डितगण द्विरागमन कहते हैं ॥ ६ ॥

आपेच-

श्वश्रूं हन्त्यष्टमे वर्षे श्वशुरञ्च दशब्दिके ।

संप्राप्ते द्वादशे वर्षे पतिं हन्ति द्विरागमे ॥ ७ ॥ ( १ )

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-आठवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे मासकी मृत्यु होती है इसी प्रकार दशवें

(•) विवाहानन्तर केशबन्धमाह-श्रुवोति । ध्रुवगणादिनक्षत्रेषु शनिशशियार वर्ज्यित्वा अन्येषु वारेषु तत्र च ग्विष्णुरुजवारा आतिप्रशस्ताः यथा राजमार्त्तण्डे “ भवति पुत्रहवारे स्त्रीणां राल बालबन्धने पुरुषः । युवतिग्रहे हि युवती नपुंसके स्यान्नपुंस-कोत्पतिः ” । वृषद्वयात्मक लग्नेषु वृषमिथुनकन्याधनुर्मीनेषु लग्नाटुपचयपापे केन्द्रत्रिकोण स्त्रेषु सद्ग्रहेषु शुभे चन्द्रे शुभतिथिकरणयोगे बालबन्धः कार्यः ।

(१) “ षष्ठेऽष्टमे द्विदशवर्षश्चतुष्टये वाप्यष्टादशे वसुधुगे च चतुर्दशे वा । वर्षे यदा नववधूगमनञ्च शीघ्र वैजस्यत गमयति स्वपतिं स्वबन्धुम् ” इति ग्रन्थान्तरे ।

वर्षमें श्वशुरकी मृत्यु होताहै और बारहवें वर्षमें द्विरागमन होनेसे पतिकी मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

अपरञ्च ।

विवाहमासि प्रथमं वध्वा नागमनं यदि ।

तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माद्यब्दं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—विवाह जिस मासमें होताहै उस मासके मध्यमेंही जो बधू पतिके घरमें न आवे तभी पण्डितगणकर्तृक युग्मादि वर्षका विचार करना चाहिये ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

विवाहदिवसाद्यात्रा द्वितीयदिवसे शुभा ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य चिन्त्यं नैतद्विचक्षणैः ॥ ९ ॥

अर्थ—वचनान्तरमें लिखा है कि, विवाहके दिनसे दूगरे दिनमें यात्रा शुभ होती है और विवाहके एक मासके मध्यमें भी युग्मादिका विचार नहीं होताहै ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

स्त्रीशुद्ध्यालिषटाजसंयुतरवौ काले विशुद्धे भृगुं

संत्यज्य प्रतिलोमगं शुभदिने यात्राप्रवेशोचिते ।

त्यक्त्याहस्तु निरंशकंनववधूयात्राप्रवेशे पतिः

कुर्वादेकपुरादिपुप्रतिभृगोर्नेच्छन्ति दोषं बुधाः ॥ १० ॥ ( १ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकानामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, बधूके चन्द्रताराशुद्धि और काल-शुद्धि होनेसे सौर अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासके शुभदिनमें संक्रान्ति और पुरः शुकको त्यागकरके यात्रोचित नक्षत्रमें नववधूको यात्रा करावे । पनि यदि स्वयं नववध्वागमन करावे तो पुरः शुकादिदोषको ग्रहण न करना चाहिये ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

पैत्र्यागारे कुचकुसुमयोः संभवो वा यदि स्यात्-

कालः शुद्धो न भवति यदा सन्मुखो वापि शुकः ।

( १ ) “ भृगो सन्मुखे सस्थिते वाथ दक्षे न गच्छेन्नवोटा शिशुगोर्भेर्णा च । क्रजेदेव वन्ध्या भवेत्ता नवोटा शिशुमृत्युमामोत्वगर्भा सगर्भा ॥ ” इति ग्रन्थान्तरे ।



मेपे कुंभेऽलिनि च न भवेद्भास्करश्चेत्तथापि

स्वामी भद्रेऽहनि नववधूं वेशयेन्मन्दिरं स्वम् ॥ ११ ॥ (२)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—यदि पिताके घरमें रमणीके दोनों स्तन विकसित होजाय तो कालशुद्धि न होनेसेभी पुरः शुक्रादि दोष न विचार करके शुभ दिनमें उसका स्वामी स्वयं नववधूको अपने घरको लेजाय । वैशाख, फाल्गुन वा अग्रहायण मास न होने-सेभी कोई दोष नहीं होता है ॥ ११ ॥

अपिच ।

भर्तुर्गोचरशोभने दिनुपतौ नास्तं गते भार्गवे

हित्वा च प्रतिलोमगा बुधसितौ जीवस्य शुद्धौ तथा ।

सूर्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णोत्तरे

चानिता गुणशालिनी नववधूनिंत्योत्सवामोदिता ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पतिके गोचरमें सूर्य और वृहस्पति शुद्ध होनेसे सौ अग्रहायण, फाल्गुन वा वैशाखमासमें, शुक्लपक्षमें, और शुभदिनमें सर्वदा उत्सवयुक्ता और आमोदान्विता गुणशालिनी भार्याको द्विरागमन करावे, किन्तु शुकके अस्त होनेसे अथवा बुध वा शुक सम्मुख होनेसे द्विरागमन निषिद्ध होता है ॥ १२ ॥

पुनरपिच ।

एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राष्ट्रविष्टवे ।

पतिना नीयमानायाः पुरःशुको न दुप्यति ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—सन्मुखमें स्थित शुकके प्रतिग्राम कहते हैं यथा एक ग्राममें वा चतुःशालाके मध्यमें अथवा दुर्भिक्षसमयमें अथवा राजविष्टव होनेमें पति यदि पत्नीको लेजाय तो उसमें सम्मुख शुक होनेसेभी दोष नहीं होता है ॥१३॥

अन्यच्च ।

काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वादित्याङ्गिरःसु च ।

भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुको न दोषभाक् ॥ १४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जिसका काश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अदिति, अङ्गिरा, भारद्वाज वा वात्स्य-

( २ ) “ वैश्वे गृहे नेत्तु चपुष्पसन्नातः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसम्भव । भृग्वाङ्गिरो-  
वात्स्यवसिष्ठप्रशपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा ” । इति ग्रन्थान्तरे ।

गोत्र होय उसके गमनकालमें सम्मुखस्थ शुक्र दोषभागी नहीं होता है ॥ १४ ॥  
अपरञ्च ।

मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभान्विते ।

गोचरादित्यशुद्धौ च पत्युः शुद्धौ बृहस्पतौ ॥

वध्वा द्विरयनं शस्तं मासेष्वन्येष्वनिष्टदम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें द्विरागमनके विषयमें कहा है कि, अग्रहायण फाल्गुन वा वैशाख मासके शुक्लपक्षमें शुभनक्षत्रवारादियुक्त दिनमें वधूके गोचरमें सूर्य शुद्धि और पतिके गोचरमें बृहस्पतिशुद्धि होनेसे नववधूका द्विरागमन शुभ होता है और उक्तमास भिन्न अन्यान्य मासमें द्विरागमन करानेसे अनिष्ट होता है १५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुष्वप्युत्तरारेवती-

तारानायकरोहिणीषु शुभदे मेपालिकुम्भे रवा ।

वारेष्विज्यसितेन्दुवित्सु शुभदे तारे प्रशस्ते विधौ

कन्यामन्मथमीनतौलिमृगभे स्यादङ्गनाड्यागमः ॥ १६ ॥ (१)

इति प्रचेताः ।

अर्थ—प्रचेताने कहाँ है कि, पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, धनिष्ठा; उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर और रोहिणी इन समस्त शुभनक्षत्रोंमें सौर वैशाख, अग्रहायण और फाल्गुनमासमें, बृहस्पति सोम और बुधवारमें, शुभतारामें, चन्द्रशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन मीन मतान्तरमें, कुम्भ, तुला और मकर लग्नमें नववधूका द्विरागमन शुभ होता है ॥ १६ ॥

अन्यञ्च ।

पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुत्रीण्युत्तराण्यश्विनी-

रोहिण्यः शशलाञ्छनोऽपि शुभदो मेपालिकुम्भे रवा ।

देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे ताराप्रशस्ते बुधः

कन्यामन्मथमीनभे नववधूयानं मृगे तौलिके ॥ १७ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखा है कि—पुष्य, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु-

(१) “ तौलिकुम्भे मृगभे ” इति पाठान्तरम् ।

धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तमभाद्रपदा, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिर इन नक्षत्रोंमें, सौर वैशाख, अग्रहायण वा फाल्गुनमासमें वृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमें ताराशुद्धि होनेसे कन्या, मिथुन, मीन, मकर और तुला लग्ने नववधूका द्विगमन प्रशस्त है ॥ १७ ॥

अपरञ्च ।

वृद्धे चास्तमिते शिशां भृगुसुते चन्द्रे च सूर्ये स्थिते  
वक्रे चापि गुरो तथातिचरिते लुप्ते च संवत्सरे ।  
वर्षे द्वादशके गुरो हरिगृहे पक्षे च शुक्लेतरे  
आनीता श्रमकाक्षिणी नववधूरत्यन्तदुःखप्रदा ॥ १८ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ—शुक्रके वार्द्धक्य, अस्त वा बाल्यावस्थामं चन्द्र और सूर्य एक गतिमें स्थित होनेसे, वृहस्पति सिंहराशिमें स्थित वक्रा, आतिचारी वा महातिचारी होनेसे, कृष्णपक्षमें द्वादशवर्षवयस्का, नववधूका द्विगमन करनेसे वह अत्यन्त दुःखदायिनी होती है । इस प्रकार पराशरने कहा है ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ओजोऽब्देऽलिषटाजगे दिनकरे गुर्वर्कचन्द्रे शुभे  
कन्यामन्मथतालिर्मानमृगभे युक्तोक्षिते सद्ग्रहेः ।  
देवाचार्यसितेन्दुसौम्यदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे  
मूलक्षिप्रचरध्रुवेषु मृदुभे वध्वा द्वितीयागमः ॥ १९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरकी रीतिसे द्विगमनका शुभ दिन कहते हैं, अयुग्मवर्षमें सौर अग्रहायण, फाल्गुन और वैशाख मासमें वृहस्पति, सूर्य और चन्द्र शुद्ध होनेसे कन्या, मिथुन, तुला, मीन और मकरलग्न शुभग्रहयुक्त वा शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे, वृहस्पति शुक्र, सोम और बुधवारमें शुद्धपक्षमें, मूल, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, गतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तमभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुगधा, मृगशिर और रेवती इन नक्षत्रोंमें नववधूका द्विगमन प्रशस्त है ॥ १९ ॥

अथ द्विगमने प्रशस्ततिथिकथनम् ।

द्वितीया तृतीया चैव पञ्चमी सप्तमी तथा ।

दशम्येकादशी प्रोक्ता त्रयोदशी शुभा तथा ॥ २० ॥

अर्थ—द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी तिथि द्विरागमनमें प्रशस्त हैं ॥ २० ॥

अथ निषिद्धतिथिकथनम् ।

नाष्टम्यां न च रिक्तायां नाद्यपष्टी च पूर्णिमा ।

द्वादशी चाशुभा ज्ञेया द्विरागमनकर्मसु ॥ २१ ॥ (\* )

अर्थ—अष्टमी, रिक्ता ( चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी ) प्रतिपदा, षष्ठी, पूर्णिमा और द्वादशी तिथि द्विरागमनमें अप्रशस्त हैं ॥ २१ ॥

अथ पितृगृहे भोजनानन्तरं पतिगृहे भोजननिषेधः ।

भुक्त्वा पितृगृहे कन्या भुङ्क्ते स्वामिगृहे यदि ।

दौर्भाग्यं जायते तस्याः शपन्ति कुलदेवताः ॥ २२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—विवाहिता कन्या पिताके घरमें भोजन करके यदि पुनः ( फिर ) पतिके घरमें भोजन करे तब दुर्भाग्यवती होती है और कुलदेवता उसको शाप देते हैं ॥ २२ ॥

अथाद्यरजोदर्शने शुभाशुभवारादिकथनम् ।

आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता ।

वेश्या मङ्गलवारे च बुधे सौभाग्यमेव च ॥ २३ ॥

बृहस्पतां पतिः श्रीमाञ्छुके पुत्रवती भवेत् ।

शनी वन्ध्यां विजानीयात्प्रथमं स्त्री रजस्वला ॥ २४ ॥

इति नारायणपद्धती ।

अर्थ—अब प्रथम रजोदर्शनका फल वर्णन करते हैं । रविवार ( इतवार ) में स्त्रीको प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह स्त्री विधवा होजाती है, इसी प्रकार सोमवारमें पतिव्रता, मङ्गलवारमें वेश्या और बुधवारमें सौभाग्यवती होती है, बृहस्पतिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे उसका पति अत्यन्त धनाढ्य होता है, शुक्रवारमें प्रथम रजोदर्शन होनेसे वह नारी पुत्रवती होती है और शनिवारमें प्रथम रजस्वला होनेसे वन्ध्यात्व प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मासकथनम् ।

ज्येष्ठे स्याद्विधवा नारी आषाढे बन्धुनाशिनी ।

(\* ) मासदग्धाविवाहप्रकरणे विलिखिता विष्टिभद्रा च सामान्यकाण्डे लिखिता दिग्दग्धां यात्राप्रकरणे वर्द्धयामि । एता ग्रहणीयाः ।

श्रावणे च मृतापत्या भाद्रे च बहुरोगिणी ।

आश्विने च मृतापत्या कार्तिके कुठनाशिनी ॥ २५ ॥

मार्गशीर्षे धर्मशीला पौषे च रतिविह्वला ॥ २६ ॥

माघे पतिव्रता नारी फाल्गुने बहुपुत्रिणी ।

चैत्रे च मदनोन्मत्ता वैशाखे प्रियवादिनी ॥ २७ ॥ ( ४ )

इति ज्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्येष्ठमासमें प्रथम रजस्वला होनेसे वह नारी विधवा होती है- इसी प्रकार आपाढमें बन्धुनाशिनी, श्रावणमें मृतवत्सा, भाद्रपदमें रोगिणी, आश्विनमें मृतवत्सा, कार्तिकमें कुलक्षयकारिणी, अग्रहायणमें धर्मपरायणा, पौषमें मदनोन्मत्ता, माघमें पतिव्रता, फाल्गुनमें बहुपुत्रवती, चैत्रमें कामुकी और वैशाखमासमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह नारी प्रियभाषिणी होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ तिथिकथनम् ।

प्रतिपत्सुभगां नारीं द्वितीया वातुलां प्रियाम् ।

तृतीया क्षेममारोग्यं चतुर्थी पतिवह्वलाम् ॥ २८ ॥

पञ्चमी सुभगां नारीं षष्ठी पररताञ्चरेत् ।

सप्तमी श्रीयुतां नारीमष्टमी पतिरोगिणीम् ॥ २९ ॥

नवमी विधवां नारीं दशमी च सुपुत्रिणीम् ।

एकादशी मृतवत्सां द्वादशी परगामिनीम् ॥ ३० ॥

त्रयोदशी चार्थपुत्रां चञ्चलाञ्च चतुर्दशी ।

नष्टेन्दुः कुरुते मृत्युं पौर्णमासी च सम्पदः ॥ ३१ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें तिथिफल कहते हैं । प्रतिपदा नियमें प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेसे सुभगा होती है, इसी प्रकार द्वितीयामें वातुला, तृतीयामें मङ्गल और आरोग्यलाभ, चतुर्थीमें पतिकी प्यारी, पञ्चमीमें सुभगा, षष्ठीमें परपुरुषमें प्रीति रखनेवाली, सप्तमीमें धनशालिनी, अष्टमीमें पतिकी रोग, नवमीमें विधवा, दशमीमें पुत्रवती, एकादशीमें मृतवत्सा, द्वादशीमें परपुरुषगामिनी, त्रयो-

( • ) “ मन्ध्याद्वये तथा रात्रौ पित्रगारे परालये । विष्टी तथैव भक्तान्त्या ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । कुष्णपक्षे चाशुभ स्यात्तारीणां प्रथम रजः ॥ ” इति मन्ध्यादी आद्यन्तु-फलम् ।

दशमीं धन और पुत्रयुक्ता, चतुर्दशीमें चञ्चला और अमावास्यामें मृत्यु होती है और पूर्णमासी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे सम्पत्तिलाभ होता है ॥ २८-३१ ॥

अन्यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी चैव तृतीया दशमी तथा ।

प्रथमे रजसि स्त्रीणां शुभाश्चान्येऽधमाः स्मृताः ।

अमारिक्ताष्टमीपष्टीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥ ३२ ॥ ग्रन्थान्तर ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, द्वितीया, पञ्चमी, तृतीया और दशमी तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे शुभ होता है, और अमावस्या, रिक्ता, अष्टमी, पष्टी, द्वादशी और प्रतिपदा तिथिमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ होता है ॥ ३२ ॥

अथ योगादिकथनम् ।

परिघस्य तु पूर्वाद्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥

सन्ध्या सूपपुत्रे विद्यादशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥ ३३ ॥ ( ❀ )

अर्थ—अथ योगका फल वर्णन करते हैं । परिघ योगके पूर्वाद्धमें, व्यतीपातमें, वैधृतियोगमें, सन्ध्याकालमें और ग्रहणसमयमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे अशुभ फल होता है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

विष्कम्भे दुर्भगा नारी वन्ध्या स्यादतिगण्डके ।

शूले शूलान्विता गण्डे वज्रे वेश्या भवेद्भ्रुवम् ॥ ३४ ॥

व्यतीपाते वैधृतौ च पतिघ्नी नात्र संशयः ।

परिघे स्यान्मृतापत्या व्याघाते चात्मघातिनी ।

शोषा यथानामफला नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥ ३५ ॥

अर्थ—विष्कम्भयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे वह स्त्री दुर्भगा होती है। इसी प्रकार अतिगण्डयोगमें वन्ध्या, शूलयोगमें शूल रोगान्विता गण्ड और वज्र योगमें वेश्या, व्यतीपात और वैधृति योगमें स्वामिघातिनी, परिघयोगमें मृतपुत्रा और व्याघातयोगमें प्रथमवार रजस्वला होनेसे आत्मघातिनी होती है; अन्यान्य-योगमें नामकेसे माने फल होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

( • ) मार्गफाल्गुनवैशाखे ज्येष्ठे च श्रावणे तथा । माघे कृष्णतरे पक्षे स्त्रीणामादि-रजःशुभम् । कृष्णपक्षे तु दशमी मध्यमं फलमादिजेत् ॥ इति कर्ममन्त्रिग्रन्थे ।

अथ नक्षत्रकथनम् ।

पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गरौद्रे

वेधव्यमस्या विदधाति नूनम् ।

मघे सशोकाप्यथ भेऽदितीशे

सा वन्धकीन्द्रानलभे दरिद्रा ॥ ३६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा नक्षत्रमे प्रथमवार स्त्री रजस्वला होनेमें निश्चयही विधवा होती है, इमी प्रकार मघानक्षत्रमें शोक हांता है, पुनर्वसु नक्षत्रमें जागिणी होती है और ज्येष्ठा और कृत्तिका नक्षत्रमे प्रथम बार रजस्वला होनेसे नारी दरिद्रा होती है ॥ ३६ ॥

पुष्पं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्या-

(\*) च्छान्तिं कुर्यादङ्गनानाञ्च पूर्वम् ।

तत्संयोगं बान्धवा वर्जयेयु-

र्यावद्भूयो दृश्यते शस्तभे तत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-निन्दित नक्षत्रमें यदि प्रथमवार नारी रजस्वला होय तब उस नारीके लिये शान्ति करनी चाहिये और जबतक शुभ नक्षत्रमें दूसरीवार रजस्वला न होय तबतक बान्धवगण उस स्त्रीके साथ स्पर्शादि सम्बन्धको परित्याग करेद्वै ॥ ३७ ॥

कृत्तिकादीनि ऋक्षाणि दिक्ष्वष्टसु लिखेद्बुधः ।

चत्वारि दिक्षु ऋक्षाणि कोणेषु च त्रयं लिखेत् ॥ ३८ ॥

पूर्वादिक्रमतो लेख्यं फलं तैरेव निर्दिशेत् ।

श्रीर्विन्ध्या सुभगा चैव विपुत्रा पुत्रिणी तथा ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

विधवा सर्वसम्पन्ना वेश्या चेति क्रमात्फलम् ।

(\*) “ मासदोषे शुभ तेषु वारदोषे च तण्डुलम् । नक्षत्रे च माणि दद्याद्योगे च तिलकाञ्चनम् । तिथिदोषे माणि दद्यात्त्रगणे ऋञ्चन तथा । लग्नदोषे व्रप दद्यात्प्रथमे स्त्री रजस्वला ॥ ”

## आद्ये रजसि सम्भूते स्त्रीणामृक्षफलं भवेत् ॥ ४० ॥ (४)

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-एक दिक्चक्र अङ्कित करके उसमें कृत्तिकादिकरके नक्षत्रांक आठों दिशामें स्थापन करे । चारों दिशामें चार २ नक्षत्र और चतुष्कोणमें तीन २ नक्षत्रांक अंकित करना चाहिये । कृत्तिकादि नक्षत्र पूर्वादिक्रमसे लिखे फलभी इसी प्रकार जानना चाहिये अर्थात् पूर्वादिशाके नक्षत्रोंके मध्यमें प्रथम वार रजस्वला होनेसे श्रायुक्ता होती है, इसी प्रकार अग्रिकोणमें होनेसे बन्ध्या दाक्षिणमें मौभाग्यवती, नैऋतमें पुत्रहीना, पश्चिममें पुत्रवती, वायुकोणमें विधवा, उत्तरमें नर्वसम्पन्ना और ईशान कोणास्थित नक्षत्रांकाक मध्यमें प्रथमवार नारी रजस्वला होनेसे बेड्या होती है । स्त्रियोंके प्रथमवार रजस्वला होनेमें नक्षत्रांका फल इस प्रकारसे कहा गया । आगे दिक्चक्र स्पष्ट लिखा है जिसके देखनेसेही पाठकगणका अनायाममें ज्ञात होजायगा ॥ ३८-४० ॥ इति नक्षत्रकथनम् ।

अथ दिक्चक्रम् ।

| ई.<br>रे. अ. म            | पृ.<br>कृ. रे. मृग. आ.     | अ.<br>पुन. पु डक्ष.           |
|---------------------------|----------------------------|-------------------------------|
| उ.<br>ध ज. पू. भा. उ. भा. | अथ दिक्चक्रम्.             | द.<br>म. पू. फा. उ. फा.<br>६. |
| वा.<br>उ. पा. डभि. अ.     | प.<br>ननु. ज्ये मू पू. पा. | न.<br>दि म्वा वि.             |

अथ गर्भाधानम् ।

तत्राद्यै पञ्चपर्वनिरूपणम् ।

### चतुर्दश्याष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा ।

( • ) अश्विन्यादिक्रमेण नक्षत्रफलम् । “ सुभगा चतुर्दशीला बन्ध्या पुत्रममन्विता । भर्मयुक्ता वनत्री च परसन्तानमोहिनी । सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेभ्रमरतामश । दीना प्रजायती चैव पुत्राद्या चित्रफारिणी । साध्वी प्रतिप्रिया नित्य सुपुत्रा वष्टचारिणी । स्वर्गोणि रता हिम्वा पुण्यपुत्रादिमंथना । नित्य धनचयासक्ता सुपुत्रा धान्यमयना । वृत्तां धात्रा पुण्यानीडमृक्षदेः क्रमात्फलम् ॥ ” इति ग्रन्थान्ते ।



पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥ ४१ ॥

स्त्रीतैलमांसभोगी च पर्वस्वतेषु वै पुमान् ।

विष्णुभोजनं नाम प्रयाति नरकं ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-अय पञ्चपर्व वर्णन करते हैं । विष्णुपुराणमें लिखा है कि, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और रविसंक्रान्तिको पञ्चपर्व कहते हैं इनमें जो मनुष्य स्त्रीसम्भोग तैलाभ्यङ्ग, वा मांसभोजन करता है, वह मनुष्य विष्णुभोजननामक नरकमें निश्चयही वास करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ।

नश्चाण्डालयोनिःस्यात्तलस्त्रिमांससेवनात् ॥ ४३ ॥ ( \* )

इति मारुतग्रहे ।

अर्थ-सारसेग्रहमें लिखा है कि; अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोंमें मनुष्य तैलव्यवहार, स्त्रीभङ्ग, वा मांसभोजन करनेमें चाण्डालयोनिमें प्राप्त होता है अतएव उक्त समस्त निषिद्ध दिनमें स्त्रीसेवनादि न करना चाहिये ॥ ४३ ॥

अथ निषेककालकथनम् ।

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।

तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्धयति ॥ ४४ ॥

अर्थ-रजस्वला स्त्री प्रथम दिनमें चाण्डालिनीके समान होती है द्वितीयदिनमें ब्रह्मघातिनिके समान होती है और तृतीय दिनमें रजकीनी (धोविन) के समान अस्पृश्यता रहकर चतुर्थ दिनमें शुद्ध होती है ॥ ४४ ॥

रामं दिनं परित्यज्य यावद्ब्रह्मति शोणितम् ।

तावदेव ऋतुः स्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः ॥ ४५ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके रजस्वला होनेकी अत्राधि मोलह गात्रिके मध्यमें मध्यम तीन दिन परित्याग करके ऋतुकाल जानना चाहिये ॥ ४५ ॥

( \* ) “ पूर्णानु योषिरपरिवर्जनीया ” । इति उत्तराश्विनीयामनपुगणम् । “ कृषे च योषां न समाश्रजे ” इति । “ योषिन्मवागृत्तियामुत्तगात् ” । इति उत्तराश्विनीयामनपुगणम् ।

चतुर्थे जायते पुत्रः स्वल्पायुर्गुणवर्जितः ।

विद्याधर्मपरिभ्रष्टो दरिद्रः कुशभोजनः ॥ ४६ ॥

अर्थ—रजस्वला स्त्री चौथे दिनमें स्नान करके पतिके साथ वास करसक्ती है, किन्तु उक्त दिनमें गर्भ धारण करके पुत्रप्रसव करनेसे वह पुत्र अल्पायुर्विशिष्ट, गुणहीन, मूर्ख, अधर्माचारी, दरिद्र होता है और उसको ह्लेकक भोजन प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

पञ्चमे जायते कन्या दुर्भगा नित्यदुःखिता ।

स्वल्पायुरसती वेश्या कुरूपा विधवा स्मृता ॥ ४७ ॥

अर्थ—पांचवें दिन गर्भधारण करनेसे कन्या होती है, वह कन्या दुर्भगा, चिर-दुःखिनी अल्पायुर्विशिष्टा, असती, वेश्या, कुरूपा और विधवा होती है ॥ ४७ ॥

षष्ठे च जायते पुत्रो न दोषी न गुणी तथा ।

मूर्खो दुःखी कुरूपश्च धनसन्ततिवर्जितः ॥ ४८ ॥

अर्थ—छठे दिनमें गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र दोषहीन, निर्गुण मूर्ख, दुःखभागी, कुरूप, धनहीन, और निःसन्तान होता है ॥ ४८ ॥

सप्तमे जायते कन्या दुःखिनी नायिका भवेत् ।

जीवन्ती सा मृता लोके धनधान्यविवर्जिता ॥ ४९ ॥

अर्थ—सातवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या उत्पन्न होती है वह कन्या दरि-द्रकी स्त्री और जीवन्मृताके समान धनधान्यसे हीना होती है ॥ ४९ ॥

अष्टमे जायते पुत्रः पितृवित्तविनाशकः ।

व्याधितो दुर्मुखश्च प्रायो निष्ठुरमानसः ॥ ५० ॥

अर्थ—आठवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र पिताके धनका नाश करनेवाला, व्याधियोंसे युक्त, दुर्मुख और निर्हय होता है ॥ ५० ॥

नवमे जायते कन्या मेधायुःपुत्रसंयुता ।

लक्ष्मीसमा भवेन्नारी स्वामिनी हितकारिणी ॥ ५१ ॥

अर्थ—नववें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है, वह कन्या मेधायुिनी, दीर्घायुयुक्ता, पुत्रवती, लक्ष्मीके समान और पतिके हितकारिणी होती है ॥ ५१ ॥

दशमे जायते पुत्रो धनधान्यमहेश्वरः ।

भाग्यवान्बहुशो विद्यामेधायुःपुत्रसंयुतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—दशवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र धनधान्यका स्वामी, भाग्यवान्, अत्यन्त विद्वान्, मेधायुक्त और पुत्रवान् होता है ॥ ५२ ॥

रुद्रे च जायते कन्या कुलद्वयमनोहरा ।

सती पुत्रवती साध्वी धर्मकर्महितैपिणी ॥ ५३ ॥

अर्थ-ग्यारहवे दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है, वह कन्या दोनों कुलोंको उज्ज्वल करती है और सती, पुत्रवती, साध्वी और धर्मकर्मम प्रीति रखनेवाली होती है ॥ ५३ ॥

द्वादशे जायते पुत्रो यशोविद्यादयान्वितः ।

धनी सुपुत्रयुक्तश्च मतिमालोकपालकः ॥ ५४ ॥

अर्थ-बारहवे दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र यशस्वी, विद्वान् दयाशील, धनी, सुपुत्रान्वित, बुद्धिमान और लोकपालक होता है ॥ ५४ ॥

त्रयोदशे च कन्या स्यात्कुलद्वयमनोहरा ।

साध्वी पुत्रवती धन्या धर्मलोकनिवासिनी ॥ ५५ ॥

अर्थ-तेरहव दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है वह कन्या दोनों कुलके उज्ज्वल करनेवाली, साध्वी, पुत्रवती और प्रशसनीया होकर धर्मलोकम वास करती है ॥ ५५ ॥

चतुर्दशे तु पुत्रः स्याद्बलवानृपसन्निभः ।

शुद्धवीर्ययशोराशिर्मेघालक्ष्मीसमन्वितः ॥ ५६ ॥

अर्थ-चोदहवें दिन गर्भ धारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र बलवान् राजाके समान, यशस्वी, मेधावी और लक्ष्मीयुक्त होता है ॥ ५६ ॥

भवेत्पञ्चदशे कन्या भूपानां कण्ठधारिणी ।

अर्द्धप्राणहरा पत्युः सती धर्मपरायणा ॥ ५७ ॥

अर्थ-पन्द्रहवें दिन गर्भ धारण करनेसे कन्या होती है वह भृपालप्रणयिनी, स्वामीकी अर्द्धाङ्गरूपा सती और धर्मपरायणा होती है ॥ ५७ ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च समयज्ञो महीपतिः ।

षोडशे जायते पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ (\*)

इति सारसंग्रहधृतउत्थानानि ॥

अर्थ-सोलहमे दिन गर्भधारण करनेसे पुत्र होता है, वह पुत्र धर्मज्ञ, कृतज्ञ,

(\*) इत्यादिष्वचनासारेण ऋतुनालावधिषोडशदिनमध्ये दशमे द्वादशे चतुर्दशे षोडशे वा निषेक उत्तम्य ॥ इति ।

भृपति, मत्स्यवादी और जितेन्द्रिय होता है ॥ ५८ ॥

अथ गर्भाधाने युग्मायुग्मदिनव्यवस्था ।

षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥ ५९ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-भगवान् याज्ञवल्क्यने कहा है कि, स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह गात्रिनक होना है तिनके मध्यमें युग्म रात्रियोंमें निपेक करना चाहिये ॥ ५९ ॥

अन्यच्च ।

स्त्रीणामृतुर्भवाति षोडशवासराणि

तत्रादितः परिहरेच्च निशाश्च तिस्रः ।

युग्मासु रात्रिषु नरा विपमासु नार्यः

कुर्यान्निपेकमथ तास्वपि पर्व वर्जम् ॥ ६० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-स्त्रियोंके ऋतुकालका समय सोलह दिनतक होता है, तिनके मध्यमें प्रथमके तीन दिन परित्याग करके अन्य तेरह दिनके मध्यमें रजोदर्शनावधि युग्मगात्रिमं गर्भधारण करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रिमं कन्या उत्पन्न होती है अतएव युग्म गात्रियोंमें निपेक करना चाहिये किन्तु पञ्चपर्वको परित्याग करेदे ॥ ६० ॥

अपरञ्च ।

एवं गच्छेत्स्त्रियं क्षामां मवां मूलञ्च वर्जयेत् ।

शस्त इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् ॥ ६१ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-मूल और मवा नक्षत्रको छोड़कर शुभ चन्द्रमें जाह्नग्लाघवादिद्वाते क्षीणा स्त्रीमें गमन करनेसे उत्तम लक्षणाकान्न पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥

प्रकारान्नगश्च ।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।

तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदात्तवे स्त्रियम् ॥ ६२ ॥

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-याज्ञवल्क्यने कहा है कि, युग्मगात्रिमं पुत्र और अयुग्म गात्रिमं कन्या उत्पन्न होती है अतएव पुत्रार्थी मनुष्यको युग्म गात्रिमंही स्त्रीगमन करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अपिच ।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्याधिके स्त्रियाः ॥ ६३ ॥

इति मनुः ।

अर्थ-भगवान् मनुजीने कहा है कि, पुरुषके शुक्र ( वीर्य ) अधिक होनेसे पुत्र और स्त्रीके शोणित अधिक होनेसे कन्या उत्पन्न होती है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

युग्मायामपि रात्रौ चेच्छोणितं प्रचुरं तदा ।

कन्या पुंवद्भवति शुक्राधिक्ये पुमान्भवेत् ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-युग्मरात्रिमंभी यदि स्त्रीका शोणित अधिक होय तब पुरुषचरित्रा कन्या उत्पन्न होती है और पुरुषका शुक्र ( वीर्य ) अधिक होनेसे पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

पीडाराशौ भौमदृष्टे शशाङ्के मासं मासं योपितामार्त्तवं स्यात् ।

त्र्यंशे शान्तं यच्च रक्तं जपामं तद्गर्भार्थं वेदनागन्धहीनम् ६५ ॥ (\*)

अर्थ-अनुपचयराशिमं स्थित चन्द्रग्रहपर मङ्गलकी दृष्टि होनेसे प्रतिमासमें त्रियोंकी जो रज उत्पन्न होती है, और जो शोणित तीन दिनमेंही उसके समान होजाय और जिस शोणितका वर्ण जपापुष्पके समान और वेदनागन्धादिविहीन होय तो उसमें निषेक करनेसे गर्भका सञ्चार होता है ॥ ६५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मासेशैः सितकुजगुरुरविशशिशानिसौम्यलग्नपशशानैः ।

( \* ) ऋतुनिरूपणमाह-पिड्वेति । कुजदृष्टे चन्द्रे प्रतिमासं स्त्रीणामुतुर्भवति । यथा सारावल्याम् । “इन्दुर्जल कुजोऽग्निर्जलमिश्रस्त्वग्निरेव पित्तं स्यात् । एव क्षुभिने पित्तेतेन रजः प्रवसंते स्त्रीषु ॥ ” अत्र च वालां वृद्धातुरां बन्ध्यां वर्जयित्वा तु योपित पीडाराशौ अनुपचयराशौ गते चन्द्रे भौमदृष्टे मासमासं यदात्तं रजो भवति तद्रजो गर्भार्थं गर्भक्षमं स्यात् यच्च रक्तं त्र्यंशे दिनत्रये शान्तं जपामं औरद्रुपुष्पसदृशवर्णं वेदनाहीनं गन्धहीनञ्च तच्च रजो गर्भक्षमं स्यादित्यर्थः । यथा सारावल्याम् “ अनुपचयराशिसंस्थे कुमुदाकरबान्धवे रुधिरदृष्टे । प्रतिमास युवतीनां भवति रजो जगुर्मुनयः ! एव यद्रवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत् । उपचयसंस्थे विफल प्रतिमास दर्शनं तस्य ” इति । एतेन पीडाराशौ गोचरदृष्टे चन्द्रे इत्यशुद्धमेव प्रलपितं सीभरिणेति ।

कल्पैःपीडागर्भस्य पीडितैः पतनमन्वथा पुष्टिः ॥ ६६ ॥ ( ५ )

अर्थ—गर्भमासाधिपतिद्वारा गर्भका शुभाशुभ कहते हैं—गर्भधारणसे प्रसव-कालपर्यन्त दशमासके स्वामी क्रमानुसार शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, रवि, चन्द्र, शनि, बुध, निपेककालकी लग्नेके स्वामी चन्द्र और सूर्य कहते हैं, अर्थात् प्रथम मासका स्वामी शुक्र, द्वितीयमासका स्वामी मङ्गल, तीसरे मासका स्वामी बृहस्पति, चौथे मासका स्वामी सूर्य, पांचवें मासका स्वामी चन्द्र, छठे मासका स्वामी शनि, नानवें मासका स्वामी बुध. आठवें मासका स्वामी निपेकलग्नाधिपति, नववें मासका स्वामी चन्द्र और दशवें महीनेका स्वामी सूर्य ग्रह होताहै. उक्त समस्त मासके स्वामी ग्रहोंके मध्यमें कोई ग्रह पापयुक्त होय तो मौम्यमासमें गर्भकी पीडा होतीहै, और यदि कोई ग्रह अस्तादि त्रिविधोत्पात वा उपरागादिद्वारा पीडित होय— तब उसी मासमें गर्भपात होजानेकी आशङ्का होती है और यदि कोई ग्रह शुभग्रह युक्त हो वा किसी ग्रहपर शुभग्रहकी दृष्टि होय तो गर्भ पुष्ट होकर शुभ होता है ॥ ६६ ॥

प्रशस्ताप्रशस्तेनक्षत्रकथनम् ।

पुंनक्षत्राणिचैतानितिष्योहस्तःपुनर्वसुः ।

अभिजित्प्रौष्ठपाञ्चैवानुराधापादश्चाश्वयुक् ॥ ६७ ॥

इति वशिष्ठः ।

अर्थ—वशिष्ठने कहाहै कि, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, अभिजित्, अनुराधा, पूर्वा-फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनी इनको पुंनक्षत्र कहतेहैं ॥ ६७ ॥

अपिच--

हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुमृगाशिरस्तथा पुष्यश्च ।

गर्भाधानादिकार्येषु पुंनमायं गुणः शुभदः ॥ ६८ ॥

इति ग्रन्थान्तर्ग ।

अर्थ—ग्रन्थान्तर्गमें लिखाहै कि; हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगाशिर और पुष्य इन पुंनक्षत्रक नक्षत्रोंमें गर्भाधानादिकार्य करनेमें शुभफल प्राप्त होनाहै ॥ ६८ ॥

( • ) मामनाथेर्गर्भस्य शुभाशुभमाह—मासेर्गिरति । यथाक्रम गर्भाधानात्प्रभृति दश-मासानामधिपैः मितादिभिः. कल्पैः पापग्रहयुक्तेर्गर्भस्य पीडा स्यात्तश्च पीडितैःअमन्त्वा-दित्रिविधोत्पातोपरागादिहनेर्गर्भस्य पातः स्यात् अन्यथा शुभग्रहयोगे शुभदृष्टे गर्भस्य पुष्टिः स्यादित्यर्थः । तथा च देवजगद्गुणभाषाम्—“ एते यदा शत्रुगृहे वसन्ति युद्धे जिता शत्रुभिरन्तगा वा ॥ अन्यत्र वा पीडितदेहभाजो गर्भस्य पाताय भवन्ति रोटाः ॥ ” तथा सारायण्याम् “ उत्पातकृद्गृहे तन्मामस्याधिपे पतन्ति गर्भः ” इति । अत्र च लग्नपर-निपेकलग्नाधिपः प्रथमलग्नाधिपश्च इति ।

अन्यच्च ।

ज्येष्ठा मूलमघाश्लेषारिवतीकृत्तिकाश्विनीः ।

उत्तरात्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्जं व्रजेदृतौ ॥ ६९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि; ज्येष्ठा, मूल, मघा, आश्लेषा, रेवती, कृत्तिका, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र और पर्व त्यागकरके ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सहवास करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अपरंच ।

पुष्यार्कचन्द्रशिवमूलपुनर्वसुः स्या-

दाषाढयुगमहारिभाद्रपदद्वयं च ।

एतानि पुंसि कथितानि शुभानि भानि

चान्येषु गर्भपतनादिभयञ्च भेषु ॥ ७० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पुष्य, हस्त, मृगशिर, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा इन सब पुंसंज्ञक नक्षत्रोंमें गर्भाधान शुभदायक होताहै । उक्त नक्षत्रोंके शिवाय अन्य समस्त नक्षत्रोंमें गर्भाधान होनेसे वह गर्भ पतन होजाताहै ॥ ७० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मूलर्क्षं स्मृतिदुष्टत्वाद्गर्भाधानेषु नेष्यते ।

तस्य पुंसवनादौ तु पुंसंज्ञत्वे प्रयोजनम् ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—मूलनक्षत्र स्मृतिके विरुद्ध होनेसे गर्भाधानमें प्रशस्त नहीं है किन्तु पुंसवनादिकार्यमें मङ्गलदायक पुंसंज्ञाके मध्यमें कहाहै ॥ ७१ ॥

अथप्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

नन्दा भद्रा भवेत्पुंसि स्त्रीषु पूर्णा जया स्मृता ।

रिक्ता नपुंसके त्वाहुस्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ७२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—नन्दा और भद्रा तिथि पुरुषकर्ममें प्रशस्त हैं, पूर्णा और जया तिथि

स्त्रीकर्ममें प्रशस्त हैं, रिक्ता तिथि नपुंसक है अतएव उसको समस्त कर्ममें परित्याग करना चाहिये ॥ ७२ ॥

पापासंयुतमध्यगेषु दिनकृच्छ्रप्रक्षयास्वामिषु  
तद्द्यूनेष्वशुभोज्झितेषु विक्रुजे छिद्रे विपापे सुखे ।

सद्युक्तेषु, त्रिकोणकण्टकविधुष्वायत्रिपष्टान्विते

पापे युग्मनिशास्वगण्डसमये पुंशुद्धितः (१)सङ्गमः ॥७३(२)

अर्थ—यदि सूर्य, लग्न और चन्द्र पापग्रहयुक्त न हों, पापग्रहके मध्यमें स्थित न होय, सूर्य, लग्न और चन्द्रके सातव स्थानमें पापग्रहका वासस्थान न होय, आठवें मङ्गल अथवा चौथे पापग्रहमें युक्त न होय, और राशि, लग्न और लग्नके पांचवें, नववें, चौथे, सातवें और दशवें स्थानमें शुभग्रह होय और लग्नके ग्यारहवें, तीसरे और छठे स्थानमें पापग्रह स्थित होय तो युग्मरात्रियोंमें गण्डनक्षत्र त्याग करके पुरुष चन्द्रशुद्धि होनेसे गर्भाधान करै ॥ ७३ ॥

( १ ) “कन्यानक्षत्रशुद्धौ स्याद्विवाह शुभकृन्वृणाम् । पश्चाद्दर्शुर्विशुद्ध्या तु यात्रापुष्पोत्सवादयः ॥” इति ज्योतिस्तत्त्वे । “विवाहकार्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ । अन्यानि कार्याणि धनस्य शुद्धौ पत्न्यौ विहीने प्रमदात्मशुद्ध्या ॥” इति अन्यान्तरे विरुद्धवचनमास्ति ।

( २ ) निषेकमाह—पापेति । रविलग्नचन्द्रेषु पापायुक्तेषु तद्द्यूनेषु तेषा रविलग्नचन्द्राणां सतमेषु पापवर्जितेषु लग्नस्य छिद्रेऽष्टमस्थाने विक्रुजे कुजरहिते सति लग्नस्य सुखे चतुर्थे पापराहिते सति । सौभरिस्तु तेषां छिद्रे विशुज इति । तत्र निरुपाधिद्वितीयादिशुद्धौ लग्नस्यैव द्वितीयादिवाचको नान्यस्योति । तथाच सारावल्याम् “होराष्टमे क्षितिमुते त्रिपते गर्भे, सहजनन्येति” ॥ सद्युक्तेष्विति लग्नस्य त्रिकोणे नवपञ्चमे केन्द्रे चन्द्रे च शुभग्रह युक्त इत्यर्थः । अत्र च सौभरिणासङ्ग्रेष्विति षाठ कृत्वा सङ्ग्रेषु चानुपहतलग्नेषु त्रिकोणकण्टकस्थेषु चन्द्रेष्विति व्याख्यातम् । एष च इन्द्राशनाभ्यासनप्रमादः । यतो राजमार्तण्डे “केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभे समेते । पापैस्त्रिणाभारिगति प्रयायात्पुजन्मयोगेषु च सम्प्रयोगम् ॥” तथा ब्रह्मजातके—“शशाङ्कलग्नोपगते शुभमहोत्तराशोणायार्थसुखास्वप्नरिचयते । तृतीयलाभारिगतिश्च पापे, सुखी च गर्भो रविणा निरीक्षितः ॥” इति । तथा पापग्रहे लग्नस्यायत्रिपष्टगते माति युग्मरात्रौ यथा मनुः “मनुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रय षोडश स्मृता । तासामावाश्वनघ्नस्तु निन्दितेकादशी च या । त्रयोदशी च शेषा” स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः । युग्मासु पुत्रा जायन्ते त्रिषोडश युग्मासु रात्रिषु ॥” तथा “पंचवर्गं ब्रजेनेना तदती रतिकान्यया” इति । गण्डसमयवर्जयित्वा पुशुद्धितः पुसश्चन्द्रशुद्ध्या सङ्गमः कार्य इत्यर्थः । तथा सारावल्याम्—“उपपयमवने शशशृङ्घो गुरुणा सुहादिरयवाती । पुसां कगेति योग विशेषतः शुकसदृष्टः ॥” इति ।



अथ गण्डपादवर्जनम् ।

मूलमघाश्विनीनामाद्यं ज्येष्ठान्त्यसार्पाणाम् ।

अन्त्यं गण्डपदं त्यक्त्वा षोडशाहे ऋतौ व्रजेत् ॥ ७४ ॥

अर्थ—अब गण्डनक्षत्रको कहते हैं । मूल, मघा और आश्विनीके प्रथम चरणको और ज्येष्ठा, रेवती और आश्लेषाके चतुर्थचरणको गण्डनक्षत्र कहते हैं । गण्ड-नक्षत्र त्यागकरके सोलह गात्रियोंके मध्यमें गर्भाधान करे ॥ ७४ ॥

अशक्तौ तु भुजबलमाह ।

अन्त्यं पौष्णेन्द्रसर्पाणामाद्यं पित्रश्विमूलगम् ।

गण्डं दण्डत्रयं रूपातं सर्वकार्येषु गर्हितम् ॥ ७५ ॥

इति भीमपगक्रमे ।

अर्थ—अशक्त विषयमें भुजबल कहते हैं, भीमपराक्रममें लिखा है कि, रेवती, ज्येष्ठा और आश्लेषाके अन्त्य ( शेष ) तीन दण्ड और मघा आश्विनी और मूलके आद्य ( प्रथम ) तीन दण्डको गण्डनक्षत्र कहते हैं, इनको समस्त कार्यमेंही परित्याग करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अथ फलबन्धनम् ।

रोहिण्यन्तकचित्राहिविशाखशतवर्जिते ।

भे पुंग्रहाहे स्त्रीशुद्धया फलबन्धनमिष्यते ॥ ७६ ॥ (\*)

अर्थ—स्त्रियोंके प्रथम रजोदर्शन होनेसे ऋतुदानके बाद फलबन्धन करना चाहिये अब उसका शुभ दिन वर्णन करते हैं । रोहिणी, भरणी, चित्रा, आश्लेषा, विशाखा और शतभिषा इन समस्त नक्षत्रोंको छोड़के अन्य नक्षत्रोंमें मङ्गल रवि और बृहस्पति वागमें स्त्रियोंके चन्द्रताराशुद्धि होनेसे प्रथम ऋतुस्नानके बाद फलबन्धन करे ॥ ७६ ॥

पुमान्विंशतिवर्षश्चेत्पूर्णषोडशवर्षया ।

स्त्रिया संगच्छते गर्भाशये शुद्धे रजस्पपि ।

अपत्यं जायते भद्रं ततोऽन्यूनैः षडमं स्मृतम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—तीस वर्षका पुरुष यदि सोलह वर्षकी स्त्रीके साथ सम्भोग करे और

(\*) प्रथम ऋतौ रजमि चोपगते ऋतुस्नानान्तरं फलबन्धनं क्रियते । तद्विधिमाह—रोहिणीति । रोहिण्यादीवर्जिते नक्षत्रे पुंग्रहस्याहानि वारे रविशुभगुरुयोगे स्त्रीशुद्धयः स्त्रीणां चन्द्रताराशुद्धया फलबन्धनमिष्यते । ऋतुस्नानान्तु चतुर्थदिने पुष्पादिभिः कार्यं यथा राजमार्तण्डे—“शुभसौमन्थविदृढावेलापम्पत्रमुष्पचन्दनोपेतैः । सत्कलिनीफलपुष्पैः पुष्पेषु निशात्रये स्नायात् ॥” इति ।

स्त्रीके गर्भाशयमें वा शोणितमें कोई दोष न होय तो उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है, इसके इतर विशेष होनेसे अधम सन्तान उत्पन्न होती है ॥ ७७ ॥

अथ षोडशवर्षीयागर्भिणीचिन्ता ।

प्रसूता षोडशे वर्षे तत्र या धृतगर्भिका ।

मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितृश्चापि च सम्मतः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जो नारी सोलह वर्षकी आयुमें प्रसव करे वा गर्भधारण करे, तो उसकी पुत्रके साथ मृत्यु होती है, और इस पुत्रके पिताकोभी मृत्यु होजाती है ॥७८॥

अथ पुंसवनम् ।

कुर्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे त्रिथी

भाद्रापाढनृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे ।

अक्षीणश्च त्रिकोणकण्टकगते सौम्येऽशुभे वृद्धिषु

स्त्रीशुद्ध्या षट्युग्मसूर्यगुरुभेषूद्यत्सु मासत्रये ॥ ७९ ॥ (ॐ)

अर्थ—अब पुंसवन कहते हैं । गर्भाधानके दिनसे गिनकर तीसरे मासमें, शुभ-योगमें और शुभकरणमें, प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिर, पुष्य और आर्द्रा नक्षत्रमें; गवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारमें, यामित्रवेध, युतिवेध और दशयोगभङ्ग न होनेसे शुभ चन्द्रमें, और पूर्ण चन्द्रमें, लग्नके त्रिकोण स्थानमें और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होवें और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें अशुभ ग्रह होनेसे स्त्रीके चन्द्रतारा शुद्धि होनेसे कुम्भ, मिथुन, सिंह, धन और मीन लग्नमें पुंसवन करना चाहिये ॥ ७९ ॥

( • ) पुंसवनमाह—कुर्यादिति । शोभनयोगे शोभनकरणे च नैन्दाभद्राानथिा तथा च “नन्दा भद्रा भवेत्पुंसि स्त्रियां पूर्णा तथा जया । रिक्ता नपुंसकरय स्यात्तस्मात्तां परि-वर्जयेत् ॥ ” भाद्रपदाद्वये आपाढद्वये नृभे पुत्रामगणे हस्तमूलश्रवणपुनर्वसुमृगशिरः-पुष्येषु ईश्वरे आर्द्रायाञ्च नृदिने पुत्रहवारे रविकुजगुरुवारे अक्षीणे पूर्णे चन्द्रे वेधं यामि-त्रवेध दशयोगभङ्गवेधश्च विना शुभे गोचरशुद्धे सति लग्नात् केन्द्रत्रिकोणस्थे शुभग्रहे पापग्रहे च वृद्धिगे उपचयस्थे स्त्रीशुद्ध्या स्त्रीणां चन्द्रताराशुद्धौ । तथा च ग्रन्थान्तरे “स्त्रीणां सर्वक्रियारम्भे भक्तुंगांचरशुद्धितः । यात्रापुंसवनोद्वाहे विशुद्धियोपितः सदा ॥” इति । कुम्भमिथुनसिंहधनुर्मीनलग्नेषु नामत्रये पुंसवनं कुर्यात् । एतीयमासःऽशक्तां षष्ठाष्टमासेऽपि कार्यम् । तथाच “मामे षष्ठेऽष्टमे वापि शुद्ध्या चन्द्रमतः सदा । अरिक्तायां तिथी शुभेऽथे पुंसवनं हितम् ॥” एतत्प्रनिर्गमं कर्तव्यम् । यथा राजमासकण्ठे—“ प्राग्व एतीयमासे स्फुरदिन्दुजलाकलापपक्षे च । पुंसवनं पुत्रेच्छुर्गर्भेर्गर्भे प्रकुर्यात् ॥” इति ।

अथ पञ्चामृतम् ।

रेवत्यश्विपुनर्वसुद्रयमरुन्मूलानुराधामघा

हस्ताद्युत्तरफल्गुभेषु च भृगो जीवाकवारै तथा ।

लग्ने चोभयशुद्धिगे सुनियतं संत्यज्य रिक्तां तिथि ( १ )

देयं मासि तु पञ्चमे शुभदिने पञ्चामृतं योपिताम् ॥८०॥(२)

अर्थ-अब पञ्चामृतका शुभ दिन कहते हैं । रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाति, मूल, अनुगधा, मघा, हस्त और उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रमें शुक्र, बृहस्पति और गविवारमें शुभलग्ने स्त्री और पुरुषके चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें गर्भवाग्ण करनेसे पाचव मासके शुभ दिनमें स्त्रियोंको पञ्चामृतपान करना चाहिये ॥ ८० ॥

अन्यच्च ।

पञ्चामृतं पञ्चममास एव अजद्वये चाम्बुनि पत्रपट्के ।

विरञ्चिपञ्चान्त्यचतुष्टयेषु शुक्रारसूर्येन्दुदिने शुभेन्दा ॥८१॥ (३)

अर्थ-पचनान्तरमें पञ्चामृतके विषयमें कहा है कि, गर्माग्नके दिनसे पाचव महीनेमें शुक्र, मंगल, गवि और सोमवारमें, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी हस्त, चित्रा, स्वाति, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, भर्गणी और कृत्तिका नक्षत्रमें चन्द्रशुद्धि होनेसे स्त्रियोंको पञ्चामृत पिलाना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ धटी ( चीखछ ) दानम् । ( ४ )

मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पाष्णद्वये धातुयुगे गुरुद्वये । मासे

च पष्टे च चतुष्टये स्त्रियां शुद्ध्या ज्ञमन्दाहवद्विधटी शुभा ८२ ॥ ( ५ )

अर्थ-अब धटीदान कहते हैं । मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त,

( १ ) लग्नक्षौद्रपशोभनेषु दान पाठान्तरम् । ( २ ) सुत्ररणे इति पाठान्तरम् ।

( ३ ) पञ्चमे मासि गर्भदोहद्वयं पञ्चामृत दीयते तस्य विप्रिमाह-रेवत्यश्विनी । रेवत्यादिनक्षत्रेषु शुक्रगुरुविभारे शुभे लग्ने उपचयशुद्धिगे पुत्रीशुद्धिगे च रिक्तां तिथिं त्यक्त्वा शुभदिने पञ्चममासे योपितां पञ्चामृत देयम् । याज्ञवल्क्य “ दोहद्वयप्रदानेन गर्भो दोषमनाश्रुयात् । वैरूप्य मरण नापि तस्मात्कार्यं प्रिय स्त्रियाः ॥ ” पञ्चामृतमुक्तं यथा “ दुग्धं मशरंश्चैव घृतं क्षीरं तथा मधु । पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वरुमेसु ॥ इति ।

( ४ ) प्राचीनसग्रहकृद्विरलिरिन्नत्वादप्रमाणमिति लक्ष्यते ।

( ५ ) पष्टे मासि गर्भक्षयार्थं ग्रन्थियुक्तं हृग्दिनात्क रत्नाखर धर्तिसत्तत्र नार्ददेशे निरुध्यते तस्य विप्रिमाह-मघाष्टक इति । मघाष्टकनक्षत्रे पूर्वाषाढादि त्रितये पुनर्वसुपुष्ययोः रेवत्य-

चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, रोहिणी और मृगशिरनक्षत्रमें, धन और मीन लग्नमें, पांचवें वा छठे महीनेके गर्भसमय स्त्रियोंके चन्द्रतारादि शुद्धि होनेसे बुध और शनि भिन्न वारमें गर्भकी रक्षाके निमित्त हरिद्राक्तग्रान्धियुक्त बघ्नाञ्चल स्त्रियोंके काटिदेशमें बांधना चाहिये उक्त बघ्नाञ्चलकोही धटी कहते हैं ॥ ८२ ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम् ।

पष्टे मास्यष्टमेऽह्नीज्यकुजदिनकृतां नन्दभद्रे तिथौ च  
मेत्रे मूले मृगाङ्के करपितृपवने पौष्णविष्णुत्रियुग्मे । ( १ )

तिष्याश्व्यादित्यरौद्रे युवातिहारिज्ञपे वृश्चिके वापि लग्ने  
चन्द्रे ताराऽनुकूले शुभमपि नियतं स्याच्च सीमन्तकर्म ॥ ८३ ॥

अर्थ—अथ सीमन्तोन्नयनका सुहृत् कहते हैं । गर्भाधानसे छठे वा आठवें महीनेमें बृहस्पति, मङ्गल और रविवारमें, प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी, द्वितीया, द्वादशी और सप्तमी तिथिमें; अनुराधा, मूल, मृगशिर, हस्त, मघा, स्वाति, रेवती, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्र-पदा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, अश्विनी, पुनर्वसु और आर्द्रा नक्षत्रमें, कन्या, सिंह, मीन और वृश्चिक लग्नमें, चन्द्र तारा शुद्ध होनेसे सीमन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८३ ॥

अन्यच्च ।

मृगाजराहिते लग्ने नवांशे पुंग्रहस्य च ।

केचिद्ब्रूवन्ति सीमन्तं तथा रिक्ततरे तिथौ ॥ ८४ ॥

अर्थ—कोई २ पंडितोंने कहा है कि, मकर और मेषभिन्न लग्नमें, रवि, मङ्गल और बृहस्पतिवारके नवांशोंमें, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें गर्भवती स्त्रियोंका सीमन्तो-न्नयन करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

( २ ) मासेशे प्रबले शुभेक्षितविधौ मासे च पष्टेऽष्टमे

—रिक्तयो रोहिणीमृगशिरसौ गुरुदये धनुर्मानलग्नेपष्टे चतुष्टये मासे त्रियाञ्चन्द्रताराशु-  
द्धना उपशान्तवार त्यक्त्वा जपटीदानकर्म शुभमित्यर्थः । इति ।

( १ ) त्रियुग्मे फाल्गुनीद्वये आपादद्वये भाद्रपदद्वये चेत्यर्थः ।

( २ ) मासाधिपास्तु सिनकुजगुरुविशिशिनिसीम्पलपशशनिनाःनिषेकदिनसावधि  
माम गृहीत्या मासाधिपा गणनीयाः ।

भेत्रे पुंसवनोदितक्षसहिते रिक्ताविहाने तित्थौ ।

सामन्तोन्नयनं मृगाजरहिते लग्ने नरांशोदये

योग्यं पुंसवनोदितं यदपरं तत्सर्वमत्रापि च ॥ ८५ ॥ ( ३ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-मासाधिपति ( महीनोंके मालिक ) ग्रहोंके बलवान् होनेसे; चन्द्रपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसे, छठे वा आठवें महीनेमें अनुराधा और पुंसवनोदित नक्षत्रोंमें रिक्ताभिन्न तिथिमें, मकर और मेषाभिन्न लग्नें, मिथुन, तुला, कुम्भ और कन्या लग्नेके नवांशोंमें, पुंसवनोक्त वारादिमें स्त्रियोंका सामन्तोन्नयन करना चाहिये ॥ ८५ ॥

अथ जातकप्रकरणम् ।

तत्रादौ लग्नमानम् ।

वेदोऽंगोः ४ । ७ खसुतेयुंगो ४ । ५० ग्रहभुजैर्वाणो ५ । २९

ऽश्विवेदैः ५ शरो ४३ वाणो वह्निगुणैः ५ । ३३ शरो ग्रहभुजैः

५ । २९ शूलानलैः सायकः ५ । ३७ ॥ वाणः शून्यकृतैः ५ ।

४ शरोऽग्नशशिभि ५ । १७ वृह्यग्निभिर्वेदको ४ । ३३

वह्निः सप्तशरै ३ । ५७ गुणै नगकृतै ३ । ४७ मेषादिमानं

सताम् ॥ ८६ ॥

अर्थ-अब मेषादि लग्नका मान कहते हैं, मेषलग्नका मान ४।७। चार दण्ड सात पल होता है, इसी प्रकार वृषका मान ४।५० चार दण्ड पचाश पल, मिथुनका मान ५।२९। पांच घडी उन्तीस पल, कर्कका मान ५।४१ पांच घडी इकतालिस पल, सिंहका मान ५।३३ पांच घडी तैतिस पल, कन्याका मान ५।२९ पांच घडी जन्तिस पल, तुलाका मान ५।३७ पाच घडी सैतीसपल,

( ३ ) मासेश इति । गर्भमासाधिपः पूर्वोक्तः तरिमन्प्रबले शुभदृष्टे चन्द्रे पष्ठेऽष्टमे वा मासे पुंसवनोक्तनक्षत्रे अनुराधायाश्च रिक्तान्यतिथौ मकरमेषव्यतिरिक्ते लग्ने नरांशोदये नरांशोर्निथुनतुलापटकन्याराशेर्नवांशे सामन्तोन्नयनं कार्यमित्यर्थः । यथा राजमार्तण्डे-  
“ मासे पष्ठेऽष्टमे वा बलिनि तदधिपे शीतगी चैष्टदृष्टे पुत्रामक्षोपयाने नरभवननवांशो-  
दये कामिनीनाम् । कार्यं सामन्तकर्म विदशपानिशुरी केन्द्रगे कौणगे वा क्रूरैः केन्द्रात्रि-  
कोणव्ययानिधनवाहिर्गर्भप्राप्तिं करोति ॥ ” यदपर पुंसवनोदित पुग्रहवारादि तत्सर्वं साम-  
न्तोन्नयने कार्यमित्यर्थः । एतच्च प्रथमगर्भ एव कार्यं नान्यत्र । यथा “ सकृत्सकृत्  
संस्काराः सामन्तेन द्विजस्त्रियः । य य गर्भं प्रसूयन्ते स गर्भः शुद्धिमर्हति ॥ ” देवाद्-  
कारणे सपुत्रापि सत्कर्त्तव्या । यथा राजमार्तण्डे “ नारी याऽकृन्सीमन्ता प्रसवेच्च  
कदाचन । क्रौडे निपाय तत्पुत्र पुनः संस्कारमर्हति ॥ ” इति ।

चुश्चिकका मान ५ । ४० पांच घड़ी चालीस पल, धनका मान ५ । १७ पांच घड़ी मत्रहपल, मकरका मान ४ । ३३ चार घड़ी तेतिस पल, कुम्भका मान ३ । ५७ तीन घड़ी सत्तावन पल और मीनलग्नका परिमाण ३ । ५७ तीन घड़ी सैंतालिस पल होता है ॥ ८६ ॥

अथ प्रसूतिज्ञानम् ।

सुप्रसूतिर्भवेच्चन्द्रे शुभग्रहयुतेक्षिते ।

दुर्ग्रहेक्षितयुक्ते च प्रसूतिर्दुःखभागिनी ॥ ८७ ॥

अर्थ—अब जातकप्रकरण कहते हैं । उत्पन्न हुए मनुष्यके फलफल जाननेके पूर्व उसकी माताके प्रसवसमयकी अवस्था जाननी चाहिये, अतएव उसको कहते हैं, यथा, चन्द्र शुभग्रहयुक्त होय वा उसपर शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे गर्भिणी सुखसे प्रसव करती है और यदि चन्द्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय वा पापग्रहके साथ होय तो गर्भिणी खी अत्यन्त कष्टसे प्रसव करती है ऐसा जानना चाहिये ॥ ८७ ॥

अथ लग्नज्ञानम् ।

यस्मिन्नक्षत्रे वसेद्भानुस्तदेव सप्तमेऽपि वा ।

यावद्विप्रहरं पश्चाद्दिवा द्वादशभिः पुनः ॥ ८८ ॥

ऊनविंशतिभे रात्रौ यावद्यामो वसेद्वयम् ।

चतुर्विंशतिभे पश्चाज्जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ८९ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—अब बालकके उत्पन्न होनेकी लग्न कही जाती है यथा,—सूर्य जिस जिस नक्षत्रमें स्थित होय अथवा उसका सातवां नक्षत्र जिस घरमें होय तो उसी स्थानमें लग्न होती है, यह नियम दोप्रहर दिनके मध्यमें जानना चाहिये । दो प्रहरके बाद मायंतक सूर्यके नक्षत्रमें बारहवां नक्षत्र जिस घरमें होय उसी घरमें लग्न होती है । इसी प्रकार अर्द्धरात्रिके मध्यमें सूर्यके नक्षत्रसे उन्नीसवें नक्षत्रमें लग्न होती है और ओप अर्द्ध रात्रिके मध्यमें सूर्यके नक्षत्रसे चौबीसवें नक्षत्रमें लग्न होती है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अन्यथा ।

यस्मिन्नक्षत्रे वसेद्भानुस्तदादिसप्तऋक्षके ।

द्वादशे सप्तदशे चैव तथैव पञ्चविंशतौ ॥ ९० ॥

पूर्वापराहयोगेन दिने रात्रौ यथाक्रमात् ॥ ९१ ॥

अर्थ—अब वचनान्तर्गी रीतिमें लग्ननिर्णय करते हैं । मनुष्यके जन्मसमय

सूर्य जिस नक्षत्रम होय तिसको आदि ले सातवें, बारहवें और सत्रहवें, तथा पचीसवें नक्षत्रमें दिनके समय पूर्वाह्न पगह्न योगसे, रात्रिसमय पूर्वरात्रि यथाक्रमसे पूर्वोक्तनक्षत्रोंकी लग्न तात्कालिक लग्न होती है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अपरश्च ।

चन्द्रे वा सप्तमे वापि ह्युभयत्रिकोणेऽपि वा ।

जातलग्नं न सन्देह इति ज्योतिर्विदो विदुः ॥ ९२ ॥

अर्थ—अन्य प्रकार कहते हैं । चन्द्रमा जिस राशिमें हो वह राशि वा चन्द्र-मामे सप्तम राशि, अथवा इन दोनोंसे ५ । ९ राशि निस्पन्देह जातलग्न होती है यह ज्योतिर्विद पंडितोंने कहा है ॥ ९२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

चन्द्रो राश्यधिपो वापि यत्र तत्सप्तमेऽपि वा

एषां त्रिकोणके वापि जातलग्नमुदाहृतम् ॥ ९३ ॥ ( १ )

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे कहते हैं । चन्द्रमाकी राशि वा चन्द्रगशीश जिस राशिपर हो अथवा उनसे सातवीं राशि यद्वा इनके त्रिकोण ५ । ९ स्थानम जो राशि हो वह जन्मलग्न निश्चय जानना ॥ ९३ ॥

अपि च ।

मेपेकुलीरतुलालिघटे प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु ।

पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥ ९४ ॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ—बृहज्जातकमें लिखा है कि, मेप, कर्क, तुला, वृश्चिक और कुम्भ लग्नमें उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पूर्व दिशामें वा उत्तर दिशामें होता है, धन, मीन, मिथुन वा कन्या लग्नमें उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर पश्चिमदिशामें जाने और वृष, मकर और सिंह लग्नम उत्पन्न होनेसे गर्भिणीका घर दक्षिण दिशामें जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

अथ गृहस्वरूपमाह ।

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिमुने दग्धं नवं शीतगौ

काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते चानेकशिल्पोद्भवम् ।

( १ ) “ चन्द्रराश्यधिपतिर्यत्र तत्रिकोणमथापि वा । तत्सप्तमे तृतीये वा जातलग्न तदेव हि ॥ ” प्रथमचरणे मराश्यधिपतिर्यत्रोति पाठान्तरमिति ग्रन्थान्तरे ।

रम्यं चित्रयुतं नवञ्च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं  
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वां वदेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ—जन्मसमय सूर्य बलवान् होनेसे जीर्णसंस्कृत घरमें प्रसव होता है, इसी-  
प्रकार मङ्गल होनेसे दग्ध घरमें, चन्द्र होनेसे नवीन घरमें, रवि होनेसे भग्नकाष्ठके-  
घरमें बुध होनेसे बहुशिल्पकार्यान्वित घरमें, शुक्र होनेसे मनोहर चित्रयुक्त नवीन-  
घरमें और बृहस्पति जन्मसमयमें बलवान् होनेसे सुदृढ ( मजबूत ) घरमें प्रसव  
होता है फलितार्थ यह है कि, चक्रमें स्थित ग्रहोंके बलसेही प्रसव होनेका घर  
निश्चय किया जाता है ॥ ९५ ॥

अन्यञ्च ।

मेघे चापमृगेन्द्रयोः किल शिशुः प्राचीशिरा जायते  
गोकन्यामकरेषु दक्षिणशिरा जातो भवेन्निश्चितम् ।  
मीने वृश्चिककर्कणोर्यदि तदा कौवेरमूर्द्धा भवेत्  
कुम्भक्षे घटयुग्मोर्यदि तदा पाश्चात्यमूर्द्धा यतः ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब बालकके मस्तक पतनसे लग्न निर्णय करते हैं । मेघ, धन और सिंह  
लग्नमें प्रसव होनेसे उत्त बालकका मस्तक पूर्व दिशामें होता है, इसी प्रकार वृष,  
कन्या और मकर लग्नमें उत्पन्न होनेसे दक्षिणदिशामें, मीन, वृश्चिक और कर्क  
लग्नमें उत्पन्न होनेसे उत्तर दिशामें और कुम्भ, तुला और मिथुन लग्नमें उत्पन्न  
होनेसे बालकका शिर पश्चिम दिशामें होता है ॥ ९६ ॥

अपरञ्च ।

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद्गहादसति वा विलग्नक्षात् ।  
दीपोऽर्काद्बुदयाद्गतिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ॥ ९७ ॥ ( क )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—बालकके जन्मसमय केन्द्रस्थानमें जो ग्रह होय वह ग्रह जिस दिशाका

( क ) जन्मकालसप्रत्ययार्थं वास्तुद्वारादिज्ञानमाह—द्वारमिति । वास्तुनि वास्तुविषये  
द्वारं निर्गमवर्त्म केन्द्रगतग्रहात् ज्ञातव्यं केन्द्रे यो ग्रहः ताद्दीशि निर्गमवर्त्मत्यर्थः । चतस्रु  
सप्तु बलिनो ग्रहस्य एवं द्वयोर्बल्यशात् द्वे अपि निर्गमवर्त्मनी ज्ञातव्ये केन्द्रे ग्रहे त्वसति  
साति लग्नक्षान्दिशीत्यर्थः । एव यस्मिन्गृहे जन्म तस्य द्वार चोद्भव्यम् । अर्कादीपो ज्ञातव्यः  
यादि लग्ने रविः स्थितस्तस्यां दिशि आदित्याद्दृढचरराशोर्दिशि सञ्चार्यमाणो दीप-  
वाच्यः । यादि आदित्याद्दृढस्थिरराशोर्दिशि तदा स्थिरो दीपो वाच्यः । आदित्याद्दृढान्-  
स्मकराशोर्दिशि चालिनः दीपः स्थिरश्च वाच्यः । तथाच बृहज्जातके “ स्नेहः शशाङ्ग-



स्वामी होय उसी दिशामें गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होता है यदि ( ख ) केंद्र-स्थानमें अनेक ग्रह होंय तब उनमेंसे जो ग्रह अधिक बलवान् होय उसकी दिशामें ही गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार होता है । यदि दो ग्रह समान बलके हों तब गर्भिणी स्त्रीकी घरके दो द्वार होतेहैं । और केन्द्रके स्थानमें यदि ग्रह न होंय तो जन्मलग्न जिस दिशाकी मालिक होतीहै उसी दिशामें गर्भिणी स्त्रीके घरका द्वार जानना चाहिये । सूर्यकी राशिसे दीपज्ञान होताहै अर्थात् सूर्य यदि किसी चर राशिमें स्थित हो तो उसी राशिकी दिशा अनुसार उसी दिशामें दीपक चलित होताहै । और सूर्य यदि किसी स्थिर राशिमें स्थित होय तब उसी राशिकी दिशानुसार दीपक स्थिरभावसे रहताहै । सूर्य यदि द्विचात्मक राशिमें होय तो उसी राशिकी दिशानुसार दीपक सञ्चालित और स्थिरभावसे रहताहै लग्नके भोगानुसार दीपककी बत्ती जाननी चाहिये अर्थात् लग्नके जितने परिमित अंशोंका भोग हो उतनेही परिमित दीपककी बत्ती जलती है । दीपकका स्नेह अर्थात् तैल घृतादि चन्द्रमाकी क्षीणता और पूर्णतासे जाना जाता है ॥ ९७ ॥

अथ दीपस्थितिज्ञानम् ।

द्वादशभागे विभक्ते वासगृहे व्यवस्थिते सहस्रांशौ ।

दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥ ९८ ॥

अर्थ-गर्भिणीके घरको द्वादश ( १२ ) भागमें विभक्त करके चरस्थिर और व्यात्मक राशिके मध्यमें जिस किसी राशिमें प्रसवसमय सूर्य ग्रह स्थित होय और उस राशिका स्वामी जो ग्रह होय तो उसी दिशामेंही दीपक सञ्चालित होताहै ९८ ॥

अथ वर्तिज्ञानम् ।

लग्नस्य यस्तु वर्णोऽपि निर्दिष्टस्तेन वर्तिरादेश्या ।

लग्नस्योदिताद्भागत्क्षीणो ज्ञेयो दशाभागः ॥ ९९ ॥

अर्थ-लग्नका जो वर्ण कहाहै उस वर्णके अनुसारही बत्तीका वर्ण होता है ।

—उदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्तक्षेत्राद्यैः” इति । तथार्कस्य बलावलादीपस्य उज्ज्वला-  
नुज्ज्वलत्व वदेदित्यर्थः । तथा उदयाद्वर्तिर्ज्ञेया लग्नभोगवशेन वर्तिर्द्वैगंधता वाच्या तथा  
चन्द्रात्स्नेहनिर्देशः तैल वाच्य चन्द्रस्य क्षीणत्वपूर्णत्वाभ्यांतेलस्यानल्पाल्पत्वं ज्ञातव्यम् ।  
अन्येषु चन्द्रस्यारूढराशेर्भोगात्स्नेहो वाच्य इति वदन्ति तदयुक्तम् । तथाच सारावल्याम्—  
“ यावल्लग्नद्रादित वा वर्तिर्द्वैगंधा तु तावती भवति । दीपः पूर्णः पूर्णं शशिनि क्षीणे  
क्षयस्तु तैलस्य ॥ ” इति ।

( ख ) लग्न और लग्नसे चौथे, सातवें स्थानको केन्द्र कहते है ।

और जन्मसमयमें लग्नके जितने अंश भुक्त हाजोतहे वहीके भी उतने अंश जल-जातेहैं ॥ ९९ ॥

अथ तैलज्ञानम् ।

इन्दोर्भागवशाद्राशेर्दीपे तैलस्य संस्थितिः ।

केचित्पूर्णादिभेदेन वदन्त्येवं मनीषिणः ॥ १०० ॥

अर्थ—प्रसवसमयमें राशिके जितने अंश भुक्त होकर चन्द्रके बाकी रहते हैं वीपकमें भी उतने अंश तेल जलकर बाकी रहता है- कोई २ पंडित कहते हैं कि, चन्द्रके पूर्णादि भेदडाग वीपकमें तैलकी स्थिति जानी जातीहै ॥ १०० ॥

अथ पदुर्गनिर्णयः ।

तत्रादी क्षेत्रकथनम् ।

कुजशुक्रबुधेन्द्रर्कसौम्यशुक्रावनभिुवाम् ।

जीवाकिराविजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादयः ॥ १ ॥

अर्थ—अब क्षेत्र और क्षेत्रोंके स्वामी ग्रहोंको कीर्तन करते हैं । मङ्गल, शुक्र, बुध, रवि, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति शनि शनि, बृहस्पति यही क्रमानुसार मेपादि द्वादश राशियोंके क्षेत्राधिपति होते हैं । अर्थात् मेपादि द्वादशराशि उक्त ग्रहोंके क्षेत्र (स्थान) हैं, यथा—मङ्गलका क्षेत्र मेष, शुक्रका वृष, बुधका मिथुन, चन्द्रका कर्क, सूर्यका सिंह, बुधका कन्या, शुक्रका तुला, मङ्गलका वृश्चिक, बृहस्पतिका धन शनिका मकर, शनिका कुम्भ और बृहस्पतिका क्षेत्र मीनराशि होती है ॥ १ ॥

अथ होराकथनम् ।

होरे विषमेऽर्केन्द्रोः समराशौ चन्द्रसूर्ययोः ॥ २ ॥ ( × )

अर्थ—अप होरा कहते हैं । राशिके (लग्नके) अर्द्धभागका नाम होरा है । विषम राशिका प्रथम होरा सूर्यकेभी द्वितीय होरा चन्द्रका होता है और समराशिमें प्रथम होरा चन्द्रकेभी द्वितीय होरा सूर्यका होता है ॥ २ ॥

अपिच ।

ओजःसु रवेः प्रथमा परा हिमांशोः

समे विपरीता इति सत्याचार्यः ॥ ३ ॥

अर्थ—सत्याचार्यने कहा है कि, ओज ( विषम ) राशिका प्रथम होरा सूर्यके ( × ) होरा गण्यई द्विपदननिर्दिष्टात् ।

मी द्वितीय होरा चन्द्रका होता है । और सम राशिमें इसके विपरीत अर्थात् प्रथम प्रथम होरा चन्द्रका द्वितीय द्वितीय होरा सूर्यका होता है ॥ ३ ॥

फलम् ।

सूर्यस्य होरायां तेजस्विनो भवन्ति

चन्द्रस्य होरायां मृदुवो भवन्ति ॥ ४ ॥

इति होराफलम् ।

अर्थ—सूर्यके होगमें उत्पन्न होनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है और चन्द्रके होगमें उत्पन्न होनेसे मनुष्य मृदु ( कोमल ) होता है ॥ ४ ॥

अथ द्रेक्काणकथनम् ।

द्रेक्काणाः प्रथमपञ्चनवपानाम् ॥ ५ ॥ ( १ )

अर्थ—अब द्रेक्काण कहते हैं । लग्नको तीन अंशमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम द्रेक्काण कहा है । प्रथम द्रेक्काणका स्वामी लग्नाधिपति ग्रह होता है, दूसरे द्रेक्काणका स्वामी लग्नसे पांचवें राशिका मालिक ग्रह होता है और तीसरे द्रेक्काणका स्वामी ग्रहके नववें राशिका मालिक ग्रह होता है ॥ ५ ॥

अपिच ।

राशोस्त्रिधा द्रेक्काणास्तत्पञ्चमनवमभवनपतयस्तु ।

तेषामधिपाः स्वद्रेक्काणग्रहा वलिनः ॥ ६ ॥

इति सत्याचार्यः ।

अर्थ—सत्याचार्यने कहा है कि, राशिको ( लग्नको ) तीन भागमें विभक्त करनेसे प्रथम द्रेक्काण लग्नके स्वामी ग्रहका होता है दूसरा द्रेक्काण लग्नसे पांचवें राशिके मालिक ग्रहका होता है और तीसरा द्रेक्काण नववें राशिके स्वामी ग्रहका होता है, किन्तु इनके मध्यमें अपने द्रेक्काणका स्वामी ग्रहही बलवान् होता है ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

मीनकुम्भधनुर्भेषमृगकर्क द्वितीयके ।

वृषे द्वन्द्वे च भूसंख्ये कन्याद्यन्तौ भवेत्क्रमात् ॥ ७ ॥

वृश्चिके प्रथमे मध्ये द्रेक्काणे कन्यका भवेत् ।

अन्यस्मिन्पुरुषो जातो द्रेक्काणे मुनिनोदितः ॥ ८ ॥

अर्थ—लग्नके द्रेक्काणविशेषमें पुरुष और कन्याके जन्म कहते हैं । मीन, कुम्भ,

( १ ) द्रेक्काणा इति स्वग्रहस्थितराशिभिभाग्य द्रेक्काणमजा बहुवचननिर्देशात् तदधिपनिर्देशाच्च ।

धन, मेष, मकर और कर्क लघ्नके दूसरे द्रेक्षाणमें वृष, और मिथुन लघ्नके प्रथम द्रेक्षाणमें, कन्या लघ्नके प्रथम और तृतीय द्रेक्षाणमें और वृश्चिक लघ्नके प्रथम और द्वितीय द्रेक्षाणमें कन्या होती है, इनको छोड़कर और द्रेक्षाणोंमें पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति द्रेक्षाणकथनम् ।

जय नवाशकथनम् ।

मेषकेसरिचापानां मेषाद्याः स्युर्नवांशकाः ।

कर्किवृश्चिकमीनानां कर्कटाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९ ॥

तुलाकुम्भनृयुग्मानां तुलाद्याः कथिता इमे ।

मकरस्त्रीवृषाणाञ्च मकराद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ११० ॥

अर्थ—अब नवाश कहते हैं, यथाः—लघ्नमानको नौ भागोंमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम नवाश होता है । मेष, सिंह और मेषादि ( १ ) करके नवांशकी गणना करी जाती है । कर्क, वृश्चिक, और मीनके कर्कटादि करके नवांशकी गिने । तुला कुम्भ और मिथुनके नवांशको तुलादिसे गिने, और मकर, कन्या और वृषके नवांशको मकरादिसे गिनकर देखना चाहिये ॥ ९ ॥ ११० ॥

वर्गोत्तमकथनम् ।

चराणां सत्रिकोणानां तच्चराद्या नवांशकाः ।

राशिनां स्वनवांशो यः सवर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ ११ ॥

अर्थ—मेष कर्क तुला और मकर इन चार राशियोंको चरराशि कहते हैं । इन चर राशियोंके और इनके पाचवें और नववें राशिके नवांशको इन चरराशिसेही गिनना चाहिये । राशिका जो अपना नवाश हो उसको वर्गोत्तम कहते हैं ॥ ११ ॥

अपिच ।

चराणां प्रथमोऽंशः स्थिराणां पञ्चमस्तथा ।

ध्यात्मकानां तथा चान्त्यः स वर्गोत्तमसंज्ञकः ॥ १२ ॥

अर्थ—नर ( मेष, कर्क, तुला और मकर ) राशिके प्रथमांशकोही वर्गोत्तम

( १ ) मेष सिंह और धन इन तीनों लघ्नोंके नवांशको मेषमे गिने अर्थात् नौ भागोंमें विभक्त लघ्नका प्रथम भाग मेषाधिपति मंगलका, दूसरा भाग वृषाधिपति शुक्रका, तीसरा भाग मिथुनाधिपति बुधका—इत्यादि प्रकारसे नवांशको देखना चाहिये इति ।

कहते हैं । स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भराशिके पञ्चमांशको वर्गोत्तम कहते हैं और द्वात्मक अर्थात् मिथुन, कन्या, धन और मीन राशिके नवमांशको वर्गोत्तम कहते हैं ॥ १२ ॥

इति नवाशकथनम् ।

अथ द्वादशांशकथनम् ।

**स्वर्क्षे च मेपपूर्वाणां स्वर्क्षाद्या द्वादशांशकाः ॥ १३ ॥**

अर्थ—लग्नमानको द्वादश भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागका नाम द्वादशांश होता है मेपादिराशिके द्वादशांशको मेपादिकरके द्वादश राशिका स्वामी भोग करता है ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

**लग्नमानं व्यवस्थाप्य द्वादशस्वेव राशिषु ।**

**कृत्वा द्वादशभागांस्तु गणयेत्स्वगृहाद्दुधः ॥ १४ ॥**

अर्थ—अब द्वादशांशको अन्यप्रकारसे कहते हैं । लग्नमानको बारहजगह भाग करनेसे उसके एक २ भागको द्वादशांश कहते हैं, जिस लग्नके द्वादशांशका विचार करना हो, उसको अपने घरसे गिनना चाहिये अर्थात् जैसे मेपलग्नके द्वादशांशको मेपसे गिनै, वृष लग्नके वृषसे और मिथुन लग्नके द्वादशांशको मिथुनसे गिनना चाहिये, इत्यादि औरभी इसी प्रकार जानना ॥ १४ ॥

इति द्वादशांशकथनम् ।

अथ त्रिंशांशकथनम् ।

**कुजयमजीवज्ञसिताःपञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।**

**विषमेषु समक्षेधूत्क्रमतस्त्रिंशांशाः कल्प्याः ॥ १५ ॥**

अर्थ—अब त्रिंशांश कहते हैं । लग्नमानको त्रिंशत्भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम त्रिंशांश होता है, इस त्रिंशांशमें विषमराशिके प्रथम पांच अंश मङ्गलके होते हैं इसी प्रकार उनके बाद पांच अंश शनिके, आठ अंश बृहस्पतिके, सात अंश बुधके और शेषके पांच अंश शुकुके होते हैं । और समराशिके त्रिंशांशको विपरीत भावसे जानना चाहिये अर्थात् प्रथम पांच अंश शुकुके, इसी प्रकार उसके बाद बुधके, बृहस्पतिके, शनिके और सर्व शेषमें मङ्गलका त्रिंशांश होता है ॥ १५ ॥

इति त्रिंशांशकथनम् ।

अथ यामार्द्धकथनम् ।

आदौ दिनेशयामार्द्धस्तदन्ते तत्पराः क्रमात् ।

दिवसेषु पञ्चवृत्त्या पञ्चवृत्त्या तु रात्रिषु ॥ १६ ॥

इति सारमग्रेहे ।

अर्थ—अब यामार्द्ध कहते हैं । सारसंग्रहनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, दिनमान वा रात्रिमानको आठ भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध कहाहै । इसके प्रथम यामार्द्ध दिनमें होय वा रात्रिमें होय वह वाग्के स्वामीका होताहै । दिनमें द्वितीयादि यामार्द्ध वाग्के स्वामीसे गिनकर छठे ग्रहका होता है और रात्रिमें पाचवें ग्रहका होताहै । अर्थात् रविवारके दिनमें प्रथम यामार्द्ध सूर्यका होताहै इसी प्रकार दूसरा यामार्द्ध शुक्रका, तीसरा यामार्द्ध बुधका, चौथा यामार्द्ध चन्द्रका, पाचवां यामार्द्ध शनिका, छठा यामार्द्ध बृहस्पतिका, सातवां यामार्द्ध मङ्गलका और आठवां यामार्द्ध सूर्यका होताहै । रात्रिमें प्रथम यामार्द्ध सूर्यका, दूसरा यामार्द्ध बृहस्पतिका, तीसरा यामार्द्ध चन्द्रका, चौथा यामार्द्ध शुक्रका, पांचवां यामार्द्ध मङ्गलका, छठा यामार्द्ध शनिका, सातवां यामार्द्ध बुधका और आठवां यामार्द्ध सूर्यका होताहै । अन्यान्य वारमेंभी वारके स्वामीसे इसी प्रकार गिनकर यामार्द्ध जानना चाहिये ॥ १६ ॥

आपेच ।

द्युनिशोः पाडिषुकमाद्वारेशादूर्ध्वयामतः ॥ १७ ॥

इति सारमग्रेहे ।

अर्थ—दिनमें वाग्के स्वामीसे गिननेमें उः २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं और रात्रिमें वारके स्वामीसे पाच २ ग्रह अन्तरसे यामार्द्धके स्वामी होतेहैं ॥ १७ ॥

जन्यच्च ।

वारेशादूर्ध्वयामेषु रात्र्यहोः पञ्चपट्क्रमात् ।

अधिपाः स्युर्ग्रहास्तत्र यथार्काहे भवन्ति ते ॥ १८ ॥

स्वीज्येन्दुभृगुक्षमाजशनिज्ञरवयो निशि ।

रविशुक्रज्ञरात्र्यंशशनीज्यकुजभास्कराः ।

दिनेपूह्याः परेष्वेव तत्राध्यक्षाच्चतुर्ग्रहाः ॥ १९ ॥

इति सत्कृत्यमुत्तारयाम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुत्तारवर्तीनामक ग्रन्थमें लिखाहै कि, दिनमें हो वा रात्रिमें होय प्रथम यामार्द्धका स्वामी वारका मालिक ग्रह होताहै, वारके मालिक

ग्रहसे गिनकर पांचवें ग्रह द्वितीय यामार्द्धका मालिक होता है और दूसरे यामार्द्धका मालिक ग्रह तीसरे यामार्द्धका स्वामी होता है इत्यादि प्रकारसे रात्रिमें आठों यामार्द्धके मालिक जानना चाहिये । दिनमेंभी वारके स्वामीका प्रथम यामार्द्ध होता है; प्रथम यामार्द्धके स्वामी ग्रहसे गिनकर छठा ग्रह दूसरे यामार्द्धका मालिक होता है और दूसरे यामार्द्धके स्वामीसे गिनकर छठा ग्रह तीसरे यामार्द्धका मालिक होता है । अन्यान्य यामार्द्धके स्वामीभी इसी प्रकारसे जानना चाहिये । रविवारको रात्रिमें प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है, इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, तीसरे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र, चौथे यामार्द्धका स्वामी शुक्र, पांचवें यामार्द्धका स्वामी मङ्गल, छठे यामार्द्धका स्वामी शनि, सातवें यामार्द्धका स्वामी बुध और आठवें यामार्द्धका स्वामी सूर्य ग्रह होता है । दिनके प्रथम यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है । इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धका स्वामी शुक्र, तीसरे यामार्द्धका स्वामी बुध, चौथे यामार्द्धका स्वामी चन्द्र, पांचवें यामार्द्धका स्वामी शनि, छठे यामार्द्धका स्वामी बृहस्पति, सातवें यामार्द्धका स्वामी मङ्गल और आठवें यामार्द्धका स्वामी सूर्य होता है । प्रत्येक यामार्द्धके चार ग्रह मालिक होते हैं उन्हींको दण्डाधिपति कहते हैं । इसी प्रकारसे अन्यान्यवारके यामार्द्धके स्वामी जानना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ दण्डकथनम् ।

यामार्द्धाधिपसंख्यातो द्वितीयस्तु तदर्द्धतः ।

तदर्द्धात्तु तृतीयः स्यात्तदर्द्धात्तु तुरीयकः ॥ २० ॥

अङ्काभावे तु राहुः स्यात्तदर्द्धो वसुसंज्ञकः ।

भग्नाङ्कस्य परित्यागाद्दिवादण्डाधिपा यथा ॥ २१ ॥

रवौ राहुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वप्येवमादिशेत् ॥ २२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-ग्रह दण्ड ( घड़ी ) को वर्णन करते हैं, यामार्द्धको चार भागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागको दण्ड कहते हैं । दिनमें प्रथम यामार्द्धके स्वामीका दण्ड होता है, और इस यामार्द्धपतिको जिस अङ्कमें जानों उसके अर्द्धाङ्क-विशिष्ट ग्रह दूसरे दण्डका मालिक होता है, दूसरे दण्डका मालिक जिस अङ्कमें होय उसके अर्द्धअंकमें स्थित ग्रह तीसरे दण्डका मालिक होता है और तीसरे दण्डके मालिकको जिस अंकमें जाने उसके अर्द्धअंकमें युक्त ग्रह चौथे दण्डका मालिक होता है । जिस स्थानमें अंक न हो केवल शून्यही होय तो उसकी जगह आठ धरे और उसका मालिक राहु होता है अर्द्धसे भग्नांक होय, तो

उत्तको परित्याग कर देवे दिनमें उक्त नियमके अनुसार दण्डके स्वामी ग्रहोंको जानना चाहिये । सूर्यके यामार्द्धमें सूर्य, राहु, बुध और चन्द्र क्रमानुसार दण्डके स्वामी होते हैं, इसी प्रकार अन्यान्य यामार्द्धमेंभी दण्डके स्वामी जाने जाते हैं ॥ २०-२२ ॥

विशेषमाह ।

रविदनुजबुधाग्लौश्चन्द्रसुरासुरज्ञाः

कुजरविदनुजज्ञा ज्ञेन्दुसुरासुराश्च ।

गुरुशशिराविदैत्याः शुक्रभौमार्कदैत्याः

शानिकुजरविदैत्या दण्डदण्डे ग्रहाः स्युः ॥ २३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—अब दण्डाधिपतिका विवरण स्पष्ट प्रकारसे वर्णन करते हैं यथा,—दिनमें सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड सूर्यका होता है—इसी प्रकार दूसरा दण्ड राहुका, तीसरा दण्ड बुधका, चौथा दण्ड चन्द्रका होता है; चन्द्रके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड चन्द्रका, दूसरा दण्ड सूर्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होता है; मङ्गलके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड मङ्गलका दूसरा दण्ड सूर्यका, तीसरा दण्ड राहुका, चौथा दण्ड बुधका होता है; बुधके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड बुधका, दूसरा दण्ड चन्द्रका तीसरा दण्ड सूर्यका, चौथा दण्ड राहुका होता है; बृहस्पतिके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड बृहस्पतिका, द्वितीय दण्ड चन्द्रका, तृतीय दण्ड सूर्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होता है; शुक्रके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शुक्रका, द्वितीय दण्ड मङ्गलका, तृतीय दण्ड सूर्यका, चतुर्थ दण्ड राहुका होता है, शनिके यामार्द्धमें प्रथम दण्ड शनिका, दूसरा दण्ड मङ्गलका, तीसरा दण्ड सूर्यका और चौथा दण्ड राहुका होता है, इसी प्रकार प्रत्येक दण्डका मालिक एक २ ग्रह होता है ॥ २३ ॥

अथ सूक्तिकावच्छेपेण शिशोर्दिवादण्डज्ञानम् ।

दग्धवस्त्रं रवेर्दण्डे श्वेतञ्च शशिनस्तथा ।

भौमे सरत्तहारिद्रं बुधे छिद्रं नवांशुके ॥ २४ ॥

गुरोश्चित्रं भृगोश्छिद्रं छिन्नभिन्नं शनैश्वरे ।

राहोः शुक्रतरं जीर्णमिति दण्डस्य निर्णयः ॥ २५ ॥ ( ॐ )

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ—सूर्यके दण्डमें प्रथम होनेसे गार्भणीका पाग्धान दग्धवस्त्र होताहै इसी

( \*\* ) दण्ड जाननेके अनेक प्रकारके सूत्र हैं यथा—“शश्याद्यादृतिवेदं मास-  
शश्यामेव ५ । एकीकृत्वापनिदेत्वा दिवा रात्री तु सनाभिः ॥” इति अन्यान्तरे ।



मकार चन्द्रके दण्डमें शुक्र वस्त्र, मङ्गलके दण्डमें रक्तवर्णयुक्त हारिद्रेयवस्त्र, बुधके दण्डमें छिद्रयुक्त नूतनवस्त्र, बृहस्पतिके दण्डमें चित्रितवस्त्र, शुक्रके दण्डमें छिद्रयुक्त वस्त्र, शनिके दण्डमें छिन्नवस्त्र और राहुके दण्डमें गर्भिणी स्त्री प्रमवसमय शुक्रतर अथच जीर्णवस्त्र पहिरे होती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति दिग्दण्डज्ञानम् ।

अथ रात्रिदण्डज्ञानम् ।

यामार्द्धाधिपतेर्दण्डः प्राग्ज्ञेयो जन्मवाप्तरे ।

पडावृत्त्या क्रमेणैव निशादण्डाधिपा यथा ॥ २६ ॥

अर्थ—अब रात्रिके दण्डाधिपाति ग्रहोंको कहते हैं । रात्रिके प्रथम दण्डका स्वामी यामार्द्धाधिपाति होता है, यामार्द्धपातिसे गिनकर छः २ ग्रहके अन्तरमें द्वितीयादि दण्डके स्वामी होते हैं ॥ २६ ॥

अपिच ।

यस्यार्द्धयामस्तस्थैव प्राग्दण्डः समुदाहृतः ।

पट्पट्परीत्य रात्रौ तु त्रयो दण्डाधिपा यथा ।

रवौ भृगुर्बुधश्चन्द्रः परेष्वेवं प्रकल्पयेत् ॥ २७ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—जिसका यामार्द्ध प्रथम दण्डका स्वामी वही ग्रह होय, रात्रिमें दण्डके स्वामी ग्रहसे गिनकर छठा ग्रह दूसरे दण्डका मालिक होताहै, इसनियमसे तीसरे और चौथे दण्डका स्वामी जाना जाताहै । रात्रिमें सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्डका मालिक सूर्य होताहै, दूसरे दण्डका मालिक शुक्र, तीसरे दण्डका मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र होताहै । अन्यान्य यामार्द्धमें भी यही नियम जानना चाहिये ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

आदित्ये भृगुबोधनौ शशधरश्चन्द्रे शनीज्यौ कुजे

भौमेऽर्कः सितसोमजौ शशिसुते रात्रीशसौरीज्यकाः ।

जिवेङ्गाररवी भृगुर्भृगुसुते रोहिण्यचन्द्रान्तकाः

काले जीवमहीजचण्डाकिरणा रात्रौ च दण्डाधिपाः ॥ २८ ॥

इति सारसग्रहे ।

अर्थ—अब दण्डके स्वामीको स्पष्ट रीतिसे वर्णन करने हैं । सूर्यके यामार्द्धमें प्रथम दण्डका स्वामी सूर्य होताहै, दूसरे दण्डका मालिक शुक्र, तीसरे दण्डका

मालिक बुध और चौथे दण्डका मालिक चन्द्र ग्रह होता है इसी प्रकार चन्द्रके यामार्द्धमें चन्द्र, शनि, बृहस्पति और मङ्गल होता है, मङ्गलके यामार्द्धमें मङ्गल, सूर्य, शुक्र और बुध, होता है, बुधके यामार्द्धमें बुध, चन्द्र, शनि और बृहस्पति होता है, बृहस्पतिके यामार्द्धमें बृहस्पति, मंगल, सूर्य और शुक्र होता है, शुक्रके यामार्द्धमें शुक्र, बुध, चन्द्र और शनि होता है और शनिके यामार्द्धमें शनि, बृहस्पति, मंगल और सूर्य क्रमानुसार रात्रिदण्डके स्वामी होते हैं ॥ २८ ॥

अथ जन्मसमये पितुः परोक्षादिज्ञानम् ।

वाच्यं शिशोर्जन्म पितुः परोक्षं क्षपाकरे पश्याति नैव लग्नम् ।

चरास्थितेऽर्केऽष्टमधर्मगे वा जातःपरोक्षे विपरीतिवाच्यम् ॥ २९ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—पिताके असमक्षमें ( पीछे ) बालकका जन्म कहते हैं । यदि चन्द्रमाकी दृष्टि जातलग्नमें न होय और सूर्य चरराशिमें रहकर अष्टम वा नवमस्थायी होय तब उस लग्नमें जात बालक पिताके परोक्षमें जन्म हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ २९ ॥

लग्ने स्थिते वा दिननाथसूनौ यामित्रसंस्थेऽप्यथवा महीजे ।

चन्द्रे च शुक्रेन्दुजमध्यगे वा विदेशसंस्थे पितरि प्रजातः ॥ ३० ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—जातलग्नमें यदि शनैश्चर स्थित होय और मंगल इस लग्नके सातवें स्थानमें होवै तो बालकका जन्म पिताके विदेश समयमें होता है और जन्मकालमें शुक्र और बुधके मध्यमें चन्द्रमा स्थित होनेसे भी बालकके जन्मसमय उसका पिता परदेशमें था ऐसा जानना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ ( क ) जारज ( अन्यपुरुषजातसन्तान ) योगः ।

न लग्नमिन्दुश्च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समायुतम् ।

सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ३१

अर्थ—अथ अन्यपुरुषजात सन्तानका योग वर्णन करते हैं । यदि जन्मसमय

( क ) जारजयोगमाह—न लग्नमिति । गुरुर्वादि लग्नं चन्द्रश्च न निरीक्षते तदिको जारजयोगः स्यात् लग्ने दृष्टे सत्यपि रविपुक्तं चन्द्रं यदि गुरुर्न निरीक्षते तदा द्वितीयः अथवा लग्नं पश्यत् न वा पश्यत् यदि सार्कः शशी अन्यपापग्रहेण युक्तः स्यात्तदा बुधाः परजातमेव वदन्ति । तथा लघुजातके “पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति हीरां न चन्द्रमपि जीवः । पश्यति सार्कं नेन्दुं यदि जीवो वा परीर्जातः ” तथा जारजयोगान्तरयुक्तं “ द्वादशवाच्च द्वितीयायां सप्तम्याम् ” इत्यादि । इति ।

बृहस्पति लग्न और चन्द्रको न देखता होय तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होता है और यदि लग्नमें बृहस्पतिकी दृष्टि होय किन्तु रवियुक्त चन्द्रकी वह न देखे तब वह बालक अन्य पुरुषसे उत्पन्न होता है । लग्नमें बृहस्पतिकी दृष्टि होय या न होय रवियुक्त चन्द्र यदि अन्य पापग्रहके साथ एक घरमें स्थित होय तब वह बालक निश्चयही जारज होता है; इस प्रकारसे पंडितोंने इन तीन योगोंको कहा है ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

अजीवभागे ह्यनिरीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा ।

जातं परोद्भूतमिति बुवन्ति हारीतगर्गप्रमुखा मुनीन्द्राः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे जारजयोग कहते हैं । लग्नसे वा चन्द्रसे यदि बृहस्पतिका किसी प्रकार सम्बन्ध न होय तो उस बालकको अन्यपुरुषजात हारीत गर्गप्रभृति मुनिगणोंने कहा है ॥ ३२ ॥

अपरश्च ।

द्वादश्याञ्च द्वितीयायां सप्तम्यां भग्नऋक्षके ।

रविमन्दकुजे वारे जारजः स प्रकीर्तितः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अब प्रकारान्तरसे जारज योग कहते हैं । द्वादशी द्वितीया और सप्तमी तिथि, भग्नपादनक्षत्र और रवि शनि और भीमवार इसके अन्यतम तिथि, नक्षत्र और वार यदि एक समय हों और उसमें बालक उत्पन्न होय तो उस बालकको जारज (दुमरेकी सन्तान) कहत हैं इस जारजयोगका प्रतिप्रसव नहीं होताहि ३३ ॥

अथ जारजयोगभङ्गः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यवेश्मनि ।

तद्वेक्काणे नवांशे वा जायते न परेण सः ॥ ३४ ॥ (ख)

अर्थ—अब जारज योगके प्रतिप्रसवको कहते हैं । यदि चन्द्र बृहस्पतिके घरमें ( धन वा मीनराशिमें ) होय तो जारज योगमें बालक उत्पन्न होनेसे भी जारज नहीं होता है । और धन मीन भिन्न अन्य राशिमें—चन्द्र गुरुयुक्त होनेसे

(ख) जारजयोगभङ्गमाह—गुरुक्षेत्र इति । गुरुग्रहगते चन्द्रे सति न परेण जातः अन्यग्रहस्थे चन्द्रे गुरुयुक्ते सति न पण्ये जातः । तथा तद्वेक्काणे गुरुक्षेत्रेण गुरुनवांशे चन्द्र गुरुक्षेत्रगते न पज्जात इति । तथा “शशाङ्को जीवत्पुस्ततदशो वा भवेदादि । जीवक्षेत्रगतो चापि न जातः परतस्तदा ॥” एष च पूर्वोक्तस्यैवापत्तादः न तु द्वादश्याञ्चेत्यनेनोक्तयोगान्तरस्येति । इति ।

बालक अन्यसे जात नहीं होता है और बृहस्पतिके द्रेक्काणमें वा बृहस्पतिके नवांगमें चन्द्र होनेसेभी जात बालक जारज नहीं होता है ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

शशाङ्को जीवसंयुक्तस्तदंशे वा भवेद्यदि ।

जीवक्षेत्रगतो वापि न जातः परतस्तदा ॥ ३५ ॥

अर्थ—अब अन्यप्रकारसे जारज योगका भङ्ग कहते हैं । चन्द्र यदि बृहस्पति-युक्त वा बृहस्पतिके नवांशमें अथवा बृहस्पतिके क्षेत्रमें स्थित होय तो जारज योगमें जात बालक जारज नहीं होता है । यह समस्त प्रतिप्रसव “ न लग्नमिन्दुञ्च ” इत्यादि वचनके हैं “ द्वादश्यां च द्वितीयायां ” इस वचनके नहीं हैं ॥ ३५ ॥

अथ बालस्य पितृमातृसादृश्यज्ञानम् ।

यादृक्पश्यति सौम्यस्तत्तुल्यं गुणं सुतः समाधत्ते ।

पितृजननीसादृश्यं रवेः शशाङ्काच्च बलयोगात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अब बालकको पिता और माताके समान कहते हैं । शुभ ग्रह लग्नको जिस प्रकारसे देखताहै जात बालकको तदनु रूप गुण ( उसके समानही गुण ) प्राप्त होताहै और सूर्यके बलानुसार जात बालक पिताके समान और चन्द्रके बलानुसार माताके समान बालक उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥

अथ गण्डयोगः ।

अश्विनीमघमूलानां तिस्रो गण्डाद्यनाडिकाः ।

अन्त्याः पोष्णोरगेन्द्राणां पञ्चैव यवना जगुः ॥ ३७ ॥ ( अ )

अर्थ—अब गण्डयोग कहते हैं । अश्विनी, मघा और मूलनक्षत्रके प्रथम तीन दण्डको गण्ड कहते हैं । रेवती, आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्रके शेष तीन दण्डको भी गण्ड कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ गण्डयोगस्य कालनिर्णयः ।

मूलेन्द्रयोर्दिवा गण्डो निशायां पितृसर्पयोः ।

सन्ध्याद्वये तथा ज्ञेया रेवती तुरगर्क्षयोः ॥ ३८ ॥ ( आ )

अर्थ—मूल और ज्येष्ठानक्षत्रमें जो गण्ड होताहै उसको दिवागण्ड कहतेहैं मघा

( अ ) गण्डयोगमाह—अश्विनीति । अश्विनीमघामूलानां गण्डाद्यनाडिका गण्डसप्त-  
त्रयप्रथमनाडिकाश्विनो जगुरित्यर्थः । केचित्तु आद्यनाडिकाश्विनो गण्डा गण्डसप्तत्रया  
जगुः नन्मतेनशानादि निर्दिष्टमनित्यमिति पुनः सन्निः । रेवत्याश्लेषान्येष्ठानामन्त्यः ।  
पञ्चैव नाडिका गण्डसप्तत्रया जगुरित्यर्थः ।

( आ ) गण्डयोगस्य कालनिर्णयमाह—मूलेन्द्रयोर्दिवा । मूलज्येष्ठयोगेण्डः दिवा दिवम्

और आश्लेषा नक्षत्रका जो गण्ड होता है उसको रात्रिगण्ड कहते हैं, रेवती और अश्विनीनक्षत्रमें जो गण्ड होता है उसको सन्ध्यागण्ड कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ गण्डारिष्टकथनम् ।

सन्ध्यारात्रिर्दिवाभागे गण्डयोगोद्भवः शिशुः ।

आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ (इ)

अर्थ-अब गण्डारिष्ट कहते हैं । सन्ध्या समय रेवती और अश्विनी नक्षत्रके गण्डमें जात बालक स्वयं विनष्ट होजाता है । रात्रिकालमें मघा और आश्लेषा नक्षत्रके गण्डमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है और दिनमें मूल और ज्येष्ठा नक्षत्रके गण्डमें जो बालक उत्पन्न होता है उसके पिताकी मृत्यु होजाता है ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

मूलायाः प्रथमे पादे पितुर्वपुः प्रणश्यति ।

द्वितीये नियतां पीडां मातुः कुर्यात्पितुस्तथा ॥ ४० ॥

तृतीये धननाशाय चतुर्थे सर्वसम्पदः ।

व्यत्ययेन फलं ज्ञेयमाशुपास्वपि पूर्ववत् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मूलके प्रथमपादमें जात बालकको पिताका

एव स्यात् । पितृसर्पयोन्तु निशायामेव गण्ड स्यात् । अश्विनीरेवत्यो सन्ध्याद्वय एव गण्डः स्यादित्यर्थः । इति । 'मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितृविनाशः द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः ॥ ' इति ग्रन्थान्तरे । 'स्वर्गे शुचिप्रोष्ठपदेयमाधे भूमौ नभः कात्तिकचेत्रपौषे । मूल ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गे विशाखशुक्रेष्वशुभञ्च तत्र ॥' इति च ग्रन्थान्तरे ।

( इ ) गण्डदोषमाह-सन्ध्येति । गण्डयोगे अश्विनीरेवत्योर्गण्डे सन्ध्याकाले जात आत्मानं हन्ति । पितृसर्पयोगण्डयोगे रात्रिकाले जातो मातरं हन्ति मूलेन्द्रयोगण्डयोगे दिवसे जात पितरं हन्ति । अत्र च दिवाभागे निशागण्डनक्षत्रे रात्रौ च दिवागण्डनक्षत्र इत्यादि विपरीतेन यदि स्यात्तदा मात्रादीना महापीडा न जनयतीत्यर्थः । अत्र च शिशोर्दर्शन एव गण्डयोग वदन्ति । तथाच राजमार्त्तण्डे "गण्डप्रसूतपुरुष शुभमाहुरपश्यतां नृणामेके । अन्ये होमपूर्वे दाने तद्दर्शनं शुभदम् " तथा "गण्डादौ गण्डकान्ते च विवाहे त्रिपतेऽङ्गना । न जीवे जातकोऽत्रैव पितृमातृविनाशकृत् । गतो न जीवेत्सीमन्त विधौ गर्भच्युतिर्भवेत् । व्रतारम्भे विनाश स्यात्क्षीरे पञ्चत्वमादिशेत् । वपनञ्चैव घान्याना कीर्त्यारम्भाविधिं नर । यानि प्रशस्तकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥" इति ।

वियोग होता है, दूसरे पादमें जन्म होनेसे माता पिताको सर्वदाही पीडा रहती है, तीसरे पादमें जन्म होनेसे धनका नाश होता है, और चौथे पादमें जन्म होनेसे बालककी समस्त सम्पत्तियोंका नाश होजाता है । आश्लेषादि नक्षत्रमें जन्म होनेसे इसके विपरीतभावसे फल होता है अर्थात् प्रथमपादमें सर्वसम्पत्तियोंका नाश होजाता है, दूसरे पादमें धनक्षय इत्यादि ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गण्डापवादः ।

दिवा जाता तु या कन्या निशि जातश्च यः पुमान् ।

नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--अब गण्डदोषका अपवाद कहते हैं । जिस प्रकारके पर्वतका नाश पर्वत नहीं करसक्ता है, उसी प्रकार दिनके गण्डमें उत्पन्न हुई कन्याका और रात्रि-गण्डमें जात पुरुषका गण्डदोष नहीं होता है ॥ ४२ ॥

दिवागण्डे निशाजातो निशिगण्डेऽथ वा दिवा ।

नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पर्वतम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--जिस प्रकार पर्वतका नाश पर्वत नहीं करसक्ता है तिसी प्रकार दिवागण्ड-संज्ञक नक्षत्रमें यदि रात्रिसमय जन्म होय और रात्रिगण्डसंज्ञक नक्षत्रमें यदि दिनमें जन्म होय तो उसमें गण्डदोष नहीं होता है ॥ ४३ ॥

अथ गण्डारिष्टशान्तिः ।

सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।

तातेनादर्शनं वापि यावत्पाण्मासिको भवेत् ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--गण्डयोगमें जो बालक उत्पन्न होय तो उसको परित्याग करना चाहिये अथवा जबतक छः मासका बालक न होय तबतक उस बालकका दर्शन पिताको न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कुङ्कुमं चन्दनं कुष्ठं गोरोचनमथापि वा ।

घृतैर्नैवान्वितं कृत्वा चतुर्भिः कलशैर्बुधः ॥ ४५ ॥ ( ई )

( ई ) गण्डदोषप्रतिकारमाह-कुङ्कुममिति सांख्यिभिः श्लोकैः । सुगमम् । “ॐ सह-स्यार्षेण शनशरदेन शनायुपाहापनेनम् ॥ अतः शयेन शरदो न यातीन्द्रो विश्वस्य हरि-

सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः ।

पितृयुक्तं दिवाजातं मातृयुक्तश्च रात्रिजम् ॥ ४६ ॥

स्नापयेत्पितृमातृभ्यां सन्ध्ययोरुभयोरपि ।

बल्मीकमृत्तिकां दद्यान्नद्याश्च तटमृत्तिकाम् ॥ ४७ ॥

गोविषाणमृदश्चैव दन्तिमृत्सां च निक्षिपेत् ।

तीर्थाम्भः पञ्चगव्येन स्नानं मातुः पितुः शिशोः ॥ ४८ ॥

कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ।

दद्याद्धेतुं सुवर्णञ्च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ-अब गण्डदोषकी शान्ति कही जाती है । कुङ्कुम, चन्दन, कूठ, गोरौचन और घृत इनको चार कलशमें रखकर उनमें जल भरै अनन्तर इन्हीं कलशोंके जलद्वारा “ ॐ सहस्राक्षेण त्रतशारदेन ” इत्यादि मन्त्रको पढ़कर दिवागण्डजात बालको पिताके साथ स्नान करावै, इसी प्रकार रात्रिगण्डजात बालकको माताके साथ स्नान करावै और दोनों सन्ध्यागण्डजात बालकको पिता और माताके साथ स्नान कराना चाहिये और बल्मीकमृत्तिका, नदीके समीपकी मृत्तिका, गोशृङ्गोद्भूत मृत्तिका, और हास्तिदन्तोद्भूतमृत्तिका और पञ्चगव्योंको तीर्थके जलमें मिलाकर उसके द्वारा माता, पिता और बालकका स्नान करावै; अनन्तर घृत-पूर्ण कांस्यपात्र, धेनु और सुवर्ण दान और सुवर्ण दान और ग्रहोंकी पूजा करावै तभी गण्डदोषकी शान्ति होती है अर्थात् गण्डदोष दूर होजाताहै ४६-४९ ॥

तस्य पारम् ॥ शतञ्जलि शरदो वर्द्धमानःशत हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् । शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शनायुषा हविषेम पुनर्नः । अहो विपन्त्वा विदन्त्वा पुनरागाः पुनर्नवः । सर्वाङ्गी सर्वन्ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् । शतमानश्च आयुष्कामः । शतार्थुर्वै पुरुषः शत वीर्यः शतेन्द्रियः । आयुष्य एवेन तदीर्यमिन्द्रिये दधातु” ॥ इति स्नानमन्त्रः । तथा जप पूजादिकन्तु राजमातृगण्डे उक्त-“कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैःपोडशभिर्दुष्यः । अष्टाभिर्वापत्तु भिद्याद्वाभ्यां वा शोभनं समम् । नन्मध्ये स्थापिते शले नवनीतप्रपूरितोरजत चन्द्रमभ्यर्च्य सितपुष्पसहस्रकैः । देवज्ञः सोपवासश्च शुक्लाम्बरसुपूजितः । सोमोहमिति सखित्य कुर्यादेवमतन्द्रितः । जपेत्सहस्र मन्त्रञ्च श्रद्धधानः समाहितः ॥ ॐ अमृतात्मने नमस्तुभ्यं मन्त्रमेतदुदाहृतम् । तप्तचामीकर दद्यात्ताम्रपात्रे तिलान्वितम् । गण्डदोषोपशान्त्यर्थं यजुर्वेदविदे शशिः ॥” इति ।

अथ मात्ररिष्टम् ।

केन्द्रत्रिकोणगः पापोमातृहासतवासरात् ।

सपापाद्भाग्वात्पापोहिबुकेमातृनाशकृत् ॥ ५० ॥ ( उ )

अर्थ—अब माताके अरिष्ट ग्रहोंको कहते हैं जन्मसमयका लग्नमें वा लग्नसे चौथे, दशवें, सातवें नववें और पाचवें स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय तो जात मनुष्यके सातदिनके मध्यमें माताकी मृत्यु होती है और पापग्रहयुक्त शुक्रसे चौथे स्थानमें पापग्रह होनेसेभी जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५० ॥

अन्यत्र ।

लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्बलवत्तरः ।

तदा मातृवधं कुर्यात्तत्केन्द्रे चापरो यदि ॥ ५१ ॥ ( ऊ )

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे माताके अरिष्ट ग्रह कहते हैं । जन्मलग्नसे चौथे स्थानमें यदि बलवान् पापग्रह स्थित होय और उसके केन्द्रमें ( उसी स्थानमें और चौथे, सातवें दशवें ) यदि पापग्रह होय तब जात बालककी माताकी मृत्यु होती है ॥ ५१ ॥

अपरत्र ।

शनिमङ्गलयोर्मध्ये यदि तिष्ठति चन्द्रमाः ।

तदा मातृवधो ज्ञेयो भौमाको संयुतौ यदि ॥ ५२ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे मात्ररिष्ट कहते हैं । शनि और मंगलके मध्यमें यदि चन्द्र होय और मंगल सूर्यके साथमें होय तो उसी समयमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरत्र ।

चन्द्रमा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः ।

मातृनाशो भवेत्तस्य पृष्ठः पापो भवेद्यदि ॥ ५३ ॥

अर्थ—चन्द्रमापर यदि तीन पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय और जन्मलग्नसे छठे ( उ ) मात्ररिष्टमाह—केन्द्र शनि । केन्द्रगणित्रिकोणगश्च बलवान्पापः सप्तदिनान्मातृहा स्यात् योगान्तर सपापाद्भाग्वात्पापयुक्ताच्छुक्राच्चतुर्थस्यः पापो मातृहा स्यात् ।

( ऊ ) योगान्तरमाह—लग्नादिति । लग्नाच्चतुर्थो बलवान्पापः एतत्केन्द्रार्थोऽपरः—पापो यदि स्यात्तदा मातृवधं जानीयात् । तथा योगान्तरं शनिमङ्गलयोर्मध्य इत्यादि वक्ष्यमाणवचनात् इति ।



स्थानमें पापग्रह होय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥

**लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्बलवत्तरः ।**

**नूनं मातृवधं कुर्याच्चन्द्राच्चैव विशेषतः ॥ ५४ ॥**

अर्थ-जन्मलग्न वा जन्मलग्नसे छठे स्थानमें बलवान् पापग्रहोंके स्थित होने-सेही जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५४ ॥

**चन्द्रः पापसमायुक्तो लग्नकेन्द्रगतो यदि ।**

**तदा मातुर्वधो ज्ञेयः सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ५५ ॥**

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहयुक्त चन्द्रमा यदि लग्नके केन्द्र स्थानमें स्थित होय तब सात दिनके मध्यमें जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५५ ॥

**चन्द्राष्टमगते भौमे शत्रुस्थे शत्रुवीक्षिते ।**

**मातुस्तस्य भवेद्भानिः पिता चासीद्विदेशगः ॥ ५६ ॥**

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमाके आठवें स्थानमें मङ्गल स्थित होकर यदि शत्रु-युक्त हो वा शत्रुको देखता होय तब जात बालकके माताकी मृत्यु होती है और पिता विदेशको चला जाता है ॥ ५६ ॥

**प्रसवे रात्रिसमये चन्द्रः पापग्रहे स्थितः ।**

**माता च म्रियते तस्य यदि पापैः समन्वितः ॥ ५७ ॥**

अर्थ-रात्रिजात बालकके जन्मसमयका चन्द्रमा यदि पापग्रहके घरमें स्थित होकर पापग्रहयुक्त होय तो उसके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५७ ॥

**अथवा क्षीणचन्द्रश्च पापाः पश्यन्ति सर्वदा ।**

**शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ५८ ॥**

अर्थ-रात्रिमें जन्मसमयका चन्द्रमा यदि क्षीण होय और इस चन्द्रमापर पापग्रहकी दृष्टि होय शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ५८ ॥

**निधनारिगतश्चन्द्रो भौमो वा सप्तमे स्थितः ।**

**तदा मातुर्विनाशः स्याद्यदि पापैः समन्वितः ॥ ५९ ॥**

अर्थ-बालकके जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें स्थानमें वा छठे स्थानमें

स्थित होकर पापग्रहयुक्त होय अथवा मङ्गल सातवें स्थानमें पापग्रहके साथ स्थित होय तो जात बालकके माताकी मृत्यु होती है ॥ ५९ ॥

पापग्रहे स्थिते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति माता च म्रियते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जन्मसमय शुक्र यदि पापग्रहके घरमें होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके स्थानमें स्थित होय और उसके ऊपर शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ६० ॥

प्रसवे च दिवाभागे शुक्रे वा पापसंयुते ।

अथवा पापसंदृष्टे माता संम्रियते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

अर्थ—दिनमें जात बालकके जन्मसमय शुक्र यदि किसी पापग्रहके साथ होय अथवा शुक्रपर पापग्रहकी दृष्टि होय तो जात बालकके माताकी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ६१ ॥

अथारिष्टमङ्गयोगः ।

आत्मक्षेत्रगते शुक्रे पापैर्वा पापगेहगे ।

शुभग्रहाः प्रपश्यन्ति रिष्टमङ्गस्तदा भवेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ—अब शुक्रारिष्टमङ्गयोग कहते हैं शुक्र यदि अपने घरमें होय वा पापग्रहके साथ पापग्रहके घरमें स्थित होनेसे भी यदि शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो अरिष्टमङ्ग होगाता है ॥ ६२ ॥

अथ पित्रारिष्टम् ।

कर्मस्थाने स्थितः सौरी ( १ ) रिःफस्थाने ( २ ) च चन्द्रमाः ।

कुजे च सप्तमे स्थाने म्रियते पितृसंज्ञकः ॥ ६३ ॥

अर्थ—अब पिताके अरिष्टग्रह कहते हैं । जन्मलग्नसे शनि यदि दशवें स्थानमें होय और चन्द्रमा बारहवें स्थानमें होय और मङ्गल सातवें स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

तमोहा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः ।

शुभैर्युतदृष्टश्च पितुरप्यन्तमादिशत् ॥ ६४ ॥

अर्थ—जन्मसमय सूर्य यदि शुभग्रहयुक्त न होय और शुभग्रहकी सूर्यपर दृष्टिमा

( १ ) स्थिते सौम्ये इति पाठः ।

( २ ) रिपुरथाने च चन्द्रमाः इति पाठान्तरम् ।

न होय केवल तीन पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा भानुर्लग्नं च राहुसंयुते ।

पिता वा म्रियते तस्य स्वयं वा म्रियते शिशुः ॥ ६५ ॥

इति सोमासिद्धान्ते ।

अर्थ-जन्मलग्नके आठवें स्थानमें सूर्य और लग्नमें यदि राहु स्थित होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है वा जात बालककी ही मृत्यु होती है ॥ ६५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

सूर्याच्च सप्तमे राशौ शनिभौमौ यदा स्थितौ ।

तदा पितृवधो ज्ञेयस्तयोर्मध्येऽथवा रविः ॥ ६६ ॥

इति सोमासिद्धान्ते ।

अर्थ-जन्मसमय सूर्यसे सातवां राशिमें यदि शनि और मङ्गल स्थित होय अपवा शनि और मङ्गलके मध्यमें सूर्य होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६६ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थो यदा चन्द्रो गुरुराहू द्वितीयगो ।

सौरिभौमेक्षिते मित्रे पितृहा सप्तधासरात् ॥ ६७ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें स्थानमें होय और बृहस्पति और राहु दूसरे स्थानमें होय और शनि और मङ्गलकी दृष्टि सूर्यपर होय तो सात दिनके मध्यमें जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६७ ॥

अन्यथा ।

लग्नाष्टमे गते भौमे द्वादशे द्वित्रये खले ।

पितृघाती भवेन्नित्यं शुभैर्यदि न दृश्यते ॥ ६८ ॥

अर्थ-जातलग्नके आठवें स्थानमें यदि मङ्गल स्थित होय और दूसरे चारहवें और तीसरे स्थानमें पापग्रह होय और लग्नमें शुभग्रहकी दृष्टि न होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६८ ॥

अपरञ्च ।

रन्ध्रेऽकें सप्तमे भौमे धनसंस्थे च सूर्यजे ।

पितुर्मृत्युर्भवेत्तस्य शुभैर्यदि न दृश्यते ॥ ६९ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके आठवें वा नववें स्थानमें सूर्य, सातवें स्थानमें मङ्गल और

दूसरे स्थानमें गनि होय और इनपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालकके पिताकी मृत्यु होती है ॥ ६९ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

निधनारिगतश्चन्द्रः सौरिभौमोक्षितो यदि ।

शुक्रगुर्वोर्न चालोकी सपिता श्रियते शिशुः ॥ ७० ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि चन्द्रमा आठवें वा छठे स्थानमें स्थित होय और उस पर गनि और मङ्गलकी दृष्टि होय और शुक्र और बृहस्पतिकी दृष्टि चन्द्रमापर न होय तब बालककी पिताके साथ मृत्यु होती है ॥ ७० ॥

अथ पितृमातृहा योगः ।

भौमे वा निधने चन्द्रः पापयुक्तो भवेद्यदि ।

पितृघाती परोक्षे च माता च श्रियते ध्रुवम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—लग्नके आठवें स्थानमें मङ्गल वा चन्द्रमा यदि पापग्रहके साथ स्थित होय तिसके पिता और माताकी मृत्यु होती है ॥ ७१ ॥

अपिच ।

दिवाकांशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्वरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ।

पितृव्यमातृष्वसंज्ञितौ तावथौज्युग्मक्षंगतौ तयो शुभौ ७२ ॥

इति बृहज्जातके ।

अर्थ—बालकका दिनमें जन्म होनेसे सूर्यकी पितासंज्ञा और शुक्रकी मातासंज्ञा होती है और रात्रिमें जन्म होनेसे शनिकी पितासंज्ञा और चन्द्रमाकी मातासंज्ञा होती है । और दिनमें जन्म होनेसे गनिकी पितृव्य ( चचा ) संज्ञा होती है और चन्द्रमाकी मातृष्वसृ ( मौसी ) संज्ञा होती है, और रात्रिमें जन्म होनेसे सूर्यकी पितृव्य ( चचा ) संज्ञा और शुक्रकी मातृष्वसृ ( मौसी ) संज्ञा होती है । उक्त समस्त संज्ञाओंका प्रयोगन यही है कि सूर्य, शुक्र, शनि और चन्द्रमा इन सब ग्रहोंकी स्थिति और बलाबलद्वारा जात बालकके पिता, माता, चचा और मौसीका शुभाशुभ फल जाना जाता है ॥ बालकका दिनमें जन्म होनेमें यदि सूर्य विषमराशिमें ( मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशिमें ) स्थित होय तो जात बालकके पिताका शुभ होता है, और इन समस्त राशिचर्यामें सूर्य होनेसे यदि रात्रिमें जन्म होय तब पितृव्य ( चचा ) को शुभ होता है । रात्रिमें जन्म होनेसे यदि शनैश्वर विषम राशिमें स्थित होय तो पिताको शुभकारक होता है, दिनमें जन्म होनेसे यदि शनि विषमराशिमें

होय तब पितृव्य ( चचा ) को शुभकारक होता है और इसके विपरीतमें विपरीत भावसे फल होता है । दिनमें जन्म होनेसे यदि सूर्य समराशिमें ( वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर वा मीन राशिमें ) होय तब पिताको अशुभकारक होता है और रात्रिमें समराशिमें सूर्य होनेसे पितृव्य ( चचा ) को अशुभकारक होता है । दिनमें शुक्र समराशिमें माताको शुभ होते हैं और रात्रिमें शुक्र समराशिमें स्थित होनेसे मौनीको शुभ होता है । इसी प्रकार रात्रिमें चन्द्र समराशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है । और दिनमें समराशिगत होनेसे मौसीको अशुभ होता है । दिनमें शुक्र विषम राशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है और रात्रिसमय विषमराशिमें होनेसे शुक्र मौसीको अशुभ होता है और रात्रिमें चन्द्रमा विषम राशिमें होनेसे माताको अशुभ होता है और दिनमें चन्द्रमा विषमराशिमें होनेसे मौसीको अशुभ होता है ॥ ७२ ॥

अथ शिश्वरिष्टम् ।

तत्रादौ सूर्यारिष्टम् ।

पापास्त्रिकोणकेन्द्रेषु सौम्याः पष्ठाष्टमव्ययगताश्चेत् ।

सूर्योदये प्रसूतः सद्यः प्राणास्त्यजति जन्तुः ॥ ७३ ॥ ( १ )

अर्थ-अब बालकके अरिष्ट ग्रह कहते हैं । पापग्रह यदि जन्मलग्नके नववें, पांचवें, वा अपने घरमें अथवा चौथे वा दशवें घरमें स्थित होय और शुभग्रह यदि लग्नके छठे, आठवें वा बारहवें स्थान स्थित होय तो सूर्योदयकालमें प्रसूत बालककी उसी समय मृत्यु होती है ॥ ७३ ॥

इति सूर्यारिष्टम् ।

अथ चन्द्रारिष्टम् ।

पष्टेऽष्टमे चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंहृष्टः ।

अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदद्वेन ॥ ७४ ॥ २ ॥

अर्थ-जात लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें यदि चन्द्रमा होय और इस चन्द्रमा पर पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालककी उसी समय मृत्यु होती है और शुभ ग्रहोंकी इस चन्द्रमापर दृष्टि होनेसे आठ महीनेके मध्यमें जात बालककी

( १ ) सूर्यारिष्टमाह । पापा इति । त्रिकोणे केन्द्रे च यदि पापास्तिष्ठन्ति शुभग्रहाश्च पष्ठाष्टमद्वादशस्था यदि स्थस्तदा सूर्योदयकाले जातः सद्यस्तत्क्षणतः प्राणास्त्यजति ।

( २ ) चन्द्रारिष्टमाह-पष्ट इति । मिश्रैः शुभाशुभदृष्टैः तदद्वेन अष्टवत्सराद्वेन वर्ष-चतुष्केण चन्द्रो मरणाय कल्प्यते इत्यर्थः ।

मृत्यु होती है और जो शुभाशुभ ग्रहोंकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो चार महीनेके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ७४ ॥

अथ चन्द्रारिष्टभङ्गः ।

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां

कृष्णे तथाहनि शुभाशुभदृष्टमूर्तिः ।

तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-

दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति ॥ ७५ ॥ ( ३ )

अर्थ—अब चन्द्रारिष्टका अपवाद कहते हैं । शुक्लपक्षमें रात्रिसमय जात बालक और कृष्णपक्षमें दिनमें जात बालकको छठे वा आठवें राशिमें स्थित चन्द्रमा शुभाशुभ ग्रहोंकी दृष्टि होनेसेभी क्रमानुसार पिता पुत्रकी समान रक्षा करता है और किसी प्रकारका अनिष्टसाधन नहीं करता है ॥ ७५ ॥

अथ पापयुतचन्द्रारिष्टम् ।

सुतमदननवान्त्यरन्ध्रलग्नेष्वशुभयुतो मरणाय शीतराशिः । ( ४ )

भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि वलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥ ७६ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि किसी पापग्रहके साथमें होकर लग्नमें वा लग्नके पांचवें, सातवें, नववें, बारहवें वा आठवें स्थानमें स्थित होय और शुक्र, बुध, वा बृहस्पति यदि इस चन्द्रमाको न देखते हों वा उसके ( चन्द्रमाके ) साथ न हों तो जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ७६ ॥

अन्यच्च ।

द्यूनचतुरस्रसंस्थे पापद्वयमध्यगे शशिनि जातः ।

विलयं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षितो बालः ॥ ७७ ॥ ( ५ )

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि दो पाप ग्रहोंके मध्यमें होकर लग्नके सातमें, चौथे,

( ३ ) उक्तचन्द्रारिष्टभङ्गमाह—पक्षइति । शुक्लपक्षे रात्री यदि जन्म कृष्णपक्षे च दिवा यदि जन्म तदा शुभेनाशुभेन वा दृष्टश्चन्द्रः पष्ठाष्टमस्थोपि आपत्सु तं बालं रक्षति न हन्ति पितेव पुत्रमिति ।

( ४ ) चन्द्रारिष्टमाह—सुतेति । शुक्रबुधगुरुणामेकेनापि दृष्टे युक्ते वा चन्द्रे योगभङ्गः स्यादित्यर्थः ।

( ५ ) चन्द्रारिष्टान्तरमाह—द्यूनेति । लग्नात्सप्तमचतुर्थाष्टमस्थे चन्द्रे पापद्वयमध्यगे जातो विलयं प्रयाति मध्यगतत्वञ्च द्वितीयद्वादशस्थयैरेकराशिस्ययोगो वा पापयोस्त्यर्थः ।

अथवा आठवें स्थित होय तो उस बालकका रक्षा करनेमें देवतागणभी असमर्थ होते हैं अर्थात् उसकी निश्चयही मृत्यु होती है ॥ ७७ ॥

अथ लग्नस्थक्षीणेन्द्रारिष्टम् ।

क्षीणे शशिनि विलग्रे पापैः केन्द्रेषु मृत्युसंस्थैर्वा ।

भवति विपत्तिरवश्यं यवनाधिपतेर्मतश्चैतत् ॥७८॥ ( ६ )

अर्थ-जन्मसमय क्षीण चन्द्रमा यदि लग्नमें स्थित होय और पापग्रहगण यदि लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें अथवा आठवें होय तो उस जात शिशु ( बालक ) की अवश्यही मृत्यु होती है, इस प्रकार यवनाचार्यने कहा है ॥७८॥

अथ त्रिंशशविशेषस्थचन्द्रारिष्टम् ।

नागगोसेद्धिजातीषु क्ष्माब्धिऋषिधृतिर्नखाः ।

क्ष्माब्धिदिवचेत्यजाद्यंशे तत्तुल्यान्दैर्विधौ व्यसुः ॥७९॥ ( ७ )

अर्थ-राशिको त्रिंशशभागमें विभक्त करनेसे उसको त्रिंशश कहते हैं इस त्रिंशश भागमें मेषके आठ, वृषके नौ, मिथुनके चौबीस, कर्कके चाईस, सिंहके पाच, कन्याका एक, तुलाके चार, वृश्चिकके तेईस, धनके अठारह, मकरके बीस, कुम्भके इक्कीस और मीनके दशमांशके मध्यमें यदि किसी बालकका जन्म होय तो उस बालककी उक्त सरुयाक वर्षके मध्यमें मृत्यु होती है ॥७९॥

इति चन्द्रारिष्टम् ।

( ६ ) चन्द्रारिष्टान्तरमाह-क्षीणइति । क्षीणे चन्द्रे लग्नस्थे केन्द्रेषु स्थिते पापैरिष्टमस्थैर्वा जातस्य विपत्तिरवश्यं भवेदित्यर्थ । एषु पूर्वोक्तश्लोकत्रयेषु योगेषु कालनियमस्त्वय चन्द्रो यदा योगकर्तृग्रहस्य स्थान रजग्रह वा जन्मलग्न वा गतो बलवान् पापदृष्टश्च स्यात्तदा वत्सराभ्यन्तरे मरणं स्यात् तथाच सारावल्याम्-“ योगे बलिन स्थान स्व वा लग्न गतेऽपि वा चन्द्रे । बलवति चाशुभदृष्टे आवर्षान्मृत्युकालं स्यात् ॥ ” इति ।

( ७ ) चन्द्रारिष्टान्तरमाह-नागोति । अजादीना मेपादीनां यथाक्रम त्रिंशशशुद्धस्य नागाद्यंशे चन्द्रे गते साति तत्तुल्यैर्नागाद्यंशसमितैर्वर्षैर्मृत्यु स्यात् । मेषस्य नागा अष्टौ वृषस्य गावश्छिद्राणि नव, मिथुनस्य सिद्धयश्चतुर्विंशति, कर्कस्य जातिद्वौविंशति, सिंहस्य इषव पञ्च, कन्याया क्ष्मा एक, तुलाया अब्धिश्चत्वार, वृश्चिकस्य त्र्यश्वि त्रयोविंशति, धनुषो घृतिरष्टादश, मकरस्य नखा विंशति, कुम्भस्य क्ष्माश्च एक-विंशति, मीनस्य द्विदश इति । चन्द्रारिष्टमङ्गस्तु सारावत्यामुक्तं । “ बुधविशुधासुर सचिवद्रेक्काणद्वादशांशे शशिनि । भवति चिरायुर्जात सप्राप्तानेकरिष्टोऽपि । चन्द्र शुभवर्गस्य क्षीणोऽपि शुभेक्षितो हरत्यरिष्टम् । जलमिव महातिसार जातीफलकल्कल-क्वार्थितम् । लग्नेश्वरस्य चन्द्र पट्टत्रिदशायहिषुकेषु शुभदृष्ट । क्षपयति समस्तारिष्टान्यनु-जातो निरूपनोष इव । एको जन्माधिपति परिपूर्णबल शुभग्रहैर्दृष्ट । हाति निशाकर-रिष्ट न्याष इव मृग वने मत्तम् ॥ ” इति ।

अथ विविधभौमारिष्टम् ।

भौमो विलग्रे शुभदैरदृष्टः पष्टेऽष्टमे वार्कसूतेन युक्तः ।

सद्यः शिशुं हन्ति वदेन्मुनीन्द्रः स्मरे यमारौ न शुभेक्षितौ च ८० ॥ (८)

अर्थ—मङ्गल लग्नमें स्थित होय और उसपर शुभग्रहोंकी दृष्टि न होवै अथवा लग्नके छठे वा धाठवें स्थानमें शनिके साथ स्थित होय वा सातवें स्थानमें शनिके साथ मङ्गल होय और उसको शुभग्रह न देखते हों तब जात बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ८० ॥ इति भौमारिष्टम् ।

अथ बुधारिष्टम् ।

कर्कटधामनि सौम्यः पष्टाष्टमराशिगो विलग्नर्क्षात् ।

चन्द्रेण दृष्टमूर्तिर्वर्षचतुष्केण मारयति ॥ ८१ ॥ (९)

अर्थ—जन्मसमय लग्नके छठी वा अष्टम राशिस्य बुध यदि कर्कराशिमें स्थित होय और उसपर चन्द्रमाकी दृष्टि होय तो जात बालककी चार वर्षके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ८१ ॥ इति बुधारिष्टम् ।

अथ गुर्वरिष्टम् ।

बृहस्पतिभौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्तिः ।

वर्षास्त्रिभिर्भागवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रसूतम् ॥ ८२ ॥ (१०)

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पति यदि लग्नके अष्टमस्थ होकर भेषमें वा वृश्चिक राशिमें स्थित होय और सूर्य, चन्द्र मङ्गल और शनि इनकी बृहस्पतिपर दृष्टि होय, और शुक्र उसको न देखता होय तो तीन वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है, किन्तु शुक्रकी बृहस्पतिपर दृष्टि होनेसे उक्त शिशुका अरिष्टमङ्ग होजाताहै ॥ ८२ ॥ इति गुर्वरिष्टम् ।

अथ शुक्रारिष्टम् ।

रविशशिभवने शुके द्वादशरिपुरन्ध्रगोऽशुभैः सर्वैः ।

( ८ ) भौमारिष्टमाह—भौम इति । लग्नस्थभौमः शुभग्रहैरदृष्टः शिशु हन्ति । पष्टाष्टमस्थः शनियुक्तश्च शिशुं हन्ति सप्तमे स्थितौ यमारौ शनिरुजौ शुभग्रहैर्दृष्टौ च शिशुं हन्ति इत्यर्थः । इति ।

( ९ ) बुधारिष्टमाह—कर्कटेति । कुम्भलग्नाद्बनुलैप्राञ्च पष्टाष्टमगतः कर्कटस्थो बुधश्चन्द्रदृष्टश्चतुर्विधैः शिशु मारयति ।

( १० ) गुर्वरिष्टमाह—बृहस्पतीरिति । भौमगृहे भेषे वृश्चिके वा मिथतो गुरुः लग्नादष्टमस्थः सूर्येन्दुजशनिदृष्टः शुकेणादृष्टश्चिर्बिर्बेनोत् भारयति शुकेण तु दृष्टे योगमङ्ग एवेत्यर्थः ।



**दृष्टः करोति मरणं पङ्क्तिर्भवेत्पैः किमिह विचित्रम् ॥ ८३ ॥ ( ११ )**

अर्थ-जन्मसमय सिंह वा कर्क राशिस्य शुक्र यदि जातलग्नके चारहवें, छठे, आठवें स्थित होय और समस्त पापग्रहोंकी उत्तर दृष्टि होय तो छः वर्षके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥ इति शुक्रारिष्टम् ।

अथ शन्यरिष्टम् ।

**मारयति षोडशाहाच्छनैश्चरः पापवीक्षितो लग्ने ।**

**संयुक्तो मासेन च वर्षाच्छुद्धस्तु मारयति ॥ ८४ ॥ ( १२ )**

अर्थ-जन्मसमय शनि यदि लग्नमें स्थित होय और उत्तर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो सोलह दिनके मध्यमें जात बालककी मृत्यु होती है, और इस शनिके साथ पापग्रह होनेसे सोलह महीनेमें और पापग्रह युक्त वा पापग्रहोंकी दृष्टिहीन होकर शुद्ध लग्नमें स्थित होनेसे सोलह वर्षमें जात बालककी मृत्यु होती है । किन्तु बलवान् शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे वा युक्त होकर शनि यदि लग्नमें स्थित होय तब अरिष्टमद्ग्न होजाता है ॥ ८४ ॥

अथ शन्यरिष्टमद्ग्नः ।

**स्वोच्चस्वजीवभवने क्षितिपालतुल्या**

**लग्नेऽर्कजे भवति देशपुराधिनाथः ।**

**शेषेषु दुःखगदभीतित एव बाल्ये**

**दारिद्र्यकामवशगो मलिनोऽलसश्च ॥ ८५ ॥**

इति सारावल्याम् ।

अर्थ-अब लग्नमें स्थित शनिके दोषका अपवाद कहते हैं । जन्मसमय शनि-श्चर उच्च स्थानमें ( तुला राशिमें ) स्थित होय वा अपने घरमें ( मकर और कुम्भ राशिमें ) स्थित होय अथवा बृहस्पतिके घरमें ( धन वा मीन राशिमें ) स्थित होकर यदि जात लग्नमें स्थित होय तो जात बालक राजाके समान

( ११ ) शुक्रारिष्टमाह-स्वीति । रविचन्द्रगृहे सिंहे कर्कटे वा स्थितः शुक्रो द्वादश-पञ्चाष्टमगतः सर्वैः पापैर्दृष्टः पङ्क्तिर्भवेत्मरणं करोति ।

( १२ ) शन्यरिष्टमाह-मारयतीति । पापदृष्टः शनिर्लग्नस्थः षोडशादिने मारयति संयुक्तः पापेन शनिः मासेन मारयति शुद्धः केवलः पापायुक्तश्च पापदृष्टश्चेत् लग्नस्थः शनिर्वर्षीन्मारयति बालिभिः शुभग्रहैर्युक्ते दृष्टे वा योगमद्ग्नः स्यादित्यर्थः । तुलायां स्वगृहे गुरुगृहे च लग्ने शनौ स्थिते रिष्टमद्ग्नो गुणातिरेकश्च स्यात् । तथा सारावल्याम्-“ स्वोच्च-स्वजीवभवने ” इत्यादि । तथा राजमार्तण्डे-“ तुद्गाङ्गिरोगेहगते ” इत्यादि ।

प्रतापशाली होकर देशपुरादिका स्वामी ( मालिक ) होता है । और उक्त समस्त राशिभिन्न अन्यराशिमें रहकर शनि लग्नस्थ होनेसे जातबालक दुःखी, पीडित और भीत होकर बाल्यावस्थामें दरिद्र, कामासक्त, मलीन और अलसी होता है ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

**तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थश्च शनिर्यदा ।**

**सर्वारिष्टं निहन्त्याशु शेषे जातो भवेद्बुधुः ॥ ८६ ॥**

अर्थ—जन्मसमय शनैश्वर यदि तुला, धन वा मीन राशिमें स्थित होकर लग्नस्थ होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट नष्ट होजाते हैं; किन्तु उक्त राशियोंके भिन्न अन्य राशिमें शनि रहकर लग्नस्थ होनेसे जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८६ ॥

अपरञ्च ।

**तुङ्गाङ्गिरोमेहगते विलम्बे भवेन्नरेन्द्रप्रतिमः प्रसूतः ।**

**मार्त्तण्डजे माण्डलिकोऽथवास्थे अन्यत्र लग्नोपगते गतायुः ॥ ८७ ॥**

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखाहै कि, शनैश्वर यदि उच्च स्थानमें वा वृहस्पतिके घरमें अथवा अपने घरमें स्थित होकर लग्नगत होय तो जात बालक नरेन्द्रके समान अथवा माण्डलिक होता है । और उक्त समस्त स्थानाभिन्न अन्य राशिमें होकर यदि शनैश्वर लग्नगत हो तब जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ८७ ॥

इति शन्यरिष्टम् ।

अथ राह्यरिष्टम् ।

**राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय वीक्षितो भवति पापः ।**

**वर्षवदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्याः ॥ ८८ ॥ ( ❀ )**

अर्थ—जन्मलग्नमें चौथे स्थानमें राहु होय और उसपर पाप ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालककी दश वर्षमें मृत्यु होती है, किसी २ आचार्यके मतसे इस प्रकार होनेसे सोलह वर्षमें मृत्यु होती है ॥ ८८ ॥

अथ गह्यरिष्टमङ्गः ।

**अजवृषभकर्किविलम्बे रक्षति राहुः समस्तरिष्टेभ्यः ।**

( • ) राह्यरिष्टमाह—राह्यरिति । केन्द्रस्थो राहुः पपिदंष्ट्रो मरणाय स्यात् । तत्र मरण दशवर्षे इति केचिद्वदन्ति षोडशभिरिति । अत्र च मेघे शेषे कर्केटे च लम्बे स्थिते राहो अरिष्टमङ्गः स्यात् । तथाच सारावल्याम्—‘अजवृषभकर्किविलम्बे’ इत्यादि ।

**पृथ्वीपतिः प्रसन्नः कृतापरार्थं यथा पुरुषम् ॥ ८९ ॥**

इति सारावल्याम् ।

अर्थ-अब राहुका अरिष्टभङ्ग कहते हैं । जन्मसमयमें मेघ, वृष वा कर्क लग्नमें राहु स्थित होनेसे जात बालक सब अरिष्टोंको दूर करदेता है, जिस प्रकार अपराधी मनुष्यको प्रसन्न होकर राजा छोड़ देता है ॥ ८९ ॥

इति राह्वरिष्टम् ।

अथ केत्वरिष्टम् ।

**केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन्प्रसूयते यस्तु ।**

**राद्रे सर्पमुहूर्ते वा प्राणैः संत्यज्यते चाशु ॥ ९० ॥ ( \* )**

अर्थ-अब केत्वरिष्ट कहते हैं । राशिचक्रके जिस नक्षत्रमें केतु ग्रह स्थित होय उस नक्षत्रमें, आर्द्रानक्षत्रके मुहूर्तमें वा आश्लेषा नक्षत्रके मुहूर्तमें यदि बालकका जन्म होय तो इस बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ९० ॥

इति केत्वरिष्टम् ।

अथ द्रेक्काणारिष्टम् ।

**लग्ने ये द्रेक्काणा निगडाहिबिहङ्गपाशधरसंज्ञाः ।**

**मरणाय सप्तर्षैः क्रूरयुता न स्वपतिदृष्टाः ॥ ९१ ॥ ( × )**

अर्थ-अब द्रेक्काणका अरिष्ट कहते हैं । निगड, सर्प, पक्षी और पाशधरसंज्ञक द्रेक्काण लग्नगत होय और उनपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके स्वामीगणकी उनपर दृष्टि न होय तो जात बालककी सातवर्षमें मृत्यु होती है ॥ ९१ ॥

इति द्रेक्काणारिष्टम् ।

अथ लग्नाधिपादारिष्टम् ।

**लग्नाधिपजन्मपती पष्ठाष्टमरिःफगौ प्रसवकाले ।**

**अस्तमितौ मरणकरो राशिप्रमितैर्वदेद्वर्षैः ॥ ९२ ॥ ( ५ )**

अर्थ-लग्नके स्वामी और राशिके स्वामीका अरिष्ट कहते हैं । जन्मसमयमें

( • ) केत्वरिष्टमाह-केतुरिति । यस्मिन् नक्षत्रे केतुर्भ्युदितः स्थितः तस्मिन् नक्षत्रे राद्रे मुहूर्ते आर्द्रानक्षत्रमुहूर्ते आश्लेषानक्षत्रमुहूर्ते वा यः प्रसूयते स चाशु तत्सणादेन प्राणैर्विमुच्यते त्रियत इत्यर्थः ।

( × ) द्रेक्काणारिष्टमाह-लग्नइति । ये निगडसर्पपक्षपाशधरसंज्ञा द्रेक्काणास्ते लग्नगताः क्रूरयुता न स्वपतिना दृष्टाः सप्तवर्षैर्मरणाय युः ॥ इति ।

( ५ ) लग्नजन्माधिपादारिष्टमाह-लग्नाधिपजन्मपती इति । लग्नाधिपो जन्मपतिः राश्यधिपो वास्त गतः पष्ठाष्टमरिःफगः सप्त राशिप्रमितैर्वर्षैः पष्ठाष्टमहादशवर्षैर्भृशुत्करः स्यात् ।

लग्नका स्वामी ग्रह और राशिका स्वामी ग्रह यदि अस्तामित होकर लग्नके छठे आठवें वा नारहवें स्थानमें स्थित हों तब जात बालककी मृत्यु छठे वा आठवें वर्षमें होती है ॥ ९२ ॥

इति लग्नाधिपारिष्टम् ।

अथ सौम्यग्रहारिष्टम् ।

सौम्याः पष्ठाष्टमगाः पापैर्वक्रोपसंयुतैर्दृष्टाः ।

मासेन मृत्युदास्ते यदि न शुभैस्तत्र संदृष्टाः ॥ ९३ ॥ (५५)

अर्थ—अब शुभ ग्रहोंका अरिष्ट कहते हैं । जन्मसमय यदि शुभग्रह लग्नके छठे वा आठवें स्थानमें होय और उनपर पापग्रहोंकी वा वक्र ग्रहोंकी दृष्टि होय और उनके प्रति अन्य शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो जात बालककी एक महीनेके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ९३ ॥

इति सौम्यग्रहारिष्टम् ।

अथ पापादिग्रहारिष्टम् ।

एकः पापोऽष्टमगः शत्रुगेही शत्रुवीक्षितो वर्षात् ।

मारयति नवं प्रसूतं सुधारसो येन पीतोऽपि ॥ ९४ ॥ (५५५)

अर्थ—अब पापग्रहोंका अरिष्ट कहते हैं । यदि एक पापग्रह जन्मलग्नके आठवें स्थानमें स्थित होकर शत्रुग्रहगत होय अथच इस पापग्रहके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य अमृत पीनेसेभी एकवर्षके मध्यमें कालके गालमें जाताहै ९४

होरायाः सप्तमे सौरिर्द्विबुकस्थश्च भास्करः ।

अस्मिन्योगे तुर्यां जातः सोल्पायुर्भवति प्रिये ॥ ९५ ॥

अर्थ—होराधिपतिके सातवें स्थानमें शनैश्वर और चौथे स्थानमें सूर्य होनेसे इस योगमें जिसका जन्म होय उसकी थोड़ी आयु होती है ॥ ९५ ॥

वसुपष्टगते जीवे समसप्तगते जनौ ।

द्वादशस्थो यदा भानुर्वर्षमेकं न जीवति ॥ ९६ ॥

अर्थ—जात बालककी जन्मलग्नके आठवें वा छठे स्थानमें वृहस्पति समसप्तगत

(५५) सौम्यग्रहारिष्टमाह—सौम्यइति । सौम्याः शुभग्रहाः पष्ठाष्टमे वा उभयत्र वा स्थिताः पापग्रहेः वाक्रिग्रहैर्दृष्टाः सन्तः मासेन मृत्युकरा भवन्ति ते यदि शुभग्रहैर्न दृष्टाः शुभदर्शने तु योगभङ्ग इत्यर्थः । एतेन सर्वत्र एव शुभाः पष्ठाष्टमस्थाः यदि म्युरित्यर्थः ।

(५५५) पापग्रहारिष्टमाह—एकइति । एको बलवान् पापः शत्रुग्रहस्थः शत्रुदृष्टोऽष्टमस्थः सन् वापिकेणाष्टमभोजिनं नरं मारयति एतेन मरणावश्यकत्व सूचितम् ॥

शनि और बारहवें स्थानमें सूर्य होनेसे यह बालक एकवर्षभी नहीं जीसकता है ९६ ॥  
अथाशुभानि ।

समसप्तगतो भौमो लग्ने भास्करचन्द्रकौ ।

गुरुर्भृगुर्यदा पष्टे तदा कष्टं समादिशेत् ॥ ९७ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि मङ्गल सम राशिमें स्थित होकर सातवें होय और लग्नमें सूर्य और चन्द्रमा स्थित होय और बृहस्पति और शुक्र छठी राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्य अत्यन्त कष्ट पाता है ॥ ९७ ॥

अपिच ।

अष्टमस्थो शनिकुजौ भास्करः सोमजस्तथा ।

पष्टे भार्गवदेवश्च भवेन्मृत्युस्तदाचिरात् ॥ ९८ ॥

अर्थ-जन्मसमय आठवें स्थानमें शनि, मङ्गल, सूर्य और बुध यदि स्थित होय और छठे स्थानमें शुक्र होय तो जात बालक शीघ्रही यमालयको गमन करता है ९८  
अन्यच्च ।

शुभे लग्ने यदा चन्द्रो जातोऽष्टमनिशाकरः ।

शनैश्चरस्तु बन्धुस्थस्तृतीये मासि नश्यति ॥ ९९ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा लग्नमें वा लग्नके आठवें स्थानमें स्थित होय और शनैश्चर यदि चौथे स्थानमें स्थित होय तो जात बालककी तीन माहिनके मध्यमें मृत्यु होती है ॥ ९९ ॥

अपरञ्च ।

प्रमदस्था यदा पापाः सौम्या द्वादशमाश्रिताः ।

तदा मृत्युर्भवेज्जातो देवराजसमो यदि ॥ १०० ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहगण सातवें स्थानमें और शुभग्रहगण बारहवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्य यदि इन्द्रके समान होय तोभी उसकी अकालमृत्यु होती है ॥ १०० ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

पापत्रयगतः सूर्यो गुरुशुक्रविवर्जितः ।

पापिष्टं कुरुते नित्यमल्पायुश्च न संशयः ॥ १ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि सूर्य तीनों पापग्रहोंके साथ होय और उस स्थानमें बृहस्पति वा शुक्र न होय तो जात मनुष्य पापी और थोड़ी आयुवाला होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

पापत्रयगतः सूर्यो गुरुशुक्रविवर्जितः ।

पापिष्टं कुरुते नित्यं पाण्डितोऽपि भवेद्यदि ॥ २ ॥

अर्थ—जन्मसमय तीनों पापग्रहोंके साथ सूर्य होय और बृहस्पति और शुक्र उस स्थानमें स्थित न होय तब जात मनुष्य पाण्डित होनेसेभी पापिष्ट होता है ॥२॥

आपिच ।

कण्टकस्थो यदा सौरिः शुक्रग्रहविवर्जितः ।

रवियुक्तो विशेषेण खलो भवति नान्यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि शनि केंद्रस्थानमें स्थित होकर सूर्यके साथमें स्थित होय और शुक्र उस स्थानमें न होय तो जात मनुष्यकी खल (दुष्ट) प्रकृति होती है ॥३॥

अपरञ्च ।

लग्नचन्द्रव्ययस्थाने तिष्ठेत्पापग्रहो यदि ।

कृपणः स्यात्तदा जातो दाता सति शुभग्रहे ॥ ४ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्न और चन्द्रमाके बारहवें स्थानमें पापग्रह स्थित होनेसे जात मनुष्य कृपण होता है और शुभग्रह होनेसे दाता होता है ॥ ४ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्रसूर्यगृहे राहुश्चन्द्रसूर्ययुतो यदि ।

( १ ) मृत्युस्थानगतश्चैव पशुभिर्हन्यते ततः ॥ ५ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा वा सूर्यके क्षेत्रमें राहु स्थित होकर यदि चन्द्रमा और सूर्यके साथ होय और यह स्थान जन्मलग्नके आठवें होय तो जात मनुष्यकी पशुद्वारा मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

आपिच ।

शत्रुगृहे यदा सौम्यः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।

पष्ठाष्टमगतश्चन्द्रो हन्यते जलजन्तुभिः ॥ ६ ॥

अर्थ—जन्मसमय बुध शत्रुके घरमें होकर शत्रुके साथ होय और उसपर शुक्रकी दृष्टि होय और चन्द्रमा छठे स्थानमें वा आठवें स्थानमें होय तब जात मनुष्यकी जलजन्तु द्वारा मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

( १ ) मृत्युस्थो मदनस्थोऽपि इति पाठान्तरम् ।

प्रकारान्तरञ्च ।

मृत्युस्थो यदि वा भामः शत्रुगेही निरीक्षितः । ( २ )

एष नाशकरो योगो द्विजह्वान्नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अर्थ-जन्मसमय मङ्गल यदि आठवें स्थानमें रहकर शत्रुग्रहके क्षेत्रमें स्थित होय और उसके ऊपर शत्रुग्रहकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी सर्पद्वारा मृत्यु होती है ७  
अथ छेदादियोग ।

भौमक्षेत्रगते लग्ने रविस्तत्र ज्ञानेश्वरः ।

पापेन संयुतो वापि कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ-जन्मलग्न यदि मङ्गलका क्षेत्र होय और उसमें पापग्रहके साथ होकर सूर्य और शनैश्वर स्थित होय तो जात मनुष्यके कानमें छेद होता है ॥ ८ ॥  
अन्यथा ।

पापयुक्तो भृगुसुतो रिपुस्थानगतो यदि ।

जीवो भौमेन संदृष्टः कर्णच्छेदी भवेन्नरः ॥ ९ ॥

अर्थ-जन्मसमय पापग्रहके साथ शुक्र यदि छठे स्थानमें स्थित होय और बृहस्पतिके ऊपर मङ्गलकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यके कानमें छेद होता है ॥ ९ ॥  
अपिच ।

कंटकस्थो यदा सौरिः शशियुक्तो भवेद्यादि ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति खञ्जो भवति नान्यथा ॥ १० ॥

अर्थ-जन्म लग्नके केन्द्रस्थानमें यदि चन्द्रमाके साथ शनैश्वर स्थित होय और उसपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्य खञ्ज (थोडा पंगु) होता है १०  
अपरञ्च ।

शत्रुगेहे यदा सौरिः शत्रुयुक्तो निरीक्षितः ।

एकपादकरच्छेदयोगोऽयं परिकीर्तितः ॥ ११ ॥

अर्थ-शनि शत्रुके घरमें रहकर यदि शत्रुके साथ होय वा उसपर शत्रुकी दृष्टि होय तो जात बालकका एक पदच्छेदन और एक करच्छेदन होता है ॥ ११ ॥  
प्रकारान्तरञ्च ।

पापत्रययुतः सोमः शत्रुगेहे व्यवस्थितः ।

शुभग्रहा न पश्यन्ति चक्षुर्नाशो भवेद्भ्रुवम् ॥ १२ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा यदि तीनों पाप ग्रहोंके साथ शत्रुग्रहके क्षेत्रमें

( २ ) शत्रुगेही सहेन्दुनेति क्वचित्पुस्तके पाठः ।

स्थित होय और उसके ऊपर शुभ ग्रहकी दृष्टि न होय तो जात मनुष्यके नेत्रोंका नाश हो जाता है ॥ १२ ॥

अपिच ।

तनुस्थानास्थितो भौमः शनिराहुसुरान्वितः ।

नासाच्छेदकरो योगो मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ १३ ॥

अर्थ—जन्मलग्नमें मङ्गल स्थित होकर यदि शनि राहु और सूर्यके साथ होय तब जात मनुष्यके नासिकामें छेद होता है ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

मृत्युस्थानगतौ भौमः शनिराहुविवर्जितः ।

नासाच्छेदो भवेद्योग इन्द्रवंशोद्भवस्य च ॥ १४ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि आठवें स्थानमें मङ्गल रहकर शनि और राहुयुक्त न होय तब जात मनुष्य इन्द्रके वंशमें उत्पन्न होनेसे भी उसकी नासिकामें छेद होता है ॥ १४ ॥

अपरञ्च ।

अष्टमस्थो यदा सोमो राहुयुक्तो भवेद्यदि ।

शिरसश्छेदयोगोऽयं विष्णुना परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें राहुयुक्त होकर यदि चन्द्रमा स्थित होय तो जात मनुष्यका शिरश्छेद होता है, इस प्रकार विष्णुने कहा है ॥ १५ ॥

अपिच ।

वज्राघातेन सर्पेण मृत्युस्थेऽके ज्वरेण वा ।

यमेन नर आक्रान्तस्ताये भूमौ विनश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जन्म समय लग्नके आठवें स्थानमें यदि सूर्य होय तब जात मनुष्यकी वज्राघातसे, सर्पद्वारा वा ज्वररोगसे पीडित होकर जलयुक्त भूमिमें मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

सूर्यः स्वगृहगतः शुभनिधनं निधनस्थः कुरुते ।

अन्यगृहे बहुदुःखं दत्त्वा प्राणानपहन्ति ॥ १७ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नका आठवाँ स्थान सूर्यका घर होय और उसमें बृह स्थित हो तो जात मनुष्यकी अनायाससे मृत्यु होती है किन्तु अन्यके देशमें स्थित



होकर सूर्य अष्टमस्थानी होनेसे नानाप्रकारके कष्ट पाकर जात मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

प्रकारान्तरम् ।

मदनस्थो यदा भानुः शनिभौमावलोकितः ।

रिपुगेही विशेषेण कासरोगी न चान्यथा ॥ १८ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके सातमे स्थानमें सूर्य स्थित होकर यदि उनपर विशेष करके शनि और मंगलकी दृष्टि होय तो यह स्थान उसका रिपुगृह होता है तो जात मनुष्यको कासरोग होता है ॥ १८ ॥

अपिच ।

प्रतिपद्युत्तरापाढा नवम्यामेव कृत्तिका ।

पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याञ्च रोहिणी ॥ १९ ॥

द्वादश्याञ्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां यदा मघा ।

एभिर्जातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् ॥ २० ॥

अर्थ-प्रतिपदा तित्थिमें उत्तरापाढा नक्षत्र, होय इसी प्रकार नवमीमें कृत्तिका, अष्टमीमें पूर्वाभाद्रपदा, एकादशीमें रोहिणी, द्वादशीमें आश्लेषा और त्रयोदशीमें मघा नक्षत्र होय तो इन तित्थि नक्षत्रयोगमें जिस बालकका जन्म होय, वह इन्द्रके समान होनेसे भी नहीं जीसक्ता है ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ पताकीवेधः ।

तिर्यग्भङ्गता रेखास्तिप्तो देयाः पताकया ।

युताः कार्या वेदविदा सर्वसङ्गतरेखया ॥ २१ ॥

दक्षस्थोद्गतरेखातो रामं मेपाद्यराशयः ।

पञ्चाष्टयुगमविंशाश्च पङ्कशेन्द्राग्निसागराः ।

कर्कटान्मीनपर्यन्तमङ्का देया यथाक्रमम् ॥ २२ ॥ ( क )

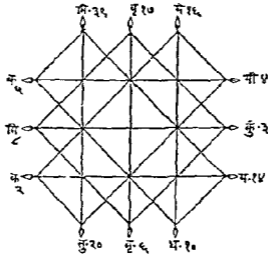
अर्थ-अब पताकीवेधके देखनेकी रीति और उसके लिखनेकी प्रणाली कही जाती है । ऊर्ध्व दिशामें तीन रेखा खींचकर तिर्यग्भावसेभी तीन रेखा रीचिना चाहिये अनन्तर इन समस्त रेखाओंके आगे पताकाका चिह्न बनाकर परस्परका वेध जानना चाहिये । ऊपरकी तीन रेखाओंके मध्यमें दक्षिण दिशाकी रेखाके

( क ) “ वेदाग्निमुनिदिक्कालविशतिद्वयष्टमार्गगाः । मीनादिकर्कटान्ताश्च ह्यद्वा देया यथाक्रमम् ॥ ” इति सारसग्रहे ।

आगेसे बामावर्तमें मेपादिके चिह्न रखवे, अनन्तर कर्कमें पांच, सिंहमें आठ, कन्यामें दो, तुलामें बीस, वृश्चिकमें छः, धनमें दश, मकरमें चौदा, कुम्भमें तीन और मीनमें चार इस प्रकारसे अङ्कयोजना करै ॥ २१ ॥ २२ ॥

पाठकगणके सुगमार्थ नीचे पताकीचक्र लिखा गया है ।

पताकीचक्रम् ।



बालस्य जन्मकालीनग्रहलग्नमजादियु ।

विन्यस्य चिन्तयेत्प्राज्ञः शुभाशुभं यथाक्रमम् ॥ २३ ॥

शुभदण्डयोगवेधैर्लग्नाद्बालस्य शोभनम् ।

पापदण्डयोगवेधैराश्रयंकाद्रिष्टिकालवित् ॥ २४ ॥

अर्थ—बालकके जन्मसमय राशिचक्रके जिस घरमें जी ग्रह होय उनको पताकी चक्रमें रखकर अनन्तर बालकका शुभाशुभ फल जानना चाहिये । यदि बालक शुभ ग्रहोंके दण्डमें उत्पन्न होय और शुभ ग्रह वेधमें होय तो बालकको शुभ होता है और यदि अशुभ ग्रहोंके दण्डमें उत्पन्न होय और अशुभग्रहही वेधमें होय अब इस बालककी राशिका अङ्कपरिमित दिन, मास या वर्षमें अरिष्ट होती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

बलेऽधिके दिनं मध्ये मासो हानिं च हायनम् ।

लग्नस्य दक्षिणे वामे सन्मुखे ग्रहसंस्थिते ॥ २५ ॥

अर्थ—यदि पापग्रह दण्डके स्वामी होकर बलवान् होय तो अङ्कपरिमित दिनमें, मध्यबल होनेसे अङ्कसंख्याक मासमें और हान्यबल होनेसे अङ्कसंख्याक

वर्षमें अग्नि प्रदान करते हैं लग्नमें वा लग्नके दक्षिणमें वा वाममें अथवा सन्मुखमें पापग्रह स्थित होनेसे वेध होता है, वेधस्थानमें जो अङ्क होय, उन्ही अङ्क-संख्याक दिनमें, मासमें वा वर्षमें बालकको अग्नि होता है ॥ २५ ॥

कर्के मीनधनुर्भ्याञ्च हरेः कीटघटेन च ।

स्त्रियास्तौलिमृगाभ्याञ्च घटे मीनेन कन्यया ॥ २६ ॥

वृश्चिके कलशे चैव पञ्चास्ये कलशे तथा ।

धनुषो मृगार्कभ्यां मकरे धनुषा स्त्रिया ॥ २७ ॥

घटस्य कीटसिंहाभ्यां मीलनं काथितं बुधैः ।

मीने कर्कितुलाभ्याञ्च मीनस्त्रीधनुषा त्वजे ॥ २८ ॥

तुलाकर्कितुलाभ्याञ्च हरेः कीटघटे वृषे ।

सिंहवद्वेध एतेषु वामदक्षिणसन्मुखे ॥ २९ ॥

अर्थ-पताकी वेधमें जिस २ राशिके साथ जिस २ राशिका वेध होता है अब उसको कहते हैं यथा;—कर्कका मीन और धन राशिके साथ वेध होता है; इसी-प्रकार सिंहका वृश्चिक और कुम्भके साथ, कन्याका तुला मकरके साथ, तुलाका मीन और कन्याके साथ, वृश्चिकका कुम्भ और सिंहके साथ, धनका मकर और कर्कके साथ, मकरका धन और कन्याके साथ, कुम्भका वृश्चिक और सिंहके साथ और मीनका कर्क और तुलाके साथ वेध (मिलन) होता है पण्डितगणने इसप्रकार कहा है । अपर मेघ राशिका मीन, कन्या और धनके साथ वेध होता है, इसीप्रकार वृषका सिंह, कुम्भ और वृश्चिकके साथ मिथुनका कर्क, तुला और मकरराशिके साथ वेध होता है । सिंहराशिका जिस प्रकार वाममें, दक्षिणमें और मन्मुरतमें वेध होता है अन्यान्य राशिकाभी उसी प्रकारसे वेध होता है ॥ २६-२९ ॥

पताकीचक्रस्य शुभाशुभविवेचनात्प्रमाणीभृताङ्गपरिमाणम् ।

एकोनावंशतिः कर्के सिंहे सप्तदशैव तु ।

पद्त्रिंशद्वलायान्तु पद्द्विंशतिस्तुलाधरे ॥ ३० ॥

वृश्चिके सिंहवज्ज्ञेयमूनत्रिंशच्छरासने ।

पद्द्विंशं मकरे ज्ञेयं कुम्भे सप्तदश स्मृताः ॥ ३१ ॥

नवयुगे तथा मीने मेघे पद्दश एव च ।

वृषे सप्तदश प्रोक्ता युग्मेऽङ्कहरलोचने ॥

त्रितयाङ्कादियं संख्या दिनमासाब्दनिर्णये ॥ ३२ ॥

अर्थ—पताकी वेधचक्रमें पूर्वोक्त तीन २ राशिका वेध होनेसे उन तीनों राशियोंके अङ्कयोग करनेसे जो संख्या होती है उतने संख्यक दिनमें, वा मासमें-अथवा वर्षमें बालकका अरिष्ट होता है । इन तीनों राशियोंके मिलनाङ्कोंमें जो जो संख्या होती है अब उनको कहते हैं । कर्कके १९ ऊनविंशति, सिंहके १७ सप्तदश, कन्याके ३६ पट्टत्रिंशत्, तुलाके २६ पट्टविंशति, वृश्चिकके १७ सप्तदश, धनके २९ ऊनत्रिंशत्, मकरके २६ पट्टविंशति, कुम्भके १७ सप्तदश, मीनके २९ ऊनत्रिंशत्, मेषके १६ षोडश, वृषके १७ सप्तदश, और मिथुनके ३९ ऊनचत्वारिंशत् अङ्क होते हैं ॥ ३०-३२ ॥

एकाङ्काद्विग्रहाङ्काद्वात्रिग्रहाङ्काच्च कुत्रचित् ।

पापदण्डे भवेद्दृष्टिः शुभदण्डे शुभं भवेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त राशिके अङ्क जोड़ करके किसी स्थानमें एक राशिके अङ्कमें किसी स्थानमें दो राशियोंके अङ्कमें जोड़ करके उसमें और किसी स्थानमें पूर्वोक्त मिलनाङ्क संख्यक मासादिमें पापग्रहके दण्डमें बालक उत्पन्न होनेसे अरिष्ट होता है और शुभ ग्रहके दण्डमें बालकका जन्म होनेसे शुभ होता है ॥ ३३ ॥

अथ पताकीचके ग्रहवेधफलम् ।

राहुकेत्वर्कसौरारैः पापेर्विद्धो युतोऽशुभः ।

तदन्यैर्युतो विद्धस्तु लग्नराशिः शुभग्रहः ॥ ३४ ॥

अर्थ—जात बालकके लग्नमें वा लग्नके वेधस्थानमें राहु, केतु, सूर्य, शनि वा मङ्गलके स्थित होनेसे उस बालकको अशुभ होता है; और उक्त समस्त ग्रहभिन्न शुभग्रह होनेसे शुभ फल प्राप्त होता है, परन्तु चन्द्रमामें वा चन्द्रमाके वेधस्थानमें अशुभ होनेसे अशुभ और शुभग्रह होनेसे शुभ फल होता है ॥ ३४ ॥

अन्यच्च ।

अशुभे दण्डसंयोगे सर्वत्र पुण्यवर्जिते ।

वालस्य मरणं शीघ्रं यदि पापैः समन्वितम् ॥ ३५ ॥

अर्थ—जन्मसमय दण्डका स्वामी यदि अशुभ ग्रह होय और उसीका वेध होय और वेधस्थानमें पाप ग्रह होय तो जातक बालककी शीघ्रही मृत्यु होती है ॥ ३५ ॥

अपरश्च ।

अशुभग्रहदण्डे तु सर्वत्र पापवर्जिते ।

वालस्य कुशलं सर्वं शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ--पापग्रहोंके दण्डमें जन्म होनेसेभी वेधस्थानमें शुभग्रह यदि होंय तब बालकको शुभ होताहै ॥ ३६ ॥

अपिच ।

अशुभो दण्डनाथो हि वेधश्चेत्तेन लभ्यते ।

मरणं तत्र वक्तव्यं वालस्य नान्यथा भवेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ--दण्डका स्वामी यदि पाप ग्रह होय और वेधस्थानमें भी पापग्रह होय तो जात बालककी मृत्यु होती है ॥ ३७ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

पापस्य दण्डमात्रे तु तद्योगो वेधवर्जिते ।

वालस्य कुशलं तत्र शुभैर्यदि समन्वितम् ॥ ३८ ॥

अर्थ--पापग्रहके दण्डमें जन्म होकर पापग्रहका वेध न होय और शुभ ग्रहके साथ दण्डके स्वामीका वेध होय तो जात बालकको शुभ होताहै ॥ ३८ ॥

इति पताकीवेधः ।

अथ पुरुषगणनम् ।

यस्मिन्नृक्षे वसेद्भ्रातृस्तदादित्रीणि मस्तके ।

मुखे त्रीणि प्रदेयानि एकैकं स्कन्धदेशयोः ॥ ३९ ॥

द्वेद्वे देये च बाहुभ्यां हस्ताभ्याञ्च द्वयं तथा ।

हृदये पञ्च भानि स्युस्तथैकं नाभिमण्डले ॥ ४० ॥

गुह्ये स्यादेकनक्षत्रं जानुभ्याञ्च द्वयं तथा ।

प्रतिपादे द्वयं कृत्वा जानीयाद्वालजन्मनि ॥ ४१ ॥

इति सारसग्रहे ।

अर्थ--अब जात पुरुषके गिननेकी रीति कहते हैं । बालकके जन्म समय सूर्य जिस नक्षत्रमें स्थित होय उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्रोंको जात मनुष्यके मस्तकमें जानना चाहिये, इसी प्रकार तिसके धाद तीन नक्षत्र मुखमें, दो नक्षत्र स्कन्ध-

देशमें चार नक्षत्र दोनों सुजाओंमें; दो नक्षत्र हाथमें, पांच नक्षत्र हृदयमें, एक नक्षत्र नाभिदेशमें, एक नक्षत्र गुदामें, दो नक्षत्र जानुमें और प्रत्येक पादमें दोदो नक्षत्र योजना करे ॥ ३९-४१ ॥



अथ अङ्गविशेषे जन्मनक्षत्रपतनफलम् ।

स्वल्पायुः पादयोजातो जानुनि स्याद्विदेशगः ।

परदाररतो गुह्ये नक्तको नाभिमण्डले ॥ ४२ ॥

हृदये त्वीश्वरो जातो हस्तयोश्चैव तस्करः ।

बाह्वोजातः सुशीलः स्यात्स्कन्धयोर्नृपतिर्भवेत् ।

मुखेजन्मी च मिष्टाशी शिरसि स्यात्स भूपतिः ॥ ४३ ॥

इति सारसंग्रहे ।

अर्थ-जात पुरुषके अङ्गविशेषमें जन्मनक्षत्रपतनका फल कहते हैं । जन्मनक्षत्र पुरुषके दोनों पैरोंमें पडनेसे जात बालककी अल्पायु ( योडीउम्र ) होती है; इसी प्रकार जानुदेशमें पडनेसे विदेशगामी, गुह्यमें पडनेसे परदारसक्त, नाभिदेशमें पडनेसे नक्तक, हृदयमें पडनेसे धनशाली, हाथमें पडनेसे तस्कर ( चोर ), सुजाओंमें पडनेसे सुशील, स्कन्ध देशमें पडनेसे नृपति, मुखमें पडनेसे मिष्टान्नभोक्ता, और जात पुरुषके मस्तकमें जन्मनक्षत्र पडनेसे जात बालक भूपति ( राजा ) होताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इति पुरुषगणनम् ।

अथ बालानां दन्तोद्गमफलम् ।

जातः सदन्तः पितृमातृहन्ता

तातं विहन्त्यात्प्रथमे तु मासे ॥

अम्ब्रां द्वितीये सहजं तृतीये

मासे चतुर्थे शुभकारकः स्यात् ॥ ४४ ॥

मिष्टान्नभोजी सुभगः सुताख्ये

पष्टे सुखी पण्डितकल्पवृद्धिः ।

ततोऽधिकः स्याद्बलवान्धनाख्ये ( १ )

मासेऽष्टमे वित्तसुखैर्विहीनः ॥ ४५ ॥

शूरः प्रतापी नवमे मृत्युश्च दशमे तथा । ( २ )

एकादशे द्वादशे च सुखी च सुभगो भवेत् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब जात बालकके दाँत निकलनेका फल कहते हैं-यदि दाँतोके साथ बालकका जन्म होय तो पिता और माताकी मृत्यु होती है, प्रथम महीनेमें दाँत निकलनेसे बालकके पिताकी मृत्यु होती है; इसी प्रकार दूसरे महीनेमें माताकी, तीसरे महीनेमें दाँत निकलनेसे भाईकी मृत्यु होती है, चौथे महीनेमें शुभ, पाँचवें महीनेमें मिष्टान्नभोजन करनेवाला और धनशाली होता है छठे महीनेमें सुखी और पण्डितके समान, सातवें महीनेमें बलवान् और आठवें महीनेमें बालकके दाँत निकलनेसे द्रव्यहीन और सुखहीन होता है और नववें महीनेमें, दाँत निकलनेसे वीर और प्रतापशाली होता है. दशवें महीनेमें मृत्यु ग्यारहवें और बारहवें महीनेमें दाँत निकलनेसे सुखी और सुभोगी होता है ॥ ४५-४६ ॥

अशुभदन्तजननप्रतीकारः ।

अष्टौ पुत्तलकान्कृत्वा सुगन्धैर्गन्धकैस्तथा ।

स्नातस्सु संक्रमे चापि स्नापयेच्छुक्लपुष्पकैः ॥ ४७ ॥

स्नानं संक्रमणस्याधः शम्भोर्दर्शनमन्ततः ।

होमं विप्रार्चनञ्चैवमशुभे दन्तदर्शने ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब अशुभ दाँतोके निकलनेका प्रतीकार कहते हैं । सुगन्धित गन्ध-द्वारा आठ पुतलाओंको बनवाकर संक्रमण कालमें स्नान कियेहुए जलसे सफेद फूलोंके साथ इन पुतलाओंको स्नान करावे तदनन्तर महादेवजीका दर्शन होम और ब्राह्मणोंका पूजन करनेसेही अशुभ दाँतोका दोष दूर होजाताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

( १ ) ततोऽधिकः स्याद्बलवान्गुणादयः इति पाठः ।

( २ ) "शूरः प्रतापी नवमे च मासे मृत्युश्च दशमे तथा एकादशे द्वादशे मासे सौख्य दुष्टोऽपि शान्तः सुतगो भवेत् ॥" इति ग्रन्थान्तरे पाठः ॥

अथारिष्टभङ्गयोगः ।

एकोऽपि केन्द्रभवने नवपञ्चमे वा  
भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः ।  
निःशेषदोषमपहृत्य शुभं प्रसूतं  
दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति ॥ ४९ ॥ ( क )

अर्थ—अथ अरिष्टभङ्गयोग कहते हैं. अस्तादिदोषरहित कोई एक शुभग्रह यदि जन्मलग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें, दशवें, नववें, अथवा पांचवें स्थानमें स्थित होय तो जात बालकके समस्त अरिष्ट दूर होकर दीर्घायु और रोगमयप्रभृति दूर होते हैं कोई २ आचार्य कहते हैं कि, केवल बृहस्पति उक्त समस्त स्थानोंमें रहनेसेभी यही फल होता है ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

राहुस्त्रिपष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः ।  
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् ॥ ५० ॥

अर्थ—जन्मलग्नसे तीसरे, छठे वा ग्यारहवें यदि राहु होय और राहुपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो वायु जिस प्रकार तृणको दूर करदेती है उसी प्रकार जात बालकके सर्व दोष दूर होजाते हैं ॥ ५० ॥

दिवा सूर्यो निशि शशी लग्नस्यैकादशे स्थितः ।  
कोटिदोषं निहन्त्याशु गर्गस्य वचनं यथा ॥ ५१ ॥

अर्थ—दिनमें जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवें स्थानमें सूर्य और रात्रिमें जन्म होनेसे बालकके जन्मलग्नसे ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमाके स्थित होनेसे कोटि दोष यह सूर्य और चन्द्रमा दूर करदेते हैं; इस प्रकार गर्गमुनिने कहा है ॥ ५१ ॥

(क) उक्तानां सर्वेषामरिष्टानां भङ्गमाह—एकोऽपीति । एकोऽपि शुभो गुरुर्वा शुक्रो वा बुधो वा भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः स्फुटकिरणप्रकाशीकृतदिग्विभागः । केन्द्रस्थो नवपञ्चमस्थो वा यदा भवेत् तदा निःशेषदोषं सर्वारिष्टं पहृत्य दूरीकृत्य प्रसूतं जातं दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति । केचित्तु एकः शुभो गुरुर्बेत्त्याहुस्तदस्त एकपदस्य वैयर्थ्यादपि शब्दस्वस्ताच्च । यत्तु सारावल्याम् । “सर्वानिमानतिमलः स्फुरदंशुनालो लग्नोपगः प्रशमयेत्पुरराजमन्त्री” इति । तदेतद्देश कर्तनपरमिति । अन्येऽरिष्टभङ्गाः सारावल्यामुक्ताः । राहुस्त्रिपष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः । नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तृणसंघातम् । शीघ्राद्येषु सर्वगंगनाविवासेभिः सूते । प्रकृतिरिष्यारिष्टं विनीयते पृथग्भिवाग्निस्यम् ॥ ” इति । प्रकृतिरिष्यारिष्टेस्तादिदोषरहितैरित्यर्थः ।



चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यक्षगतः स्थितश्च शुभस्यांशे ।

प्रकरोत्यरिष्टमङ्गं विशेषतः शुक्रसंहृष्टः ॥ ५२ ॥

अर्थ-चन्द्रमा यदि जन्मसमयमें पूर्णरूपसे शुभग्रहके क्षेत्रमें होय वा शुभ-ग्रहके अंशमें स्थित होय और शुभग्रहकी चन्द्रमापर दृष्टि होय तो निश्चयही अरिष्टमङ्ग होजाताहै ॥ ५२ ॥

सौम्यद्वयान्तर्गतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।

निःशेपरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ॥ ५३ ॥

अर्थ-स्निग्धशील सम्पूर्ण चन्द्रमा यदि जन्मसमयमें दो शुभग्रहोंके मध्यमें स्थित होय तो गरुड जिस प्रकार नागोंका नाश करताहै उसी प्रकार जात बाल-कके संपूर्ण अरिष्ट चन्द्रमा विनाश करदेताहै ॥ ५३ ॥

शुक्रः पञ्चसहस्राणि बुधः पञ्चशतानि च ।

लक्षमेकन्तु दोषाणां हन्याच्चैवोदितो गुरुः ॥ ५४ ॥

अर्थ-शुक्रके पांच हजार दोष दूर होते हैं, बुधके पांचसौ दोष दूर होजाते हैं और बृहस्पतिके उदयकालमें लाख दोष दूर होजाते हैं ॥ ५४ ॥

सप्ताष्टमपष्टाः शशिनः सौम्या प्रन्ति कष्टफलम् ।

पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमाके सातवें आठवें और छठे स्थानमें यदि शुभ ग्रह-गण स्थित होय तो कल्याणघृत जिस प्रकार उन्मादको नष्ट करताहै उसी प्रकार जात बालकके अरिष्टोंका नाश होजाताहै ॥ ५५ ॥

( १ ) कण्टकस्थो यदा जीवः सप्तमे यदि भार्गवः ।

बुधे च लग्नसंप्राप्ते शतं जीवति बालकः ॥ ५६ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति सातवें स्थानमें शुक्र और बुध लग्नस्थानमें स्थित होय तो जातबालक सौवर्षतक जीताहै ॥ ५६ ॥

तृतीयैकादशे चैव नवमे पञ्चमे भृगौ ।

समसप्त गते जीवे जिविदेन्दुशतं नरः ॥ ५७ ॥ ( २ )

अर्थ-जन्मलग्नके तीसरे, ग्यारहवें, नववें वा पांचवें शुक्र और समराशिगत होकर यदि बृहस्पति सातवें होय तो जात बालक सौवर्षतक जीताहै ॥ ५७ ॥

( १ ) कण्टकस्थः । इति पाठान्तरम् ।

( २ ) समराशौ यदि सप्तमः स्यात्तस्मिन्गते जीव इत्यर्थः ॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवेन्महीपालः ।

बलिभिः समस्तसौख्यो विगतभयो दीर्घजीवी च ॥ ५८ ॥

अर्थ—जन्मसमय समस्त बलवान् ग्रहोंकी दृष्टि लग्नपर होनेसे जातबालक गजा होताहै, और सर्व प्रकारके सुखोंका भोगनेवाला भयहीन और दीर्घजीवी होता है ॥ ५८ ॥

बुधो वा भार्गवो वापि गुरुर्वा केन्द्रसंस्थितः ।

शतायुर्बलवान्विज्ञो जातो गोत्राधिपो भवेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ—बुध, शुक वा बृहस्पति यदि जन्मलग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हो तब जात बालक विज्ञ और गोत्राधिपति होकर सौवर्षपर्यंत जीता है ॥ ५९ ॥

चन्द्रं पश्येद्यदा शुकः शुकं पश्येद्दिवाकरः ।

दीर्घायुः स्वगुणैश्वर्यो धनवांश्चोपजायते ॥ ६० ॥

अर्थ—जन्मसमयमें शुक यदि चन्द्रमाको देखे और सूर्य शुकको देखता होय तो जात बालक दीर्घायुष्मान् और अपने गुणोंसे ऐश्वर्यशाली और धनवान् होता है ॥ ६० ॥

नवमस्थो गुरुभृगू सप्तमस्थः कुजो यदि ।

बुधे लग्नगते चैव दीर्घायुश्च भवेत्तदा ॥ ६१ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके नवमें स्थानमें बृहस्पति और शुक सातवें स्थानमें मङ्गल और बुध लग्नमें स्थित होनेसे जात बालककी दीर्घायु होती है ॥ ६१ ॥

गुरुलग्ने तथा शुकः समसप्तगतो बुधः ।

चन्द्रश्चैकादशे केन्द्रे आयुः सत्या जितेन्द्रियः ॥ ६२ ॥ (ॐ)

अर्थ—जन्मलग्नमें बृहस्पति और शुक समराशिस्य स्थित सातवें स्थानमें बुध और ग्वारहवें वा केन्द्रस्थानमें चन्द्रमाके होनेसे जात बालक दीर्घायुयुक्त सत्यवादी और जितेन्द्रिय होता है ॥ ६२ ॥

गुरुशुकौ शुभैर्दृष्टौ भवेतां केन्द्रगौ यदा ।

तदा रिष्टानि भज्यन्ते दीर्घायुश्च नरो भवेत् ॥ ६३ ॥

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पति और शुक लग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित हों और उनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात बालकके समस्त आरिष्ट दूर होकर दीर्घायु होता है ॥ ६३ ॥

(•) एकादश इति रात्रिजानपरम् । “दिवा सूर्यो निशि शशी लग्नस्यैकादशे स्थितः” इति वचनात् ।

नवपञ्चमगो जीवो भृगुः सप्तमगो यदा ।

बुधो लग्नगतश्चैव सुदीर्घायुस्तदा भवेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-लग्नके नववें पांचवें वा सप्तमराशिगत बृहस्पति वा शुक्र और लग्नस्य बुध होनेसे जातबालक दीर्घायु होता है ॥ ६४ ॥

निधनारिगते चन्द्रे लग्नात्सजायते यदि ।

अथ केन्द्रगते जीवे जीवेददशतं नरः ॥ ६५ ॥

अर्थ-जन्मलग्नसे आठवें वा छठे चन्द्रमा और केन्द्रस्थानमें बृहस्पतिके होनेसे जात बालककी शनवर्षकी आयु होती है ॥ ६५ ॥

समस्तैर्वालिभिः सौम्यैर्लग्नं यदि समीक्षते ।

तदा विगतभीर्नूनं दीर्घजीवी च जायते ॥ ६६ ॥

अर्थ-जन्मसमय बलवान् समस्त शुभग्रह यदि लग्नको सम्यक् प्रकारसे देखते हों तो जात बालक भयहीन और दीर्घजीवी होता है ॥ ६६ ॥

लग्नात्पष्टाष्टगाः सौम्याः पापैर्युतवीक्षिताः ।

जनयन्ति हि निर्भातिं निरोगं दीर्घजीविनम् ॥ ६७ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके छठे वा आठवें स्थानमें शुभग्रहगण होय और पापग्रहके साथ न होय अथवा पापग्रहकी उपर'दृष्टि न होय तो जात बालक निर्भय निरोगी और दीर्घजीवी होता है ॥ ६७ ॥

उच्चस्थोऽपि यदा चन्द्रो गुरुभौमयुतो यदि ।

धनवान्गुणसम्पन्नो दीर्घायुर्मेन्त्रवित्ररः ॥ ६८ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि बृहस्पति और मङ्गलके साथ चन्द्रमा अपने उच्च स्थानमें वास करता होय तो जात बालक धनाढ्य गुणवान् दीर्घायुसम्पन्न और मन्त्रज्ञ होता है ॥ ६८ ॥

अथ गुरुचन्द्रयोगः ।

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे चन्द्रक्षेत्रगते गुरौ ।

गुरुचन्द्रो भवेद्योगो देवानामपि दुर्लभः ॥ ६९ ॥

अर्थ-जन्मसमय बृहस्पतिके क्षेत्रमें ( धन वा मीनमें ) यदि चन्द्रमा होय और चन्द्रमाके क्षेत्रमें ( कर्कराशिमें ) बृहस्पति होय तो उसको गुरुचन्द्रयोग कहते हैं यह योग देवताओंकोभी दुर्लभ होता है ॥ ६९ ॥

अथ जीवयोगः ।

जीवोत्सप्तमगश्चन्द्रोऽप्यथवा जीवसंयुतः ।

ज्योतिषयोगोऽयमित्याहुर्ज्योतिःशास्त्रपरायणाः ॥ ७० ॥

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पतिसे सातवें स्थानमें चन्द्रमा अथवा बृहस्पतियुक्त होय तब उसको ज्योतिर्विन्द पाण्डितगण जीवयोग कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ जीवयोगफलम् ।

बहुविभवपरिच्छदोऽथ भोक्ता गुणपरिपूर्णो नृपपूजितः ।

बहुयुवतिरतोऽथ दानशीलो भवति चिरायुर्नरो जीवयोगे ॥ ७१ ॥

अर्थ—जीवयोगमें मनुष्य उत्पन्न होनेसे अत्यन्त धनवान् परिच्छद ( बख्खभूपणादि ) सम्पन्न, भोक्ता गुणवान् राजसन्मानित अनेक युवतियोंके साथ प्रीति रखनेवाला दानशील और दीर्घायुयुक्त होता है ॥ ७१ ॥

इति जीवयोगफलम् ।

अपिच ।

सकलरिपुनिहन्ता सर्वसौख्यापभोक्ता

सकलगुणनिधिः स्यात्सर्वलोकप्रियो हि ॥

सकलकलुषहीनः सर्वविद्यासमर्थो

भवति गुणनिधानो जीवदृष्टे हिमांशौ ॥ ७२ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होनेसे जातबालक समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाला, समस्त सुखोंका उपभोक्ता, सर्व गुणोंका आधार, समस्त लोकोंका प्रियपात्र, सर्व प्रकारके पापोंसे रहित और सर्वविद्याओंका जाननेवाला होता है ॥ ७२ ॥

अन्यत्र ।

तुङ्गी त्रिकोणी स्वगृही च जीवो युतो भवेद्वा यदि चन्द्रदृष्टः ।

तदा सुवीर्यः सुमतिः सुमूर्तिर्भवेन्नरोऽसौ गजवाजिपूर्णः ॥ ७३ ॥

अर्थ—जन्मसमयमें बृहस्पति चन्द्रमाके साथ होय वा बृहस्पतिपर चन्द्रमाकी दृष्टि होकर यदि तुङ्गस्य, त्रिकोण ( नवें वा पांचवें ) हो, अथवा अपने घरमें ( धन वा मोनमें ) स्थित होय तो जातबालक अत्यन्त बलवान्, सुबुद्धिसम्पन्न, सुन्दरानुयुक्त और दायी घोडा आदिमा स्वामी ( मालिक ) होता है ॥ ७३ ॥



अपरञ्च ।

यत्र यत्र स्थितो भौमो गुरुणापि समन्वितः ।  
तत्रोच्चं फलमाप्नोति स्यादुच्चं त्रिगुणं फलम् ॥

अर्थ-जन्मसमय मंगल बृहस्पतिके साथ होकर जिस किसी राशिमें स्थित हाय उसमेंही उच्चफल प्रदान करता है; और यदि बृहस्पतिके साथ उच्चस्थानमें स्थित होय तो उक्त फलका त्रिगुना फल होता है ॥ ७४ ॥

इति रिष्टभगयोगः ।

अथ दारिद्र्ययोगः ।

लग्नस्य दशमे शून्ये रवेरेकादशे तथा ।

चन्द्रस्य चाष्टमे शून्ये त्रिशून्ये च दरिद्रता ॥ ७५ ॥

अर्थ-अब दरिद्रयोग कहते हैं । यदि जन्मलग्नसे दशवें स्थानमें सूर्यसे ग्यारहवें स्थानमें और चन्द्रमासे आठवें स्थानमें यदि शून्य होय अर्थात् कोई ग्रह स्थित न होय तो जातमनुष्य दरिद्र होता है ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शशिना सहितो मन्दः शुक्रभौमयुतो यदि ।

तेन दारिद्र्ययोगेन समुद्रमपि शोषयेत् ॥ ७६ ॥

अर्थ-जन्मकालमें शनि ग्रह शुक्र, मङ्गल और चन्द्रमाके साथ होनेसे जात बालकका दारिद्र्ययोग होताहै उस दारिद्र्ययोगसे समुद्रभी सूख जाता है भावार्थ यह कि, ऐसे योगसे अतुल्यधनकाभी नाश होजाताहै ॥ ७६ ॥

अथ वंशनाशयोगः ।

रविणा सहितो मन्दो राहुयुक्तो भवेद्यादि ।

वंशनाशकरो योगः कथितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ७७ ॥

अर्थ-अब वंशनाशक योग कहते हैं जन्मसमयमें यदि सूर्य, शनि और राहु एक राशिमें स्थित होंय तो जात मनुष्यका वंश नाश होजाताहै ॥ ७७ ॥

अथ वृक्षमरणयोगः ।

सितासितगृहे भानुर्यदा मदनमृत्युगः ।

सितभौमार्किभिर्दृष्टो वृक्षान्मरणमादिशेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ-जन्मसमय सूर्य यदि शुरु वा शनिके क्षेत्रमें स्थित होकर लग्नके सातवें

वा आठवें स्थानमें होय और उसके ऊपर शुक्र मङ्गल और शनैश्वरकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी वृक्षपरसे गिरकर मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अथ शून्यमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे दृश्यते च सुरारिणा ।

नेक्षते लग्नपो धर्ममाकाशे मरणं भवेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि लग्नाधिपति और नवमाधिपति नीच घरमें स्थित होय और राहुकी इन दोनों ग्रहोंके ऊपर दृष्टि होय और लग्नाधिपति धर्मस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी आकाशमण्डलमें मृत्यु होती है ॥ ७९ ॥

अथ वर्त्ममृत्युयोगः ।

लग्नपो व्ययपो नीचे नीचस्थग्रहवीक्षिते ।

नेक्षते लग्नपो लग्नं मृत्युः स्यात्पथि बन्धने ॥ ८० ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नाधिपति और द्वादशाधिपति नीचस्थानमें स्थित हों और नीच स्थानमें स्थित ग्रहोंकी दृष्टि होय और लग्नाधिपति लग्नस्थानको न देखता होय तो जातमनुष्यकी मार्गमें बन्धनरूपसे मृत्यु होती है ॥ ८० ॥

अन्यच्च ।

चरे च निधने तीर्थे स्थिरे च भृगुमण्डले ।

व्यात्मके लग्नसंयोगे म्रियते हृद्वत्मानि ॥ ८१ ॥

अर्थ—चरराशिमें निधनस्थान होनेसे तीर्थ स्थानमें मृत्यु होती है स्थिर राशि आठवें होनेसे ऊँचे स्थानपरसे गिरकर मृत्यु होती है और व्यात्मक राशि मृत्यु स्थानमें होनेसे बजारमें वा मार्गमें मृत्यु होती है ॥ ८१ ॥

अथ नीकामृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो द्वौ तु भवेतां पापसंयुतौ ।

नेक्षते मृत्युपो मृत्युं नीमध्ये मरणं भवेत् ॥ ८२ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नाधिपति और नवमाधिपति यदि पापग्रहोंके साथ होय और अष्टमाधिपति अष्टमस्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी नीकामें मृत्यु होती है ॥ ८२ ॥

सटिप्पणीक-भाष्यसहितः । १०७० (२०१)

अथ कारागारेमृत्युयोगः ।

लग्नपो धर्मपो नीचे रिपुयुक्तो भवेद्यदि ।

नेक्षते मृत्युपो मृत्युं कारागारे मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नका स्वामी और नववें स्थानका स्वामी नीचे धर्ममें रहकर पाप ग्रहोंके साथमें होय और आठवें स्थानका स्वामी आठवें घरको न देखता होय तब जात मनुष्यकी कारागार ( जेलखाना ) में मृत्यु होती है ॥ ८३ ॥

अथ गृहे मृत्युयोगः ।

लग्नपो बन्धुपो वापि युतो दृष्टोऽथ खेचरैः ।

नेक्षत मृत्युपो मृत्युं गृहमध्ये मृतिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ-जन्मसमय लग्नका स्वामी और चौथे स्थानका स्वामी यदि शत्रु ग्रहके साथ हो वा उनपर शत्रुग्रहोंकी दृष्टि होय और आठवें स्थानका स्वामी आठवें स्थानको न देखता होय तो जात मनुष्यकी घरमें मृत्यु होती है ॥ ८४ ॥

अथ सपत्नीकमृत्युयोगः ।

जायेज्ञो मृत्युपो द्वौ तु राजावेकत्र संस्थितौ ।

मृत्युपो वीक्षते लग्नं प्रियते भार्यया सह ॥ ८५ ॥

अर्थ-सातवें स्थानका मालिक और आठवें स्थानका मालिक यदि जन्मसमय एक राशिमें स्थित होंय और आठवें स्थानका मालिक यदि लग्नको देखता होय तो जात मनुष्यकी भार्या ( स्त्री ) के साथ मृत्यु होती है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

लग्नपः स्मरगश्चापि मृत्यो स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेक्काण एकस्मिन्प्रियते भार्यया सह ॥ ८६ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें लग्नका मालिक और सातवें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थानके एक द्रेक्काणमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी स्त्रीके साथ मृत्यु होती है ॥ ८६ ॥

अन्यच्च ।

मृत्युपो लग्नपश्चापि लग्ने स्यातामुभौ यदि ।

स्थितौ द्रेक्काण एकस्मिन्प्रियते भार्ययासह ॥ ८७ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक और लग्नका मालिक जन्म-लग्नके एक द्रेक्काणमें स्थित हों तो जात मनुष्यकी स्त्रीके साथ मृत्यु होती है ॥ ८७ ॥

अपरञ्च ।

द्व्यात्मकं निधनं यस्य युग्मके निधनेश्वरः ।

सह मृत्युं ब्रजेदेव नारी चेद्व्यभिरीणी ॥ ८८ ॥

अर्थ—जात मनुष्यका यदि आठवें स्थान द्व्यात्मक लग्न होय और युग्म-  
शाशिमें आठवें स्थानका मालिक स्थित होय तब जात मनुष्यकी भार्या व्यभि-  
चारीणी होनेसेभी पतिके साथ मृत्युको प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

चन्द्रात्सप्तमगः पापो यस्याः शुभयुतो भवेत् ।

सा तु नीचगृहस्था स्यान्प्रियते पतिना सह ॥ ८९ ॥

अर्थ—जन्मकालमें चन्द्रमाके सातवें स्थानमें स्थित पाप ग्रह यदि शुभग्रह  
युक्त होय तो जात स्त्री नीच जातिकीभी होनेसे पतिके साथ मृत्युको प्राप्त  
होती है ॥ ८९ ॥

अथ तीर्थमृत्युयोगः ।

धर्माधिपः पश्यति धर्मभावं लग्नाधिपः पश्यति लग्नभावम् ।

मृत्युं यदा पश्यति मृत्युनाथस्तदा सुतीर्थे नियतं मृतिः स्यात् ९० ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नके नववें स्थानका मालिक ग्रह यदि धर्मभावको देखे  
लग्नका मालिक ग्रह यदि लग्नभावको देखे और आठवें स्थानका मालिक यदि  
आठवें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी निश्चयसे तीर्थमें मृत्यु होती है ९०

उच्चगेहगते चन्द्रे दशमे जीवविक्षिते ।

मृत्यौ शुके धने जीवे मृत्युस्तीर्थजलाशये ॥ ९१ ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमा यदि उच्च स्थानमें स्थित होय और बृहस्पति दशवें  
स्थानको देखता होय अथवा आठवें स्थानमें शुक्र और धन ( दूसरे ) स्थानमें  
बृहस्पति स्थित होय तो जात मनुष्यकी तीर्थजलमें मृत्यु होती है ॥ ९१ ॥

निधनं गुरुणा युक्तं गुरुणा दृश्यतेऽथवा ।

एवं भृगुसुतेनापि तीर्थे च मरणं भवेत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति वा शुक्र स्थित हो अथवा  
बृहस्पति वा शुक्रकी दृष्टि होय तो जात मनुष्यकी तीर्थस्थानमें मृत्यु होती है ९२

येषां पुरुर्भृगुसुतः शशिनः क्षपेशो

दुश्चिक्वधर्मनिधनाधिपतिं प्रपश्येत् ।



तेषामनन्तधनधर्मसुखानि नित्यं  
दीर्घायुरन्तसमये खलु तीर्थलाभः ॥ ९३ ॥

अर्थ-जन्मसमय जिस मनुष्यकी लग्नके तीसरे स्थानमें और नववें स्थानमें बृहस्पति, शुक्र, बुध और चन्द्रमा स्थित होय अथवा आठवें स्थानके मालिकको यह समस्त ग्रह देखतेहों तो वह मनुष्य सर्वदा अत्यन्त धनका मालिक और अनेक प्रकारके धर्म कार्य कर दीर्घायु लाभकरके अन्तसमयमें तीर्थलाभ करता है ॥ ९३ ॥

आनृष्यं पितुरादत्ते तीर्थं मरणमेव च ।  
नयोत्पितृकुलं पुण्यं बन्धुगे भृगुनन्दने ॥ ९४ ॥

अर्थ-जन्मसमयमें शुक्र लग्नके तीसरे चौथे स्थानमें होनेसे वह मनुष्य पिताको अनृषी करके पितृकुलका उद्धार करता है और उसकी तीर्थमें मृत्यु होती है ९४ ।

निधननिधननाथो धर्मपो मृत्युपो वा  
शुभखगभवनस्थो यस्य वापि प्रपश्येत् ।  
निवसति बहुकालं मानयुक्तः सुतीर्थं  
विसृजति निजदेहं रामनाम प्रजल्पन् ॥ ९५ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके जन्मलग्नके आठवें स्थानमें आठवें स्थानका मालिक होय अथवा नववें स्थानका मालिक और आठवें स्थानका मालिक शुभग्रहके क्षेत्रमें स्थित हों वा देखतेहों तो वह मनुष्य चिरकालमें सन्मानके साथ तीर्थमें वासकरके रामनामका जप करते करते तीर्थस्थानमें ही प्राणको छोड़ देता है ॥९५॥

विधुर्वा सागरे यस्य कुजो वा यस्य युग्मके ।  
निधनं पुण्यतीर्थेषु निधनेशो भवेद्यदि ॥ ९६ ॥

अर्थ-जन्मसमय चन्द्रमा यदि चौथे स्थानमें होय अथवा मङ्गल युग्मराशेमें स्थित होय और मृत्युका मालिक यदि मृत्युस्थानमें होय तो जात मनुष्यकी तीर्थस्थानमें मृत्यु होती है ॥ ९६ ॥

दशमे रविणा सौम्ये द्वितीये जीवसंयुते ।  
मृत्युपो लग्नपो लग्ने मृतिस्तीर्थे निरामये ॥ ९७ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके दशवें स्थानमें सूर्यके साथ बुध और दूसरे स्थानमें बृहस्पति होनेसे और आठवें स्थानका मालिक और लग्नका मालिक लग्नमें स्थित होनेसे जात मनुष्यकी तीर्थ स्थानमें मृत्यु होती है ॥ ९७ ॥

मृत्यो दृष्टे जीवशुके लग्ने च सूर्यनन्दने ।

धर्मेशो वीक्षते लग्नं ब्रह्मपुत्रे मृतिर्भवेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानमें यदि बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय और शनैश्वर लग्नके होय और नववें स्थानका मालिक लग्नको देखता होय तो जातमनुष्यकी ब्रह्मपुत्रमें मृत्यु होती है ॥ ९८ ॥

लग्नेशे ग्रहसंयुक्ते मृत्युस्थे रजनीकरे ।

जीवक्षेत्रगते मृत्यौ मृत्युः पुष्करसंज्ञिते ॥ ९९ ॥

अर्थ—जन्मलग्नका मालिक यदि अन्यग्रहके साथमें होय और चन्द्रमा आठवें स्थानमें होय और आठवें बृहस्पतिके क्षेत्र होय तो जातमनुष्यकी पुष्कर तीर्थमें मृत्यु होती है ॥ ९९ ॥

चरे यदि स्यान्निधनाधिनाथस्तस्याधिपः पश्यति चेद्विलग्नम् ।

तदा सुतीर्थे नियतञ्च मृत्युर्धर्माधिपः पश्यति धर्मभावम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जन्मसमयमें यदि लग्नके आठवें स्थानका मालिक चर राशिमें होय और लग्नके मालिककी लग्नपर दृष्टि होय और नववें स्थानका मालिक नववें स्थानको देखता होय तो जातमनुष्यकी निरन्तर सुन्दर तीर्थमें मृत्यु होती है ॥ १०० ॥

अथ गङ्गामृत्युयोगः ।

त्रयो ग्रहा यदैकत्र लग्नराशिविवर्जिताः ।

भुक्त्वा च विविधान्भोगान्प्रियते जाह्नवीजले ॥ १ ॥

अर्थ—यदि किसी मनुष्यके जन्मसमय लग्न और राशि भिन्न किसी घरमें तीन ग्रहोंका वासस्थान होय तो वह मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंसे काल व्यतीत करके अन्तसमयमें गङ्गाजीके जलमें उसका मृत्यु होता है ॥ १ ॥

वृषे सूर्ये गुरौ धर्मे लग्नस्थे दैत्यपुङ्गवे ।

मृत्यौ सौम्येक्षिते युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ २ ॥

अर्थ—जन्मसमय वृषराशिमें सूर्य, लग्नके नववें स्थानमें बृहस्पति, लग्नमें शुक्र और आठवें स्थानमें बुधकी दृष्टि वा बुधयुक्त होनेसे जातमनुष्यको गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ २ ॥

चन्द्रे कुम्भे हरौ लग्ने भौमक्षेत्रे बृहस्पतौ ।

मृत्युपावेक्षिते धर्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसका मिहराशिमें जन्म होय उन मनुष्यके जन्म समय यदि चन्द्रमा

कुम्भराशिमें और बृहस्पति मङ्गलके घरमें स्थित होय और आठवें स्थानका मालिक यदि नववें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी मृत्यु गंगाजलमें होती है ॥ ३ ॥

**गुरुणा सहिते चन्द्रे मृत्यो दृष्टे शुभग्रहे ।**

**लग्नपो मृत्युपो धर्मे म्रियते जाह्नवीजले ॥ ४ ॥**

अर्थ-जन्मसमयमें बृहस्पति और चन्द्रमाका एक घरमें वासस्थान होय और आठवें स्थानमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय और लग्नका मालिक और आठवें स्थानका मालिक नववें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

**केन्द्रगौ गुरुशुक्रौ तु मृत्यौ दृष्टे शुभग्रहे ।**

**चरेऽष्टमे गुरो युक्ते म्रियते जाह्नवीजले ॥ ५ ॥**

अर्थ-जन्मसमय यदि लग्नके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होय और आठवें स्थानमें शुभग्रहोंकी दृष्टि होय अथवा मृत्यु स्थान यदि चरराशि होय और उसमें बृहस्पति स्थित होय तो इस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

**गुरुणा सहितश्चन्द्रो लग्नपो यदि पुण्यमः ।**

**स्मरपो व्ययपो लाभो मृत्युः स्यात्जाह्नवीजले ॥ ६ ॥**

अर्थ-जन्मसमयमें यदि बृहस्पति और चन्द्रमा एक घरमें होय, लग्नका मालिक नववें स्थानमें स्थित होय और सातवें स्थानका मालिक और बारहवें स्थानका मालिक ग्यारहवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्य गङ्गाजलमें प्राण त्याग करताहै ॥ ६ ॥ ७

**लग्नपः पुण्यपश्चापि मृत्यौ स्यातामुभौ यदि ।**

**स्थितौ द्रेक्काण एकास्मिन्म्रियते जाह्नवीजले ॥ ७ ॥**

अर्थ-जन्मकालमें लग्नका मालिक और नववें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थानमें एक द्रेक्काणमें स्थित हों तब जात मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ ७ ॥

**स्वोच्चस्थे शुक्रजीवे तु द्वादशे भूमिजे गुरौ ।**

**लग्ने वा शुक्रजीवे तु म्रियते जाह्नवीजले ॥ ८ ॥**

अर्थ-जन्मसमय शुक्र और बृहस्पति यदि उच्चस्थानमें हों अथवा बारहवें स्थानमें मंगल और बृहस्पति होय वा लग्नमें शुक्र और बृहस्पति स्थित होयें तो जात मनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ ८ ॥

लग्ने शुक्रे स्मरे जीवे धर्मस्थे रजनीकरे ।

मृत्युं पश्यति लग्नेशो म्रियते जाह्नवीजले ॥ ९ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नमें शुक्र, सातवें बृहस्पति और नववें स्थानमें चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्यु स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी गङ्गा-जलमें मृत्यु होती है ॥ ९ ॥

धर्मे गुरौ सचन्द्रे च मृत्युषो वीक्षते मृतम् ।

दशमे जीवशुक्रे तु म्रियते सागरे जले ॥ १० ॥

अर्थ—जन्मसमय चन्द्रमाके साथ बृहस्पति यदि नववें स्थानमें होय और आठवें घरका मालिक आठवें घरको देखता होय अथवा बृहस्पति और शुक्र दशवें स्थानमें स्थित हों तो जात मनुष्यकी समुद्रके जलमें मृत्यु होती है ॥ १० ॥

लग्नस्य दक्षिणे चन्द्रे वामे चैव दिवाकरे ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ ११ ॥

अर्थ—जन्मसमय लग्नके दक्षिणभागमें चन्द्रमा और वामभागमें सूर्य होनेसे जातमनुष्य सहस्रपुण्य कर्म करके गंगाजलमें प्राण त्याग करताहै ॥ ११ ॥

पुण्यराशिगतः सूर्यो निधने चन्द्रमा यदि ।

कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १२ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि सूर्य नववें स्थानमें और चन्द्रमा आठवें स्थानमें स्थित होय तो जातमनुष्य हजारों पुण्य कर्म करके गंगाजलमें मृत्युको प्राप्त होताहै १२

पुण्यराशिगते सौम्ये निधने चन्द्रमा यदि ।

भुक्त्वा च सकलान्भोगान्म्रियते जाह्नवीजले ॥ १३ ॥

अर्थ—जन्मसमय शुभ ग्रह यदि पुण्यराशिमें हों और चन्द्रमा आठवें स्थानमें स्थित होय तो जातमनुष्य अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिकोंको भोग कर अन्तसमय गङ्गाजलमें प्राणत्याग करता है ॥ १३ ॥

मीने कुंभे मृगे चैव कुलीरे च विशेषतः ।

जीवयुक्तेऽथवा दृष्टे हरिपादोदके व्यसुः ॥ १४ ॥

अर्थ—जन्मसमय यदि मीन, कुम्भ, मकर वा कर्क राशिमें बृहस्पति स्थित होय अथवा उक्त समस्त राशियोंमें उसकी दृष्टि होय तो जातमनुष्यकी विष्णु-पादोदक गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १४ ॥

**निधनेशो यदा युग्मे गुरुस्तेन युतो यदि ।**

**भुक्त्वा च विविधान्भोगान्प्रियते जाह्नवीजले ॥ १५ ॥**

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक बृहस्पतिके साथ होकर युग्म राशिमें स्थित होय तो जात मनुष्य अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

**निधनेशो यदा युग्मे गुरुशुक्रावलोकितः ।**

**कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥ १६ ॥**

अर्थ-जन्मसमय यदि आठवें स्थानका मालिक युग्मराशिमें होय और उत्तर बृहस्पति और शुक्रकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य हजारों पुण्य कर्म करता है और अन्तसमय उसकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १६ ॥

**कर्कटे जीवशुक्रौ च धर्मक्षे चन्द्रमा यदि ।**

**तस्य भाग्यं विजानीयाद्गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ १७ ॥**

अर्थ-जन्मसमयमें यदि बृहस्पति और शुक्र कर्क राशिमें होयें और चन्द्रमा यदि नववें स्थानमें होय तो उस मनुष्यकी गङ्गाजलमें मृत्यु होती है ॥ १७ ॥

**( क ) बुधादित्यसमो योगो न भूतो न भविष्यति ।**

**चिरकालं सुखं भुक्त्वा म्रियते जाह्नवीजले ॥ १८ ॥**

अर्थ-बुधादित्ययोगके समान दूसरा योग न हुआ और न होय जिस मनुष्यका बुधादित्य योगमें जन्म होय वह चिरकाल सुखोंको भोगकर अन्तसमय उसकी गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ १८ ॥

**विनाशराशौ यदि पुण्यगेहे निजाधिपेनैव विलोकितः स्यात् ।**

**मृत्यौ भवेत्सौम्ययुतोऽपि नूनं प्राणास्त्यजेज्जहुसुतासुनारे ॥ १९ ॥**

अर्थ-जन्मसमय आठवें स्थानका मालिक और नववें स्थानका मालिक यदि आठवें स्थान और नववें स्थानको देखते हों और शुभग्रह मृत्यु स्थानमें स्थित हो तो उस मनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ १९ ॥

**पुण्याधिपः पुण्यगृहे च केन्द्रे केन्द्राधिपयोग इहेव नीतः ।**

**राजाधिराजो गुणिनां वरेण्यो गङ्गाजले शुञ्चति जीवितं सः ॥२०**

अर्थ-जन्मसमय मनुष्यकी लग्नमें नववें स्थानमें नववें स्थानका मालिक और

(क) "निरपेक्षो हि यद्राशौ रविः सौम्येन सयुतः । एतदा हि भवेद्योगो बुधादित्यः स एव हि ॥" इति बुधादित्ययोगरथनम् ।

केन्द्रस्थानमें केन्द्रस्थानका मालिक स्थित होय तो वह मनुष्य अत्यन्त गुणवान् और राजाधिराज होकर अन्तसमयमें गंगाजलमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥२०॥

**चतुर्भिः सप्तभिर्वापि निधनं यदि दृश्यते ।**

**भुक्त्वा भोगान्भूतियुतानन्ते च जाह्नवीं लभेत् ॥ २१ ॥**

अर्थ—जन्मलग्नके आठवें स्थानपर यदि चार ग्रहोंकी वा सात ग्रहोंकी दृष्टि होय तो जात मनुष्य अनेक प्रकारके ऐश्वर्यादिकोंको भोगताहै और अन्तसमय गंगाजलमें मृत्यु होती है ॥ २१ ॥

**बुधे लग्नगते चैव दशमे रोहिणीपतौ ।**

**जाह्नव्यां हि तदा मृत्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ २२ ॥**

अर्थ—जन्मलग्नमें बुध और लग्नके दशवें स्थानमें चन्द्रमाहोनेसे जात मनुष्यकी निश्चयही गंगाजलमें मृत्यु होतीहै ॥ २२ ॥

**चरराशौ स्थिते सूर्ये लग्नस्थश्चन्द्रमा यदि ।**

**वसिष्ठादिमुनिवाक्यं गङ्गायां मरणं भवेत् ॥ २३ ॥**

अर्थ—जन्मसमय यदि चरराशिमें सूर्य और लग्नमें चन्द्रमा स्थित होय तो जातमनुष्यकी गंगाजलमें मृत्यु होतीहै; इसप्रकार वसिष्ठादि मुनिगणने कहाहै ॥२३॥

**धर्मगौहे यदा चन्द्रो बुधशुक्रावलोकितः ।**

**ते धर्मचारिणो भूत्वा मज्जन्ति सुरदीर्घिकाम् ॥ २४ ॥**

अर्थ—जन्मलग्नके नववें स्थानमें चन्द्रमा होय और उसको बुध और शुक्र देखने हों तो जातमनुष्य धार्मिक होकर अन्तसमय गङ्गालाम करताहै ॥ २४ ॥

**पुण्यराशिगतश्चन्द्रः पुष्करे च दिवाकरः ।**

**कृत्वा पुण्यसहस्राणि त्रियते जाह्नवीजले ॥ २५ ॥**

अर्थ—जन्मसमय यदि चरराशिमें चन्द्रमा और स्थिरराशिमें सूर्य स्थित होय ( नववीं राशिमें चन्द्रमा और दशवीं राशिमें सूर्य इस प्रकार भी किसी आचार्यने कहाहै ) तो जातमनुष्य हजारों पुण्यका कर्मकरके गंगाजलमें अन्तसमय प्राण त्यागताहै ॥ २५ ॥

अथ काशीमरणयोगः ।

लग्ने जीवे सशुके च मृत्युयुक्ते निशाकरे ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो मृतिं काश्यामवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

अर्थ-जन्मलग्नमें यदि बृहस्पति और शुक्र स्थित हों और आठवें स्थानमें चन्द्रमा होय और लग्नका मालिक मृत्युस्थानको देखता होय तो जात मनुष्य काशीधाममें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

लग्ने सिंहे शनौ पष्ठे मिथुने जीवसंयुते ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी जन्मलग्न सिंह होय, लग्नके छठे स्थानमें शनि होय, मिथुनमें बृहस्पति होय और लग्नका मालिक आठवें स्थानको देखता हो तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २७ ॥

लग्नेशः पूर्णहृष्ट्या तु मृत्युभावं प्रपश्यति ।

लग्नं वा रात्रिपो मृत्यां काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ २८ ॥

अर्थ-जन्म लग्नके मालिककी यदि आठवें स्थानमें वा जन्मलग्नमें सम्पूर्ण हृष्टि हाय और चन्द्रमा यदि आठवें स्थानमें स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २८ ॥

सप्तमस्थे जीवशुके दशमे रजनीकरे ।

मृतिं पश्यति लग्नेशो वाराणस्यां मृतिर्भवेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-जन्मलग्नके सप्तम स्थानमें यदि बृहस्पति और शुक्र और दशमें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और लग्नका मालिक आठवें स्थानको देखता होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ २९ ॥

दशमे जीवशुक्रौ तु मृतिं पश्यति मृत्युपः ।

लग्ने वा लग्नपो भौमः काश्यां मृत्युं समादिशेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि दशमें स्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित हों और आठवें स्थानका मालिक आठवें स्थानको देखता होय और लग्नमें लग्नका मालिक वा मङ्गल स्थित होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

जीवेन दृश्यते चन्द्रश्चन्द्रेण दृश्यते गुरुः ।

तदा मृत्युं व्रजेदेव काशीक्षेत्रे न संशयः ॥ ३१ ॥

अर्थ-जन्मसमय यदि बृहस्पतिकी चन्द्रमापर और चन्द्रमाकी बृहस्पतिपर हृष्टि होय तो जात मनुष्यकी काशीमें मृत्यु होती है ॥ ३१ ॥

निधने च स्थितो भौमो बुधक्षेत्रे भवेद्यादि ।

काशीवासो भवेत्तस्य शशी केन्द्रे विशेषतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जन्मलग्नका आठवाँ स्थान यदि बुधका क्षेत्र होय और मङ्गल उस स्थानमें स्थित होय और चन्द्रमाका केन्द्रस्थानमें वासस्थान होय तो जात मनुष्यका काशीमें वास होता है ॥ ३२ ॥

अथ जन्ममरणयोर्मोक्षज्ञानम् ।

पृष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुश्चे मीनसंज्ञे विलग्न वा ।

शेषैरवलैर्जन्मानि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥ ३३ ॥ (क)

अर्थ—जन्मसमय वा मृत्यु समय यदि बृहस्पति छठे आठवें लग्नमें चौथे सातवें वा दशवें स्थानमें होकर उच्च स्थानमें स्थित होय अथवा मीनराशिमें होय और अन्य ग्रह हीनबल होय तो जात वा मृतक मनुष्यको मोक्ष प्राप्त होती है इस प्रकार विद्वानोंने कहा है ॥ ३३ ॥

अथ स्त्रीणां रूपादिनिरूपणम् ।

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र चन्द्रलग्नस्थम् ।

तद्दलयोगाद्गुरुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमये च ॥ ३४ ॥ (ख)

अर्थ—अब स्त्रियोंके रूपादिको वर्णन करते हैं स्त्री और पुरुषके जन्मफलके

(क) मोक्षगतिनिर्णयमाह- पठेति । उच्चे स्थितो गुरुः पष्ठेऽष्टमे कण्टके केन्द्रे स्थितो यदि जन्मकाले मरणकाले वा स्यात्तदा ज्योतिर्विदो मोक्षगतिमाहुः । यदि भावसानान्तलग्ने वा इति पाठस्तदा भावसानराशयन्तो मीनराशिः तस्मिन् लग्ने स्थितो गुरुः । यदि स्यात्तदा शेषग्रहैरवलैर्जन्मानि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः । अत्र च गुरुश्चो मीनलग्नश्च यदि स्यादिति सौभरेः ॥ प्रलापो हेय एव तथा लग्न इति प्रथमान्तनिर्देशस्यैवोचितत्वात् । पञ्चमपष्ठाष्टमकेन्द्रे ग इत्यनेनैव सिद्धे भावसानलग्ने इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च । तथा बृहज्जातके-गुरुरथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थ उदयति भवनान्त्यसौम्यभागे च मोक्षः । यदि भवति बलेन प्रोच्छितास्तत्र शेषाः प्रलपति यदि जीवस्तस्य निर्वाण-मोक्षः ॥ इति ।

(ख) इदानीं स्त्रीजातकमाह-स्त्रीपुंसोरिति । जन्मफलं स्त्रीपुंसोस्तुल्यं पुंसो यत्फलमुक्तं स्त्रिया अप्येतत् इत्यर्थः । अत्र स्त्रीषु यदसम्भवं राजयोगादि तत्तत्पतिषु वाच्यम् । तथाच लघुजातके “पुजन्मफलं यदप्रदते न स्त्रीषु पतिषु तत्तासाम्” इति । किन्तु चन्द्रलग्नस्य तद्दलयोगादिति वपुः शरीर शरीरस्य रूपशीलादि ज्ञातव्यं तथाचाकृतिराकारोऽवयवः लग्नचन्द्रस्या ज्ञातव्या तयोर्मध्ये यो बली तद्दलाद्वाचा इत्यर्थः । तथा लग्नादस्तासमये सप्तमे सौभाग्यं ज्ञातव्यं पतिश्च ज्ञातव्यः । अत्र केचिद्दलग्नवत् चन्द्रादापि स्त्री वाच्यतांतां वदन्ति । तत्र केवलं वपुर्मात्रं लग्नचन्द्रस्थमित्युक्तान्वयत अत्रच सामान्य-



समान अर्थात् पुरुषके जो समस्त फल कहे हैं स्त्रियोंके भी प्रायः उसी प्रकार होते हैं किन्तु विशेष यही है कि चन्द्रमा और लग्नके बलानुसार शरीरका रूप और शीलादि और सातवें स्थानमें सौभाग्यका विचार करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ सप्तमस्थपापग्रहफलम् ।

बाल्ये विधवा भौमे पतिसंत्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे ।

सौरि पापदृष्टे कन्यैव जरां समुपयाति ॥ ३५ ॥ ( ग )

अर्थ—अब कन्याके सातवें स्थानमें स्थित पापग्रहोंका फल कहते हैं स्त्रियोंके जन्मसमयमें लग्नके सातवें स्थानमें मंडल होनेसे बाल्यास्थामें विधवा होजाती है सूर्य सातवें स्थानमें होनेसे जात स्त्रीको पति त्यागकर देता है और शनिेश्वरको यदि पाप ग्रह देखते होय तो जात कन्या अविवाहिताही वृद्ध होजाती है ॥ ३५ ॥

अथ वैधव्याधियोगः ।

क्रूरस्ते विधवा भवति पुनर्भूः शुभाशुभैर्नारी ।

क्रूरेऽष्टमे च विधवा स्यात्सत्स्वर्थे सा स्वयं म्रियते ॥ ३६ ॥ ( घ )

अर्थ—पापग्रह लग्नके सातवें होनेसे जात नारी विधवा होती है, शुभाशुभ ग्रह सातवें होनेसे पुनर्भू होती है अर्थात् उस नारीका दूसरीवार विवाह होता है और पापग्रह आठवें स्थानमें होनेसे भी जात कन्या विधवा होती है, किन्तु दूसरे

—प्राप्तेन लग्नेनैव सम्बन्धः अत एव शीलाकृतीत्यादि वपुर्गुणमात्रं लग्नेन्दुतो वक्ष्यते । औजे लग्नेन्दोरित्यादिना नाहि सर्वमेव स्त्रीजातके रिष्टाद्युद्दय गजयोगादिलग्नचन्द्रादपि ज्ञातव्यम् । तथा बृहज्जातके । “तासान्तु भर्तृमरण निधने वपुस्तु लग्नेन्दुग शुभगतास्तमये पतिश्च” इति । एव वक्ष्यमाणेऽपि लग्नादेव सर्वं बोद्धव्यम् । इति ।

( ग ) सप्तमस्थे पापग्रहे फलमाह—बाल्य इति । भौमे लग्नादस्तस्थे सप्तमस्थे बाल्ये शैशवे विधवा स्यात् । दिवाकरे सप्तमस्थे पतिसंत्यक्ता स्यात् । शनौ तु पापदृष्टे सप्तमस्थे कन्या अन्नदेव जरा प्राप्नोति जरावस्थायामपि तस्या विवाहो न स्यादित्यर्थः । पापदृष्टे इति शशिनैव सम्बन्धः । तथा बृहज्जातवे—उत्सृष्टा तरणी कुजे तु विधवा बाल्येऽस्त राशिरियते कन्यैवाशुभवीक्षितेऽकृतनये द्युने जरां गच्छति ॥” इति ।

( घ ) सप्तमाष्टमस्थफलमाह—क्रूरितीवहुभिः क्रूरैः सप्तमस्थैः विधवा मिश्रैः शुभाशुभैः सप्तमस्थैः पुनर्भूः द्विरूढा स्यात् तथाष्टमस्थे क्रूरग्रहे विधवा स्यात् अत्र चाष्टमाधिपो यस्य नवांशे स्थितः तस्य ग्रहस्य वयनि वैधव्यं ज्ञातव्यम् । ग्रहाणा वयस्तु देवसत्त्वलाभाया मुक्तम् । “वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः । अतीव वृद्धा इति चन्द्रभौमशशुक्रनीवारिगनैश्वराणाम्” इति । तथा बृहज्जातके “ क्रूरेऽष्टमे विपवता निधनेश्वरंऽशौ यस्य स्थितो वयसि तस्य तु सा प्रदिष्टा । सत्यर्थजेण मरण स्वयमेव तस्याः कन्यालिगो रिपु चाल्पस्तुतवभिन्दौ । अरिमन्त्रेव योगेऽष्टमस्थे क्रूर सत्त्व शुभ-ग्रहेषु द्वितीपरिधतेषु सा कन्यैव स्वयं म्रियते न तु वैषम्यमित्यर्थः । कश्चिदस्तु इति व्याचष्टे तद्गुह्यः मत्स्वर्धगेण मरणमिष्यादिति लिखितबृहज्जातकरचिनात् । इति ।

स्थानमें यदि शुभग्रह होय तो उस स्त्रीकीही मृत्यु होजाती है ॥ ३६ ॥

अपिच ।

**ओजे लग्नेन्द्रोः स्त्री दुःशीला शील्युता युग्मे ।**

**शून्ये बले कदर्यः पतिश्वरेऽस्ते प्रवासी स्यात् ॥ ३७ ॥ ( ङ )**

अर्थ—स्त्रियोंका जन्म ओज अर्थात् अयुग्म लग्नेमें होनेसे अथवा जन्मचन्द्रमा

( ङ ) चन्द्रलग्नस्थ वपुराकृतिश्चेति यदुक्तं तत्फलमाह—ओज इति । ओजेविषमग्रह-स्थितयोल्लेखेन्द्रोः सतोः स्त्रीदुःशीला पुरुषप्रकृतिः स्यात् युग्मलग्नेन्द्रोःशीलयुता स्वभावस्था स्यात् मिश्रे मिश्रफलमूहनीयम् तथा लघुजातके “युग्मक्षे लगेन्द्रोः प्रकृतिस्था रूपशीलगुणयुक्ता ओजे पुरुषाकारा दुःशीला दुःखिता चैव” इति । अत्रच शुभपापदर्शनात् गुणयुक्ता । गुणहीना च ज्ञातव्या । सप्तमस्थानात्प्रतिज्ञानमाह—शून्य इति । ग्रहशून्ये बलरहिते चास्ते सप्तमस्थाने पतिः कदर्यः कापुरुषः स्यात् चरे च सप्तमस्थाने पतिर्नित्यप्रवासी स्यात् अत्रच शुभग्रहदर्शने शुभफलं स्यात् । तथा बृहज्जातके “शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सीम्यग्रहावस्थिते हरेऽस्ते बुधमन्दयोश्चगृहे नित्य प्रवासाश्रितः” इति । अत्रच सौभरेः प्रलापः प्रहसनमेवोति । अत्र च लग्नस्य यावन्नवांशः सप्तमग्रहस्य तावति नवांशे शुभग्रहसम्बन्धिनि साति सुभगा म्यात् । सप्तमे पापग्रहनवांशे पापव्यतिष्ठे व्याधियोनिर्दुर्भगा म्यात् । तथा बृहज्जातके “कौजेऽस्ते हेमे सौरिणाव्याधियोनिश्रासुश्रोणी वल्लभा मद्गदाशौ ।” अत्र च द्रेक्षाणात्मनी पुजान बृहज्जातके उक्त तन्मङ्गलय मयोन्यते । “ आदिनिभागे मेपम्य कर्त्वा शुद्धपयवृतः । कोपनो रक्तनेत्रश्च पुमान्कृष्णो दृगसदः । मेपे द्वितीये नारी स्यात्सज्जा भक्ष्येषु लोल्पा कुम्भाकृतिर्वाजिभुरती वृपात्ता लोहिताकृतिः । मेपे तृतीये कर्माधीं दारुणे निर्भयः पुमान् । कलाज्ञः कपिलः क्रूरः सत्यशाचविर्वाजितः ॥ १ ॥ वृषस्य प्रथमे नारी वृपात्ता म्यात्पतिव्रता । मूलोदरी दग्धपटा स्वल्पकेशी प्रियम्बदा । द्वितीये द्वागधनस्तृपात्ता मलिनाम्बरः । वृषस्कन्धः कलाभिज्ञः कुशलः सर्वकर्मसु । वृषस्थान्ते हस्तितुल्यशरीरः पित्रलः पुमान् । उच्चपादः मृत्सदन्तो मृगलोमाकुलाश्रयः ॥ २ ॥ मियुनप्रथमे नारी कुर्वती कर्म निष्फलम् । हीनमजोच्छ्रितमुजा सतीरुपान्विता भवेत् । द्वितीये पुरुषः शूरो धनुष्मान्गरुडाननः । अन्ते धनुष्माद्युत्यादिफलज्ञो रत्नवानसुधीः ॥ ३ ॥ कर्केटादे हस्तिहायः शूरास्यः फलाभिभूत् । कुटिलान्निर्हयप्रविः पुरुषो जायते महान् । द्वितीये कर्केशा पद्मान्विता नारी गनस्थिता । अन्ते प्रियश्विपीटास्यो नौवाणिज्यपरः पुमान् ॥ ४ ॥ सिंह्यादे जम्बुजाकारो मृधकुन्दुरानिःस्वनः । मातापितृपरित्यक्तः पुरुषो मलिनाम्बरः । द्वितीये श्वाकृति-कृष्णाजिनकम्बलवान्पुमान् । लताप्रनासी धन्वी च मिहवत्स्याद्दुरासदः । अन्ते पुमाः वृक्षमुतो वानरोपमचेष्टितः । दीर्घशम्भ्रुदण्डधरो भवेत्कृत्स्नितमूर्धजः ॥ ५ ॥ कन्यादे सहकन्याभिर्गच्छन्ती मलिनाम्बरा । पुष्पप्रकीर्णहृम्भेन लक्षिता कन्यया भवेत् । मध्यस्कन्धशिखायामो ऐराहो रोमशः पुमान् । अन्ते गौरी पुत्रहीना धीतपत्रममग्निना ॥ ६ ॥ तुलादे मानकुशलतुलान्मृलक्षितकः । वीथीमध्यगतोमारो विनिन्द्यपुष्पो भवेत् । मण्ये ह्यपात्तमृषितः शूभ्रास्यः कलशान्वितः । अन्ते धनुष्मान्दीर्घास्यो भिषणो

अयुग्मगाशिमं होनेसे वह दुःशीला होती है मातर्वीं स्थान ग्रहशून्य वा बलशून्य होनेसे पाति कापुरुष होता है चरगाशि मातर्वीं स्थानका होनेसे स्त्रीका पाति नित्य प्रवामी होता है ॥ ३६ ॥

अथ ग्रहाणां गोचरभोगस्तत्कथनम् ।

हरिर्मांसं निशानाथः सपादादिवसद्वयम् ।

पञ्चत्रयं भूमिपुत्रो बुधोऽष्टादश वासरान्

वर्षमेकं सुराचार्यश्चाष्टाविंशतिं भृगुः ।

शनिश्चाद्धद्वयं वर्षं स्वर्भानुः सार्द्धवत्सरम् ॥ ३८ ॥

एवं प्रमाणात्सकलाः स्वराशि भुज्जते ग्रहाः ।

वक्रशीघ्रगतिश्चेत्स्याद्भौमादि पञ्चकेऽन्यथा ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब ग्रहाके गोचरम रहनेका समय कहते हैं, सूर्य एक राशिमें एक महीनेतर रहता है, इसी प्रकार चन्द्रमा मगदो दिन, मङ्गल पैंनालिस दिन, बुध अठारह दिन, वृहस्पति एकवर्ष, शुक्र अट्ठाईस दिन, अनेश्वर अट्ठाई वर्ष और गुरु डेढ वर्षतक एक राशिम रहता है । ग्रहोंका स्वाभाविक नियम उक्त प्रकारसे एक एक राशिमें जानना चाहिये, किंतु मङ्गल बुध, वृहस्पति, शुक्र, और शनि इन पाँच ग्रहाकी प्रगति और शीघ्रगति द्वारा कभी उक्त समयकेन्यूनाधिक होजाताहै ॥ ३८-३९ ॥

—रत्नभूषित ॥ ७ ॥ वृश्चिरे प्रथमे नारी वस्त्रालङ्कारखानता । स्थानच्युता नदी तीण फल प्राप्ता मनोहरा । मध्ये स्थान सुख लिप्सुनारी कूमघटाकृति । अन्ते बृहच्चिपीटा स्वश्वर पथादिभूषण ॥ ८ ॥ धनुष प्रथमे धनी मनुष्यास्योऽश्नपहपु । मध्ये स्वरूपा गौरी स्यान्नारी भद्रासनास्थिता । धनुस्तृतीये गौराङ्ग श्मश्रुवा दण्डधारक । वीपेयराजं वधरो विक्रयी पुरुषो भवेत् ॥ ९ ॥ मकरप्रथमो रौद्रमुखो रज्जुधर पुमान् । लोमशो मकराकारदत्त शूद्ररहपु । मध्येकलाजाद्विषाक्षी श्यामला रोहभूषणा । अन्ते धन्वी दीर्घमुख सषट् कम्बलान्वित ॥ १० ॥ रम्भस्य प्रथमे स्व स्नेहसत्याङ्गुलीद्वृत । वीपेयवासा गृध्रास्य स्थिरबुद्धि पुमान्भवेत् । द्वितीये मूर्ध्नि भाण्डान्या नारी स्यान्म लिनाम्बरा । तृतीये श्यामल शर सारामश्रवण पुमान् ॥ ११ ॥ मीनस्य प्रथमे रौद्र प्रियो भूषणभूषित । अग्रभाण्डपाणिनीकामि क्रीडाकृत्पुरुषो भवेत् । द्वितीये सुन्दरी गौरी कुल याती च नौजया । तृतीये वल्लहीन स्याद्दृढव्याङ्गुलितेक्षण । स्त्रीभागे तु भवेद्गामाभुभागे पुरुषो भवेत् । स्त्रीद्वेकाणेऽवले ग्रापि पद्महस्थितिदर्शने । भवेत् पुमांस्तथा नारी स्त्रीगृहस्थितिदर्शने । पुभागेऽप्यवले क्वापि गुप्तमेतन्मयोदितम् । अत्रच प्रश्रद्रेका णानुरूपश्चैरो ज्ञातव्य । तथा “ द्रेकार्णभन्मग स्मृता ” इति । ज्ञातसागरमग्रा ने मुद्धान्ति नेत्र विद्वान् । मनेपेण यत्न विभित्तज्ञान सुद्यतां वृत्तिभि ” इति ।

## अथ ग्रहणां गोचरफलम् ।

तत्रादौ स्वेः ।

स्थानं जन्मानि नाशयेद्विनकरः कुर्याद्वितीये भयम्  
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिवुके मानक्षयं यच्छति ।

दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा पष्टेऽर्थहा सप्तमः

पीडामष्टमगः करोति नितरां कान्तिक्षयं धर्मगः ॥ ४० ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—अब ग्रहोंके गोचरका फल कहते हैं जन्मराशिमें सूर्य स्थित होनेसे मनुष्यका स्थान भ्रष्ट होजाताहै; इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे भय, तीसरे स्थानमें श्रीलाभ, चौथे स्थानमें मानहानि, पांचवें स्थानमें दैन्य, छठे स्थानमें स्थित होनेसे शत्रुओंका नाश, सातवें स्थानमें अर्थनाश, आठवें स्थानमें होनेसे पीडा और नववें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे कान्ति क्षय होती है ॥ ४० ॥

कर्म वृद्धि जनकस्तु कर्मगो वित्तवृद्धिकृदथायसंस्थितः ।

द्रव्यनाशजनितामहापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥ ४१ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—सूर्य जन्म राशिसे उग्रवें स्थानमें होनेसे कार्यकी वृद्धि होती है, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे सम्पत्तिकी वृद्धि होती है और गोचरके बारहवें स्थानमें सूर्य स्थित होनेसे मनुष्यकी सम्पत्तिका नाश होताहै और घोग्तर विपद् होती है ॥ ४१ ॥

इति स्वर्गोचरफलम् ।

अथ चन्द्रस्य ।

जन्मन्यर्थं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये

दद्याद्द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थः ।

कार्यभ्रंशं तनयगृहगो वित्तलाभञ्च पष्टे

धूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युसंस्थोऽपि मृत्युम् ॥ ४२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—जन्मराशिमें चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्यको अर्थलाभ होताहै, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें वित्तनाश तीसरे स्थानमें होनेसे द्रव्यलाभ चौथे स्थानमें होनेसे उदरमें पीडा होती है पांचवीं राशिमें होनेसे कार्यका नाश छठे स्थानस्थित होनेसे वित्त-

लाभ, सातवें स्थानमें होनेसे द्रव्य और स्त्री प्राप्त होती है और आठवें स्थानमें होनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ४२ ॥

नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।

विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रूढं सधनक्षयम् ॥ ४३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—चन्द्रमा जन्मराशिसे नववें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको राज्यभय होता है इसी प्रकार दशवें स्थानमें होनेसे अत्यन्त सुख ग्यारहवें स्थानमें होनेसे धनकी वृद्धि होती है और बारहवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होनेसे मनुष्य रोगी होता है और उसके धनका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥

इति चन्द्रस्य गोचरफलम् ।

अथ मङ्गलस्य ।

प्रथमगृहगः क्षोणीसूनुः करोत्परिजं भयं

क्षपयति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थदः ।

अरिभयकरः पातालेऽसून्क्षिणोति च पञ्चमो

रिपुगृहगतो धत्ते वित्तं शुचं मदनस्थितः ॥ ४४ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—मङ्गल जन्मराशिमें स्थित होनेसे शत्रुका भय मनुष्यको होता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे धनका नाश, तीसरे स्थानमें होनेसे अर्थलाभ, चौथे स्थानमें होनेसे शत्रुका भय, पाँचवें स्थानमें होनेसे मृत्यु, छठे स्थानमें होनेसे वित्तलाभ और सातवें स्थानमें मङ्गल स्थित होनेसे मनुष्यको शोक प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

जनयति मरणस्थः शत्रुधारां धराजो

दिशति च नवमस्थः कार्यपीडामतीव ।

शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूमिलाभः

व्ययभवनगतोऽर्था व्याध्यनर्थार्थनाशम् ॥ ४५ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—मंगल जन्मराशिसे आठवें स्थानमें होनेसे अघाघात होता है, इसी प्रकार नववें स्थानमें होनेसे कार्यका नाश दशवें स्थानमें होनेसे मंगल होता है ग्यारहवें

स्थानमें होनेसे पृथ्वीलाम होता है और गोचरके मंगल बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे रोग अर्थनाश और अमंगल होता है ॥ ४५ ॥

इति कुजस्य गोचरफलम् ।

अथ बुधस्य ।

बुधः प्रथमधामगो दिशति बन्धमर्थे धनं

वधंरिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थेऽर्थदः ।

अनिर्वृत्तिकरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः

करोति मदनस्थितो बन्धुविधां शरीरापदम् ॥ ४६ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—जन्मराशिमं बुधके स्थित होनेसे बन्धन होता है इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे धनलाभ तीसरेमें मृत्युकी शङ्का और शत्रुका भय चौथेमें अर्थलाभ, पाँचवें स्थानमें होनेसे आनन्दका अभाव, छठे स्थानमें प्राप्ति और गोचरके सातवें स्थानमें बुध होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारकी शारीरिक पीडा होती है ॥ ४६ ॥

अष्टमे शशिसुते धनलब्धिर्धर्मगेऽतिमहती तनुपीडाम् ।

कर्मगे सुखमथायगतेऽर्थदो द्वादशगे भवति वित्तसुलाभः ॥ ४७ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—बुध जन्मराशिसे आठवें स्थानमें होनेसे धनका लाभ होता है इसी प्रकार नववें स्थानमें होनेसे अत्यन्त शारीरिक पीडा दशवें स्थानमें होनेसे सुख ग्यारहवें स्थानमें होनेसे अर्थलाभ और गोचरके बुध बारहवें स्थानमें होनेसे मनुष्यको द्रव्य प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

इति बुधस्य गोचरफलम् ।

अथ च्छहस्पतेः ।

भयं जन्मन्यार्यो जनयति धनस्थोऽर्थमतुलं

तृतीयोङ्गकेशं दिशति च चतुर्थोर्थविपमम् ।

शुभं पुत्रस्यात्ता शुभमपि च कुर्यादरिगृहे

द्युने भूभृत्पूजां धननिचयनाशञ्च निघने ॥ ४८ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—च्छहस्पति गोचरके जन्मराशिमं स्थित होनेसे भय होता है इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे अतुल्य धनका लाभ तीसरे स्थानमें होनेसे शारीरिक श्रेय

चौथे स्थानमें होनेसे धनका नाश पाँचवें स्थानमें होनेसे शुभ, छठे स्थानमें होनेसे अशुभ, सातवें स्थानमें होनेसे गजपृज्व और आठवें स्थानमें बृहस्पति स्थित होनेसे मनुष्यके धनका नाश होजाता है ॥ ४८ ॥

धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्यात्प्राप्तिहरो दशमोऽमरपूज्यः ॥

स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥ ४९ ॥

इति रत्नकोषे

अर्थ-बृहस्पति जन्मराशिसे नववें स्थानमें स्थित होनेसे धनकी वृद्धि होती है, इसी प्रकार दशवें स्थानमें होनेसे प्राप्तिभंग, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे स्थान और धनप्राप्ति होती है और गोचरमें बृहस्पति बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको मानसिक और शारीरिक पीडा होती है ॥ ४९ ॥

अन्यच्च ।

आद्याष्टमे बन्धुवियोगदुःखमस्ते चतुर्थे धनहानितापम् ॥

पष्ठे च रोगं कलहं तृतीयं सर्वस्वनाशं दशमस्तु जीवः ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, बृहस्पति गोचरमें जन्मराशिमें स्थित होनेसे वा आठवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका बान्धवोंसे वियोग होता है, इसी प्रकार बारहवें वा चौथे होनेसे धनहानि, छठे होनेसे रोग, तीसरे होनेसे कलह और गोचरमें बृहस्पति दशमं स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका सर्वस्वनाश होजाता है ॥ ५० ॥

इति गुरोगोचरफलम् ।

यथ शुक्रस्य ।

जन्मन्यारिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोधे ।

दुश्चिक्वयगः सुखकरो धनदश्चतुर्थे ॥

स्यात्पुत्रदस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धये ।

शोकप्रदो मदनगोनिधनेर्धदाता ॥ ५१ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ-शुक्र जन्मराशिमें स्थित होनेसे शत्रुहीन होजाता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे अथैलाभ, तीसरे स्थानमें होनेसे सुख, चौथे स्थानमें धनलाभ, पाँचवें स्थानमें पुत्रलाभ, छठे स्थानमें शत्रुकी वृद्धि, सातवें स्थानमें शोक और शुक्र गोचरके आठवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको धन प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

जनयति विविधाम्बराणि धर्मै ।  
 न शुभकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः ॥  
 धननिचयकरस्तु लाभसंस्थितो ।  
 व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥ ५२ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—शुक्र जन्मराशिसे नवमे स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके बन्ध प्राप्त होते हैं, दशमे स्थानमें होनेसे अशुभ ग्यारहवें स्थानमें होनेसे विपुल धनलाभ होता है और शुक्र बारहवें स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यको धन प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

इति शुक्रस्य गोचरफलम् ।

अथ शनेः ।

वित्तभ्रंशं सदाहं दिनकरतनयो जन्मराशिप्रसन्नः  
 चित्ते क्लेशं द्वितीयो रिपुहनकृतं वित्तलाभं तृतीयः ॥  
 पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं  
 पृथस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसंघातमार्किः ॥ ५३ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ—शनि जन्मराशिमें स्थित होनेसे वित्तनाश और सन्ताप होता है, इसी प्रकार दूसरे स्थानमें होनेसे चित्तका क्लेश होता है, तृतीय स्थानमें होनेसे शत्रुका नाश और धन प्राप्त होता है, चौथे स्थानमें स्थित होनेसे शत्रुओंकी वृद्धि होती है, पाँचवें स्थानमें होनेसे पुत्र भृत्य और धनका नाश होजाता है, छठे स्थानमें होनेसे अर्थलाभ होता है और सातवें स्थानमें शनिश्वर स्थित होनेसे मनुष्यका अनेक प्रकारका अनिष्ट होता है ॥ ५३ ॥



होनेसे मानसिक उद्वेग, ग्यारहवें स्थानमें होनेसे विचलाभ और बारहवें स्थानमें  
गनैश्वर स्थित होनेसे मनुष्यका अत्यन्त अमंगल होता है ॥ ५४ ॥  
इति शनेर्गोचरफलम् ।

अथ राहोर्गोचरफलम् ।

जन्मान्त्यपञ्चवसुरन्ध्रचतुर्द्विसप्त  
राशौ स्थितो यदि भवेदसुरः कदाचित् ।  
अर्थक्षयं रिपुभयं बहुकार्यहानिं

रोगप्रवासमरणान्निभयं करोति ॥ ५५ ॥ इति रत्नकोषे ।

अर्थ राहु गोचरमें जन्मस्थ बारहवें पांचवें आठवें नववें चौथे, दूसरे सातवें  
स्थानमें स्थित होनेसे मनुष्यका अर्थक्षय शत्रुभय, बहुकार्यहानि रोग प्रवास  
मृत्यु और अग्निका मय होता है ॥ ५५ ॥ इति राहोर्गोचरफलम् ।

अथ केतोर्गोचरफलम् ।

एकादशत्रिदशपष्टगतोनराणां  
सन्मानभोगनृपमानसुखार्थदाता ।  
आज्ञाकराश्च पुरुषाः प्रमदाश्च नित्यं  
सौख्योदयं दिशति पुण्यचयञ्च केतुः ॥ ५६ ॥

इति रत्नकोषे ।

अर्थ-केतु गोचरमें जन्मराशिसे ग्यारहवें तीसरे, दशवें अथवा छठे स्थानमें  
स्थित होनेसे मनुष्यको सन्मान भोग गजसन्मान सुख और धन प्राप्त होता है ५६  
इति केतोर्गोचरफलम् ।

अथ गोचरफलकालकथनम् ।

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले  
गुरुभृगुजौ भवन्स्य मध्यपार्ता ॥ ५७ ॥  
रविसुतशशिना विनिर्गमस्थौ ।

शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥ ५८ ॥ ( १ )

अर्थ-अब ग्रहोंके गोचरफलका समय कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, मूर्य  
और मंगल राशिके प्रवेशकालमें शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं इसी प्रकार बृह-  
स्पति और शुक्र मध्यसमयमें, शनैश्वर और चन्द्रमा शेष समयमें और बुध  
इति दीपिकायाम् ।

( १ ) राशिभिर्भागात्फल शेषामिति ज्योतिस्तत्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

ममस्त ममयमेती शुभाशुभ फल प्रदान करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति गोचरकालफलमथनम् ।

अन्यच्च ।

गोचरपीडायामपि राशिर्वलिभिःशुभग्रहैर्दृष्टः ।

पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ ५९ ॥ ( × )

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तमें लिखा है कि; मनुष्यकी जन्मराशिसे गोचर पीडित होकर यदि बलवान् शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो पीडा नहीं होती है अर्थात् जन्मराशिसे जो जो पीडा कही है वह नहीं होसकती है गोचरमें यदि शुभग्रह होय और उनपर शुभग्रहोंकीही दृष्टि होय तो अधिक शुभफल प्रदान करते हैं और पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे गोचरमें शुभग्रह होनेसेभी शुभफल नहीं होता है और गोचरमें पापग्रह होय और जो उनपर पाप ग्रहोंकीही दृष्टि होय तो अत्यन्त अशुभफलही न होता है ॥ ५९ ॥

अथ चन्द्रचारवशाद्ग्रहशुद्धिकथनम् ।

यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः सञ्चरते नृणाम् ।

तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६० ॥ ( ❀ )

अर्थ—सञ्चारकालमें मनुष्यका चन्द्रमा शुद्ध होनेसे ग्रहोंके गोचरफलके न्यूनता

( × ) गोचरगणनादमाह—गोचरेति गोचरपीडायामपि राशिर्वलिभिःशुभग्रहैर्दृष्टः स्यात्तदा जन्मराशिः पीडां न करोति जन्मराशिः सप्ताशात् या पीडा उक्ता सा न भवतीत्यर्थः । एतच्च गोचरे शुभे सति शुभैर्दृष्टो जन्मराशिः अधिक शुभ करोति क्रूरैर्दृष्टो जन्मराशिः शुभोऽपि शुभ न जनयति अशुभश्चेदाधिकमेवाशुभ करोति पापदृष्टः । इति ।

( • ) केतुपञ्चमेत्यादिनोक्त गोचरस्याष्टवर्गगोचरस्य च द्वयोरेष चन्द्रचारवशेनापवादमाह—यादृशेनेति । चन्द्रजन्तो यः कश्चिद्ग्रहो नृणां यादृशेन चन्द्रेण सञ्चरते तादृशं शुभमशुभं वा फलं नरः प्राप्नोति । शुभफलदेन सप्तमोपचयादिस्थेन चन्द्रेण ग्रहाणां सञ्चरः शुभफलदः । अशुभफलदेन चन्द्रेण सप्तमोऽशुभ फलद इत्यर्थः । सञ्चरत इति समस्तृतीया युक्त इति रुचादिवादात्तन्मनेपदम् । अत्र कश्चित् “ यादृशेन हिमराशिमालिना सक्रमो भवति तिग्मरोधिपः । तादृशं फलमाप्नोति नरः साध्वसाध्वपि वशेन शीतगोः ॥ ” इति रत्नमालाचनमालोक्य ग्रहो रविर्गवेति प्रलपति तदशुद्धं मामान्येन सप्तग्रहाणामेव गोचरस्यसुखं मामान्येनैव तदुपपाद उच्यते पश्चाच्च सामान्येनैव ग्रहपताकावारं वक्ष्यति अतो न रविमात्रस्येति । तथाच राजमार्तण्डे “ आश्रित्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि । मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्मण्यतां यान्ति न फेरन्ति । ” यथा च दशाग्रवेशे चन्द्रस्य शुभाशुभेन ग्रहाणां शुभाशुभफलं दाशयम् । पृथक्त्वाने “ मित्रस्योपचयमिच्छेत्तु मन्त्रे पात्रेऽप्यस्य रियत-

धिक कहते हैं । यदि चन्द्रमा भिन्न ग्रहोंके सञ्चारसमयमें मनुष्यका चन्द्रमा गोचरमें शुभ होता है अर्थात् शुक्र और कृष्ण इन दोनों पक्षमें शुभफलप्रदान करता है जन्मराशिसँ सातवें तीसरे ग्यारहवें छठे दशवें और जन्मका होनेसे और कृष्णपक्षमें दूसरे पांचवें और नवमस्थानमें चन्द्रमा होय तब ग्रहोंके गोचरमें अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करता है और यदि ग्रहोंके सञ्चारसमय चन्द्रमा शुद्ध न होय तो अत्यन्त अशुभ फल होता है और गोचरमें ग्रह शुभद् होनेसे यदि सञ्चार कालमें चन्द्रमा शुद्ध होय तो अत्यन्त शुभफल होता है ॥६०॥

अथ तारादिशुद्ध्या ग्रहशुद्धिकथनम् ।

ताराबलादिन्दुरथेन्दुवीर्या दिवाकरःसंक्रममाण उक्तः ॥

ग्रहाश्च सर्वे सवितुर्वलेन महीसुताद्याः क्रमशः प्रशस्ताः ॥६१॥

इति रत्नमालायाम् ।

अर्थ-चन्द्रमाके सञ्चारकालमें ताराशुद्धि होनेसे गोचरमें चन्द्रमा अशुभ होने सेभी शुभफल प्रदान करता है इसी प्रकार सूर्यके सञ्चारसमय गोचरमें चन्द्रमा-शुद्ध होनेसे सूर्य गोचरमें अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं और मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्वर इन पांच ग्रहोंके सञ्चार समय यदि सूर्य गोचरमें शुद्ध हो तो गोचरमें यदि उक्त पांचों ग्रह अशुभ होनेसेभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ ६१ ॥

अथ नाक्षत्रिकीदशाफलम् ।

पट्सूर्यस्य दशा ज्ञेया शशिनो दशपञ्च च ।

अष्टावङ्गारके प्रोक्ता बुधे सप्तदश स्मृताः ॥ ६२ ॥

शनैश्वरे दश प्रोक्ता गुरोरिकोनविंशतिः ।

राहोर्द्वादश वर्षाणि भृगोरप्येकाविंशतिः ॥ ६३ ॥

इति सत्याचार्यः ।

अर्थ-अब नाक्षत्रिकीदशा भोगनेका समय कहते हैं सूर्यकी दशाका परिमाण ६ छः वर्षका होता है इसी प्रकार चन्द्रमाकी १५ वर्षकी मंगलकी ५ वर्षकी बुधकी १७ वर्षकी शनैश्वरकी १० बृहस्पतिकी १९ वर्षकी राहुकी १२ वर्षकी और शुक्रकी दशाका परिमाण २१ इकीस वर्षका होता है । इसी दशाको अष्टो

—श्रन्द्रः सफल बोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा । ” इत्यादि रत्नमालावचनन्तु रविसंक्रमणप्रकरणोक्तमेकदेशकीर्त्तनपरमेव नन्वन्यग्रहस्य चन्द्रचारवशेन शुभाशुभत्वं न भवतीति तस्यार्थ इत्यल बहुना ॥ इति ।

चतुरी दशा कहते हैं कृष्णपक्षमें जात मनुष्यकी उक्त दशा द्वारा शुभाशुभ फल जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ दशानिरूपणम् ।

कृत्तिकादित्रये सूर्यः सोमो रौद्रचतुष्टये ।

मघादित्रितये भौमो बुधो हस्ताच्चतुष्टये ॥ ६४ ॥

अनुराधात्रये सौरिर्गुरुः पूर्वाच्चतुष्टये ।

धानिष्ठादित्रये राहुः शोषे शुक्रः प्रकीर्तितः ॥ ६५ ॥

अर्थ—किस नक्षत्रमें जात मनुष्यको किस ग्रहकी दशा पहिले होती है. अब उसको वर्णन करते हैं यथा; कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर नक्षत्रमें जात मनुष्यको प्रथम सूर्यकी दशा होती है इसी प्रकार आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रमें चन्द्रमाकी दशा होती है मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें मंगलकी दशा होती है हस्त, चित्रा, स्वाती और विशाखा नक्षत्रमें बुधकी दशा होती है, अनुराधा, जेष्ठा और मूल नक्षत्रमें शनिश्वरकी दशा होती है पूर्वाषाढा उत्तराषाढा अभिजित् ( १ ) और श्रवणनक्षत्रमें बृहस्पतिकी दशा होती है धानिष्ठा शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें राहुकी दशा होती है और उत्तर भाद्रपदा रेवती, आश्विनी और भरणी नक्षत्रमें जात मनुष्यको पहिले शुक्रकी दशा होती है दशा जाननेके समय देखना चाहिये कि, किस २ नक्षत्रमें किस ग्रहकी दशा होती है प्रत्येक नक्षत्रमें कितनी वर्ष कितने दिनतक दशा रहती है और नक्षत्रका परिमाण कितने दण्ड होता है और जन्मसमयमें इन नक्षत्रोंका भुक्त कितने दण्ड होते हैं इन सबको सूक्ष्म प्रकारसे देखकर दशाकालका मुक्त-भोग्य जानना चाहिये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

• अथ दशाफलकथनम् ।

सूर्योपप्लवभौमाकिंदशातिकष्टदा नृणाम् ।

गुरुञ्चन्द्रशुक्राणां यथेप्सितफलप्रदा ॥ ६६ ॥

अर्थ—सूर्य गुरु मंगल और शनिकी दशा मनुष्यको अत्यन्त कष्ट देती है और बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्रकी दशा मनुष्यको अमीष्ट फल प्रदान करती है ॥ ६६ ॥

( १ ) उत्तराषाढानक्षत्रके शेष चतुर्थांशका और श्रवणके प्रथम चार दण्डका नाम अभिजित् है बृहस्पतिकी दशाके समयको चार भाग करके एक भाग पूर्वाषाढामें, अन्य तीन भागको स्पष्टीश करके उत्तराषाढाका और श्रवणका होता है । प्रमाण यथा । “ गुरोर्वर्षे चतुर्भागं पूर्वाषाढिकं भागकम् । अन्यत्रिभागं द्विः कृत्वा दशायां विनियोजयेत् ॥ ” इति सारमंत्रहे ।

अथ दशाफलनिर्णयः ।

आदौ शीर्षोदये राशावन्ते पृष्ठोदये ग्रहाः ।

उभयोदये मध्यस्थाः फलं दद्युर्वलावलात् ॥ ६७ ॥ ( २ )

अर्थ-ग्रह शीर्षोदय राशिमं स्थित होनेसे दशाके प्रथमभागमें फल होता है, पृष्ठोदय राशिमं स्थित होनेसे शेष भागमें फल होता है और शीर्षोदय और पृष्ठोदय इन दोनों राशिमं स्थित होनेसे ग्रहगण दशाके मध्यभागमें बलावलवलाद्भाग शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

अथाष्टमचन्द्रादिदशाफलम् ।

अष्टमेन्दोर्दशा मृत्युं बन्धमस्तसितस्य च ।

शुभस्य वक्रिणो राज्यं पापस्य व्यसनाटने ॥ ६८ ॥ ( ३ )

अर्थ-जात मनुष्यकी जन्मलग्नेसे आठवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होनेसे चन्द्रमाकी दशामेंही मृत्यु होती है जन्मसमय आठवें स्थानमें जो ग्रह स्थित होय तो इसकी दशामें बन्धन होता है, वकी शुभग्रहोंकी दशामें राज्यप्राप्त होता है और वकी पाप ग्रहोंकी दशामें व्यसन, अटन, विपत्ति और विदेशभ्रमण होता है ॥ ६८ ॥

अथ शिरश्छेदादिकारकदशाकथनम् ।

अङ्गप्रत्यङ्गानां छेदं विदधाति पष्ट शत्रुदशा ।

बूनारिदशा कोणं निधनारिदशा शिरश्छेदम् ॥ ६९ ॥ ( ४ )

अर्थ-जात मनुष्यकी जन्मलग्नेसे छठे स्थानमें स्थित लग्नकी मालिकके शत्रु-ग्रहकी दशामें हाय कान इत्यादि अङ्ग प्रत्यङ्गादिमें छेद होता है, सातवें स्थानमें स्थित लग्नाधिपतिके शत्रुग्रहोंकी दशामें मनुष्य पङ्गु होता है और आठवें स्थानमें स्थित लग्नके मालिकके शत्रुग्रहोंकी दशामें मनुष्यका शिरश्छेद होता है ॥ ६९ ॥

( २ ) दशापाक फलमाह-आदाविति । शीर्षोदयराशौ स्थिता ग्रहा दशादिपाके फल दद्युः । पृष्ठोदयस्थास्तु दशान्तकाले उभयोदयस्थास्तु दशामध्यकाले बलावलाच्छुभाशुभ-फलं दद्युः ॥ इति ।

( ३ ) अष्टमचन्द्रादि दशावशेनानियतरिष्टमाह-अष्टमेन्दोरिति । अष्टमचन्द्रदशा मृत्युं करोति इति सर्वत्राध्याहारः । अस्तगतस्य ग्रहस्य दशा बन्धन करोति वक्रिणः शुभग्रहस्य दशा राज्य करोति वक्रिणः पापग्रहस्य तु दशा व्यसनाटने विपत्ति विदेश भ्रमणे करोति । इति ।

( ४ ) इदानीं छिद्रकारकदशामाह-अङ्गेति । लग्नात् पष्टस्थस्य लग्नाधिपशत्रोर्दशा अंगानां हस्तादीनां प्रत्यंगानाम् अंगुलीकर्णादीनां छेदं विदधाति-सप्तमस्थस्य लग्नाधिप शत्रोर्दशा कोणं पङ्गुं करोति अष्टमस्थस्य लग्नाधिपशत्रोर्दशा शिरश्छेदं करोति । इति ॥

अथ दशारिष्टम् ।

क्रूराशां स्थितः पापः पृष्ठे च निधने तथा ।

तस्स्थिते नारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः ॥७०॥ (५)

अर्थ—मनुष्यकी जन्मलग्नसे यदि छठ वा आठवें पापग्रह स्थितहों और वही स्थान पापग्रहोंका घर होय तब अथ च पापग्रहोंके क्षेत्रमें स्थित उक्त ग्रहोंके अशु आंकी उनमें दृष्टि होय तब उसी ग्रहकी दशामें मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥७०॥

अल पापग्रहान्तर्दशाक्यनम् ।

पापग्रहदशायान्तु पापस्यान्तर्दशा यदि ।

अरियागे भवेन्मृत्युर्मित्रयोगे च संशयः ॥ ७१ ॥ (६)

अर्थ—पापग्रहोंकी दशामें यदि पापग्रहोंकी ही अन्तर्दशा होय और दशाके मालिकके साथ अन्तर्दशाके मालिककी शत्रुता होय तो मनुष्यकी मृत्यु होती है, पापग्रहोंकी दशामें अन्तर्दशाका मालिक पापग्रह होनेसेभी यदि मित्रहों तब मृत्युके समान पीडा होती है ॥ ७१ ॥

अपिच ।

विलग्राधिपतिःशत्रुर्लग्नस्यान्तर्दशांगतः ।

करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यः प्रभापते ॥ ७२ ॥ (क)

अर्थ—मनुष्यकी जन्मलग्नके मालिक ग्रहका शत्रु यदि जन्मलग्नके मालिक ग्रहकी अन्तर्दशामें होय तो मनुष्यकी अकस्मात् मृत्यु होती है इस प्रकार सत्याचार्यने कहा है ॥ ७२ ॥

अथ दशान्तर्दशयोरपवादः ।

प्रवेशे बलवान्खेटः शुभैर्वा संनिरीक्षितः ।

सौम्याधिमित्रवर्गस्थो मृत्यवे न भवेत्तदा ॥ ७३ ॥ (ख)

अर्थ—अब दशादिके गिष्टभंग कहते हैं दशा वा अन्तर्दशाके प्रवेशसमय दशाका

( ५ ) पापग्रहदशारिष्टमाह—करोति क्रूराशां पापग्रहराशी लग्नात् पृष्ठेऽष्टमे वा स्थितः पापः तस्स्थितेन पापग्रहराशिस्थितेन शत्रुग्रहेण शुभेनाशुभेन वा दृष्टः स्वपाके स्वदशाकाले मृत्यु करोति—इति ॥

( ६ ) अन्तर्दशारिष्टमाह—पापग्रहोति । अत्रपापाः अनि गने भौमाःपापग्रहदशायाम् ॥ अन्यान्यपापग्रहस्य शत्रोरन्तर्दशा चेत्तदा मृत्युः पापदशया पापस्य मित्रस्यान्तर्दशा चेत्तदा संशय इत्यर्थः । इति ।

( क ) लग्नान्तर्दशारिष्टमाह—विलग्रेति । न्यटार्थम् । इति ।

( ख ) दशान्तर्दशारिष्टमाह—प्रवेश इति । दशाप्रवेशकाले अन्तर्दशाप्रवेशकाले वा

मालिक वा अन्तर्दशाका मालिक ग्रह बलवान् होय वा उसे शुभग्रह देखते हों अथवा अधिमित्रादि शुभग्रहोंके वर्गादिमें स्थित होय तो उसी दशमें मनुष्यको मृत्युके समान पीडा होती है ॥ ७३ ॥

अथ रिष्टप्रतीकारः ।

गोचरे वा विलम्बे वा ये ग्रहा रिष्टसूचकाः ।

पूजयेत्तान्प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभावहाः ॥ ७४ ॥ ( ग )

अर्थ—अब अरिष्टका प्रतीकार कहते हैं मनुष्यके गोचरमें अथवा लग्नमें यदि कोई ग्रह अरिष्ट होय तो यत्नपूर्वक उस ग्रहकी पूजादि करे कारण पूजन करनेसे ग्रह शुभफल करते हैं ॥ ७४ ॥

दशापतिर्वावलवान्स्यात्शुभदष्टोवाःस्यात् शुभग्रहोऽधिमित्रवर्गं वा स्थितः स्यात्तदा मृत्युरेव न भवेत्किन्तु सशय एव स्यादित्यर्थः । तथा पाकत्नाभिनि लग्न इत्यादिना यदुक्त तस्मिन् योगे साति मृत्युर्न भवेदित्यर्थः । तथाच श्रीपतिः—“दशापतिर्लग्नगतो यदि स्यात्त्रिपद्-दशैकादशगश्च लग्नात् ” इति । एतच्च सावनमानेनेव दशान्तर्दशादिक कार्यं तच्चातीव गुप्त सावनशोधन मया स्वबुद्ध्या स्फुटीक्रियते । “ खलाभ्रनागाष्टकैर्र्रहायुर्गुण्य नगाभ्रा-क्षिकराह्नेत्रैः । निभज्यवर्षादिकलभ्रमेतज्ज्ञेय बुधैः सावनशुद्धमायुः ॥ ” वर्ष प्रतिदिनानि ५ । १० । २९ मास प्रति दण्डाः २६ । दण्डान्प्रति विषलानि १२ । एतत्सावनशुद्ध वर्षमासदिनदण्डात्मकमायुः जन्मकालीनकलियुगवत्सरमासदिनदण्डपलेषु मिश्रयेत् ततो वर्षेषु तावन्मासेषु तावद्दिनेषु तावद्दण्डेषु तावत्पलेषु दशाप्रवेशः ततः एतस्यैव वर्षमासादे-रहर्गणन कृत्वा तावत्कालिकाः सर्वे ग्रहाः कार्याः । लग्न पद्मवर्गादिकश्च कार्यं ततो विचार्य दशान्तर्दशादिषु शुभाशुभ वदेदेव एतेषु वर्षादिषु सावनशुद्धमन्यदशान्तर्दशादिक निश्चित्यान्त्यदशाप्रवेशकाल ज्ञात्वा शुभाशुभ वदेत् । अत्र च जन्मकोष्ठया प्रवेशे गृह-प्रवेशे सञ्चारकाले खेटो यदि बलवान् इति सौभेररुन्मादप्रलपितम् । इति ॥

( ग ) रिष्टप्रतीकारमाह—गोचर इति । अष्टवर्गाद्युक्तो गोचरो लग्नसम्बन्धियोगजरिष्ट-मानियत दशान्तर्दशारिष्टश्च गोचरयोगदशान्तर्दशाया वा ये ग्रहा रिष्टकारिणः तान् ग्रहान् पूजयेत् प्रयोगानुसारेण पूजाहोमादिक कार्यम् । ततस्ते पूजया होमेन च तुष्टाः शुभावहाः स्युः । एतेन परमायुर्दशान्तर्दशादिकफलमुक्तम् । अत्र यदि चन्द्रो बलवान् तदा नाक्षत्रिकदशा फलसम्पादिनी स्यात् ततो नाक्षत्रिकी दशा पञ्चभिरार्याभिर्मयोच्यते । “ अष्टाविंशतिभिर्भस्त्रिभिश्चतुर्भिश्च कृत्तिकाक्रमतः । रविशशिकुजबुधशनयो जीवतमो भार्गवा दशापतयः । रसतिथिवसुभिन्नकाष्ठोर्नावशातिः सूर्यैकधिशतिवर्षाणि । अनुपातैर्ज-न्मदशा कार्या नक्षत्रभोगेन ॥ अन्तर्दशाशवर्षैर्दशेशवर्षाणि गुणयित्वा । नवभिर्लब्ध तत्स्यान्मासाद्यन्तर्दशाकालः ॥ अन्तर्दशादिनेभ्यःपष्टया लब्ध यथाक्रम भवति । प्रत्य-न्तर श्रुतिगजेन्द्रियनवरसदिद्धमूनारश्वरगुणितम् ॥ दशान्तर्दशाफलमुक्तमेव जातकचन्द्रि-कादौ । राहुदशाफलन्तु लिख्यते “ राहुदशा कष्टफला तत्र ज्ञासिती शुभौ परेऽनिष्टाः ॥ शुक्रदशार्था राहुः शुभदोऽनिष्टप्रदोऽन्यासु ॥ ” इति ।

अथ ग्रहदोषद्रव्यधारणविधिः ।

सूर्यादिदोषशान्त्यै धार्याणि भुजेन ताम्रशंखौ च ।

सकाञ्चनमुक्तारजतत्रपुलोहराजपट्टानि ॥ ७५ ॥ ( १ )

अर्थ—अब ग्रहोंकी दोषशान्तिके अर्थ धारण करनेका द्रव्य कहते हैं सूर्यके विरुद्ध होनेसे ताम्र धारण करना चाहिये, इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शङ्ख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, बृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक विरुद्ध होनेसे चांदी, शनैश्वर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतुके विरुद्ध होनेसे राजपट्ट ( मणिविशेष ) धारण करना चाहिये ॥ ७५ ॥

अन्वच ।

माणिक्यं विग्रुणे सूर्ये वैदूर्यं शशलांछने ।

प्रवालं भूमिपुत्रे च पद्मरागं शशाङ्कजे ॥ ७६ ॥

गुरौ मुक्तां भृगौ वज्रमिन्द्रनीलं शनैश्वरे ।

राहौ गोमेदकं धार्यं केतौ मरकतं तथा ॥ ७७ ॥ ( २ )

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे कहते हैं । सूर्य विरुद्ध होनेसे माणिक्य धारण करना चाहिये इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे वैदूर्यमणि, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुधके विरुद्ध होनेसे पद्मराग, बृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुकके विरुद्ध होनेसे हीरक, शनैश्वरके विरुद्ध होनेसे इन्द्रनील, राहुके विरुद्ध होनेसे गोमेदक और केतुके विरुद्ध होनेसे मरकतमणिको धारण करे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अपरञ्च ।

सूर्ये ताम्रं विधौ शंखः प्रवालं भूमिनन्दने ।

बुधे च काञ्चनं देयं गुरौ मुक्तां विदुर्बुधाः ॥ ७८ ॥

रजतं भृगुपुत्रे च सूर्यसूनौ त्रपुस्तथा ।

राहौ लोहे राजपट्टं केतौ स्याद्धारणीयकम् ॥ ७९ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें भी ग्रहोंके दोषोंकी शान्तिके अर्थ धारण करनेके

( १ ) धार्यधातूनाह—सूर्य इति ताम्रं, शंखः, प्रवालं, काञ्चनं, मुक्ता, रजतम्, त्रपु, सीसक, लोह, राजपट्टं ग्रहानां दोषे एतानि यथाक्रमेण धार्याणि ॥

( २ ) यथाशक्ति धार्यग्रनान्याह—वैदूर्यमिति । गुणाविति । नीलः इन्द्रनीलः वज्र हीरकम् । इति ॥



द्रव्य कहे हैं यथा-सूर्य विरुद्ध होनेसे ताम्र धारण करना चाहिये इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शंख, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे काञ्चन, वृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे चाँदी, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट ( मणिविशेष ) धारण करै ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

दोषो न स्याद्ब्रह्माणामशिशिरकिरणे ताम्रमिन्दौ च शंखः

पृथ्वीपुत्रे प्रवालं शशधरतनये शतकुम्भं भुजेन ।

देवाचार्यं च मुक्तामणिरसुरगुरौ सीसकं सूर्यसूनौ

राहौ सारं गिरिणां कमलजतनये राजपट्टं विधार्यम् ॥ ८० ॥

अर्थ-राजमार्त्तण्डमेंही ताम्रादि धारण करनेका प्रमाण कहा है जिस मनुष्यके सूर्य विरुद्ध हो वह ताम्र धारण करै तो दोष दूर होजाता है, इसी प्रकार चन्द्रमा विरुद्ध होनेसे शंख धारण करै, मङ्गल विरुद्ध होनेसे प्रवाल, बुध विरुद्ध होनेसे सुवर्ण, वृहस्पति विरुद्ध होनेसे मुक्ता, शुक्र विरुद्ध होनेसे मणि, शनैश्चर विरुद्ध होनेसे सीसक, राहु विरुद्ध होनेसे लोह और केतु विरुद्ध होनेसे राजपट्ट ( मणिविशेष ) धारण करै तो दोष दूर होता है ॥ ८० ॥ इति राजमार्त्तण्डे ।

अपिच ।

यद्यद्ब्रह्मस्य यद्ब्रह्मं तत्तस्मिन्विषममे स्थिते ।

दद्यात्सत्कृत्य विप्रेभ्यः स्वयञ्च विभृयात्ततः ॥ ८१ ॥

अर्थ-जिस ग्रहके विरुद्ध होनेमें जो द्रव्य धारण करनेको कहा है, वह द्रव्य ग्रहोंकी दोषशान्तिके अर्थ पहिले ब्राह्मणको दान करके देव पीछेसे धारण करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ ग्रहदोषमूलादिधारणविधिः ।

मूलं धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि विगुणे क्षीरिका मूलमिन्दो

जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारस्य मूलम् ।

भाङ्ग्या जीवेऽथ शुके भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं

घाट्यालं चार्कपुत्रेतमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम् ॥ ८२ ॥ (३)

अर्थ-ग्रहोंके दोषशान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादि धारण नहीं करसके हैं

( ३ ) ग्रहदोषशान्त्यर्थं भुजधार्यमन्वयाह-मूलमिति । त्रिशूली विन्धः क्षीरिका प्रसिद्धो वृक्षः अहिनिद्रा नागनिद्रोति वृद्धदारः प्रसिद्धरत्ना तन्मूलमित्य ॥ नादौ ब्राह्मण्यष्टिका सिंहपुच्छा गमपासक इति प्रसिद्धः मलयज चन्दनम् अश्वगन्धम् अश्वगन्धामूलमित्यर्थः ॥ इति ।

वे मूलादि ( वृक्षोंकी जड ) को धारण करै । यथा । सूर्यके विरुद्ध होनेसे बेलकी जडको धारण करै इसी प्रकार चन्द्रमाकेविरुद्ध होनेसे क्षीरिका ( खिन्नी ) वृक्षकी जड, मङ्गल विरुद्ध होनेसे नागजिह्वा लताकी जड, बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड, वृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे ब्राह्मणयाष्टि वृक्षकी जड, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ ( चित्रपर्णिका ) वृक्षकी जड; शनैश्वरके विरुद्ध होनेसे वाट्याल ( खिरौटी ) वृक्षकी जड, राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुके विरुद्ध होनेसे दोषशान्तिके अर्थ अश्वगन्धा ( असगन्ध ) वृक्षकी जड धारण करना चाहिये ॥ ८२ ॥

अन्यच्च ।

त्रिशूलीं क्षीरिकामूलं गोजिह्वां वृद्धदारकम् ।

ब्रह्मयष्टीं सिंहपुच्छं वाट्यालं चन्दनं सितम् ॥ ८३ ॥

अश्वगन्धं क्रमात्सूर्याद्दद्याद्दोषोपशान्तये ।

ताम्रादीनामभावे तु स्वयं च दक्षिणे भुजे ॥ ८४ ॥

अर्थ-बुद्धि प्रकाशमें भी लिखा है कि, ग्रहोंकी शान्तिके अर्थ जो मनुष्य ताम्रादिके धारण करनेमें अशक्त हैं अर्थात् नहीं धारण कर सकते हैं वे सूर्य-ग्रहके विरुद्ध होनेसे बेलवृक्षकी जड अपनी दहनी भुजामें धारण करै । इसी प्रकार चन्द्रमाके विरुद्ध होनेसे क्षीरिका ( खिन्नी ) वृक्षकी जड, मङ्गलके विरुद्ध होनेसे अनन्तमूल ( नागफणीकी जड ) बुधके विरुद्ध होनेसे वृद्धदारु वृक्षकी जड, वृहस्पतिके विरुद्ध होनेसे श्वेत ब्रह्मयाष्टिकी जड, शुक्रके विरुद्ध होनेसे सिंहपुच्छ ( चित्रपर्णिका ) वृक्षकी जड, शनैश्वरके विरुद्ध होनेसे वाट्याल ( खिरौटी ) वृक्षकी जड, राहुके विरुद्ध होनेसे श्वेतचन्दन और केतुग्रहके विरुद्ध होनेसे मनुष्य अपनी दहनी भुजामें अश्वगन्धा ( असगन्ध ) वृक्षकी जडको धारण करै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ इति बुद्धिप्रकाशे ।

अथ ग्रहदोषे स्नानविधिः ।

सिद्धार्थलोभ्ररजनीद्वयमुस्तधान्यं

लामज्जकं सफलिनी सवचा च मांसी ।

त्वानं कुरु ग्रहगणप्रशमाय नित्यं

सर्वे रविप्रभृतयः सुमुखीभवन्ति ॥ ८५ ॥ (३३)

अर्थ-अब ग्रहोंके विरुद्ध होनेसे उनकी शान्तिके निमित्त स्नान कहते हैं संकेद

( • ) औषधिस्नान यदुक्तं तदाह-सिद्धार्थेति । सिद्धार्थः श्वेतसपणः रजनीद्वयं हृदिदा दारुहृदिदा अधान्यं धान्याकं लामज्जकमुशीरं धारणमूलम् । तथा चामरः । ' स्याद्धारणं

सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, सुस्ता, नागरमोथा, धनिया, खसकी जड़, पीपल, चच और बालछड इन सब चीजोंको जलमें मिलाकर उस जलद्वाग स्नान करनेसे विरुद्ध ग्रहोंका दोष दूर होजाता है ॥ ८५ ॥

इति वशचरेत्यतर्वर्तिकान्यमुञ्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रत्रिपाठरूपनामकेन पण्डित  
वैकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते मापाटीकाविभूषिते च  
ज्योतिषतत्त्वसुधारणे नववधागमनादिजातकान्त-  
सृतीयस्तरगः ॥ ३ ॥

## चतुर्थस्तरङ्गः ।

अथ जातकमकथनम् ।

प्राङ्नाभिवर्द्धना ( १ ) त्पुंसो जातकम विधीयते ।

मन्त्रप्रार्थनास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ १ ॥

इति मनुः ।

अर्थ-अब जातकर्म कहते हैं भगवान् मनुजीने कहा है कि, बालकके नाडी छेदनके ( नार काटनेके ) पूर्वमें जातकर्म करना चाहिये मन्त्रपूर्वक सुवर्णयुक्त घृत और मधु बालकके मुखमें लगानेका नाम जातकर्म है ॥ १ ॥

अपिच ।

जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि ।

देवादतीतः कालश्चेदतीते सूतकं भवेत् ॥ २ ॥' ( २ )

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, बालकके जन्मसमय नार कटनेके पहिले विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये देवयोगसे पहिले यदि बालकका नार कट-जाय तो सूतक होजाता है अत एव कालान्तरके सिवाय उक्त बालकका जात कर्म नहीं होसकता है ॥ २ ॥ इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अन्यथा ।

मृदुध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेपासुदयेऽपि वा ।

वीरग मूलेस्योशीरमखिषाम्।लामज्जक लघुलयमदाहेऽष्टपापथे॥”इति।प्रियगुः फलिनी  
मांसी जटामांसीत्यर्थः । एभिर्वस्ताभिर्ग्रहगणप्रशमाय ग्रहदोषोपशमनाय शुभ वाञ्छन्  
स्नान कुरु तदा संप्रै ग्रहाः तिस्रुखा अपि सुमुखीभवन्ति प्रसन्नमुखा. प्रीता भवन्तीत्यर्थः ।

( १ ) नाभिवर्द्धनाभिसम्बन्धिनाडीच्छेदनात् । “वर्द्धन छेदनेऽथ हे” इत्यमरः ।

( २ ) सूतिकावासनिलया जन्मदानामदेवताः । तासां यागनिमित्तार्थं शुद्धिर्जन्मनि  
वीक्षिता ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरे । अत्र यागनिमित्तार्थमित्युपादानात्तत्कर्मण्येव शुद्धिर्ना-  
न्यामिन् । इति ॥

गुरुशुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च ॥ ३ ॥ (+)

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तरा-  
फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा,  
शतभिषा, पुष्य, अश्विनी और हस्तनक्षत्रमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके मुह-  
ूर्त्तमें बृहस्पति वा शुक्र केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे जातकर्म और नामकरण  
करना चाहिये ॥ ३ ॥ इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अथ नामकरणम् ।

ध्रुवचरमृदुवर्गे वाजिहस्तासमेते

क्षणमुदयमथैषां सत्सु केन्द्रस्थितेषु ।

दिगविशिवशताहे तत्कुलाचारतो वा

शुभदिनतिथियोगे नाम कुर्यात्प्रशस्तम् ॥ ४ ॥ (क)

अर्थ—अब नामकरण कहते हैं—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा,

(+) इति ज्योतिःशास्त्रोक्तं देवताकालेऽकार्यं वेदितव्यम् । अनुत्कर्षेऽपि नक्षत्रा  
दिनियमो न नेमित्तिकस्य निमित्तान्तर्भावित्वेन निरवकाशत्वात् । इति ज्योतिस्तत्त्वे  
स्मात्तेनाभिहितम् ॥

(क) नामकरणमाह—दृष्टेति । ध्रुववर्गे १२ । २१ । २६ । ४ मृदुवर्गे १ । ४ । २७ ।  
५ । २७ । चरवर्गे १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । अश्विन्यां हस्तायाञ्च । अथ पश्चान्तरे  
एषामभावे एषां क्षण मुहूर्त्तम् उदय लग्न व्याप्य कालकर्मणि द्वितीया एषां मुहूर्त्ते लग्नं  
कुर्वेत्पर्यः । लग्नात्केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु दिग्हे दशाहे अविर्भेपः भेषाद्या राशयो द्वाद-  
शेति केचित् । वस्तुतस्तु अविः सूर्यः ‘अवयः शैलमेपा काः’ इत्यमरः । द्वादशेति द्वाद-  
शाहे शिवाहे एकादशाहे शतपूरणे दिने तत्कुलाचारतः षष्ठमासादौ वा नाम कुर्यात्  
अत्र च दशाह इति विधिर्वैयर्थ्यवशादाशौचेऽपि कर्तव्यम् । केचित्तु दशाहे गते एका-  
दशाहे इति व्याचक्षिरे तदशुद्धम् । यथा राजमार्त्तण्डे “दशमे द्वादशके वा शुभवा-  
रेऽथवा यथाचारम् ” तथा पारस्करः “दशस्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता  
नाम करोति ” अत्र चानेकमुनिवचने गत इत्यध्याहारो न युज्यते दशम इत्यादौ पूर-  
णप्रत्ययवैयर्थ्याच्च । दिग्हे गत इतिवद्द्वादशाहे गत इत्यध्याहारेण न त्रयोदशाहेऽपि  
करणप्रमगात् शास्त्रेलाकयोर्विरुद्धता च स्यात् इति । अत्र प्रशस्तमित्यनेन देवताना-  
माश्रित्य मङ्गल समाक्षरं सुखोच्चार्य षोडशक्षरान्तश्च नाम कार्यम् । यथा पारस्करः  
“द्वन्द्वक्षरचतुर्क्षर वा षोडशक्षरान्तश्च नाम कुर्यात् । ओजाक्षर मकडोवान्त नाम स्थिये  
हितम् ” इति । तथा राजमार्त्तण्डे “नार्यहीनिं न वाशस्त नाषशब्दयुत तथा । नामगल्य  
सुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात्समाक्षरम् । नातिदीर्घं न ह्रस्व वा नातिगुर्वक्षरान्वितम् । सुलोच्चार्यं  
च तन्नाम कुर्यात्प्रणवाक्षरम् । बीभत्सचण्डनाम्नी च कीर्त्तितानिष्टदाहना ॥” इति ॥

रोहिणी, स्वाति, चित्रा अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा शतभिषा, अश्विनी और हस्त नक्षत्रमें अथवा इन समस्त नक्षत्रोंके असम्भव होनेसे इनके सुहृत्तमें लग्न स्थिर करके उसके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे दशवें बारहवें ग्यारहवें वा शत ( सौ ) दिनमें अथवा कुलाचारहेतुक पष्ठमासादिमें शुभदिन शुभतिथि और शुभ योगमें बालकका नामकरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

आपिच ।

आदौ घोषदक्षरं यवरलान्मध्ये पुनः स्थापये-  
दन्ते दीर्घविसर्जनीयरहितं नाम प्रयत्नात्कृतम् ।  
ऋक्षे तिष्यकराश्विसौम्यवसुभे चित्राऽनुराधोत्तरे  
पौष्णे वादित्तिरोहिणीषु शुभकृतपुंसां समैरक्षरैः ॥ ५ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, नामके आदिमें घोषवन्त वर्ण मध्यमें यवरल और अन्तमें दीर्घ वर्ण और विसर्जनीय वर्णको छोड़कर अक्षरोंको मिलाकर नाम रखै पुष्य, हस्त, अश्विनी, मृगशिर, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, पुनर्वसु और रोहिणी यह समस्त नक्षत्र नामकरणमें शुभ हैं पुरुषका नाम सम ( युग्म ) अक्षरयुक्त रखना चाहिये ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

नामकरणं स्थिरे लग्ने केन्द्रपञ्चनवमस्थिते सौम्ये ।  
त्र्यायपष्ठसमाधिष्ठितपापे जीवशुक्रशशिसौम्यदिनेषु ॥ ६ ॥

इति नारायणपद्धती ।

अर्थ-नारायणपद्धतिमें लिखा है कि, स्थिरलग्नमें लग्नके केन्द्रस्थानमें, पांचवें और नववें शुभग्रह स्थित होनेसे तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पाप ग्रह होनेसे बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवारमें नामकरण प्रशस्त है ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

उत्तरात्रयरोहिण्यौ श्रवणं स्वातिरश्विनी ।  
अनुराधा मृगशिरो रेवती च पुनर्वसुः ॥ ७ ॥  
धनिष्ठा शुभदा लग्ने यस्य केन्द्रे शुभग्रहाः ।

शशीज्यसौम्यशुक्राहे नाम कुर्याच्छुभे तिथौ ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्र-पदा, रोहिणी, श्रवण, स्वाति, आश्विनी, अनुगधा, मृगशिर, रेवती, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्रमें लग्नके केंद्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे सोम बृहस्पति, बुध, और शुक्रवारमें शुभ तिथिमें नामकरण प्रशस्त है ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य च ।

गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥ ९ ॥

अर्थ-नामकरणके समय ब्राह्मणके नामके अन्तमें शर्मा पदका प्रयोगकर करे इसी प्रकार क्षत्रियके नामके अन्तमें वर्मा, वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त और शूद्रके नामके अन्तमें दासपदका प्रयोग करे ॥ ९ ॥

अथ निष्कामणम् ।

आर्द्राधोमुखवर्जितानुपहतेष्वृक्षेष्वरित्ते तिथौ  
वारे भौमशनीतरे घटतुलाकन्यामृगेन्द्रोदये ।

सहृष्टेऽथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये शशि- (❀)

न्यक्षणि शुभदे शिशोरभिनवं निष्कामणं कारयेत् ॥ १० ॥

अर्थ-अब निष्कामण कहते हैं-आर्द्रा, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और जतमिषा इन सब नक्ष-

( x ) निष्कामणमाह-आर्द्रांति । आर्द्रा अधोमुखगणः १ । ३ । २ । १० । १६ । ११ । २० । २५ । २४ । एभिर्वाजितेष्वन्येषु नक्षत्रेष्वनुपहतेषु उत्पत्तपापग्रहाद्यपीडितेषु रिक्तावर्जितेषु तिथिषु मंगलशनिव्यतिरिक्तेषु वारेषु कुम्भतुलाकन्यासिंहलग्नेषु शुभग्रहदृष्टे तृतीये चतुर्थे वा मासि चन्द्रेऽक्षणि गोचरशुभदेऽपि शिशोर्गहात् प्रथम निष्कामण कारयेत् । इति अधोमुखमानि “आश्लेषाद्वियमपिष्यविशास्युक्तं पूर्वात्रय शतमिषाच नवाप्यमूनि । एतान्यधोमुखगणानि शिमानि नित्य विद्यार्थभूमिमिथुनेषु च सृपितानि ॥” चतुर्थे मासीति ऋग्वेदियशुर्वेदिनोः । यदाह विष्णुः-“चतुर्थमास्यादित्यदर्शनम्” इति । शौनकोऽपि “चतुर्थे मासि पुण्यक्षे शुद्धे निष्कामण शिशोः । ” पारस्करः-“चतुर्थे मासि निष्कामणिना सूर्यमुदीक्षयति तच्चरिति” इति । मासे तृतीये इति तु चन्द्रेण गानां गोभिलेन जननानन्तर तृतीयशुक्रपक्षतृतीयायां चन्द्रदर्शनरूपनिष्कामणविधानात् । यथा गोभिलः-“जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तृतीयायाम्” इत्यादि । ज्योत्स्नः शुद्ध पक्षः । अत्रैव कृत्वाचिन्तामाणः-स्वस्वमिथानतोऽर्शशशिनेर्गर्ध्वे दापयेत् । इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

त्रोंको छोडकर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें औत्पादिक वा पापग्रहोंके पीडा करनेका अधिकार न होनेसे रिक्ताभिन्न-तिथिमें, मङ्गल और शनिभिन्न वारमें, कुम्भ, तुला, कन्या और सिंहलग्नमें ( शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे ) चौथे महीनेमें वा तीसरे महीनेमें क्षीण चन्द्रमा न होनेसे और चन्द्रमा गोचरमें शुद्ध होनेसे आनन्द-पूर्वक बालकको घरसे पहिले बाहर निकाले ॥ १० ॥

अपिचं ।

**चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ ११ ॥**

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चौथे महीनेमें बालकको पहिले घरसे बाहर निकालना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ ताम्बूलप्राशनम् ।

**विगतवरुणनाथाधोमुखान्नान्यभेषु  
त्रिभवरिपुगपापैः केन्द्रकोणस्थसौम्यैः ।  
विकुजरविज्वारे सार्द्धमासद्वये स्था-**

**द्वृषद्वापवुधसौरक्षोदये पूगदानम् ॥ १२ ॥ ( १ )**

अर्थ-अब ताम्बूलदान कहते हैं-आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाख, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और आर्द्रा नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें, लग्नके तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह और केन्द्र और त्रिकोण स्थानमें शुभग्रह होनेसे मङ्गल और शनिभिन्न वारमें जन्मदिनसे अढाई महीनेके मध्यमें वृष, मीन, मिथुन, कन्या, मकर और कुम्भ लग्नमें बालकको पहिले ताम्बूल ( पान ) खिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ भृशुपवेशनम् ।

**ब्रह्मोत्तरेन्द्रमृगमैत्रकराश्विनीषु वारेषु सप्तसु विशिष्य कुजस्य वारे ।**

( १ ) अथ ताम्बूलदानमाह-विगतिति । विगतवरुणनाथो यत्राधोमुखे नक्षत्रगणे ८ । ३ । २ । १० । १६ । ११ । २० । २५ आर्द्रा च तदन्येषु भेषु वर्जनद्वयेन शतभि-पाया ग्रहणम् । तथा च राजमार्तण्डे-“ मूलस्वातिधनेन्दुभिन्नवरुणन्येष्टाश्विनीरोहिणी पौष्णक्षेत्रे रविजीवशुक्ररजनीनाथात्मजानां दिने । कन्यामनिनृयुग्मगोसप्तद्वये शस्तेषु चन्द्रादिषुप्राक्पूगाशनमिष्यते शिशुजनस्यान्नान्न वापि च ॥” तथा “ मूलादितिश्रवण पुष्यरुद्रोत्तरेषु पौष्णाशिवीचत्ररजनीकरशस्त्रेषु । वारेषु जीवशशिसूर्यसितेन्दुजानां ताम्बूल भक्षणविधिः कथितः शिशुनाम् ॥ ” सौम्यैः तत्र अन्तर्भवति पाठ कृत्वा अशुभमेव व्याख्यातम् । लग्नात्तृतीयैकादशपष्ठमैः पापैः केन्द्रत्रिकोणमैः शुभैः कुजशनिर्वीजितेषु वारेषु सार्द्धमासद्वये वृषमीनकन्यामिथुनमकररुम्भलग्ने ताम्बूलदानं प्रशस्तं स्यात् ।

मासेऽथ पञ्चम इह प्रतिमुच्य रिक्तां

शस्तं शिशोर्भवति भूम्युपवेशनं प्राक् ॥ १३ ॥ ( २ )

अर्थ--अब बालकको पहिले पृथ्वीपर बिठलानेका मुहूर्त कहते हैं--रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, मृगशिर, जनुराधा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रमें रविप्रभृति सातों वारोंमें विशेषकरके मंगलवारमें, पाचवें महीनेमें रिक्ताभिन्नतिथिमें बालकको पहिले भूमिपर बिठलाना चाहिये ॥ १३ ॥

अथान्नप्राशनम् ।

पूर्वेशान्तकसर्पमूलरहितेष्वक्षेष्वरिक्ते तिथौ

पष्टे मासि सितेन्दुजीवदिवसे गोक्षर्क्षमीनोदये ।

केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः शुभयुतैस्त्वरैव पापोऽङ्घ्रितै-

हित्वेदुं रिपुरंश्रगं शिशुजनस्यान्नाशनं शोभनम् ॥ १४ ॥ ( ३ )

अर्थ--अब बालकके अन्नप्राशनका मुहूर्त कहते हैं--पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा, भरणी, आश्लेषा और मूल इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें रिक्ताभिन्न तिथिमें उठे महीनेमें, शुक्र, सोम, बृहस्पति, रवि और बुधवारमें, घृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्नमें लग्नके केन्द्रस्थानमें आठवें, बारहवें और त्रिकोणमें शुभ ग्रहोंके होनेसे और लग्नके उक्त समस्त स्थानोंमें पापग्रह न होनेसे लग्नसे छठे और आठवें चन्द्रमाको छोड़कर, बालकका अन्नप्राशन करना चाहिये ॥ १४ ॥

अपिच ।

एकादश्याञ्च सप्तस्यां द्वादश्यां पञ्चपर्वसु ।

बलमायुयंशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--दीपिकामे लिखा है कि, एकादशी, सप्तमी, द्वादशी और पञ्चपर्वमें बाल-

( २ ) प्रथम शिशोः पृथिव्यामुपवेशनमाह- ब्रह्मेति स्पष्टोऽर्थः ।

( ३ ) अन्नप्राशनमाह पूर्व इति । पूर्वान्यमाद्रां भरणी आश्लेषामूलम् एतद्वाजितेऽन्येषु नक्षत्रेषु सितेन्दुर्जावदिवसे इत्युपलक्षणं रविबुधवारोऽपि यथा राजमातेण्डे " वारं प्विन्दुजमार्गवेन्दुदिनकृद्वाचस्पतीनां शिशोरन्नप्राशनमङ्गलं मिथुनगोमीनोदये शोभनम् ।" तथा सागरव्यासम् " दीप्तानलः कमलवन्द्युदिने मनुष्यो मन्दानलः शशिरगो च कुजे रुजार्तः ॥ वीधे वली विपुलभोगसुरा सुरेभ्ये शुक्रेतिविश्रमयुतस्त्वमिते गतासु । " इत्यनेन सोमवारे विधिनियेषयो श्रवणाच्चन्द्रस्य पूर्णशीणत्वमेवेन यस्त्वापनामिति । गौरवपः शर्क्षं बुधग्रहम् इति मिथुनग्रन्थे मीनञ्च एतस्मिन्लक्ष्णे एवात्वेन्द्राष्टमद्वाद्दशनवप-चमराशिमैः शुभग्रहयुते. सद्रिस्तेरेव केन्द्राष्टान्त्यत्रिकोणभैः पापवाजितैः शिशोरन्नप्राशनं कार्यम् एतन्न पष्ठाष्टमग चन्द्र वजेयित्येत्यर्थः । एतन्न कृष्णपक्षे न वर्तव्यम् ।



कको अन्न खिलानेसे उस बालकका बल आयु और यश नष्ट होजाता है ॥ १५ ॥  
पञ्चपर्वकथनम् ।

अष्टमी पौर्णमासी च अमावास्या चतुर्दशी ।

पञ्च पर्वाण्यमून्याहुरार्याः संक्रमणं रवेः ॥ १६ ॥ दीपिकायाम् ।

अर्थ-अष्टमी, पूर्णिमा, अमावास्या, चतुर्दशी और सूर्यकी संक्रान्तिको पण्डित गण पञ्चपर्व कहते हैं ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ततोन्नप्राशनं पष्टे मासि कार्यं यथाविधि । ( × )

अष्टमे वाथ कर्त्तव्यं यद्रेष्टं मङ्गलं कुले ॥ १७ ॥ ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे महीनेमें विधिपूर्वक करना चाहिये, आठवें महीनेमेंभी हो सक्ता है अथवा जिनके पूर्वापर जिस प्रकार कुलका नियम है, उसी समयमेंही अन्नप्राशन होसक्ता है किन्तु स्मार्त्तभट्टाचार्यने ज्योतिस्तत्त्वमें छठे महीनेकोही मुख्य समय कहा है वर्त्तमान पण्डित मण्डलीके मध्यमेंभी अनेक पण्डितोंका यही मत है, परन्तु कोई २ विद्वान् आठवें महीनेकोही मुख्य समय कहते हैं ॥ १७ ॥

अपरञ्च ।

अन्नस्य प्राशनं कार्यं मासि पष्टेऽष्टमे बुधैः ।

स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः ॥ १८ ॥

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, बालकका अन्नप्राशन छठे वा आठवें महीनेमें करना चाहिये-और कन्याका अन्नप्राशन पांचवें वा सातवें महीनेमें करे, इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ १८ ॥ इति कृत्यचिन्तामणौ ।

प्रकारान्तरञ्च ।

द्वादशीसप्तमीनन्दारिक्तासु पञ्चपर्वसु ।

बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम् ॥ १९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, द्वादशी, सप्तमी, प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी,

यथा राजमार्तण्डः-पष्टे मासि शुभे चन्द्रे पक्षे वाप्यासिते तरे । अन्नस्य प्राशनं कुर्याद्धिताय प्रथमं शिशोः ॥ ” इति ॥

( × ) पष्ट इति मुख्यकल्पः असमयस्य क्षेमायोगादिति न्यायात् इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

रिक्तातिथि और पंचपर्वमें बालकको अन्नप्राशन करनेसे उसका बल आयु और यशका नाश होता है ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

पष्टे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ  
सौम्यादित्यसितेन्दुजाविदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे ।  
प्राजेशादितिपौष्णवैष्णवयुगैर्हस्तादिपट्कोत्तरै—( क )

राग्नेयाप्यतिपिन्धमैश्च नितरामन्नादिभक्ष्यं शुभम् ॥ २० ॥

इति भुजवलभीमे ।

अर्थ—भुजवलभीमने लिखा है कि, छठे महीनेमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें बुध, रवि, सोम, और बृहस्पतिवारमें, शुक्रपक्षमें, रोहिणी, भृगुशिर, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, शतभिषा और मघा नक्षत्रमें बालकका अन्नप्राशन शुभ होता है अन्नप्राशनमें विद्व ऋक्ष ( दशयोगभंग ) देखना चाहिये ॥ २० ॥

अपरञ्च ।

वृषद्वन्द्वधनुर्मानकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम् ।

त्रिकोणाष्टकयुग्मान्त्यग्रहायदत्तथा फलम् ॥ २१ ॥ ( ख )

अर्थ—वृष, मिथुन, धन, मीन और कन्या लग्नें अन्नप्राशन करना चाहिये किन्तु इन सब लग्नोंके मध्यमें जिस २ लग्नें बालकको अन्न खिलावे उसके नववें, पांचवें, आठवें, दूसरे और बारहवें स्थानमें जो ग्रह जिस प्रकारसे स्थित हैं उसी प्रकार फल होता है अर्थात् शुभ ग्रहोंके होनेसे शुभ फल और पापग्रहोंके होनेसे अशुभ फल होता है ॥ २१ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

दुष्टः शशधरो लग्नात्पष्टाष्टमस्थोऽन्नभक्षणे ॥ २२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, अन्नप्राशनमें लग्नेसे छठे और आठवें चन्द्रमा दृषित होता है अतएव छठे और आठवें चन्द्रमाको परित्याग करना चाहिये ॥ २२ ॥

इत्यन्नप्राशनम् ।

( क ) युगेरिति—प्राजेशादी प्रत्येक सम्बध्यते । अत्रापि तिथ्यादिनिद्वन्द्वस्य विवर्जयेत् ।

( ख ) यदत्तया फलीमिति शुभयोगे शुभफलं पापयोगेऽशुभफलमित्यर्थः ॥

अथ चूडाकरणम् ।

चूडा माघादिपटके लघुचरमृदुभे मैत्रहीने सशक्रे

नानंशे सत्सु केन्द्रेष्वशुभगगनगैर्वृद्धिगैर्विष्णुबोधे ।

नो रिक्ताद्यष्टपष्ठान्त्यतिथिषु नयमाराहयुग्माब्दमासे

नो जन्मक्षेन्दुमासे विधत्कुजशशिनक्षलम्येऽर्कशुद्धौ ॥ २३ ॥ (ग)

अर्थ-अथ चूडा करणका मुहूर्त्त कहते हैं-माघसे आदि लेकर छः महीनोंमें पुष्य, आश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, मृगशिर, रेवती और ज्येष्ठा नक्षत्रमें, ग्रहोंके अनंश दिनमें अर्थात् संक्रान्तिभिन्नादिनमें केन्द्रस्थानमें शुभग्रह और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे हरिशयनाभिन्न कालमें, रिक्ता, प्रतिपदा, अष्टमी, पष्टी और पूर्णिमाको छोडकर अन्य तिथियोंमें, शुद्धपक्षमें, शनि मंगलको छोडकर अन्य वारोंमें, युग्म वर्षमें युग्म मास, जन्म नक्षत्र, जन्मके चन्द्रमा और जन्मके महीनेको छोडकर अन्य महानिम तुला, मेष, वृश्चिक, कर्क और सिंह लग्नको छोडकर अन्य लग्नोंमें सूर्य शुद्ध होनेसे चूडाकर्म करना चाहिये ॥ २३ ॥

( ग ) चूडाकरणमाह-चूडति । माघादिषु मासेषु चूडा कार्या अत्र च पदसख्याश्रवणाच्चैत्रेऽपि चडा काया । चैत्रनिषेधस्तु नित्यक्षीरपरः । तथा च वक्ष्यते । ' नेष्टो हरिज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः ' इति । लघुगणः । ८ । १ । १३ । चरगणः १५ । ७ । २२ । २३ । २४ । मैत्रहीने अनुराधावर्जिते मृदुगणे १४ । ५ । २७ । सशक्रे ज्येष्ठायाश्चेत्यर्थः । नानंशे ग्रहेर्निर्देशकृते दिने चूडा कार्या इत्यर्थः । केन्द्रेषु शुभग्रहेषु सत्सु गगनगो ग्रहः अशुभगगनगोरशुभग्रहेर्वृद्धिगैरुपचयस्थैः सद्भिः विष्णुबोधे च चूडा कार्येत्यर्थः । तथा च राजमार्तण्डे-“क्षीरेक्षेपु कुलोद्भवेन विधिना चूडा विधेया बुधैर्लग्नस्ये भृगुजे चतुष्टयगते जीवेऽथवा बोधने । मन्दाकारावनिनन्दनैश्च शशिना क्षीणेन युक्तेषु च लाभारातिवृत्तीयभेषु विहिते राशयुद्धमे सर्वदा ॥ ” इति । सौभरिणा तु अशुभगगनगैर्दशमस्थैः वृद्धिगैरेकादशस्थैरिति प्रलपितम् । विष्णुबोध इत्यनेनापाठेपि हरिशयनानन्तरं न कर्तव्यमित्यर्थः । रिक्तातिथी आद्ये प्रातिपदे अष्टम्यां पष्ठचाचान्त्यतिथी पूर्णिमास्याश्च न चूडा अमावस्यायान्तु कृष्णपक्षे विधानाभावादेव निषेधः । तथा च राजमार्तण्डे-“ चन्द्रे च सप्तोपचयाद्यसंस्थे तिवावरिक्तेऽपि च शुद्धपक्षे । प्राचीमुलः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा कर्मान्नरः क्षीरमनुत्कटस्थे ” इति । नयमाराहयुग्माब्दमासे शनिमंगलवारे न चूडा तथा सुविचारेऽपि दोषः । तत्रापि प्रतीकारानन्तरं कार्यामिति । राजमार्तण्डे-“ वार्गाशशुक्रज्ञनिशाकराणां वारे प्रशस्तं मुनयो वदन्ति । क्षीरं दिने तीक्ष्णरुचेश्च चैत्रमासेऽथवा सद्भिर्हिते हुताशे ” ॥ अथ युग्माब्दे युग्ममासे च न चूडा । अत्र विशिष्टान्तात्मकमासव्यवस्थायां युग्मविचारः कायः । तथा जन्मादौ सावनो मत इति तथा जन्मनक्षत्रे जन्मचन्द्रे

चूडाकर्मद्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।

प्रथमेऽव्दे (✽) तृतीये वा कर्त्तव्यं स्मृतिचोदनात् ॥२४॥

इति मनुः ।

अर्थ-भगवान् मनुने कहा है कि; ब्राह्मणादि सबकोही पहिले वर्षमें वा तीसरे वर्षमें बालकका चूडाकर्म ( मुंडन ) करना चाहिये ॥ २४ ॥

अयुग्माऽव्दे तथा मासि चूडा भौमशनीतरे ।

अर्कन्दुकालशुद्धौ च जन्ममासेन्दुभेतरे ॥

रिक्तादर्शाष्टमीपष्टीप्रतिपद्भिर्जिते सिते ॥ २५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अयुग्मवर्षमें, अयुग्ममहीनेमें मंगल और शनिवारको छोडकर अन्य चारोंमें सूर्य चन्द्रमा और कालशुद्धि होनेसे, जन्मका महीना, जन्मका चन्द्रमा और जन्मके नक्षत्रको छोडकरके रिक्ता अमावस्या, अष्टमी, पष्टी और प्रतिपदा तिथिका छोडकर अन्यातिथियोंमें शुक्लपक्षमें बालकका चूडाकर्म ( मुण्डन ) कराना चाहिये ॥ २५ ॥

पष्ठ्यष्टमीपञ्चदशी पक्षद्वयचतुर्दशी ।

अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे क्षुरे ॥ २६ ॥ ( १ )

इति दक्षः ।

अर्थ-दक्षमुनिने कहा है कि, पष्टी, अष्टमी, पूर्णिमा और दोनों पक्षोंकी चतुर्दशी इन समस्त तिथियोंमें तैल लगानेसे, मांस, खानेसे स्त्रीगमन करनेसे और क्षौरकर्म करानेसे ( हजामत बनवानेसे ) पातक लगता है ॥ २६ ॥

मेपसिंहतुलाकार्किंशुचिकेतरलग्नके ।

जन्ममासे च न चूडा कार्या । विषट्कुजशशनिश्लेष्ट्रे धटस्तुला कुजर्क्षेभेपशुचिकी । चन्द्रर्क्षे कर्कटः । इनः सूर्यः तद्ग्रह सिंहः । एतद्व्यतिरिक्ते लग्ने गोचरशुद्धे रवी चूडा कार्या । इति ॥

( x ) नात्र अशक्तस्य क्षेमायोगादिति न्यायात्प्रथमाव्दस्य प्राधान्यं किन्तु तृतीयाव्दस्य तथा च ' चूडाकार्ये तृतीयाव्दः सर्वगृह्यादिसम्मतः । तत्कारणेऽशीचवृद्धश्च मुख्य इत्यवगम्यते ' इति स्मार्ताः । शस्त्रलिखितौ । " तृतीयवर्षे चूडाकरणं पञ्चमे वा " " पुत्रचूडाकृते माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । श्लेष्णे मृत्युमाप्नोति तस्माच्चौलं विन-जयेत् । सूनीर्मातंगि गर्भिण्या चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चनर्पात्प्राक्तूर्ध्वं गर्भिण्यामपि कारयेत् । गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म तु । पचमासादपः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत् ॥ इति ग्रन्थान्तरे ।

( १ ) मामान्यनो दोषमाह-पष्ठ्यष्टमीति ।

श्रवणादित्रयस्वातिचित्रापुष्याश्विचन्द्रभे ।

आदित्यरेवतीहस्तज्येष्ठामूले च चौडकम् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, मेष, सिंह, तुला, कर्क और वृश्चिक, इन लग्नोंको छोड़कर अन्य लग्नोंमें श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, स्वाती, चित्रा, पुष्य, अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, रेवती, हस्त, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें चूडकर्म ( मुंडन ) कराना चाहिये ॥ २७ ॥

क्षौरं प्रशस्तं मृगचापकन्याकुम्भेषु मीने मिथुने वृषे च ।

लग्ने धनं बुद्धिविवर्द्धनञ्च शेषेषु रोगो भयमर्थनाशः ॥ २८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, मकर, धन, कन्या, कुम्भ, मीन, मिथुन और वृषलग्नोंमें हजामत बनवानेसे धन और बुद्धिकी वृद्धि प्राप्त होती है । उक्त लग्नोंमें न बनवानेसे रोग, भय और द्रव्यका नाश होजाता है ॥ २८ ॥

पौष्णाश्विपुष्यवसुवासववासुदेव-

ब्रह्मार्कचन्द्रवरुणादितिचित्रभेषु ।

वारेषु सोमबुधवाक्पतिभार्गवाणां

क्षौरं करोति कुशलं खलु मानवानाम् ॥ २९ ॥ ( २ )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, रेवती, अश्विनी, पुष्य, धनिष्ठा, श्रवण, रोहिणी, हस्त, मृगशिर, शतभिषा, पुनर्वसु और चित्रा नक्षत्रमें, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें मनुष्यको क्षौरकर्म करानेसे ( हजामत बनवानेसे ) मङ्गल होता है ॥ २९ ॥

सूर्ये दक्षिणमार्गगामिनि हरौ सुप्ते निरंशे रवौ

क्षीणे शीतरुचौ महीजयमयोर्वारे निशासन्ध्ययोः ।

भुक्तेऽभ्यक्ततनौ निषिद्धसमयेऽलङ्कारयुक्ते शिशौ

क्षौराद्रोगभयं वदन्ति यवना मृत्युं तथान्ये जगुः ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें, हरिश्चयनमें, संक्रान्तिमें

( २ ) अत्रापि तिथ्यादीनिद्वमृक्ष वर्जयेदिति स्मार्ताः ।

क्षीण चन्द्रमार्गमें, मङ्गल और शनिवारमें, रात्रि और सन्ध्याकालमें भोजनके अन्तमें अभ्यंग अर्थात् तेल लगाकर और निषिद्ध कालमें अलङ्कार ( आभूषण ) पहनकर हजामत बनवानेसे रोगभय होता है, इसप्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु अन्गान्य मुनियोंके मतसे इस समय वा उक्त प्रकारसे हजामत बनवानेमें मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

मानं हरेत्क्षौरमिहायुषोर्कः शनैश्चरः पञ्च कुजस्तथाष्टौ ।

आचार्यभृग्विन्दुबुधाः क्रमेण ( ❀ ) दद्युर्दशैकादशसप्तपञ्च ॥ ३१ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ--राजमार्तण्डमें लिखा है कि रविवारमें हजामत बनवानेसे सम्मानहानि और आयुःक्षय होता है, रविवारमें हजामत बनवानेसे जो दोष कहा है शनिवारमें बनवानेसे उससे पंच गुण दोष और मंगलवारमें बनवानेसे उससे अठगुना दोष होता है बृहस्पतिवारमें हजामत बनवानेसे दशगुण शुभफल होता है । इसी प्रकार शुक्रवारमें ग्यारह गुण, सोमवारमें सप्तगुण और बुधवारमें हजामत बनवानेसे पंचगुण शुभ फल होता है ॥ ३१ ॥

अन्यत्र ।

माघादिपट्टके ( १ ) समये विशुद्धे हरौ प्रबुद्धे शुभदे खरांशौ ॥

वर्षत्रये वाप्यथ पञ्चमे वा चूडा च कार्या प्रथमं शिशूनाम् ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोंके मध्यमें शुद्धकालमें, श्रीहारिके जाग्रत्समयमें, सूर्य शुद्ध होनेसे, तीनवर्षमें वा पांच वर्षमें बालकका चूडाकर्म ( मुण्डन ) करावे ॥ ३२ ॥

उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूडाकरणं जगुः शुभं यवनाः ।

चैत्रे मासि दिवाकरवारे शिखिसन्निधाने च ॥ ३३ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ--भोजराजाने कहा है कि, उत्तरायणके मध्यमें चैत्रमासमें रविवारमें आग्नि सन्निहितमें चूडाकर्म होसक्ता है इस प्रकार यवनमुनिका मत है किन्तु चैत्रके महीनेमें रविवारमेंही चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ३३ ॥

( × ) नवादिवारै क्षौरं प्रशस्तमिति स्मार्तनोक्तम् ।

( १ ) माघादिपट्टक इत्युपपादनात् चत्रऽपि चूडाकरणे रविवार एव इति हृदयानन्दः ।

जन्मर्क्षे जन्ममासे च युग्ममासे च वत्सरे ।

न कुर्यात्प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः ॥ ३४ ॥ (+)

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, जन्मके नक्षत्रमें जन्मके महीनेमें, युग्ममहीने और युग्मवर्षमें विशेषकरके सौर चैत्र और पौषके महीनेमें बालकका प्रथम क्षौरकर्म न कराना चाहिये । चूडाकर्ममें दशयोगभङ्ग, युतवेध और यामित्र-वेधका विचार करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ नित्यक्षौरम् ।

चूडोदितर्क्षमुदयः क्षण एव चैपा-

मिष्टौ बुधेन्दुदिवसौ क्षुरकर्मशुद्धौ ।

नेष्टौ हरीज्यभवनोपगतोऽत्र सूर्यः

कालाविशुद्धिरहितं त्वितस्तपुरावत् ॥ ३५ ॥ ( ❀ )

अर्थ-अथ नित्य क्षौरकर्मको कहते हैं । चूडाकर्ममें कहे हुए नक्षत्रोंमें वा चूडा कर्मके नक्षत्रोंके मुहूर्तमें लग्न करके बुधवार अथवा सोमवारमें कालशुद्धिको छोड़कर चूडाकर्मोक्त सभी नित्य क्षौरकर्ममें प्रशस्त है ॥ ३५ ॥

न स्नानमात्रगमनोत्सुकभूपिताना-

मभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् ॥

सन्ध्यानिशाशनिकुजार्कादिनेषु रिक्ते

क्षौरं हितं प्रतिपदाह्नि तथैव विष्ट्याम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-नित्य क्षौरके विषयमें राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, स्नानके अन्तमें

( + ) पुत्रकन्ययोस्तु चैत्र मासि ज्येष्ठपुत्रकन्ययोरस्तु मासं ज्येष्ठस्य दशाहाभ्यन्तरे च चूडादिनिषेधो विवाहप्रकरणे उक्तः चूडाया दशयोगभङ्गयुतयामित्रवेधा निचार्याः ।

( • ) नित्यक्षौरमाह-चूडा इति । चूडोक्तनक्षत्र तदप्राप्तावेपा चूडोक्तनक्षत्राणा क्षणो मुहूर्त्तमेव उदयो लग्न वा स्यात् बुधेन्दुदिवसौ नित्यक्षुरकर्मशुद्धाविष्टौ अन्ये पञ्च वारा निषिद्धाः । तथा पशुपतिदीपिकायाम् " शुक्रः शुक्रक्षय कुर्यान्मान हन्ति गुरोर्दिनम् । शनी भीमे भवेद्रोगो मनस्तापो रवोर्दिने ॥ " अत्र नित्यक्षौरे हरिः सिंह इज्यभवन धनु-र्मानो एषु गतः सूर्यो नेष्टः भाद्रपौषचैत्रमासेषु क्षौरं न कार्यमित्यर्थः । अत्राप्यशक्ता-वग्निसाक्षिक कृत्वा कर्त्तव्य तथा-" क्षौरं दिने तीक्ष्णहचेस्तु चैत्रमासेऽथवा सन्निहिते हुताशे " इति । पुरावचूडाकरणवत् अन्यत्सर्वं ज्ञातव्यम् । तच्च कालाविशुद्धिरहितं

यात्रा करके आभूषण पहिननेके बाद तैल लगाकरके भोजन करनेके बाद रण-समयमें निरश्नमें, सन्ध्याकालमें और रात्रिमें, शनि, मङ्गल और रविवारमें, रिक्ता, प्रतिपदा और विष्टि मद्रामें क्षौरकर्म करानेसे अमङ्गल होता है ॥ ३६ ॥

चूडोदिते तथा ऋक्षे बुधेन्दुदिवसे नरः ।

नित्यक्षौरं प्रकुर्वीत जन्ममासे विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिषसारमें लिखा है कि, चूडोदित नक्षत्रोंमें बुध और सोमवारमें क्षौरकर्म प्रशस्त है, किन्तु जन्मके महीनेको छोड़देवै ॥ ३७ ॥

प्राचीमुखः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा

कुर्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्थः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मनुष्य हजामत बनवानेके समय पूर्व वा उत्तरको मुख करके कोमल आसनपर बैठे ॥ ३८ ॥

उत्तरात्रितययाम्यरोहिणीरौद्रसर्पपितृभेषु चाग्निभे ।

श्मश्रुकर्म सकलं विवर्जयेत्(क)प्रेतकार्यमपि बुद्धिमान्नरः ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्र-पदा, भरणी, रोहिणी, आश्लेषा, आर्द्रा, मघा और कृत्तिका नक्षत्रमें श्मश्रुकर्म (क्षौरकर्म) और प्रेतकार्यको बुद्धिमान् मनुष्य परित्याग करे ॥ ३९ ॥

चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः ।

अक्षौरिभेऽपि कर्तव्यं चन्द्रचन्द्रजयोर्दिने ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्षौर विषयमें विद्धनक्षत्र होनेसे यदि चन्द्रमाशुद्धि और ताराशुद्धि न होय तो भी सोमवारमें और बुधवारमें क्षौर हो सक्ता है ॥ ४० ॥ (ख)

—नित्यक्षौरे शुक्रादिकालाशुद्धिदोषो नास्तीत्यर्थः । अत्र शुक्लकृष्णपक्षव्यवस्था नास्ति किन्तु पूर्वोक्ततिथिमात्रनिषेधः । इति ।

(क) प्रेतकार्यं पतितप्रेतसम्प्रदानकदासीघटदानविषयकमिति स्मार्त्ताः ।

(ख) इस धचनका तात्पर्य यह है कि, निषिद्ध नक्षत्रमेंभी यदि चन्द्रशुद्धि और ताराशुद्धि होय तो क्षौरकर्ममें दोष नहीं होता है और सोमवार और बुधवार सर्वाप-वादक है ।



मानं क्षौरं गुरुहन्ति शुक्रं शुक्रो धनं रविः ।

आयुरङ्गारको हन्ति सर्वं हन्ति शनैश्वरः ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिष्वत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, बृहस्पतिवारमें हजामत बनवानेसे मानहानि होती है, इसी प्रकार शुक्रवारमें शुक्र ( वीर्य ) का नाश होता है, रविवारमें धनकी हानी होती है मङ्गलवारमें आयु क्षय होता है और शनिवारमें हजामत बनवानेसे मनुष्यका मान, बल, धन और आयुका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

रवौ दुःखं सुखं चन्द्रे कुजे मृत्युर्वुधे बलम् ।

मानं हन्ति गुरोर्वारि शुक्रे पुत्रक्षयो भवेत् ।

शनी च सर्वे दोषास्त्युर्वर्जयेत्क्षौरकर्मणि ॥ ४२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, रविवारमें क्षौर करानेसे दुःख होता है इसी प्रकार सोमवारमें सुख, मङ्गलमें मृत्यु, बुधमें बलकी वृद्धि, बृहस्पतिवारमें मानहानि, शुक्रमें पुत्रनाश और शनिवारमें क्षौर करानेसे समस्त दोष होते हैं । अत एव उक्त समस्त निषिद्ध वारोंमें क्षौरकर्म न करावे किन्तु सामवेदी मङ्गलवारमें, यजुर्वेदी शुक्रवारमें और ऋग्वेदी बृहस्पतिवारमें क्षौरकर्म कर्गमक्ता है, व्यवहार भी इसी प्रकार है ॥ ४२ ॥

देवकार्ये पितृश्राद्धे रवेरंशपरिक्षये ।

क्षौरकर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि देवकार्यमें, श्राद्धके दिनमें, संक्रान्तिमें जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमें क्षौरकर्म न कराना चाहिये ॥ ४३ ॥

आज्ञया नरपतिर्द्विजन्मनां दारकर्मभृतसूतकेषु च ।

बन्धमोक्षमसदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिडेषु चोडुषु ॥ ४४ ॥

इति श्रीपतिरत्नमालायाम् ।

अर्थ-श्रीपतिकी रत्नमालाग्रन्थमें लिखा है कि, विवाहमें, मृतशोच और जननाशोचके अन्त दिनमें, जेलखानेमेंसे छूटनेमें और यज्ञश्रीक्षामें, राजा और ब्राह्मणोंकी अनुमति ( आज्ञा ) से समस्त नक्षत्रोंमें ही क्षौरकर्म कामका दे ॥ ४४ ॥

केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम् ।

दितिमदितिञ्च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम् ॥ ४५ ॥

इति वृद्धगार्ग्यमुनिः ।

अर्थ—वृद्धगार्ग्यमुनिने कहाँ कि, केशव, आनर्त्तपुर, अहिच्छत्रापुर, दिति और अदिति इनके नामका स्मरण करनेसे क्षौरकर्ममें मङ्गल होता है ॥ ४५ ॥

इमश्रुकर्म कारयित्वा नखच्छेदमनन्तरम् ॥ ४६ ॥

इति वराहपुराणे ।

अर्थ—वराहपुराणमें लिखा है कि, इजामत बनानेके बाद नाखून कटाना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ कर्णवेधः ।

नो जन्मेन्दुभमासरविजक्षमाजाहसुप्ताच्युते  
शस्तेऽकं लघुविष्णुयुगममृदुभस्वात्युत्तरादित्यर्भः ॥

सौम्यैस्त्रयायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगै-

रोजेऽब्दे श्रुतिवेध इज्यसितभे लग्ने च काले शुभे ॥ ४७ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ कर्णवेध ( कन् छिदनेका ) मुहूर्त्त कहते हैं । दीपिकामें लिखा है कि, जन्मचन्द्रमा, जन्मनक्षत्र और जन्मके महीनेको छोड़ अन्यमें गवि, शनि, मङ्गल वारको छोड़कर अन्य वारोंमें श्रीहरिके जाग्रत्कालमें सूर्य शुद्ध होनेसे पुष्य, आश्विनी, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, स्वाति, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुनर्वसु नक्षत्रमें, लग्नेके तीसरे, ग्यारहवें, नववें पांचवें और केन्द्रस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे और तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पाप ग्रह होनेसे अयुग्मवर्षमें धन, मीन, वृष, और तुला लग्नमें शुद्ध कालमें बालकका कान छिदवाना चाहिये ॥ ४७ ॥

यदापत्यद्वयं तिष्ठेत्सम्भवोऽथ परस्य च ।

पट्कर्णं तं विजानीयाद्गर्हितञ्च त्रयस्य च ॥ ४८ ॥

\* कर्णवेधमाह—नोजन्मेति । शुभे काले शुद्धकाले वाज्येऽब्दे अयुग्मवर्षश्रुतिवेधं वर्तन्त्यः । अत्र निषेधमाह । जन्मचन्द्रे जन्मनक्षत्रे जन्ममासे सूर्यशुभमङ्गलदिग्गुणेषु शुभेऽच्युते हरिशयने न कर्तव्यमित्यर्थः । विधिमाह शस्तेऽकं गोत्रशुद्धेऽकं लघुगणे ८ । १ । १३ । विष्णुयुग्मे २२ । २३ मृदुगणे १४ । २७ । ५ । २७ । ग्यात्यामुत्तम प्रये १२ । २१ । २६ आदित्यमे पुनर्वसौ इज्यसितभे गुरुशुभे धनुर्भने प्रये वराह्यां च कार्यामित्यर्थः । श्लेषे मृगमम् ।

इत्याशङ्क्य द्वयोर्मध्ये शुचिर्यस्याथ वत्सरे ।

कर्णवेधो हिततस्स्य नात्र ज्येष्ठविचारणा ॥ ४९ ॥

पट्कर्णोत्पत्तिमाशङ्क्य भानोः शुद्ध्या समेऽपि च ।

कर्णवेधे न दोषः स्यादन्यथा मरणं भवेत् ॥ ५० ॥ ( ❀ )

इति माण्डव्यादिषु ।

अर्थ-जिसके दो पुत्र हं ओर दोनोंमेसे एककाभी कर्णवेध नहीं हुआ है और इसी अवस्थामें एक पुत्र और होनेकी सम्भावना है तब उसको पट्कर्णवेध कहते हैं, पट्कर्णवेध होनेसे तीनोंका अमङ्गल होता है पट् हो सक्ता है इस शङ्काकरके वर्तमान दोनों पुत्रोंके मध्यमें उसी वर्षमें जिसके सूर्यादि शुद्धि होय उसकाही कर्णवेध करावे इसमें ज्येष्ठाटिक्रमका विचार न करे पट्कर्णकी शङ्कासे सूर्य शुद्धि होनेसेही कर्णवेध कराना चाहिये इसमें युग्मवर्षका विचार न करे उक्त प्रकार कर्णवेध न करानेसे ज्येष्ठपुत्रकी मृत्यु होती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न युग्मवर्षे न हरौ प्रसृप्ते ।

रवौ न दुष्टे न च कृष्णपक्षे न जन्मभे कर्णविधिःप्रशस्तः ॥५१॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, जन्मके महीनेमें, सौर चित्र ओर सौर पौषमें युग्मवर्षमें, श्रीहरिक शयनकालमें, सूर्य गोचरमें अशुद्ध होनेसे कृष्णपक्षमें और जन्मनक्षत्रमें कर्णवेध नहीं होता है ॥ ५१ ॥

सूर्येऽनुकूले शशिनौ प्रशस्ते तारावले चन्द्रविवर्द्धपक्षे ।

अयुग्मवर्षे शुभाद् शिशूनां कर्णस्य वेधं मुनयो वदन्ति ॥५२॥

अर्थ-ज्योतिःसारमेंग्रहण लिखाहै कि, गोचरमें सूर्यशुद्धि, चन्द्रशुद्धि, और ताराशुद्धि होनेसे शुक्लपक्ष और अयुग्मवर्षमें बालकोंका कान उड़ाना चाहिये, मुनिगणोंने इस प्रकार कहा ह ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

स्वात्यश्विनीहस्तपुनर्वसौ च चन्द्रेऽनुकूले गुरुशुक्रवारे ।

कर्णस्य वेधो बुधवासरे वा पुष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, स्वाति, अश्विनी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य

(\*) मरण ज्येष्ठस्य इति हृदयानन्द । अत्रापि दृशयोगभनो विचार्यः । “ जर्णभे विनाहे च व्रते पुमग्ने तथा । प्राशने चाद्यन्डयायां रिद्धमन्न रिजयेत् ॥” इति वचनात् ।

मृगशिर, चित्रा, श्रवण और रेवती, नक्षत्रमें, बृहस्पति, शुक्र और बुधवारमें गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५३ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रेवती चैव हस्तचित्रा पुनर्वसुः ।

घनिष्ठा मृगशिराश्च श्रवणं मैत्रमेव च ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, घनिष्ठा, मृगशिर, पुष्य, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५४ ॥

स्थिरे चैवाथ लग्ने च चापे नृमिथुने तथा ।

कर्णवेधं प्रकुर्वीत बालानां शुभदं वरम् ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, स्थिर अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक कुम्भ, लग्नें धन और मिथुनमें बालकोंका कान छिदाना चाहिये ॥ ५५ ॥

कर्णवेधव्रते कुर्याद्दुद्भागस्थिते रवौ ।

दक्षिणाशास्थिते भानौ नैव कुर्यात्कथञ्चन ॥ ५६ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गमुनिने कहा है कि, कर्णवेध और उपनयन उत्तरायणमें ही करना चाहिये उक्त दोनों कार्य कभी दक्षिणायनमें न करे ॥ ५६ ॥

इति कर्णवेधः ।

अथ विद्यारंभः ।

लघुचरशिवमूलाधोमुखत्वाद्द्रौण्य-

शशिवु च हरिवोधे शुक्रजीवार्कवारे ।

अदितवति च जीवे केन्द्रकोणेषु सौम्यै-

रपठनदिनवर्जं पाठयेत्पञ्चमेऽब्दे ॥ ५७ ॥ ( क )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ विद्यारंभका मुद्दत्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, पुष्य, अश्वि-

(ग) विद्यारंभमाह-लघुचर इति । पञ्चमे वर्षे रविजीवशुक्रवारे शिशु पाठयेत् । अन्यस्मिन् वारे दीपमाह राजमात्तंष्टे-“प्रजार्गुम्युक्तेषु मृत्युर्मन्दमर्हजयोः । महती जटता चन्द्रे बुधे

नी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, रेवती और मृगशिर नक्षत्रमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें शुक्र बृहस्पति और रविवारमें बृहस्पतिके उदयमें केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे अनध्यायका दिन परित्याग करके पांचवें वर्षमें बालकको विद्यारम्भ कराना चाहिये ॥ ५७ ॥

संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे अप्रसुप्ते जनादर्न ।

पृष्ठी प्रतिपदश्चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥ ५८ ॥

रिक्तां पञ्चदशींश्चैव सौरिभौमादिने तथा ।

एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भंतु कारयेत् ॥ ५९ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ- विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि पांचवें वर्षमें, श्रीहरिके जाग्रत्समयमें, पृष्ठी, प्रतिपदा, अष्टमी, रिक्ता, पूर्णिमा और अमावस्याभिन्न तिथिमें और शनि मङ्गलभिन्न वारमें बालकको विद्यारम्भ करावै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

विद्यारम्भे गुरुः श्रेष्ठो मध्यमौ भृगुभास्करौ ।

मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या बुधसोमयोः ॥ ६० ॥ ( ॐ )

इति मदनपारिजाते ।

अर्थ-महनपारिजात ग्रन्थमें लिखा है कि विद्यारम्भमें बृहस्पतिवार ही श्रेष्ठ है, शुक्र और रविवार मध्यम हैं और शनि, मङ्गल वारमें विद्यारम्भ करनेसे मृत्यु

—वानभियोगिता” ॥ अनुदिते जीवे विद्यारम्भो न कार्यः । केन्द्रत्रिकोणे च स्थितेः शुभै-  
रपठनदिन वर्जयित्वा पाठयेदित्यर्थः। अस्वाध्यायो राजमार्त्तण्डे उक्तः । “पौषादित्रिषु मासेषु  
कृष्णे चैवाष्टकात्रयम् । एका ज्ञेयाश्विने मासि हायनश्चतुरष्टकः। अष्टका तु समुद्रिप्ता सप्त-  
म्यादितिधित्रये । नाधीधीनात्र शास्त्राणि वर्जयेद्भ्रतवन्धनम् । या काचित्प्रतिपदिद्धा प्रेत-  
पक्षेऽथवा गते । या तु कोजागरे याते चैत्रवत्याः परेऽपि या । चातुर्मास्यसमाप्तौ च द्वितीया  
या भवेत्तिथिः । सर्गस्थेतास्वनध्यायःपुराणेः परिकीर्तितः । अष्टमी हन्त्युपाध्याय शिष्यं  
हन्ति चतुर्दशी । अमा राकोभय हन्ति प्रतिपत्सु न स्त्रीत्तयेत् ॥ सन्ध्यायां गर्जिते मेघे  
शास्त्रचिन्ता करोति यः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विदा यशो बलम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे  
तु पर्वस्वाशौचकादिषु । पापोत्पातहते चाहि अनध्यायो गलग्रहे । उत्पातो भूकम्पोल्ला-  
पाताद्दे गलग्रह उक्तस्तत्रैव । आरम्भानन्तर यत्र प्रत्यारम्भो न सिध्यति । गर्गादिमु-  
नयः सर्वे तमोः राहुगैलग्रहः ॥ अष्टमी सप्तमीभिद्धा त्रयोदश्या चतुर्दशी । प्रतिपदा  
द्वितीया च गलग्रह उदाहृतः ॥ ” शेष सुगममिति ।

( • ) एतद्वचनं धनुर्विद्यापरमितिकेचित् । इति हृदयानन्दः ।

होती है और बुध और सोमवारमें विद्यारम्भ करनेसे विद्याहीन (मूर्ख) होता है ॥ ६० ॥

विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी  
कर्तृश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान्मध्यमोऽत्र ।  
नीहारांशौ भवति जडता पञ्चता भूमिपुत्रे  
छायासूनावपि च मुनयः कीर्तयन्त्येवमाद्याः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, गुरुस्पति शुक्र और बुधवारमें विद्यारम्भ करनेसे अभीष्ट लाभ और आयुकी वृद्धि होती है इसी प्रकार रविवारमें मध्यम, सोमवारमें मूर्खता प्राप्त होती है, मंगलवारमें और जनिवारमें विद्यारम्भ करनेसे पञ्चत्व प्राप्त होता है इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ६१ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी दशमी तथा ।  
द्वादश्यां स्मृतिशास्त्रज्ञ एकादश्यां भवेद्गुणी ॥ ६२ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और दशमी तिथिमें विद्यारम्भ करे, द्वादशी तिथिमें स्मृतिशास्त्र पढ़नेको प्रारम्भ करे और एकादशी तिथिमें विद्यारम्भ करनेसे मनुष्य गुणवान् होता है ॥ ६२ ॥

न सप्तमत्रियोदश्यानां नान्ध्याये ( १ ) गलग्रहे ।  
अभ्यासश्चाशुचिः षष्ठ्यां जन्मेन्दौ नेति चापरे ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, त्रयोदशी अनन्ध्याय और गलग्रहोंमें

( १ ) अनन्ध्यायस्तु—“शुचौ दशम्या सह पूर्णिमासी मयी नभस्ये च तिथिस्मृतीया ।  
स्यादाश्विने या नवमी तयोर्जे सपूर्णिमा द्वादशिकाय चैत्री ॥ ज्येष्ठी च फाल्गुन्यय सप्तमी  
स्थान्माषे च पौषस्य च रुद्रसप्तम्या । मन्वन्तरादिविशदेऽथ कृष्णे नभोऽष्टमी फाल्गुनदर्श-  
सरया ॥ द्वादशी शुक्लापादमाषमागोर्जफाल्गुने । प्रतिपत्पूर्णिमादर्शश्चतुर्दशपत्नी सदा ।  
तिथिष्वेतास्वन्ध्यायो विपुशयनयोरपि । प्रतिपत्पलमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी । दिन  
दूषयने सर्वं सुरा गव्ययट यथा । इयहं प्रेतेष्वनन्ध्यायः शिवादिगुरुरनुषु । ग्रहणे  
च तथा प्रातः मन्ध्यागने त्वहर्निशम् । पशुमण्डकनरुल्ल्याहिमानांगमृपिकेः ।  
गतेऽन्तरे त्वहोग्रह शिष्टे च गृहमागने । आर्द्राद्यपादगे मूर्धे इयह पृथ्वी रज-  
मला । अमुनाचीति सजन्तत्स्वाध्याय तत्र वर्जयेत् । न धीमनपन कुर्याद्वलानां वाहनं  
तथा । वेदानां पाठनतन वर्जयेद्विमत्रयम् । न स्याध्यायो यपटरागे न देवपितृप्रजनम् ।

विद्यारम्भ न करना चाहिये, पक्षी तिविमं विद्यारम्भ करनेमें भार्याहीन आर अशुचि होता है, जन्मके चन्द्रमामेंमी विद्यारम्भ न करे ऐसामी किसी २ आचार्यने कहा है ॥ ६३ ॥

पुष्पाद्रामूलमाश्लेषाहस्तचित्रमृगस्तथा ।

विद्यारम्भे प्रशस्यन्ते पूर्वात्रितयमेव च ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, पुष्प, आर्द्रा, मूल, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें विद्यारम्भ करना चाहिये ॥ ६४ ॥

रवेर्गुरोर्भृगोर्लग्ने तत्स्थेऽकेपीन्दुवृद्धितः ।

गुर्वकेन्दूडुशुद्धौ च विद्यारम्भः प्रशस्यते ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिष्मन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सिंह धन, मीन, वृष और तुला लग्नेमें और मिथु और तुलाको छोड़कर अन्य ममस्त राशियोंमें गुरु स्थित होनेमें, शुक्र पक्षमें, वृहस्पति, रावे, चन्द्र और ताराशुद्धि होनेमें विद्यारम्भ करे ॥ ६५ ॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनः पश्चिमाभिमुखं शिशुम् ।

पाठयेत्प्रथमं शिष्यमनघ्याये विवर्जिते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारमन्त्रे ।

अर्थ-ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है कि, गुरु पूर्वदिशाको मुख करके बैठे और बालकको पश्चिम दिशामें मुख करके अनघ्यायवर्जित दिनमें प्रथम विद्यारम्भ करावे ॥ ६६ ॥

प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाभिमुखं शिशुम् ।

अध्यापयेच्च प्रथमं द्विजाशीर्भिः प्रपूजितम् ॥ ६७ ॥

इति बृहस्पतिः ।

अर्थ-बृहस्पतिने कहा है कि, गुरु पूर्वको मुख करके बैठे और ब्राह्मणोंकी पूजा कराकर बालकको पश्चिम दिशामें मुख करके प्रथम विद्यारम्भ कराना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति विद्यारंभः ।

अथोपनयनम् । ( क )

जीवाकैन्दूडुशुद्धा हरिशयनवह्निभास्करे चोत्तरस्थे

स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च ।

शुक्राकैज्यक्षलम्ने रविमदनतिथी प्रोज्ज्य पष्ठाष्टमेन्दुं ( ख )

नो जीवास्तातचारैर्ऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात् ॥ ६८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ उपनयनका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, बालक

( क ) “ गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः । वालां वेदाय तद्योगं बालोपनयने विदुः ॥ ” इत्युपनयनलक्षणम् ॥

( ख ) उपनयनमाह-जीवाकैति । रवि शुक्रगुरुवारं व्रतमुपनयनं स्यात् जीवाकैन्दू-  
शुद्धौ गोचरे जीवशुद्धौ रविशुद्धौ चन्द्रशुद्धौ ताराशुद्धौ च हरिशयन त्यक्त्वा उत्तरस्थे  
भास्करे उत्तरायणे सतीत्यर्थः । स्वाध्यायदिने अस्वाध्यायः प्रागुक्तः वक्ष्यते च तथा ग्रह-  
णाकालवृष्ट्यादिषु न कर्तव्यम् । गजमार्त्तण्डे-“ग्रहे स्वीन्दो रजनीप्रकल्पे केतूद्गमोल्का  
पतनादिदोषे । व्रते दशाहानि वदन्ति तज्जा वर्ज्यानि सप्ताहमपि प्रयाणे ॥ पोषादिचतुरो  
मासान्मोक्ता वृष्टिरकालजा । व्रत यात्रादिक तत्र वर्जयेत्सप्तवासरात् । अत्र यदि कर्ह-  
माह्या वसुधा स्यात्तदेव दोषः । तथा तत्रैव “ वृष्टिः करोति दोष तावन्नाकालसम्भवा  
राजः । यावन्न भवति गमने नरपशुचरणांकिना वसुधा ॥ ” वेदवर्णाधिप इति शुभदे गोचर  
शुभदे वेदाधिप ऋग्वेदाधिपतिरित्यादिना प्रागुक्तः वर्णाधिपश्च ब्राह्मणे शुक्रवागीशाधि-  
त्यादिनोक्तः । क्षौरभे तूटोदितनक्षत्रे तत्र च नादितौ पुनर्वसु वर्जयित्वा इत्यर्थः । तथा-  
पुनर्वसो कृतो विप्रः पुनः मस्कारमहति । शुक्राकैज्यक्षलम्ने इति शुक्ररविगुरुगृहं लम्ने बुध-  
तुलासहधनुर्मनिलम् इत्यर्थः । अत्र च गुरुयोगादेवातिगुणः राजमार्त्तण्डे-“जीवोदये जी-  
वगृहोदये वा जीवाशुके जीवसमीक्षने वा। अल्पशुभोऽपि व्रतबन्धनेषु वागीशतुल्यो भवति  
द्विजेन्द्रः ” रविमदनतिथीसप्तमीत्रयोदश्यां वर्जयित्वा परदिने प्रत्यारम्भाभावादिभ्यर्थः ।  
लगात् पष्ठाष्टम चन्द्र प्रोज्ज्य त्यक्त्वा तथा जीवास्ते जीवातिचारे न कर्त्तव्यः । काल-  
शुद्धावुपनयनं स्यादिति कालशुद्धिस्तु द्विविधा मलमासशुक्रास्तादिदोषाभावान्शुद्धि-  
पशुद्धिः तत्र वर्षशुद्धिरुक्ता राजमार्त्तण्डे । “गर्भोष्टमेऽष्टमे वाब्दे पञ्चमे नवमेऽपि वा ।  
कार्ये विप्रस्य राज्ञस्तु दशाब्दे द्वादशे विशः । द्विजस्य षोडशाहपात्राजो द्वाविंशतेः  
परम् । चतुर्विंशच्च वैशस्य सावित्रीपतन भवेत् ॥ ” अत्र जन्ममात्सादीं शुभ्रपक्षे चातिवि-  
फल यथा राजमार्त्तण्डे-“ जन्मोदये जन्मसु तारकासु ” इत्यादि ॥ इति ।



गोचरमें बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे श्रीहरिके जयनमित्र कालमें, उत्तरायणमें, स्वाध्यायके दिनमें वेदका मालिक और वर्णका मालिक गोचरमें शुभ होनेसे पुनर्वसुको छोड़कर चूडाकर्मके समस्त नक्षत्रोंमें, वृष, तुला, सिंह, धन और मीन लग्नमें, सप्तमी और त्रयोदशीको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, लग्नके छठे और आठवें चन्द्रमाको छोड़करके बृहस्पतिके अस्त और आतिचार द्वारा अशुद्ध काल न होनेसे सूर्य, शुक्र और बृहस्पतिवारमें काल-शुद्धि होनेसे उपनयन ( यज्ञोपवीत ) करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यत्र ।

स्वातीशतृधनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहरि-

ष्विन्दौ ( ❀ ) तोयपती भगेऽदितिमुते भाद्रद्वये सागरे ।

केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरःशशिसुते चन्द्रे च तारे शुभे

कर्त्तव्यं व्रतकर्म मंगलतिथौ वाराः सिताकैज्यकाः ॥ ६९ ॥

इति भुजबलभीमकृत्यचिन्तामण्योः ।

अर्थ-भुजबलभीममें और कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, स्नाति, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अश्विनी, अनुराधा, हस्त, रेवती, पुष्य, चित्रा, श्रवण, मृगशिर, शत-भिषा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वा-पादा नक्षत्रमें केन्द्रस्थानमें शुक्र बृहस्पति और बुध स्थित होनेसे, शुक्र, गवि और बृहस्पतिवारमें, शुभ तिथिमें, बालकका चन्द्रमा और ताराशुद्धि होनेसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ प्रशस्तमासकथनम् ।

माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः ।

चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥ ७० ॥

ज्येष्ठे गहननीतिज्ञ आपाढे क्रतुभाजनः ।

शोषेऽप्यन्येषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम् ॥ ७१ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, माघके महीनेमें यज्ञोपवीत होनेसे बालक धनवान् होता है इसी प्रकार फाल्गुनमें होनेसे व्रतके रखनेवाला, चैत्रमें मेधावी, वैशाखमें पाण्डित, ज्येष्ठमें अत्यन्त नीतिशास्त्रके जाननेवाला और आपाढके महीनेमें यज्ञोपवीत होनेसे वह बालक याज्ञिक होता है, उक्त महीनोंके

( • ) तोयपतिः शतभिषा, अदितिमुत उत्तराफाल्गुनी, सागरः पूर्वापादा, व्रतकर्म उपनयनम् इति ज्योतिस्त्रत्ते स्मार्तन व्याख्यातम् ।

सिवाय अन्य महीनोंमें देवताओंकी रात्रि होती है उनमें यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ प्रशस्ताप्रशस्ततिथ्यादिकथनम् ।

( १ ) अनध्यायञ्च रिक्ताञ्च पष्टीञ्च परिवर्जयेत् ।  
 चैत्रकृष्णद्वितीयायां तिसृष्वेवाष्टकासु च ॥ ७२ ॥  
 मार्गं च फाल्गुने चैव आपाढे कार्तिके तथा ।  
 पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ।  
 नाकालवृष्टौ कुर्वीत व्रतबन्धशुभक्रियाम् ॥ ७३ ॥

इति भुजबलभीमे ।

अर्थ-भुजबलभीममें लिखा है कि, अनध्याय, रिक्तातिथि, पष्टी, चैत्र महीनेके कृष्णपक्षकी द्वितीया, तीनों अष्टका और अग्रहायण, फाल्गुन, आपाढ, कार्तिक और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको छोड़कर यज्ञोपवीत करना चाहिये और अकाल वृष्टिमें भी यज्ञोपवीत आदि मङ्गल कार्यको न करे ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अपि च ।

स्मृतियुक्ताननध्यायान्सप्तमीञ्च त्रयोदशीम् ।  
 पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥ ( क )

इति गर्गः ।

अर्थ-गर्गमुनिने कहा है कि, स्मृतियोंमें कहे हुए अनाध्याय, सप्तमी, त्रयोदशी और माघके महीनेकी दोनों पक्षोंकी द्वितीयाको यज्ञोपवीतमें परित्याग करे ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

द्वितीया पञ्चमी चैव दशम्येकादशी तथा ।  
 व्रतारम्भे प्रशस्ता स्यादन्या स्यादधमा स्मृता ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, द्वितीया, पञ्चमी, दशमी और एकादशी ( १ ) “कार्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनापाढयोरपि । कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विद्वेषाः । ” इति श्रीपनिर्व्यवहारासमुच्चये ॥

( क ) चैत्रशुक्लद्वितीया, आपादशुक्लदशमी मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वेशाखशुक्ल-  
 वृतीया युगादित्वेन निषिद्धेति स्मार्त्ताः । “ उदगयने आपूर्यमाणे पक्षे कल्याणनक्षत्रे  
 शुद्धोपनयनगोदानधियाहाः ” इत्याश्वलायनवचनादुपनयने शुद्धपक्ष एव विहितः ।  
 “ कर्णवेधे विवाहे च व्रते पुसवने तथा । प्राशने चाद्यशुदायां विद्वद्रक्षं विजनेथ ” इति

तिथि उपनयन ( यज्ञोपवीत ) में प्रशस्त हैं. और उक्त तिथियोंके सिवाय अन्य तिथियोंको अधम कहा है ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

तृतीयैकादशी ग्राह्या पञ्चमी द्वादशी तथा ।

द्वितीयायाञ्च मेधावी भवेदर्थवलान्वितः ॥ ७६ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, तृतीया, एकादशी, पञ्चमी, द्वादशी और द्वितीया तिथिमें उपनयन होनेसे बालक मेधावी होता है ॥ ७६ ॥

पष्ठ्यामशुचिरभार्यो रिक्तासु बहुदोषभाक् ॥ ७७ ॥

अर्थ-पष्ठी तिथिमें यज्ञोपवीत होनेसे अशुचि और भार्याहीन होता है और रिक्तातिथिमें अनेक प्रकारके दोष होते हैं अतएव उक्त दोनों तिथियोंमें यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ७७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

माघपक्षके जन्ममासे शुक्लपक्षे तथैव च ।

गुर्वर्ककालशुद्धौ च तथोपनयनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥ ( ❀ )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, माघसे आदि लेकर छः महीनोंके मध्यमें, जन्मके महीनेमें, शुक्लपक्षमें, गोचरमें बृहस्पति और सूर्य शुद्ध होनेसे यज्ञोपवीत करे ॥ ७८ ॥

अन्यञ्च ।

गुरौ शुके रवां वारे तामगानां कुजेऽपि च ।

उपनयनं प्रकुर्वीत दिनादिप्रहरद्वये ॥ ७९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, बृहस्पति, शुक्र और रविवारमें दिनके पूर्वाह्णमें यज्ञोपवीत करना चाहिये । तामवेदी मङ्गलवारमें भी यज्ञोपवीत कर सके है ॥ ७९ ॥

—वचनाद्वापि दशयोगमङ्गो विचार्यः । व्रते च मरणमिति वचनात् सुतनेधोऽपि इति स्मार्त्तनोक्तम् ।

( • ) शुचिर्नैव गुरुर्हस्यं वषं प्राप्तेऽष्टमे यदि । चित्रे मासि गते भानी तस्योपनयनं विदुः ॥ ” इति ग्रन्थान्तरे ।

अपि च ।

क्षिप्रश्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वाराद्रोर्कविद्रुसितेन्दुदिनेव्रत स्यात् ८०

इति मुहूर्तचिन्तामणौ ।

अर्थ-मुहूर्तचिन्तामणिमें लिखा है कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, पुनर्वसु ( × ) श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, गेवती, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और आर्द्रानक्षत्रमें, रवि, बुध, वृहस्पति शुक्र और सोमवारमें यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८० ॥

अपरश्च ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च ( १ ) ग्रहाब्देऽपि शुभे तथा ।

पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, चन्द्र, ताग और अन्य ग्रहगोचरमें शुद्ध होनेसे आठवें वर्षमें बालकका यज्ञोपवीत करे । पुनर्वसु नक्षत्रमें यज्ञोपवीत करनेसे उसका फिरसे यज्ञोपवीत करना चाहिये ॥ ८१ ॥

अथ जन्मलग्नादिप्रज्ञप्ता ।

जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि जन्मभे वा ।

व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ८२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्मलग्नमें, जन्म नक्षत्रमें, जन्मके महीनेमें और जन्मकी राशिमें यदि बालकका यज्ञोपवीत होयतो वह बालक अल्प-विद्यावान् होनेसे भी अत्यन्त विद्याद्वारा पृथिवीमें ख्यात होता है ॥ ८२ ॥

शुके पक्षे शुभस्थे शशिनि दिनकरे देवपूज्ये च सम्य-

ग्वारे भानोः सितस्य त्रिदशपतिगुरोश्चात्तरे तीक्ष्णरश्मौ ।

हस्तश्चित्राश्विश्क्रादिति वसुवरुणोपेन्द्रतिष्येन्दुपाँष्ण- ( २ )

स्वातीपुष्याहतासु स्मृतमुपनयनं चौडमाद्यञ्च शस्तम् ॥ ८३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलि ग्रन्थमें लिखा है कि, शुकपक्षमें गोचरमें चन्द्र सूर्य

( × ) पुनर्वसु नक्षत्रमें क्षत्रिय और वैश्यका यज्ञोपवीत होसक्य है ।

( १ ) ग्रहाब्दे इम शब्दका अर्थ किसी २ ने नवम वर्षमें किया है ।

( २ ) अथ यज्ञे पुनर्वसोरुपादानान्क्षत्रियवैश्योपनयनविषयमेव ।

और बृहस्पति शुद्ध हानेसे, रवि, शुक और बृहस्पति वाग्में, उत्तरायणमें, इस्त, चित्रा, आश्विनी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, धनिष्ठा, शतभिषा, श्रवण, पुष्य, मृगशिर, रेवती और स्वाति नक्षत्रमें यज्ञोपवीत और आय ( प्रथम ) चूडाकर्म प्रशस्त है ॥ ८३ ॥

शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथवास्मिन्

वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम् ।

नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा

जीवे भृगावुपनयः स्मृतिकर्महीनः ॥ ८४ ॥ ( क )

इति कृत्यचिन्तामणा वात्स्यः ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणि ग्रन्थमें वात्स्यमुनिने कहा है कि, शाखाके मालिक जो तीन ग्रह यदि बलवान् होय अथवा केन्द्रके स्थानमें स्थित होय तो शाखाके मालिकके वारमें यज्ञोपवीत प्रशस्त है. और बृहस्पति नीच घरमें होय वा शुकके घरमें होय अथवा दोनोंके मध्यमें कोई ग्रह पराजित होय और उसमें यज्ञोपवीत किया जाय तो वह बालक स्मार्त्तकर्मका अधिकारी नहीं होता है। किसी २ आचार्यने कहा है कि, शाखाका मालिक बलवान् होय वा केन्द्रस्थानमें स्थित होय और कोई न होय तो शाखाके मालिकके वारमें यज्ञोपवीत होसका है। सामवेदियोंका मङ्गलवारमें यज्ञोपवीतका व्यवहार है. स्मार्त्तब्रह्मचार्यने भी इसी प्रकार कहा है ॥ ८४ ॥

नीचस्थानगते जीवे भार्गवेऽरिगृहं गते ।

व्रतकर्म न कुर्वीत तयोरेव पराजये ॥ ८५ ॥

इति ज्योति सारसग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, बृहस्पति नीच घरमें स्थित होनेसे वा शुक शुकके घरमें होनेसे अथवा दोनोंके मध्यमें जो कोई ग्रह पराजित होय तो यज्ञोपवीत न करना चाहिये ॥ ८५ ॥

माघादिमासपट्केषु शार्ङ्गिणः शयनावधि ।

चूडाकर्म प्रकुर्वीत मुनयो व्रतमेव च ॥ ८६ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ—राजा भाजन कहा है कि, माघ महीनेसे आदि लेकर छः महीनोंमें श्रोहारिके जाग्रतसमयमेंही चूडाकर्म और यज्ञोपवीत करना चाहिये इस प्रकार मुनिचोने कहा है ॥ ८६ ॥

( क ) साम्भेदानां कुजवारेऽप्युपनयनमिति स्मार्त्तनीकम् ।

रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम् ।

व्रतवन्धादिकं तस्माच्चूडाकर्म च वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, दक्षिणायनमें देवताओंकी रात्रि होती है अतएव उसमें यज्ञोपवीतादि और चूडाकर्म न करना चाहिये ॥ ८७ ॥

विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे ।

दक्षिणे च विशां कार्यं नानध्याये ( १ ) न संक्रमे ।

अनध्यायेऽपि ( २ ) कुर्वीत यस्य नैमित्तिकं भवेत् ॥ ८८ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गमुनिने कहा है कि, ब्राह्मण और क्षत्रियका यज्ञोपवीत उत्तरायणमें करै वैश्यका यज्ञोपवीत दक्षिणायनमेंभी होसक्ता है किन्तु अनध्याय और संक्रान्तिको छोड़देवै और यदि प्रायश्चित्त करके यज्ञोपवीत होय तो ब्राह्मणादि वर्णोंका अनध्यायमें दक्षिणायनमें और कृष्णपक्षमें वह यज्ञोपवीत होसक्ता है किन्तु एक दिन ( × ) परित्याग करनेसेही निषिद्धादिन छूटता हो तो उसी दिन करे ॥ ८८ ॥

शुक्रास्तादिसमये उपनयनादिनिषेधकथनम् ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ गुरौ वा ऋक्षेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते ।

व्रतोपनीतो दिवसे प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः ॥ ८९ ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, शुक्र वा वृहस्पति अस्तगत हो वा पापग्रहोंके साथ होकर यदि किसी राशिमें स्थित हों तो और तिथि नक्षत्रादि अनुक्त दिनमें जिसका यज्ञोपवीत होय वह मनुष्य देवैरक्षित होनेसेभी गमालयको जाता है ॥ ८९ ॥

( १ ) “चातुर्मास्यद्वितीयाम् मन्वादिषु शुभादिषु । अष्टकाम् च सक्रान्त्या शयने बाधने हरेः । आपादफाल्गुनोर्ज्येष्ठाया द्वितीया विष्टक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः । सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी तथा । चतुर्था द्वादशी मास एताः सोपपदास्तथा । अनध्याय प्रवृत्तं तथा सोपपदाम् च ॥” इति ग्रन्थान्तरे ।

( २ ) अपिना दक्षिणायनकृष्णपक्षयोः समुच्चयः । नैमित्तिकः प्रायश्चित्तरूपमिति मलमासतस्ये स्मात्तनोक्तम् ।

( × ) एष दिनस्योपवासेन गमायति शक्यत्वादिति स्मार्ताः ।

ऋक्षैकमन्दिरगतौ यदि जीवभानू  
शुक्रोऽस्तगः सुरवरैकगुरुश्च सिंहे ।

नारभ्यते व्रतविवाहगृहप्रतिष्ठा

क्षौरादिकर्म गमनागमनंच धीरैः ॥ ९० ॥

इति काश्यपः ।

अर्थ-काश्यपने कहा है कि, एक राशिमें एकही नक्षत्र युक्त होकर यदि बृहस्पति और सूर्य स्थित हों अथवा शुक्र अस्तेगत होय वा बृहस्पति सिंहे राशिमें होय तो पण्डितगण यज्ञोपवीत, विवाह, ग्रहप्रतिष्ठा, चूडादि कर्म और गमना गमन परित्याग करै ॥ ९० ॥

एकराशिगतौ स्यातामेकक्षविषये यदि ।

गुर्वादित्यौ तदा त्याज्या यज्ञोद्वाहादिकाः क्रियाः ॥ ९१ ॥

इति काश्यपः ।

अर्थ-काश्यपने कहा है कि, एक राशिमें एक नक्षत्रयुक्त होकर यदि गुर्वादि-त्ययोग होय तो उसमें यज्ञ विवाह और यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये ॥ ९१ ॥

यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवराधिं ग्रामसन्नप्रवेशं

प्रासादीद्यानहर्म्यान्सुरनवभवनारम्भविद्याप्रदानम् ।

मौञ्जीबन्धं प्रतिष्ठां मणिवरकनकाधारणकुर्वते ये

मृत्युस्तेपाञ्च सिंहे गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥ ९२ ॥

इति हारीतः ।

अर्थ-हारीतने कहा है कि, बृहस्पति और सूर्य यदि सिंहराशिमें स्थित होय वा अन्य किसी राशिमें एक नक्षत्रयुक्त होकर दोनों ( बृहस्पति और सूर्य ) स्थित हों तो यात्रा, चूडा, विवाह, कर्णबिध, ग्रामप्रवेश, गृहप्रवेश, प्रासादारम्भ, उद्यानारम्भ, हर्म्यारम्भ, देवगृहारम्भ, विद्याप्रदान, यज्ञोपवीत, प्रतिष्ठा, श्रेष्ठ-माणधारण और स्वर्णालङ्कारादि धारण न करना चाहिये उक्त विष्टकालमें उपरोक्त समस्त कार्योंके करनेसे उसकी मृत्यु होती है ॥ ९२ ॥

नीचस्थः सिंहगो वा यदि भवति गुरुः सूर्यरश्मौ च लीनः

संयुक्तो वा यदि स्याद्दशशतघृणिना क्षीणरूपोऽथ बालः

यात्रा गेहं विवाहो व्रतममरगृहं यज्ञचूडादि सर्वं  
वापी चोद्यानरूपं न भवति शुभदं यद्यदिष्टञ्च लोके ॥९३॥

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—रत्नावली ग्रन्थमें लिखा है कि, बृहस्पति यदि नीचस्थानमें स्थित होय, सिंह राशिमें होय, सूर्यके साथमें होय, अस्तगत होय अथवा बाल्यावस्थाको धारण करे तो उसमें यात्रा, गृहारम्भ, विवाह, यज्ञोपवीत, देवगृहारम्भ, यज्ञ, चूडाकर्म, वापी ( गावडी ) खुदाना बगीचा लगाना और कुआँ खुदाना और अन्यान्य मङ्गलकार्य न करना चाहिये ॥ ९३ ॥

सर्वं कार्यं न कुर्वीत गुरौ सिंहेऽस्तगेऽपि च ।

व्रतदीक्षे न कुर्वीत तमोयुक्ते बृहस्पतौ ॥ ९४ ॥

इति भोजदेवः ।

अर्थ—राजा भोजने कहा है कि, बृहस्पति सिंह राशिमें स्थित होय वा अस्तगत होय तो उसमें मङ्गलकार्य न करना चाहिये और राहुयुक्त होनेसे यज्ञोपवीत और दीक्षादान न करे ॥ ९४ ॥

उल्कापाते भुवः कम्पे ह्यकालवर्षगर्जिते ।

वज्रकेतुद्रमोत्पाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ९५ ॥

प्रयाणन्तु त्यजेत्क्षत्रः सत्तरात्रमतः परम् ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्यजेत्कर्म त्रिरात्रकम् ।

शूद्रस्त्यक्त्वा चैकरात्रं सर्वकर्म समाचरेत् ॥ ९६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, उल्कापतनमें, भूकम्पमें, अकाल वर्षण वा गर्जनमें, वज्रपातमें, घूमकेतुके उदयमें, अन्य प्रकारसे उत्पातोंमें, चन्द्रग्रहणमें और सूर्यग्रहण होनेसे क्षत्रिय सात रात्रि परित्याग करके यात्रा करे और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके कर्ममात्रमें ही तीन रात्रि परित्याग करनी चाहिये किन्तु शूद्रको एक रात्रि छोडकर समस्त कर्मोंमें आधिकार है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

ग्रहणे विशेषः ।

प्रयाणे सत्तरात्रं स्यात्त्रिरात्रं व्रतवन्धने ।

एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे ॥ ९७ ॥

इति पराशरः ।

अर्थ—पराशरने लिखा है कि, ग्रहण होनेसे सात दिनपर्यन्त यात्रा परित्याग



करनी चाहिये तीन रात्रियोंके बाद यज्ञोपवीत करै और आपत्कालमें विवाह एक रात्रिके बाद ही करसक्ता है ॥ ९७ ॥

कम्पे राजनि सताहो ब्राह्मणानां त्र्यहस्तथा ।

( \* ) शूद्रस्यार्द्धदिनं प्रोक्तं सर्वकार्येषु वै भृगुः ॥ ९८ ॥

इतिभृगुः ।

अर्थ-भृगुने कहा है कि, भृकम्पादि होनेसे क्षत्रिय सात दिन ब्राह्मण तीन दिन और शूद्र ( आपद्दिपयमें ) अर्द्ध दिन परित्याग करके समस्त मङ्गल कार्य करै ॥ ९८ ॥

नो सन्ध्यागर्जिते प्राहुर्व्रतोपनयनं बुधाः ।

न च वृष्टावथाकाले वृष्टावासतवासरात् ॥ ९९ ॥ ( \* )

इति व्यासः ।

अर्थ-व्यासने कहा है कि, सन्ध्यागर्जनमें और अकालवृष्टिमें यज्ञोपवीतादि न करना चाहिये इस प्रकार पण्डितोंने कहा है परन्तु तीन दिन क्रमसे वृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनतक अकाल होता है ॥ ९९ ॥

तथाच ।

एकेनाह्ना चैकादिनं द्वितीयेन दिनत्रयम् ।

तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसग्रहमें लिखा है कि, अकालवृष्टि एक दिन होनेसे उसी दिन अकाल होता है, इसी प्रकार क्रमानुसार दो दिन होनेसे शेष दिनसे तीन दिन अकाल होता है और क्रमानुसार तीन दिन अकालवृष्टि होनेसे शेष दिनसे सात दिनपर्यन्त अकाल होता है ॥ १०० ॥

आकालिकीं वृष्टिमवेक्ष्य गन्ता पदं न गच्छेच्छुभमात्मनीच्छत् ।

क्षौरं व्रतञ्चापि शुभाभिलाषी कदापि नैवं मनसापि कुर्यात् ॥ १ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-श्रीपतिमहाचार्यने स्वकृत व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखा है कि, अकाल

( \* ) शूद्रस्यापद्दिपयम् । कम्प इत्युपलक्षण ग्रहणादावप्येवमेव त्रिकत्र पठितत्वात् इति स्मार्ताः ।

( \* ) आसतवासरानित्यत्र उपस्थितत्वाद्वाष्टिकालमादाय सप्ताहगणना ( वृष्ट्युत्तरमेव सप्ताहत्यागः ) एतद्वचनं तु तृतीयोद्दिदिवसीयाकालवृष्ट्यामिप्रायेण । अतः “ दिने नैकादिनं त्र्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम् । तृतीयेन च सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे ” इति न्यायरत्नपरिग्रहीतत्रात्रयेऽपि दिनेन दिनवृत्तिवर्षणेन । एव द्वितीयेनेत्यादौ शेषम् ।

वृष्टिको देखकर अपनी कुशल चाहनेवाला मनुष्य एकपदभी गमन न करे अर्थात् यात्रा निषिद्ध है और मंगल अभिलाषी मनुष्य क्षौर ( चूडाकर्म ) वा यज्ञोपवीतादिको मनमें भी न विचारै अर्थात् उक्त समस्त कार्योंका निषेध है । १।

आवेशाखाद्भुजगवनिताचुम्बनायासखिन्नो

देवो दैत्यप्रमथनपटुर्यावदेकान्तशान्तः ।

अम्भःशय्यापरिगततनुयौगनिद्रामुपैति

तावदृष्टेः समय उचितो ब्रह्मणा भाषितोऽयम् ॥ २ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, दैत्योंके नाशकरनेवाले विष्णु-मगवान् सर्पवनिता ( स्त्री ) के चुम्बनसे पारिश्रान्त होकर ( थककर ) क्लान्ति ( यकावट ) दूरकरनेके निमित्त जलशय्यामें जबतक सोतेहुए वैशाखके महीनेसे उसी समय तक अकालवृष्टिका समय होता है ॥ २ ॥

अकालन्तु ततो वृष्टेर्यावद्ब्रह्मिमहोत्सवः ॥ ३ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, श्रीहरिके उत्थानसे दोलपूणि-मापर्यन्त वृष्टि होनेसे उसको अकालवृष्टि कहते हैं अकालवृष्टिमें श्रीहरिके उत्थान समयसे शयनकालपर्यन्त प्रथम पक्षको परित्याग करना चाहिये पौषादि-चार महीने वा श्रीहरिके उत्थानसमयसे दोलपूणिमातक द्वितीयपक्ष आपत्विष-यमें और पौषादि दो महीने अत्यन्त आपद्विषयमें त्याज्य हैं [ अकालवृष्टिको विवाहमकरणमें कालशुद्धिके प्रसङ्गमें उत्तम प्रकारसे कहा है पाठकगण उसको देखलेंगे ] ॥ ३ ॥

अयानध्यायकथनम् ।

प्रतिपत्पञ्चपर्वाणि कृष्णा पौषस्य सप्तमी ।

चेत्रे कृष्णद्वितीया च नवमी शुक्लगाश्विने ॥ ४ ॥

द्वे द्वितीये सहोमाघोर्जापादाश्विनफाल्गुने ।

द्वादशी शयनोत्थानपरिवर्त्तेषु या भवेत् ॥ ५ ॥

मन्वादयो युगाद्याश्च ह्यशोचप्रतपक्षकौ ।

अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्य इति वेदाविदां स्मृतिः ॥ ६ ॥

अहं कुर्यादनध्यायमम्बुवाच्युपरागयोः ।

सन्ध्यागर्जत्राद्धभुक्तिभूकम्पादावहर्निशम् ॥ ७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब अनध्यायोको कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा, पञ्चपर्व पौषकी कृष्णा सप्तमी, चैत्रकी कृष्ण द्वितीया, आश्विनकी शुक्ला नवमी, आग्रहायण, माघ, कार्तिक, आपाद, आश्विन और फाल्गुनके महीनेकी दोनों पक्षाकी द्वितीया, शयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्तन द्वादशी, मन्वन्तरादि, युगादि, अशौच और प्रेतपक्ष इन समस्तदिनोंमें अनध्याय होता है, यह वेदके जाननेवालोंका मत है और अम्बुवाची और ग्रहणमें तीन दिन, सन्ध्यागर्जनमें और श्राद्धान्नभोजनमें एक दिन और भूकम्पादि होनेसे भी एक दिनका अनध्याय होता है ॥ ४-७ ॥

व्रतेऽह्निपूर्वसन्ध्यायां ( क ) चारिदो यदि गर्जति ।

व्रतं तत्र तु ( ख ) नैव स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ-व्रतके दिनमें ( यज्ञोपवीतके दिनमें ) पूर्वसन्ध्यामें, मेघके गर्जनेसे उपनयन न करना चाहिये मुनिगणोंने इस प्रकार धर्मको स्थापित किया है ॥ ८ ॥

कार्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनापाढयोरपि ।

कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ-श्रीपतिके व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है कि, कार्तिक, आश्विन, फाल्गुन और आपादके कृष्णपक्षके द्वितीयाको पण्डितोंने अनध्याय कहा है ॥ ९ ॥

युगाद्येषु युगान्तेषु तथा मन्वन्तरादिषु ।

सन्ध्यागर्जेऽकालशुद्धौ विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ ११० ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावली ग्रन्थमें लिखा है कि, युगके आदिकी तिथि ( १ )

( क ) पूर्वादिने सायसन्ध्यागर्जने परादिने व्रतनिषेध इति मेथिलमतम् । पूर्वपदमत्र परसन्ध्याव्यावर्तक स्वरूपाख्यानपर वेति स्मार्ताः ।

( ख ) “ तद्दिन स्यादनध्याय व्रत तत्र न कारयेत् ” इति परार्द्धं भीमपराक्रमे ।”

( १ ) युगाद्यामाह- “ वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृत युगम् । कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताय नवमेऽहानि । अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् । माघे च पौर्णमास्यां वै घोर कलियुग स्मृतम् । युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ” इति ब्रह्मपुराणम् ।

युगके अन्तकी तिथि मन्वन्तरा ( २ ) सन्ध्यागर्जन और अकालशुद्धिम विद्या रम्भ ( वेदारम्भ ) न करना चाहिये ॥ ११० ॥

अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः ।

अनध्यायोऽत्र कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ ११ ॥

अर्थ-अयन संक्रांति, विषुव संक्रान्ति, श्रीहरिका शयनकाल बोधनकाल और मन्वन्तर और युगाद्या इन सबको अनध्याय कहते हैं ॥ ११ ॥

अथोपनयनकालः ।

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

राज्ञामेकादशे सैके ( × ) विशामेके यथाकुलम् ॥ १२ ॥ ( ॐ )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब उपनयनका काल कहते हैं । ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, गर्भाष्टममें ( १ ) अथवा आठवें वर्षमें ब्राह्मणके बालकका यज्ञोपवीत होना चाहिये और धन्निबका ग्यादश्वें वर्षमें और वैश्यका बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत होना चाहिये अथवा कुलकी रीतिसे जितनी वर्षोंमें यज्ञोपवीत होता होय तो उस समयमें भी होसक्ता है ॥ १२ ॥

विप्रस्य षोडशाद्ब्राह्मणोद्ब्राह्मणविंशतेः परम् ।

वैश्यस्याष्टत्रिकाद्ब्राह्मणविंशतनं भवेत् ॥ १३ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-मार्कण्डेय मुनिने कहा है कि, ब्राह्मणको सोलह वर्षके बाद क्षत्रियकी

( २ ) अथ मन्वन्तराः । “अश्वयुज्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिकी तथा । तृतीया जेनासस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावस्या षोडश्याद्दशमी तथा ॥ आपाटस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥ आश्विनस्थाष्टमी कृष्णा तथापाटस्य पूर्णिमा । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी मिता । मन्वन्तगदस्यरेता वृत्तस्याश्वयत्तिकाः ” इति भविष्यमत्स्यपुराणयोः । अत्र अमावस्याष्टमीव्यतिरिक्ताः शुक्ल पुनः २ नस्तथापक्षोपादानादुपक्रमोपमहारयोः शुक्लरवर्तिनाञ्च । कामधेनो- “ तृतीया शिव माघस्य ” इति । ऋत्पारो तु - “ तृतीया चित्रमासस्य ” इति लिखितम् । अत्र पाठद्वये श्रीपतिरत्नमालायाम् । “अश्वयुजी शुक्लनवमी द्वादश्यां मघो तृतीया च” इति पाठ-चित्रतृतीया ग्राह्या श्रीदत्तोऽप्येवम् । इति लिखितत्त्वे ग्मार्ताः ।

( + ) एकादशे मेरे द्वादशे । “ गर्भाष्टमादशे गज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ” इति दत्तनान्तरश्रुत्याम् ।

( • ) “देशानुशिष्टे कृत्स्नममम्य सगोनधर्मं नहि सन्धयेच्च ” इति कामनपुगणम् ।

( १ ) जन्मसु गिनकर छः वर्ष तीन महीनेरे बादको गर्भाष्टमाक कहते हैं ॥

बाईस वर्षके बाद और वैश्यकी चौबीस वर्षके बाद सावित्री पतन होता है ॥ १३ ॥

पोडशाब्दे हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः ।

विंशतिः सचतुर्था च वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥

सावित्री नातिवर्त्तत अत ऊर्ध्वं निवर्त्तते ॥ १४ ॥ (+)

इति विष्णु-उर्मोत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमे लिखा है कि, सोलहवर्षतक ब्राह्मणका यज्ञोपवीत होसक्ता है, इसी प्रकार क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीत होनेका समय होता है, किन्तु उक्त समयके बाद सावित्री पतन होजाती है ॥ १४ ॥

आपोडशाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ।

ब्रह्मक्षत्रविंशं काल औपनायनिकः परः ॥ १५ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्ये ।

अर्थ-याज्ञवल्क्यने कहा है कि, ब्राह्मणका सोलह वर्षतक क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १५ ॥

औपनायनिकः कालः परः पोडशवार्षिकः । (ख)

द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः ॥ १६ ॥

इति व्यास ।

अर्थ-व्यासने कहा है ब्राह्मणका सोलह वर्षतक, क्षत्रियका बाईस वर्षतक और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीतका समय है ॥ १६ ॥

पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च ।

(+) आभ्यां ( मार्कण्डेयविष्णुधर्मोत्तरवचनाभ्यां ) पोडशवर्षाण्यपरि यमेन पञ्चदशवर्षोपरि यत्पतनमभिहितं तद्गर्भजन्मप्रभृति गणनाभ्यामविरुद्धं तथा च कृत्यचिन्तामणौ माण्डव्ये । “ व्रतबन्धविवाही च वत्सरपरिकल्पनमाहुराचार्याः । आधानपूर्वमेकैः प्रसूतिपूर्वं सदान्ये तु ” एव च व्यासमार्कण्डेयादिवाङ्मयेऽप्युक्तयथा न्यायसिद्धतया च आपोडशादित्यादौऽभिविध्यर्थतैः । अत्रापि वर्षगणना साधनेनैव । यत् द्विजानामुपक्रम्य पेठीनसिबचनम् । “ द्वादशपोडशविंशतिश्चेदनीता अरुद्धकाला भवन्ति ” इति । तद्द्वादशवर्षाण्यपरि प्रत्यवायात्पत्वज्ञापनपरमिति जल्पपाण्युपाध्याया । अत्र महाव्याहृतिहोमप्रायश्चित्तं तदुत्तरं व्रात्यप्रायश्चित्तमिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

(क) अत्र याज्ञवल्क्येऽप्युक्तं आडं अभिविध्यर्थतन्म । मर्षादाभिधिपिसन्देहे कार्यान्वितत्वेनाभिधिरेव वत्सत्त्वादिति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

(ख) परोन्त्यः पोडशवार्षिकं पोडशवर्षं व्याप्य भूतस्थित इति यावत् । इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः ।

प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः ॥ १७ ॥ ( ग )

इति यमः ।

अर्थ-यमने कहा है कि, ब्राह्मणका पन्द्रहवर्षके मध्यमें सावित्रीग्रहण अर्थात् यज्ञोपवीत न होय और क्षत्रिय वैश्यकामी पूर्वोक्त समयमें यज्ञोपवीत न होय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ १७ ॥

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिरिच्यते ।

आद्विंशच्च क्षत्रस्य आचतुर्विंशतेर्विशः ।

अतःपरं नोपनेयो व्रात्यः संस्कारहीनकः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सोलह वर्षतक ब्राह्मण सावित्री अर्थात् गायत्रीमें अधिकारी होसक्ता है इसी प्रकार बाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्रीका अधिकारी होसक्ता है, किन्तु उक्त समयके बाद यज्ञोपवीत नहीं होसक्ता है व्रात्य और संस्कारहीन होजाता है ॥ १८ ॥ मार्कण्डेय, विष्णुधर्मोत्तर, याज्ञवल्क्य और यम प्रभृतिके वचनोंका अर्थ अनेक प्रकारसे होसक्ता है अर्थात् किसी वचनमें सोलहवर्षतक यज्ञोपवीतका विधान है और वचनान्तरमें पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है, अतएव उक्त सब वचनोंकी मीमांसाके निमित्त स्मार्त्तमहाचार्यने विषयमेदसे ( गर्भग्रहण और जन्म समयसे गिनकर ) विधि और निषेधको सार्थक किया है, " गर्भग्रहणसे सोलह वर्षके मध्यमें यज्ञोपवीतका विधान और जन्मसे पन्द्रह वर्षके बाद यज्ञोपवीतका निषेध है " इस प्रकार मीमांसा करी है ॥

इति उपनयनम् ।

अथ समावर्त्तनम् ।

तृतीयलाभारिगतैरसौम्यैः केन्द्रत्रिकोणोपगतैः शुभैश्च ।

चूडोदितक्षादिविलग्रयोगेभौजीविमोक्षः शुभदोद्विजानाम् १९ ॥ ( \* )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब समावर्त्तनका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, लग्नके तीसरे

( ग ) पूर्वोक्तविष्णुधर्मोत्तरवचने षोडशवर्षोपनयनाङ्गता अत्र यमवचने तदनङ्गता प्रतीयते अनयोर्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धता । इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तन व्याख्यातम् ।

( + ) समावर्त्तनमाह-तृतीयेति । चूडाकरणोक्तेषु नक्षत्रादिषु चूडोक्तलग्नयोगे च आदिशब्दात्तियारादिचूडावज्रातद्यमित्यर्थः । भौजीविमोक्षः समावर्त्तनम् । शेषं सुगमम् ।

ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे और केन्द्र और त्रिकोणस्थानमें शुभ ग्रह होनेसे चूड़ोदित नक्षत्र, वार, तिथि, योग और लग्नादिमें ब्राह्मणोंका मौजी-विमोक्षण शुभ होता है ॥ १९ ॥

भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते ।

( १ ) तारा चन्द्रविशुद्धौ च समावर्तनमिष्यते ॥ १२० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मंगल और शनिवारमें उपनयनोक्त नक्षत्रमें तारा और चन्द्रमा शुद्ध होनेसे समावर्तन होता है ॥ १२० ॥

इति समावर्तनम् ।

अयाग्निग्रहणम् ।

वह्निग्रहं कुजगुरुज्ञदिनेश्वारे

माघादिपट्सु च मृदुध्रुववह्निभेषु ।

कुम्भाजभांशकविलग्नमशुद्धकालं

लग्नस्थशीतगुप्तितौ च विहाय कुर्यात् ॥२१॥ (२)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ अग्निग्रहणका मुहूर्त कहते हैं दीपिकामें लिखाहै कि, मंगल, घृह-स्पति, बुध और रविवारमें, माघसे आदि लेकर छः महीनोंमें चित्रा, अनुराधा-मृगाशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमें, कुम्भ मेष और जलराशिके उदय समय और नवांशभिन्न लग्नमें शुद्ध लग्नमें चन्द्रमा और शुक न होनेसे अग्नि ग्रहण कर्मा चाहिये ॥ २१ ॥

अथ धनुर्विचारम्भः ।

आदितिगुर्यमार्कस्वातिपिष्याग्निचित्रा

ध्रुवहरिवसुमूलाश्विन्दुभाग्यान्तभेषु ।

( १ ) कालचन्द्रविशुद्धौ चेत्यपि पाठान्तरम् ।

( २ ) अग्निग्रहणपरिक्षायान्तु विशेषमाह-वह्निग्रहमिति । मङ्गलगुरुशुक्रविवारेषु मामा-दिपट्सु मृदुध्रुवगणकृत्तिकासु कुम्भस्वाजस्य च जलजराशिरशक नवांश लग्नञ्च त्यक्त्वा अशुभकालं शुक्रास्तादि त्यक्त्वा वह्निग्रहणं कुर्यात् । शेषं सुगमम् । इति ।

## विशनिशीशिवुधाहे विष्णुबोधे विषौषे

सुसमयतिथियोगे चापविद्याप्रदानम् ॥२२॥ ( \* )

अर्थ-अब धनुर्विद्यारम्भ करनेका मुहूर्त्त कहते हैं । पुनर्वसु, पुष्य, भरणी, हस्त, स्वाती, मघा, कृत्तिका, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्र-पदा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, आश्विनी, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी और रेवती, नक्षत्रमें शनि सोम और बुधवारको छोड़कर अन्यवारोंमें श्रीहरिके बोधमें पौष और चैत्रभिन्न महीनोंमें कालाशुद्धि होनेसे रिक्ताभिन्न शुभतिथि और योगादिमें धनुर्विद्याका प्रारम्भ करना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ मोक्षदीक्षा ( संन्यास ग्रहणम् ) ।

जीवाकेंद्रशुद्धौ ध्रुवमृदुगणभे चोत्तरस्थे दिनेशे

प्रत्रज्येशे सवीर्ये स्थिरभवनविलग्नस्थितेऽकैज्यवारे ।

प्रत्रज्याख्येषु योज्यैष्यशुभगणगैर्वीर्यहीनैः सुवीर्ये ( क )

जीवे धर्मे स्मरे वा स्थिरभवननवांशोदये मोक्षदीक्षा ॥२३॥

अर्थ-अब मोक्षदीक्षा अर्थात् संन्यासके ग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं बृहस्पति रवि, चन्द्र और नक्षत्र गोचरमें शुद्ध होनेसे उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें, उत्तरायणमें, प्रत्रज्याधिप ग्रह बलवान् स्थिर लग्नमें होनेसे रवि वा बृहस्पति वारमें, प्रत्रज्याख्य योगमें पापग्रह बलहीन होनेसे बलवान् बृहस्पति नवमें वा सातवें स्थानमें होनेसे स्थिर राशिके उदयमें अथवा नवांशमें संन्यासको ग्रहण करें ॥ २३ ॥

( + ) धनुर्विद्यारम्भमाह-अदिति । ध्रुवो वगणः १२ । २१ । २६ । ४ भाग्ये पूर्वाफाल्गुनीत्यर्थः । शनिबुधचन्द्रवारोस्त्यक्त्वा विष्णुबोधे हरेरुत्थाये विषौषे पौषे त्यक्त्वा चापविद्यादानं कुर्यात् । पौष इत्युपलक्षणं चैत्रम् । यथा राजमार्त्तण्डे-“हरी सुधे तथा पौषे चैत्रे वाप्यसितेतरे । शशिसौम्यशनेवारे धनुर्विद्या न शस्यते ” सुसमये कालशुद्धौ सुतियो अरिक्तं तिथौ सुयोगे च कार्यमित्यर्थः ।

( क ) मोक्षार्थदीक्षामाह-जीवाकंति । जातकचन्द्रिकादौ तापससुद्धेनादिना प्रत्र-ज्येषा उत्तम येन वा प्रत्रज्या कार्या तदाश्वरे बलवति स्थिरलग्ने स्थिते सति प्रत्रज्यायोगे च रविचन्द्रजीविशुद्धौ च ध्रुवमृदुगणनक्षत्रेषु मापादिपट्टके स्थिरभवने विलग्नै रविगुरुवारे प्रत्रज्यायोगेऽशुभग्रहेर्वैत्र तत्रस्थेबलहीनैः रात्रिः तस्वीर्ये बलवति जीवे नवमे सप्तमे वा स्थिते स्थिरनवांशोदये च मोक्षदीक्षा निहितेत्यर्थः । शेषं मुगमम् ।



अथ नृपाभिषेकः ।

पुष्टैः शुक्रेन्दुजीवैर्ध्रुवलघुबलभिद्विष्णुमैत्रेन्दुपौष्णैः

सल्लग्नैः पाकजन्मोदयपतिषु विरन्ध्रारिगेन्द्रावसौम्यैः ।

त्रयायारिस्थैरथाष्टव्ययग्रहरहितैः सद्ग्रहैः केन्द्रकोणे

वीर्याढ्ये क्षत्रियेशे सुदिनतिथिशुभेन्दौ नृपस्याभिषेकः ॥ २४ ॥ (ख)

अर्थ-अब राजाके अभिषेकका सुहृत् कहते हैं, शुक्र, चन्द्रमा और बृहस्पति पूर्ण बलवान् होनेसे, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें तत्कालीन दशाधिपति जन्मराश्यधिपति और जन्मलग्नाधिपति सब शुभग्रह होनेसे गोचरमें छटे और आठवें स्थानको छोड़कर चन्द्रमा स्थित होनेसे तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह न होनेसे आठवें और बारहवें स्थानमें शुभ ग्रह न होनेसे क्षत्रियेश ग्रह ( जिस जातिका अभिषेक होय उसी जातिका मालिक ग्रह)-बलवान् होकर केन्द्रस्थानमें स्थित होनेसे शुभ ग्रहोंक वारमें, शुभ तिथिमें, शुभ योगमें, गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे राजाका अभिषेक करना चाहिये ॥ २४ ॥

अथ नववस्त्रपरिधानम् ।

ब्रह्मानुराधवसुतिप्यविज्ञाखहस्त-

चित्रोत्तराश्विननादितरेवतीषु ।

जन्मक्षेत्रीवबुधशुक्रादिनोत्सवादा-

धार्यं नवं वसनमीश्वरविप्रतुष्टौ ॥ २५ ॥ (ग) इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नया वस्त्र ( कपडा ) पहिननेका सुहृत् कहते हैं दीपिकामें लिखा

(ख) राज्याभिषेकमाह-पुष्टैरिति । शुक्रेन्दुजीवैः पुष्टैः स्फुटकिरणजालैः ध्रुवलघुगणादिनक्षत्रे सल्लग्नैः शुभग्रहस्य लग्ने पाकजन्मोदयपतिषु सत्सु पाकपतिस्तत्कालीनदशेशः जन्मराश्यधिपो जन्म लग्नाधिपतिश्च तेष्वित्यर्थः । विरन्ध्रारिगेन्दौ तत्काललग्नादष्टमपष्ठवर्जिते चन्द्रे त्रयायारिस्थिरसौम्यैः पापैः शुभैर्वाऽऽयाष्टमरहितैः बलवति क्षत्रियेशे केन्द्रे त्रिकोणे च स्थित इति क्षत्रिय- इत्युपलक्षणं योऽभिषिच्यते तज्जात्यधिप इत्यर्थः । सुदिनतिथिशुभेन्दौविति सुदिने शुभग्रहवारे सुतियो रिक्ताहीने तिथौ सुयुतौ सुतियोगो विष्कुम्भादिः सुयुतेऽथिन्दौ गोचरशुभे चन्द्रे नृपाभिषेकः कार्यः । इति ।

(ग) नववस्त्रपरिधानमाह-ब्रह्मोति । रोहिण्यादिनक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रे जन्मादिने जीव-बुधशुक्रवारो असुक्तवारनक्षत्रे विवाहाद्युत्सवे ईश्वरविप्रतुष्टौ च नवशुक धार्यम् । यथा राजमार्त्तण्डे-“ रविणा पुत्र्यते वस्य सोमे शोकजलनद्युम् । अद्भारके भवेन्मृत्युः सर्वं हन्ति शनैश्चरे । भोक्तुर्नैवाभ्यंरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते । विगृहे गजसन्माने ब्राह्मणा-नाथ सम्मतौ” इति ।

मुक्ता ( मोती ) दन्तनिर्मित भूषण सुवर्ण और विद्रुम ( मृगा ) मणि प्रभृति स्त्री और पुरुष दोनोंको ही धारण करना चाहिये किन्तु पतिका हित चाहने-वाली स्त्री तीनों उत्तरामें, रोहीणीमें, पुष्यमें और पुनर्वसुमें, रत्न प्रवाल ( मृगा ) मणि और शङ्खको धारण न करे ॥ ३१ ॥

अन्यच्च ।

रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिपञ्चकेषु च ।

शङ्खविद्रुममुक्तानां परिधानं प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, चित्रा, स्याति, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें शंख विद्रुम और मुक्ताको धारण करे ॥ ३२ ॥

अपरश्च ।

गुरुबुधसितवारे शोभनस्थे शशाङ्के

पितृकरवसुचित्रामैत्रपौष्णोत्तरासु ।

कनकरजतरत्नं शङ्खमुक्ताप्रवालं

शुभदमिह समग्रं धार्यमाणं मनुष्यैः ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, बृहस्पति, बुध और शुक्र वारमें चन्द्रमा शुभ होनेसे मघा, हस्त, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा, नक्षत्रमें सोना, चांदी, रत्न, शंख मोती और मृगोको मनुष्य धारण करे ॥ ३३ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

धारयेन्न च रोहिण्यां भर्तुर्नीवनकांक्षिणी ।

विष्टियोगे च रिक्तायां शनिभौमदिने तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रोहिणी नक्षत्रमें, विष्टिमद्रामें, रिक्ता तिथिमें और मङ्गलवारमें पतिका जीवन चाहनेवाली स्त्रीको शंखादि धारण न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

आपिच ।

अस्तंगते भृगुसुते शयने च विष्णो  
जन्माष्टचापज्ञपगे च रवौ न दध्यात् ।  
रिक्तेन्दुहीनदिवसे न च विष्टियोगे  
शङ्खादिरत्नवसनं युवती न दध्यात् ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, शुक्रास्तमें अर्थात् अशुद्धि कालमें श्रीह-  
रिके शयनकालमें, गोचरमें, जन्मस्थानमें और आठवें सूर्यमें चैत्र ओर पौषके  
महीने रिक्ता अमावास्या और विष्टि भद्रा तिथिमें युवतीगणको शंख रत्नादि  
और नवीन वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ नवशय्याद्युपभोगः ।

मैत्रेन्दुपौष्णपितृभादितिवाजिचित्रा-  
हस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि ।  
एतेष्वभीष्टशयनासनपादुकादि-  
सम्भोगकार्यमुदितं मुनिभिः शुभाहे ॥ ३६ ॥ ( क )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब नवीन शय्यादिके प्रथम उपभोगका मुहूर्त्त कहते हैं दीपिकामें  
लिखा है, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, मघा, पुनर्वसु, अश्विनी चित्रा, हस्त,  
उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापादा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पुष्य और रोहिणी, नक्ष-  
त्रमें शुभवार और शुभ तिथ्यादिमें नवीन शय्यापर नवीन आसनपर, और नवीन  
पादुकादिपर चढाना चाहिये ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

हरिकरमरुदुनुराधाविधातृपौष्णोदितिद्वयोत्तरेभे ।  
भोजनविधिश्शय्यासनभोगारम्भो हितार्थाय ॥ ३७ ॥

इति चिन्तामणी हारतः ।

अर्थ-चिन्तामणि ग्रन्थमें हारित मुनिने कहाहै कि, श्रवण, हस्त, स्वाति,  
अनुराधा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापादा और

( क ) शय्यादीनां प्रथमभोगमोह-मेत्रेति । आद्य प्रथममुपभोग कुर्यादित्यर्थः ।  
शेष मुगमम् । इति ।

हे कि, रोहिणी, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, विशाखा, हस्त, चित्रा, उत्तराषा-  
ल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, स्वाति, पुनर्वसु और रेवती नक्ष-  
त्रमें बृहस्पति, बुध और शुक्रवारमें नवीन वस्त्र पहनना चाहिये. और विवाहादि  
उत्सव कार्यमें जन्मनक्षत्रमें, जन्मदिनमें अनुक्त वार और अनुक्त नक्षत्रमें ब्राह्मण  
और ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये नये वस्त्रको पहनसक्ता है ॥ २५ ॥

अन्यच्च ।

सूर्ये चाल्पधनं व्रणं शशिदिने क्लेशं सदा भूमिजे  
वस्त्राणां बहुधा बुधे सुरगुरौ सौख्यं सदा धारणे ।

नानाभोगयुतं प्रमोदशयनं दिव्याङ्गना भार्गवे

मन्दे रोगयुतं सदा च कलहो वस्त्रे धृते नूतने ॥ २६ ॥

अर्थ—अब अन्य प्रकारसे नवीन वस्त्र पहिननेका दिन कहते हैं, रविवारके  
दिन नया वस्त्र पहिननेसे दरिद्री होता है, इसी प्रकार सोमवारमें मनुष्यको व्रण-  
रोग होता है, मंगलवारमें क्लेशी होता है, बुध और बृहस्पतिवारमें अनेक प्रकार-  
से सुखी होता है, शुक्रवारमें अनेक प्रकारका भोगी, सुनिद्र और उत्तम स्त्रीका  
पती होता है और शनिवारमें नवीन वस्त्र पहिननेसे रोगी और सर्वदा कलहका-  
रक होता है ॥ २६ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धनिष्ठा रोहिणी हस्त विशाखोत्तरभाद्रकाः ।

पुष्यः पुनर्वसुः स्वातिश्चित्राश्विनी च रेवती ॥

नववस्त्रपरीधानमेतेषु शुभदं भवेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, धनिष्ठा, रोहिणी, हस्त, विशाखा  
उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, पुनर्वसु, स्वाति, चित्रा, अश्विनी और रेवती नक्षत्रमें  
नवीन वस्त्रको पहिनना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

अनिष्टेष्वपि ऋक्षेषु शस्तमन्वरधारणम् ।

उद्गाहराजसन्माने ब्राह्मणानाञ्च सम्मतौ ॥ २८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, विवाहमें या राजसन्मानके समयमें

अनुक्त नक्षत्रमें भी ब्राह्मणोंकी आज्ञासे नवीन वस्त्रको पहिन सक्ता है ॥ २८ ॥

अथ वस्त्रक्षारसंयोगनिषेधः ।

मन्दमङ्गलपष्टीषु द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।

वस्त्राणां क्षारसंयोगे दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ २९ ॥

इति स्मृतिसारे ।

अर्थ-अब वस्त्र प्रक्षालनमें निषिद्ध समय कहते हैं, स्मृतिसारमें लिखा है कि शनिवारमें और मङ्गलवारमें, पष्टी और द्वादशी तिथिमें, और श्राद्धके दिनमें, वस्त्रोंको क्षारसंयोगसे प्रक्षालन करनेसे अर्थात् धोबीसे धुलानेसे सात कुल दग्ध हो जाते हैं ॥ २९ ॥

अन्यच्च ।

संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।

वस्त्रं न पीडयेत्तत्र न च क्षारे तु योजयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-संक्रांतिके दिनमें, अमावसमें, पूर्णिमामें, द्वादशीमें और श्राद्धके दिनमें वस्त्र निष्पीडन और क्षारसंयोग न करना चाहिये ॥ ३० ॥

अथ रत्नशंखादिधारणम् ।

पुण्यार्कादितिपित्र्यमित्रशशभृद्वित्तध्रुवत्वाष्टु

मुक्तादन्तसुवर्णविद्रुममणीन्दध्याद्विबोधे हरेः ।

पुष्टेन्दौ समये शुभे ध्रुवसुराचायांदितीशोऽङ्गना

ना रत्नं विभृयात्प्रवालकमणीञ्छङ्खं हिता स्वामिने ३१ ॥ (ॐ)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब रत्नादि शङ्ख धारण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मघा, अनुराधा, मृगशिर, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, रोहिणी और चित्रा नक्षत्रमें श्रीहरीके जाग्रत्समयमें

( • ) अलङ्कारपरिधानमाह-पुष्येति । पुष्यादिदिननक्षत्रेषु मुक्ताहरितदन्तप्रवालादीनि हरिवोधे पुष्टेज्ये स्फुटकिरणे गुरो कालशुद्धे शुभवारे शुभचन्द्रे दध्यात् परिदध्यात् अत्रैव योगे स्वामिने हिता भर्तुः कुशलकारिणी ध्रुवगणे पुष्यपुनर्वसवोः शंस रत्नादींश्च न दध्यात् अदितिरीशो यस्य पुनर्वसुरित्यर्थः । रोहिण्युत्तरात्रयपुष्यपुनर्वसूँश्च वर्जयित्वा उक्तेषु विधिषु शंखादीनि दध्यादित्यर्थः । राजमातङ्गे “ पौष्णेन्द्राश्विपानिष्टासु हस्तादिषु च पञ्चसु । शंसविद्रुममुक्तानां परिधानं स्त्रिया भवेत् ॥ ” इति ।

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें भोजन करनेका आसन ( पाटा ) नवीन शय्या ( खाट ) पर भोग और नवीन आसनपर बैठनेसे मङ्गल होता है ॥ ३७ ॥

अपरञ्च ।

हस्तादितिब्रह्मगुरुत्तरेषु पौष्णाश्विभूलेन्दुभचित्रभेषु ।

( १ ) वारेषुजीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनादीनिहितप्रदानि ॥ ३८ ॥

इति श्रीपतिंसीहतायाम् ।

अर्थ--श्रीपतिसंहितामें भी लिखा है कि, हस्त, पुनर्वसु, रोहिणी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाठा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती अश्विनी, भूल, मृगशिर और चित्रानक्षत्रमें बृहस्पति, सोम, शुक्र और बुधवारमें नवीन शय्या और नवीन आसनको ग्रहण करना चाहिये ॥ ३८ ॥

प्रकारान्तञ्च ।

अनुराधामृगशिरारेवती चोत्तरात्रयम् ।

हस्तचित्रामघापुष्यश्रवणानि पुनर्वसुः ॥ ३९ ॥

रोहिणी नवशय्यायां नवद्रव्यासनादिषु ।

प्रशस्ता नवपीठादौ सम्भोगे ग्रहविद्वदेत् ॥ १४० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाठा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, चित्रा, मघा, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु और रोहिणी नक्षत्रमें नवीन शय्या, नवीन द्रव्य, नवीनआसन और नवीन पीठादि ( पिढियादि ) का सम्भोग प्रशस्त है, ग्रहोंके जाननेवाले विद्वानोंने इस प्रकार कहा है ॥ ३९ ॥ १४० ॥

इति नवशय्याद्युपभोगः ।

अथ गजाद्यारोहणम् ।

पौष्णाश्विनीपवनवारुणवासुदेव

चित्रादितिश्रवणहस्तसुरेज्यभेषु ।

वारे च जीवशशिसूर्यसितेन्दुजाना-

मारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ॥ ४१ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--अब गजादिपर चढ़नेका मुहूर्त कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, रेवती,

( १ ) ' वारेन्दुजीवेप्यासितेन्दुजानाम् ' इति पाठान्तरम् ।

आश्विनी, स्वाति, शतभिषा, धनिष्ठा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त और पुष्य नक्षत्रमें बृहस्पति सोम, रवि, शुक्र और बुधवारमें हाथी, घोडा और रथ आदि-पर चढना चाहिये ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

पुष्यश्रविष्ठाश्विनिसौम्यभेषु पौष्णानिळादित्यकराह्वयेषु ।

सवारुणक्षेपु बुधैःस्मृतानि सर्वाणि कार्याणि तुरङ्गमानाम् ॥४२॥

अर्थ-पुष्य, धनिष्ठा, आश्विनी, मृगशिर, रेवती, स्वाति, पुनर्वसु, हस्त और शतभिषा नक्षत्रमें अश्वसम्बन्धीय समस्त कार्य करै ॥ ४२ ॥

अपरञ्च ।

पुष्यहस्ताश्विनीपौष्णधनिष्ठाभूलवारुणे ।

स्वात्यादित्येऽश्वकार्यं सन्न रिक्ताकुजवासरे ॥ ४३ ॥

अर्थ-पुष्य, हस्त, आश्विनी, रेवती, धनिष्ठा, मूल, शतभिषा, स्वाति और पुनर्वसु नक्षत्रमें रिक्ताको छोडकर अन्य तिथियोंमें और मंगलको छोडकर अन्य वारोंमें अश्वसम्बन्धीय कार्य करै ॥ ४३ ॥

अथ गजवाजिक्रियादन्तकल्पनक्रियानिषेधः ।

स्ववरुणगुरुपार्श्वस्येषु भौमार्किंवारे

सुतिथिकरणताराचन्द्रयोगोदयेषु ।

शुभमिभह्यकार्यं चाथ सुते मुरारौ

गुरुगृहगतभानौ कल्पयेन्नेभदन्तान् ॥ ४४ ॥ ( अ )

अर्थ-अब हाथी और घोडेके केशच्छेदनादिका सुहृत् कहते हैं, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य और पार्श्वमुख नक्षत्रोंमें, मङ्गल और शनिवारमें, शुभ तिथि, शुभ करण, शुभ तारा, शुभचन्द्रमा और शुभलग्नमें हाथी और घोडेकी जिह्वाका मार्जन रक्तमोक्षण केशच्छेदनादि चिकित्सा और प्रथम दमन प्रशस्त है. किन्तु उक्त योगके होनेसेभी श्रीहरिके शयनकालमें वा सौरचैत्र अथवा पीपके महीनेमें हाथीका दन्तमार्जन और भूषणादि क्रिया न करना चाहिये ॥ ४४ ॥

( अ ) गजवाजिक्रियामाह-स्ववरुणेति । स्व धनिष्ठा वरुणः शतभिषा गुरुः पुष्यं एषु पार्श्वस्यागणेषु १७ । १८ । ९ । १३ । १४ । १५ । २० । ७ । इभह्यकार्यं हस्तयश्वकार्यं प्रत्यब्द जिह्वामार्जनरक्तमोक्षणखुरच्छेदनादिचिकित्सा प्रथमदमनश्चकार्यम् । अत्रैव योगे हरिशयने शुभग्रहे रेवौ चैत्र पीपे इभदन्तान् हस्तिदन्तान् न कल्पयेत् दन्तमार्जन-भूषादिकं न कार्यमित्यर्थः । शेष सुगमम् । इति ।

अथ नवदोलाधारोहणम् ।

उग्रेन्दुमूलाहिशिवाग्निवर्जं शस्तेन्दुतारातिथिलग्नयोगे ।

विष्टिक्षमापुत्रयमाहवर्जं दोलादिकारोहणमाद्यमिष्टम् ॥ ४५ ॥ (आ)

अर्थ—अब नवीन दोलादिमें चढनेका मुहूर्त्त कहते हैं, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापादा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, मृगशिर, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और कृत्तिकाभिन्न नक्षत्रमें चन्द्र और तारा शुद्ध होनेसे शुभतिथि शुभ लग्न और शुभयोगमें विष्टि भद्रा तिथि मंगल और शनिवारको छोड़कर अन्य तिथिवारोंमें नवीन दोलादिमें पहिले चढना चाहिये ॥ ४५ ॥

अथ खड्गादिधारणम् ।

मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यशक्राग्निसर्पानलशूलिनश्च ।

खड्गादिसंधारणमेपु कुर्यात्तिथौ विलम्बे च शुभे शुभाहे ॥ ४६ ॥ (+)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब खड्गादिके धारण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, मूल, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापादा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, मघा, विशाखा, आश्लेषा, कृत्तिका और आर्द्रा नक्षत्रमें शुभतिथि शुभलग्न और शुभदिनमें खड्गादिको धारण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

इति खड्गादिधारणम् ।

अथ क्रयविक्रयनक्षत्राणि ।

यमाहिशक्राग्निहुताशपूर्वा नेष्टा क्रये विक्रयणे प्रशस्ताः ।

पौष्णाश्विचित्राशतविष्णुवाताः क्रये हिते विक्रयणे निषिद्धाः ४७ ॥ (\*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब क्रयविक्रयके नक्षत्रोंको कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, भरणी, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापादा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र द्रव्यादिक्रयमें प्रशस्त नहीं हैं, किन्तु विक्रयमें प्रशस्त हैं, रेवती, अश्विनी, चित्रा, शतभिषा, श्रवण और स्वाति नक्षत्र क्रयमें प्रशस्त हैं, किन्तु विक्रयमें प्रशस्त नहीं हैं ॥ ४७ ॥

( आ ) नवदोलारोहणमाह—उग्रेन्द्रिति । उग्रगणादिनक्षत्रवर्जिते विष्टिमद्गलशनिवारवर्जं दोलाद्यादिवाहनागेहणमाद्यमिष्टं शस्तं शेषं सुगमम् ।

( + ) खड्गादिधारणमाह—मूलेति । शूली आर्द्रा खड्गादीनां खड्गाद्यर्षकक्रयव्यापारो धारणं कुर्यात् । शेषं सुगमम् ।

( \* ) क्रयविक्रयनिषिद्धाः—यमेति । शक्राग्निसमुदितो विशाखा शेषं स्पष्टार्थम् ।



अथ ऋणप्रयोगः ।

आजं यमद्वन्द्वमद्वित्रयञ्च शक्रत्रयं वातयुगं महेशः ।

कार्यो न चैतेषु धनप्रयोगो मृदौ गणे ग्राह्यमृणं न देयम् ॥४८॥(३)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब धनप्रयोगादिका निषेध कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, कृत्तिका आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, स्वाति, विशाखा और आर्द्रा नक्षत्रमें न ऋण देना और न ऋण लेना चाहिये. चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें ऋण लेना चाहिये किन्तु ऋण देनेका निषेध है, इन नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें ऋण देना चाहिये ॥४८॥

इति ऋणप्रयोगः ।

अथ नृपदर्शनम् ।

ध्रुवमृदुलध्रुवर्गे वासवे विष्णुदेवे

विशुजराविजवारे केन्द्रकोणेषु सत्सु ।

द्वितनुवृषभपञ्चास्यादये चन्द्रशुद्धौ

सुतिथिकरणयोगे दर्शनं भूमिपानाम् ॥ ४९ ॥ (\* )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब राजाके देखनेका मुहूर्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, राहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, आश्विनी, हस्त, ज्येष्ठा और श्रवण नक्षत्रमें मङ्गल और शनिको छोडकर अन्य वारोंमें केन्द्र और त्रिकोणमें शुभग्रह होनेसे द्वात्मक, वृष और सिंह लग्नमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभतिथि शुभरुग्ण और शुभ योगमें राजाका दर्शन करना चाहिये ॥ ४९ ॥

इति राजदर्शनम् ।

अथ नाटचारम्भः ।

अनुराधा धनिष्ठा च पुष्यहस्तात्रयं तथा ।

( १ ) ऋणदानग्रहणनिषेधमाह-आजमिति । आज २५ यमद्वन्द्वं २ । ३ अद्वित्रयम् ९ । १० । ११ । शक्रत्रयं १८ । १९ । २० वातयुग १५ । १६ महेश आर्द्रा ६ महेशमी-शासहितमिति सौभरेः प्रलापः । एतेषु नक्षत्रेषु ऋणप्रयोगः ऋणग्रहणं धानञ्च न कर्तव्यम् । मृदुगणे तु १४ । १७ । १९ । २७ । ऋणग्रहणं कार्यं न तु देयमित्यर्थः ।

( + ) राजदर्शनमाह-ध्रुवेति । ध्रुवगणे मृदुगणे लघुगणे ज्येष्ठा श्रवणयोश्च मङ्गल-शनिवारवाजिते केन्द्रत्रिकोणेषु सत्सु शुभग्रहेषु द्वात्मकलग्ने वृषासिंहलग्ने च भूमिपानां दर्शनं कार्यमित्यर्थः ।

ज्येष्ठावारुणपौष्णे च नाट्यारम्भे शुभो गणः ॥ १५० ॥ (१)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब नृत्यगीतादिकका मुहूर्त्त कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्रमें नृत्य गीतादिकका आरम्भ करे ॥ १५० ॥

इति नाट्यारम्भः ।

अथ करग्रहणम् ।

तीक्ष्णोऽवह्नीतरभेषु लग्ने शीर्षोदये भानुदिने शुभाहे ।

कुर्यादनुक्तानि समीहितानि करग्रहारम्भमपि प्रजाभ्यः ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—अब प्रजासे करग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं—ज्योतिःसारमें लिखा है कि, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य समस्त नक्षत्रोंमें, सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन और मीन लग्नमें रविवारमें और शुभ ग्रहके वारमें प्रजासे कर लेना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथ वास्तुलक्षणम् ।

स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मलतासुगन्धा

शस्ता प्रदक्षिणजला च निवासभूमिः ॥

नेष्टा विपर्ययगुणा कचकर्करास्थि-

वल्मीककण्टकिविभीतकसंकुला च ॥ ५२ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब वास्तुभूमिका लक्षण कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, स्निग्धा

( १ ) नाट्यारम्भं विहितनक्षत्रगणमाह—अनुराधोति स्पष्टार्थम् इति ।

( क ) वास्तुलक्षणमाह—स्निग्धा स्तिमित्ता स्थिरा पराधिकाराद्युपद्रवराहिता सुरभिर्गुल्मलता यत्र सा सुगन्धा प्रशस्तगन्धा प्रदक्षिणमुदारं प्रशस्तजलं यत्र गंभीरं प्रशस्तजलेत्यर्थः । “ दक्षिणे सरलो दारो ” इत्यमरः । तथाच “ धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी येद्यस्तु पञ्चमः । पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् ” यद्वा नद्यादौ प्रदक्षिणं जलं वहति ईदृशी निवासभूमिः शस्तेत्यर्थः । एताद्विपर्ययगुणा रुक्षा पराधिकाराद्युपद्रववशेन चञ्चला वृक्षादिवर्जिता दुर्गन्धा निर्जला घामजलघाहिनी वा निवासभूमिर्न कर्त्तव्येत्यर्थः । कचकर्करास्थिवल्मीकैः कण्टकयुक्तवृक्षैः शाल्मल्यादिभिर्विभीतकं यदेति यत्प्रसिद्धिः । तेन संकुरा यथासा नेष्टेत्यर्थः । तथा पञ्चपतिदीपिकायाम् “ वर्जयेत्पृथतोऽ-

स्थिर अर्थात् पराधिकारजन्य उपद्रवरहित, सुगन्धि गुल्मलतादिद्वारा परिवेष्टित, प्रशस्तजलाशयसे युक्त इस प्रकारकी भूमि वासोपयोगी होती है, उक्तप्रकारके गुण न होकर यदि केश, कर्करास्थि, बल्मीक, कण्टकयुक्त वृक्ष और बहेडा वृक्षमय भूमि होय तो इस भूमिमें कभीभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ वास्तुभूमिपुवकथनम् ।

पूर्वपुवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरः पुवः ।

दक्षिणे मृत्युदश्चैव धनहा पश्चिमपुवः ॥ ५३ ॥ ( १ )

अर्थ-वास्तु भूमिकी पूर्वादिशामें निम्न होनेसे वंशकी वृद्धि होती है इसी प्रकार उत्तरदिशामें निम्न होनेसे धनकी वृद्धि होती है, दक्षिणमें निम्न होनेसे मृत्यु होती है और पश्चिममें निम्न होनेसे धनकी हानि होती है ॥ ५३ ॥

अथ वास्तुभूमिः पूर्वादिदिक्षु जलाशयकथनम् ।

प्रागादिस्ये सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयञ्च ।

—अथ पश्च च दक्षिणे तथा । वदश्च पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम् ” तथा—“निशा नीली पलाशश्च चिञ्चा श्वेतापराजिता । कोविदारश्च सर्रत्र सर्वं निम्नान्ति मङ्गलम् ” निशा दाहुरिद्रा । तत्र षोडश प्रकार वास्तु । यथा राजमार्तण्डे—“ आयत चतुरस्रश्च वृत्त भद्रासन तथा । चक्र विषमवाहुश्च त्रिकोण शकटाकृति । दण्ड प्रथमसस्थान मुरजश्च बृहन्मुखम् । व्यजन कूर्मपृष्ठश्च धनुः शूर्पश्च षोडश । आयते मुनिदिप्रोक्त चतुरस्रे नवाष्टकम् । तिथित्रयोदश वृत्ते भद्रे रुद्रदिनाकरी । आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः । भद्रासने कृतार्थत्व वृत्ते पुष्टिविबर्धनम् । चक्रे दारिद्र्यमेरोक्त शोको विषम वाहुके । वृषाद्रीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षयः । नश्यन्ति पशवो दण्डे प्रणये लोचनक्षनिः । मुरजे म्रियते भार्या अर्थनाशो बृहन्मुखे । व्यजने वित्तनाशः स्यात्कूर्मे वन्धनपीडनम् । शूर्पे धान्यक्षय विद्याज्ञापे चौरभय भवेत् । ” तथा—“गजनाजिज्ञय कुर्याद्विस्ताराद्विगुणायता । तथा वास्तुनिर्णये, “ हलेन चालयेद्वास्तुगोष्ठं तत्र तु कारयेत् । गोमूत्र गोमयाभाश्च पूत वास्तु भवेद्दुःखम् । शोधयेद्वास्तुपर्यन्तं गृहस्थानं प्रयत्नतः । तदा तत्र गृह कुर्याद्वास्तुनां शोधने वृत्ते । शोधने प्राप्यते रत्नं ताम्रादि प्राप्यते यदा । मुक्तोविदुमवत्र वा विपुल शुभमादिशेत् । शोधने स्वर्णरोप्यादाह्वन्ते विपुल शुभम् । पद्मरागादि सभ्राप्य लभन्ते विपुलां श्रियम् । कापीसर्षीजतूपश्च बल्मीक कण्टक तथा । अस्थिभस्मनराश्चैव केशश्च शर्करां त्यजेत् । न कोणे च गृह कुर्यान्प्राप्यन्ते नापि मध्यतः । नयमे प्रविभागे तु गृह कुर्याद्विषक्षणं ।

( १ ) वास्तुनां पूर्वादिक्रमेण प्रथमाह-पूर्वेति । पूर्वप्रः पूर्वभागे नीचः, यथा पूर्वभागे जल निःसरति वास्तुना पूर्वनप्रता वृद्धिकरी, उत्तरनप्रता धनदा, दक्षिणनप्रता मृत्युदा, पश्चिमनप्रता धनहानिकरी । राजमार्तण्डे—“स्यादुन्नतिः पूर्वन्ते नराणां वास्तो धन दक्षिणभागतुङ्गे । क्षयो धनानां चिनते प्रतीच्यामुच्चै विनाशो शुभसुत्तरेण । ” उत्तरेणोच्चै-रुत्तरतुङ्गे अर्थाद्दक्षिणनप्रता इत्यर्थः ।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्वं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥५४॥ ( २ )

अर्थ—वास्तुभूमिके पूर्वदिशामें जलाशय होनेसे पुत्रकी रानि होती है-इसी प्रकार उत्तर दिशामें होनेसे अग्निका भय, शत्रुका भय और स्त्री कलहकारिणी होती है-पश्चिमदिशामें होनेसे भार्या दुश्चरित्रा और पुत्रहीना होती है और वासस्थानसे दक्षिण दिशामें जलाशय होनेसे वित्त और पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

अथ पुष्कारिण्याम्भः ।

पुष्योमंत्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभिः

शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्वर्षीषु च ।

पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रेशुभांशोदये । ( ३ )

प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुशुक्रोदये ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब पुष्कारिणी ( नदी ) के बनवानेका मुहूर्त कहते हैं—पुष्य, अनु-गधा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी उत्तरापादा, उत्तराभाद्रपदा, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वापादा, मघा और मृगशिरा, नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे, शुभवारमें शुभयोगमें और शुभ तिथिमें क्रूरग्रह बलहीन होनेसे पूर्णचन्द्रमा जलज राशिमें ( × ) स्थित होनेसे लग्नके दशमं स्थानमें शुक होनेसे, धन मीन कर्क वृष और तुला लग्नमें, शुभग्रहोंके नवांशमें नदी खुदवाना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ पुष्कारिण्यादिप्रतिष्ठा ।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते ( १ ) चोत्तरायणे ।

आपादेषु द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ५६ ॥

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

( २ ) वास्तुभूमेः प्राग्वद्यष्टदिग्जलस्य यथाक्रम फलमाह—प्रागादिस्य इति स्पष्टार्थः । एतेनोत्तरेशानयोजनं कर्त्तव्यमित्यर्थ ।

( ३ ) पुष्कारिण्याम्भमाह—सुष्यादिद्वादशनक्षत्रेषु शस्ते रौी शुभग्रहस्य वारे शुभ तिथौ शुभयोगे पापग्रहेषु बलहीनेषु सन्तु पूर्णचन्द्रे जलराशिस्थिते सति शुक्रे च दशम-स्थे जीवेन्दुशुक्रोदये धनुर्मीनचन्द्रवृषतुलालग्रे शुभांशोदये शुभग्रहस्य नवांशोदये सलि-लाशयस्थारम्भ शुभदो स्यात् । अग्निर्नैऋतवापुकोणे जलराशयानिर्धेयमाह । राजमातृष्टे-  
“आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूप । नित्यं स करोति भय दाहं वा मानसं प्रापः । नैऋतकोणे बालभयं गनिनाऽप्यथ वायव्ये ” जीवेन्दुशुक्रोदय इत्यथ जीवेन्दु पुत्रोदय इति केचिद्वदन्ति ।

( × ) कर्क, मीन, कुम्भ और मकरगणेशिरे शोभादं रौी जटजगशि कहते हैं ।

( १ ) अतीते प्राप्ते गत्यर्थस्य प्राप्त्यर्थत्वादिनि च्योतिरत्तर्त्तं ग्नात्तंनोत्तम् ।

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्यौ मृगशिरस्तथा ।

अनुराधा तथा स्वाति प्रतिष्ठादिषु शस्यते ॥ ५७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—अब पुष्कीण्यादिकी प्रतिष्ठाका सुहृत्त कहते हैं, मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, शुक्रपक्षमें, उत्तरायणमें, पूर्वाषाढा, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, आश्विनी, ग्वेती, मृगशिर, अनुराधा और स्वाति नक्षत्रमें प्रतिष्ठा करना चाहिये ॥ ५६-५७ ॥

अपिच ।

प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा ।

दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्त्तिता ॥ ५८ ॥

सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव तथा बुधः ।

एते सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायागकर्मणि ॥ ५९ ॥

इति भविष्यपुराणे ।

अर्थ—भविष्यपुराणमें लिखा है कि, प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, दशमी त्रयोदशी और पौर्णिमा तिथिमें सोम, बृहस्पति, शुक्र और बुध इन सब शुभ ग्रहोंके वारोंमें प्रतिष्ठा और यागादिकर्म प्रशस्त हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अपरञ्च ।

मैत्रोत्तरापुष्यधनिष्ठधातृपित्र्याशुगर्क्षे वरुणे शुभेके ॥

वारि ज्ञशुक्रेन्दुबृहस्पतीनां शुभप्रदा स्यात्सरसां प्रतिष्ठा ॥ १६० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, पुष्य, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, स्वाति और शतभिषा नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे, बुध, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें सरोवर ( तालाब ) की प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ १६० ॥

अथ वृक्षादिगोपणम् ।

वारुणमूलविशाखासौम्यध्रुवहस्तपुष्यपौष्णेषु ।

तरुगुल्मलतादीनामारोपणं शस्तम् ॥ ६१ ॥ ( क )

अर्थ—अब वृक्षादिके बोनेका सुहृत्त कहते हैं, शतभिषा, मूल, विशाखा, मृग-

( क ) वृक्षाद्यरोपणमाह— वारुणेति । आरामे-उद्याने भाव्यर्थस्य भूतवत्त्वात् निमित्त-सप्तमी वा आरामार्थमित्यर्थः । शेष मुगममिति ।

स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्वं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥५४॥ ( २ )

अर्थ—वास्तुभूमिके पूर्वदिशामें जलाशय होनेसे पुत्रकी हानि होती है. इसी प्रकार उत्तर दिशामें होनेसे अग्निका भय, शत्रुका भय और स्त्री कलहकारिणी होती है. पश्चिमदिशामें होनेसे भार्या दुश्चरित्रा और पुत्रहीना होती है और वास्तुस्थानसे दक्षिण दिशामें जलाशय होनेसे वित्त और पुत्रादिकोंकी वृद्धि होती है ॥ ५४ ॥

अथ पुष्करिण्यारम्भः ।

पुष्योमैत्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभैः

शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्वर्षेषु च ।

पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रेशुभांशोदये । ( ३ )

प्रारम्भः सलिलाशयस्य शुभदो जीवेन्दुशुक्रोदये ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब पुष्करिणी ( नदी ) के बनवानेका सुदृष्ट कहते हैं—पुष्य, अश्लेषा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, धनिष्ठा, शतभिषा, रोहिणी, पूर्वाषाढा, मघा और मृगशिरा, नक्षत्रमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे, शुभवारमें शुभयोगमें और शुभ तिथिमें क्रूरग्रह बलहीन होनेसे पूर्णचन्द्रमा जलज राशिमें ( × ) स्थित होनेसे लग्नके दशम स्थानमें शुक्र होनेसे, धन मीन कर्क वृष और तुला लग्नमें, शुभग्रहोंके नवांशमें नदी खुदवाना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ पुष्करिण्यादिप्रतिष्ठा ।

प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीति ( १ ) चोत्तरायणे ।

आपाठेऽद्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च ॥ ५६ ॥

ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

( २ ) वास्तुभूमेः पूवाद्यष्टदिग्स्थजलस्य यथाक्रम फलमाह—प्रागादिस्थ इति स्पष्टार्थः । एतेनोत्तरेज्ञानयोजनं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

( ३ ) पुष्करिण्यारम्भमाह—पुष्यादिद्वादशनक्षत्रेषु शस्ते स्वी शुभग्रहस्य वारे शुभ तिथौ शुभयोगे पापग्रहेषु बलहीनेषु ससु पूर्णचन्द्रे जलराशिरिस्थिते सति शुक्रे च दशमस्थे जीवेन्दुशुक्रोदये धनुर्मीनकर्कटवृषतुलालग्नौ शुभांशोदये शुभग्रहस्य नवांशोदये सलिलाशयस्यारम्भः शुभदः स्यात् । अग्निर्नैऋतवायुशोणे जलाशयनिषेधमाह । राजमार्तण्डे—“आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूप । नित्यं स करोति भय दाह वा मानस प्रायः । नैऋतकोणे बालशय वनिताशयश्च वायव्ये ” जीवेन्दुशुक्रोदय इत्या जीवेन्दु पुनोदय इति केचिद्वदन्ति ।

( × ) कर्क, मीन, कुम्भ और मकरराशिके शोषार्द्रांशे जलजराशि कहने हे ।

( १ ) अतीति प्राप्ते गत्यर्थस्यप्राप्त्यर्थत्वादिति ज्योतिस्तत्त्वोन्मात्तनोक्तम् ।

सिद्धि होती है इसी प्रकार दक्षिणादिशामें औदुम्बर वृक्ष, पश्चिमदिशामें पीपल और उत्तर दिशामें पाकडका वृक्ष होनेसे मङ्गल होता है; किन्तु यह समस्त वृक्ष विपरीतदिशामें होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

शोभना दाडिमाशोकपुन्नागविल्वकेसराः ।

रक्तपुष्पाद्भयं राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम् ।

कण्टकारिभयं कुर्याद्ब्रह्मेदञ्च शाल्मलिः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दाडिम, अशोक, पुन्नाग, विल्व और केशरका वृक्ष घरमें लगानेसे मङ्गल होता है । और रक्तपुष्पका वृक्ष घरमें छानेसे राजभय होता है । इसी प्रकार क्षीरिवृक्षसे पशुभय, कांटेदार वृक्षसे भय और शाल्मलीका वृक्ष घरमें लगानेसे गृहविच्छेद होता है ॥ ६५ ॥

अथ वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ।

धवखादिरपलाशा निम्बखजूरंजम्बू-

सरललकुचचिञ्चाकाञ्चनस्थूलशिम्बाः

कालिविटापिकापित्थैरण्डधतूरापथ्या

विदिधति धनहानि सप्तपर्णः सुही च ॥ ६६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—जिन वृक्षोंको घरमें न लगाना चाहिये- अब उनको कहते हैं,—दीपिकामें लिखा है कि, धव, खादिर, पलाश, नीम, खजूर, जाम, सरल, लकुच, तैतुल, काञ्चन, स्थूलशिम्ब, बहेडा, कापित्थ, धतूरा, हरीतकी, सप्तपर्ण और मनसा इन समस्त वृक्षोंको घरमें लगानेसे धनकी हानि होती है ॥ ६६ ॥

अथ गृहारम्भः ।

आदित्ये तूलकर्कक्रियमिथुनघटालिस्थिते सत्समेतैः

केन्द्राष्टान्त्यैरसौम्यैस्त्रिभवारिपुगतैः स्वस्थिरग्राम्यलम्बे ।

भेषु स्वाराद्द्विशाखादितिफणिदहनोप्रेतरेष्वर्कशुद्धौ

वेश्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिशुभविधौ भौमसूर्येत्तरोह्नि ॥६७॥(x)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घर बनानेका मुहूर्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, सौर कार्तिक

( x ) गृहारम्भमाह—आदित्य इति।सूर्ये तलाकरं द्येमिथुनरुम्भशुश्वनराशिस्थिते—

शिर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, इस्त पुष्य और रेवती नक्षत्रमें वृक्ष, गुल्म और लतादिको लगाना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ गृहप्रशस्तवृक्षारोपणम् ।

पूगश्रीफलनारिकेललवलीजम्बीरकण्टाफला-

श्रूतादाडिमनागरंगमधुकारम्भाशिरीषामलाः ।

जातीचम्पकमल्लिकावकुलकाः शोभाञ्जनः पाटलो

देवाशोकजयन्तिका तगरिका नित्यं श्रियं कुर्वते ॥ ६२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-घरमें कौनसे वृक्ष लगाना चाहिये अब उनको कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, सुपारी, श्रीफल ( गोला ) नारिकेल, लवनी ( नोना ) जामुन, कांटा, आम, दाडिम, नारङ्गी, नींबू, मधुपर्णी, केला, शिरीष, आमला, जाती, चम्पक, मल्लिका, वकुल, सैजना, पाटल, देवदारु, अशोक, जयन्ती और तगर इन सब वृक्षोंको घरमें लगानेसे श्रीकी वृद्धि होती है ॥ ६२ ॥

अपिच ।

जम्बीरपूगपनसात्रककेतकीभि-

जातीसरोजतगरत्वचमल्लिकाभिः ।

यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभि-

र्युक्तं तदाश्रमपदं श्रियमातनोति ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, जामुन, सुपारी, कांटा, आम, केतकी, जाती, पद्म, तगर, दालचिनी, मल्लिका, नारिकेल, कदली और पाटल इन सब वृक्षोंको जो मनुष्य घरमें लगाता है उसके घरमें लक्ष्मी वास करती है ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

भवनस्य वटः पूर्वं जातः स्यात्सार्वकामिकः ।

औदुम्बरस्तथा यामे वारुणे पिप्पलः शुभः ॥

पृक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतो विपर्यये ॥ ६४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है कि, घरकी पूर्वादिगामें वटका वृक्ष होनेसे कामना



तिद्धि होती है इसी प्रकार दक्षिणदिशामें औदुम्बर वृक्ष, पश्चिमदिशामें पीपल और उत्तर दिशामें पाकडका वृक्ष होनेसे मङ्गल होता है; किन्तु यह समस्त वृक्ष विपरीतदिशामें होनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६४ ॥

अपरञ्च ।

शोभना दाडिमाशोकपुन्नागविल्वकेसराः ।

रक्तपुष्पाद्भयं राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम् ।

कण्टकारिभयं कुर्याद्ब्रह्मेदञ्च शाल्मलिः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, दाडिम, अशोक, पुन्नाग, बिल्व और केशरका वृक्ष घरमें लगानेसे मङ्गल होता है । और रक्तपुष्पका वृक्ष घरमें छगानेसे राजभय होता है । इसी प्रकार क्षीरिवृक्षसे पशुभय, कांटेदार वृक्षसे भय और शाल्मलीका वृक्ष घरमें लगानेसे गृहविच्छेद होता है ॥ ६५ ॥

अथ वास्तुभूम्यनारोपणवृक्षकथनम् ।

धवखदिरपलाशा निम्बखजूरजम्बू-

सरललकुचचिञ्चाकाञ्चनस्थूलशिम्बाः

कलिविटपिकापित्त्यैरण्डधतूरपथ्या

विदिधति धनहानिं सप्तपर्णः सुही च ॥ ६६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—जिन वृक्षोंको घरमें न लगाना चाहिये. अब उनको कहते हैं,—दीपिकायाम् लिखा है कि, धव, खदिर, पलाश, नीम, खजूर, जाम, सरल, लकुच, तैतुल, काञ्चन, स्थूलशिम्ब, बहेडा, कपित्थ, धतूरा, हरीतकी, सप्तपर्ण और मनसा इन समस्त वृक्षोंको घरमें लगानेसे धनकी हानि होती है ॥ ६६ ॥

अथ गृहारम्भः ।

आदित्ये तूलकर्कक्रियमिथुनघटालिस्थिते सत्समेतैः

केन्द्राष्टान्त्यैरसौम्यैस्त्रिभवरिपुगतैः स्वस्थिरग्राम्यलघ्ने ।

भेषु स्वाराड्विशाखादितिफणिदहनोप्रेतरेष्वर्कशुद्धौ

वेङ्मारम्भः शुभः स्यात्सुतिथिशुभविधौ भौमसूर्यैतरोहि ॥ ६७ ॥ (x)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घर बनानेका मुहूर्त कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, सौर कार्तिक

( x ) गृहारम्भमाह—आदित्य इति।सूर्ये तूलकर्कटमेमिथुनरुम्भशुभराराशिस्थिते—

श्रावण, वैशाख, आपाढ, फाल्गुन और अग्रहायण मासमें, लग्नका केन्द्र आठवें और बारहवें स्थानमें शुभग्रह होनेसे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह स्थित होनेसे अपनी जन्मलग्नमें और वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ मिथुन, तुला और कन्या लग्नमें और धनलग्नके पूर्वार्द्धमें ज्येष्ठा, विशाखा, पुनर्वसु, आश्लेषा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणी इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें मंगल और राविवार भिन्न वारमें गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे शुभतिथिमें घर बनवानेकी निहको लगावे ॥ ६७ ॥

अथ गृहारम्भे निषिद्धानिषिद्धमासादिकथनम् ।

चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।

वैशाखे धनरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युस्तथैव च ॥ ६८ ॥

आषाढे धनरत्नानि पशुवर्जमवाप्नुयात् ।

श्रावणे काञ्चनं पुत्रान्धानि भाद्रपदे तथा ॥ ६९ ॥

पत्नीनाश इषे मासि कार्तिके धनधान्यभाक् ।

मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।

माघे चाग्निभयं विद्यात्फाल्गुने काञ्चनं सुतान् ॥ ७० ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—अथ घर बनवानेके महीनोंका फल कहते हैं—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि चैत्रके महीनेमें घर बनवानेसे रोगी होता है, इसी प्रकार वैशाखके महीनेमें धन रत्नादिका लाभ होता है, ज्येष्ठमें मृत्यु होती है और आषाढके महीनेमें भी धन रत्नादिका लाभ होता है, किन्तु उसके घरमें पशु नहीं पालाजाता है और श्रावणके महीनेमें काञ्चन और पुत्र लाभ होता है, भाद्रपदमें दानि होती है, आश्विनमें स्त्रीकी मृत्यु होती है कार्तिकमें धनधान्यका मालिक होता है, अग्र-

कार्तिक श्रावणवैशाखाषाढफाल्गुनमार्गशीर्षेऽपि चैत्रेऽथः।लग्नस्य केन्द्राष्टमद्वादशैः।शुभग्रहसभेतिः पौषेः तृतीयैकादशपष्ठस्यैः स्वकीयजन्मलग्ने स्थिरलग्ने वृषसिंहवृश्चिककुम्भलग्नेषु ग्राम्यलग्ने मिथुनतुलाघटकन्यायतुःपूर्वार्धलग्नेषु ज्येष्ठादिवाजितेष्वन्येषु भेषु गोचरशुद्धे खौ सुतियो शुभचन्द्रे च मङ्गलरविवृत्तेषु वैशारम्भः शुभः स्यात् । अत्र च भौमसूर्येति पापवारोपलक्षणं तेन शनिवारोऽपि निषेधः । यथा राजमार्तण्डे—“स्वावग्निः कुजे नाशः शशिन्यर्थः शनीः भयम् । सुरेज्ये भार्गवे सौम्ये गृहमाद्य मनोहरम् ” तथा तत्रैव “सौम्यानां दिवसेऽथ पापवर्जिते योगे ” । तथा गर्गः—“बुधे लाभस्तथारोग्यं मरणं मान्तरात्मजे” इति । प्रवेशे तु शनिवार विहित एव “स्थाप्यं समाप्य क्रतुयुपकाष्ठं वैशम-प्रवेश गजवाहनञ्च” इत्यादिलिखितपशुपतिदीपिकावचनात् ।

हायणमें अन्नका मालिक होता है, पीपमें चौरोंका भय होता है, माघमें अग्निका भय होता है और फाल्गुनके महीनेमें घर बनवानेसे काश्चन और पुत्र लाभ होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ १७० ॥

वैशाखश्रावणापाढमार्गफाल्गुनकार्तिकाः ।

सुप्रशस्ता गृहारम्भे भार्यापुत्रसमृद्धिदाः ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि-वैशाख, श्रावण, आषाढ, अग्रहायण, फाल्गुन और कार्तिकके महीनेमें घर बनवानेसे स्त्री, पुत्र और धनादि द्वारा सुख प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः ।

प्रासादेऽप्येवमेव स्यात्कूपवापीषु चैव हि ॥ ७२ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, रवि और मङ्गलवारको छोड़कर अन्य समस्त वारोंमें गृह, प्रासाद, कूप और वापी बनवानेसे शुभ फल होता है ॥७२॥

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् ॥ ७३ ॥

अर्थ-शुक्लपक्षमें घर बनवानेसे सुख होता है और कृष्णपक्षमें बनवानेसे चौरका भय होता है ॥ ७३ ॥

प्रतिपदि गृहं कृत्वा दुःखमाप्नोति मानवः ।

अथनाशो भवेत्पष्ठ्यामेकादश्यां विघट्टनम् ॥ ७४ ॥

पञ्चम्यां चौरभीतिः स्याद्दशम्यान्तु नृपाद्भयम् ।

षोर्णमास्यां चार्थनाशो भार्यानाशस्तथैव च ॥ ७५ ॥

इति ज्योतिःसारमग्नह ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा तिथिमें घर बनवानेसे दुःख होता है इसी प्रकार पष्ठीमें धनका नाश होता है, एकादशीमें अनेक प्रकारके विघाट पञ्चमीमें चौरका भय होता है, दशमीमें राजाका भय होता है और पूर्णिमा तिथिमें घर बनवानेसे अर्थ हानि और स्त्रीकी मृत्यु होती है ७४॥७५॥

अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरत्रयमिन्दुभम् ।

स्वातिहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अश्विनी, रोहिणी, मूल, उत्तराफाल्गुनी,

उत्तरापादा, उत्तराभाद्रपदा, मृगशिर, स्वाति, हस्त और अनुराधा नक्षत्रमें घर बनवाना चाहिये ॥ ७६ ॥

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातेतिगण्डके ।

विष्कुम्भगण्डपरिषर्ज्जं योगेषु कारयेत् ॥ ७७ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड और परिष योगको छोड़कर अन्य योगोंमें घरको बनवावै इस प्रकार मत्स्यपुराणमें कहा है ॥ ७७ ॥

चन्द्रादित्यवलंब्वा लग्नं शुभनिरीक्षितम् ।

स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ७८ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ-मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, गोचरमें चन्द्रमा और सूर्य शुद्ध होनेसे और शुभ ग्रह लग्नको देखता होय तो तभी स्तम्भरोपण करै किन्तु सूर्य और चन्द्रमा शुद्ध न होय और पापग्रह लग्नको देखते हैं तो स्तम्भरोपण न करना चाहिये ॥ ७८ ॥

आदित्येज्यभरोहिणीमृगशिरश्चित्राधनिष्ठात्तरा

पौष्णीविष्णुशतानुराधपधनैः शुद्धैःसुतारान्वितैः ।

सौम्यानां दिवसेऽथ पापरहिते योगे विरक्ते तित्थौ

विष्टित्यक्तदिने वदन्ति मुनयो वेदमादिकार्यं शुभम् ॥७९॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, हस्त, पुष्य, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापादा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, श्रवण, शतमिषा, अनुराधा और स्वाती नक्षत्रमें ताराशुद्धि होनेसे, शुभग्रहोंके वारमें, शुभयोगमें रिक्ता और मद्राभिन्न शुभातिथिमें गृहारम्भ शुभदायक होता है ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ ७९ ॥

उग्रं विशाखामदितिञ्च शक्रं भुजङ्गमग्निञ्च विहाय गेहम् ।

ग्राम्यस्वलग्नस्तिरमांदिरेषु कुर्याच्छुभैर्पुक्तनिरीक्षितेषु ॥ १८० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वापादा, पूर्वाभाद्रपदा,

मघा, मरणी, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, आश्लेषा और कृत्तिका इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनके पूर्वार्द्धमें और अपनी जन्मलग्नमें और स्थिर ( वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ ) लग्नमें शुभग्रह होंय ग्रहोंकी दृष्टि होय तो घर बनवाना चाहिये ॥ १८० ॥

नवग्रहा भवेयुश्च यदि केन्द्रत्रिकोणगाः ।

दोपस्तदा क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा ॥ ८१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब लग्नके दोषनाशक योग कहते हैं-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, नवग्रह यदि लग्नके केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें स्थित होंय तो सूर्योदये जित प्रकार अन्धकारका नाश होजाता है उसी प्रकार लग्नके समस्त दोष दूर होजाते हैं ॥ ८१ ॥

कुम्भाजालिकुलीरतौलिमिथुनूस्थाकं कुजाकैतरै

वारे भद्रजये तिथौ शुभरवौ स्वग्राम्ययुग्मोदये ( १ )

भेषूयादितिशक्रपावकविशाखासर्पभिन्नेषु च

प्रारम्भः शुभदो गृहस्य शुभरात्रीशर्क्षयोगेष्वपि ॥ ८२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सार फाल्गुन, वैशाख, अग्रहायण, श्रावण, कार्तिक और आपाढके महीनेमें, मङ्गल और रविवारको छोड़कर अन्य वारोंमें द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, त्रयोदशी, अष्टमी और तृतीया तिथिमें, सूर्य शुद्ध होनेसे अपनी जन्मलग्नमें, और ग्राम्य और स्थिर लग्नमें पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, मरणी, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, कृत्तिका, विशाखा और आश्लेषा इन नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे शुभ योगमें घर बनवाना चाहिये ॥ ८२ ॥

अयं नक्षत्रशुद्ध्या वासगृहनिर्णयः ।

कृत्तिकाद्यास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात् ।

यद्दिश्यं यस्य नक्षत्रं तस्य तत्र गृहं शुभम् ॥ ८३ ॥ ( क )

अर्थ-अब नक्षत्रशुद्धिद्वारा वासस्थान घरका स्थान निर्णय करते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, कृत्तिकादि सात नक्षत्र पूर्वादि चारों दिशामें रखे, घरके

( १ ) वचनान्तरेकषावयत्वाद् यग्मोदये स्थिरलग्ने इत्ययं ।

( क ) सप्तनक्षत्रक्रमेण पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु गृहस्थानमाह-कृत्तिकेति । पूर्वादी दिशि

मालिकका जन्मनक्षत्र जिस दिशामें पड़े उसी दिशामें घर बनवानेसे शुभदायक होता है ॥ ८३ ॥

अथ नागशुद्ध्या गृहस्थाननिर्णयः ।

पूर्वादिषु शिरः कृत्वा नागशेते त्रिभिस्त्रिभिः ।

भाद्राद्यैर्वामपार्श्वेन तस्य क्रोडे गृहं शुभम् ॥ ८४ ॥ (ख)

इति दीपिकायाम् ।

अथ—नागशुद्धिद्वारा घरका स्थान कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, भाद्रादि-  
करके तीन २ महानेमें पूर्वादिक्रमसे मस्तक रखकर नाग वामपार्श्वमें शयन  
करता है इस नागके वामपार्श्वमें ( क्रोडदेशमें ) घर बनवानेसे शुभदायक  
होता है ॥ ८४ ॥ अपिच ।

वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेण वामेन शेते खलु नित्यकालम् ।

त्रिभिस्तु मासैः परिवृत्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः ८५

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, वास्तुपरिमित गात्रविशिष्ट नाग सर्वदा

—कृत्तिकाया सप्त सप्त ताराः क्रमाद्गदिताः तत्र च यदिश्यं यदिक्विस्यत यस्य नक्षत्रस्या-  
त्तस्य तत्र दिशि गृह शुभं स्यात्तत्र च विशेषमाह—गर्गः—“ ध्वजं पूर्वगृहं प्रोक्तमाग्रेष्यां  
धूममुच्यते । सिंहन्तु दक्षिणागारं नैर्ऋत्यां स्वगृह तथा । वृषस्तु पश्चिमागारं वायव्यां  
खरमेव च । उत्तरन्तु गजागारं ध्वांक्षमैशानक गृहम् ” राजमार्तण्डेऽप्येवम् । तथा पशु  
पातिदीपिकायाम्—“ गृहमष्टविधं प्रोक्तं पूर्वादिषु यथाक्रमम् । ध्वजो धूमश्च सिंहश्च  
वृषः खर एव च । गजो ध्वांक्षस्तथैतानि स्थानानि क्रमतो विदुः ॥ ” एतेन राशिषकवद्भाग  
कृत्वा पूर्वादिषु ध्वजादिस्थानं प्ररुलप्य नैर्ऋतीशानयोराश्रितातयोश्च मध्ये दण्डद्वयं दत्त्वा  
रुपुष्टमध्यभागं दण्डस्पर्शनश्च विहाय चतुर्दिक्षु गृह कार्यम् । तथाच राजमार्तण्डे—“ न  
कोणेषु गृहं कुर्यात्त्र मध्ये नान्त एव च । तथा नवपदे भागे ज्ञात्वा गेहश्च कायेत् ” ।  
ध्वजादिस्थानानां फलमाह—गर्गः—“ ध्वजे विभूतिर्मरणश्च धूमे सिंहे जयः श्वा च करो-  
त्यनर्थम् । भोगो वृषे रोग धनक्षयो खरे पुष्टिर्भजे काकपदे च दुःखम् । ”

(ख) नागशुद्ध्या गृहस्थानमाह पूर्वादिष्विति । भाद्राद्यैस्त्रिभिस्त्रिभिर्मासैः पूर्वा-  
दिषु चतुर्दिक्षु शिरः कृत्वा वामपार्श्वेन नागः शेते भाद्रादिमासत्रये पूर्वशिरा अग्निर्कोणा-  
मिमुक्तः दक्षिणक्रोडः उत्तरपृष्ठः पश्चिमपृष्ठः शेते तदा अस्थक्रोडे दक्षिणे सिंहस्थाने  
शुभं गृहमित्यर्थः । एवमन्यत्रापि दिक्षु बोद्धव्यम् । यथा पशुपातिदीपिकायाम् । “ प्राच्यां  
दिशि शिरोन्यस्य नागो भाद्रपदादिषु । यान्यां मार्गादिमासेषु वारुण्यां फाल्गुनादिषु ।  
कोबेर्ष्यां वामपार्श्वेन शेते ज्येष्ठादिषु त्रिषु । क्रोडे तु क्रियेते नित्यं हिताय सदनं बुधैः । न  
शिः पृष्ठपृच्छे तु आत्मनः शुभमिच्छता ” तथा गर्गः—“ भाद्रादिषु च मासेषु कर्त्तव्यं  
सिंहमन्दिरम् । वृषागारं तु कर्त्तव्यं मार्गशीर्षादिषु त्रिषु । फाल्गुनादिषु मासेषु गजागा-  
रन्तु कारयेत् । ध्वजागारन्तु कर्त्तव्यं ज्येष्ठमासादिषु त्रिषु ” इति ।

वाम पार्श्वमें सोता है, तीन २ महीनेके बाद उक्त वास्तुनागका मस्तक क्रमसे पूर्वादि दिशामें होता है, सिद्धगणोंने इस प्रकार कहा है ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

भाद्रादिके वासवदिविद्यराः स्या-

न्मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्धा ।

प्रत्यविद्यराः स्यात्खलु फाल्गुनादौ

ज्येष्ठादिकौबेरशिराः स नागः ॥ ८६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वम लिखा है कि 'भाद्रादि तीन महीनेमें वास्तुनाग पूर्व-दिशामें मस्तक रखकर सोते हैं, इसी प्रकार अग्रहायणादि तीन महीनेमें वास्तुनाग दक्षिणमें शिर रखकर सोते हैं, फाल्गुनादि तीन महीनेमें पार्श्वमें शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं और ज्येष्ठादि तीन महीनेमें उत्तर दिशामें शिर रखकर वास्तुनाग सोते हैं ॥ ८६ ॥

अथ नागशीर्षादौ गृहकरणफलम् ।

स्वामिनो हि भवेन्मृत्युर्नागमूर्ध्नि गृहे कृते ।

पुत्रस्य च कलत्रस्य नागगृष्टे गृहे कृते ।

पुच्छे चार्थक्षयं विद्यात्क्रोडे गृहे समृद्धिवान् ॥ ८७ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब नागके शिरादिमें घर बनवानेका फल कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि नागके शिरमें घर बनवानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसी प्रकार पृष्ठ ( पीठ ) में घर बनवानेसे पुत्र और स्त्रीकी मृत्यु होती है, पुच्छदेशमें घर बनवानेसे अर्थकी हानि होती है और नागके क्रोडदेशमें घर बनवानेसे घरका मालिक समृद्धिशाली होता है ॥ ८७ ॥

अपिच ।

मूर्ध्नि खाते भवेन्मृत्युः पृष्टे स्यात्सुतमार्ययोः ।

जघनेऽर्थक्षयं विद्यात्सर्वसम्पत्तयोदरे ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, वास्तुनागके शिरमें मकान बनानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है, इसी प्रकार पृष्ठ ( पीठ ) में घर बनानेसे पुत्र और

घीका मृत्यु होती है, जाँवमें बनानेसे धनकी हानि होती है और क्रोडदेशमें घर बनानेसे सर्व सम्पत् प्राप्त होती है ॥ ८८ ॥

अथैकशालादिव्यवस्था ।

एकं नागोरुसंशुद्धौ द्वे चेदक्षिणपश्चिमे ।

त्रिशालं पूर्वतो हीनं कार्यं वा सौम्यवर्जितम् ॥ ८९ ॥

केचिदक्षिणभागे तु वदन्त्येकं गृहं बुधाः ॥ ९० ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब एकसे आदि लेकर घर बनवानेको कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, वास्तुभूमिमें नवीन एक घर बनाना हो तो नाग और नक्षत्र शुद्धिमें बनावै दो घर बनाना हों तो वास्तुके दक्षिण और पश्चिम भागमें बनावै, तीन घर बनाना हो तो पूर्व दिशाको अथवा उत्तर दिशाको परित्याग करके घर बनाना चाहिये, किमी २ आचार्यका मत है कि, जो एक मात्र घर बनाना हो तो वास्तुके दक्षिणांशमें ही बनाना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अपिच ।

ऐशान्यां देवशालास्यादाग्नेय्याञ्च महानसम् ।

अवस्करन्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां कोशमन्दिरम् ॥ ९१ ॥

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, ईशानकोणमें देवगृहको बनावै. इसी प्रकार आग्निकोणमें रसोईका स्थान बनावै, नैर्ऋत कोणमें मलमूत्रादि परित्याग करनेका स्थान बनावै और वायुकोणमें धन रखनेका स्थान बनाना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्यच्च ।

कर्ककुम्भहरिनक्रगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।

तौलिमेपवृषश्चिक्रयाते दक्षिणोत्तरमुखानि कुर्यात् ॥ ९२ ॥

(क) एकादिगृहव्यवस्थाभाह-एकमिति । एकं गृहं नागोद्दुशुद्धौ यस्यां दिशि स्वकीयजन्मनक्षत्रं तद्दिशि नागोद्दुशुद्धिः कर्त्तव्या नास्त्यत्र दिङ्निघमः । यदि द्वे गृहे स्यातां तदा दक्षिणपश्चिमयोरेकत्र कर्त्तव्ये नान्यत्र । किन्त्वत्रापि नागोद्दुशुद्धौ मुख्यं गृहं कर्त्तव्यमित्यर्थः । त्रिशालं पूर्वतो हीनम् उत्तरतो वा हीनं कर्त्तव्यं न कदापि दक्षिणपश्चिमहीनं कर्त्तव्यमित्यर्थः । यथा “ याग्याहीनं त्रिशालञ्च वित्तनाशकरं भवेत् । अवस्करञ्च परयाहीनं वैरकरं महत् ” विशेषमाह राजमातृण्डे-“ ऐशान्यां देवनिलयमाग्नेय्याञ्च महानसम् । अवस्करन्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां कोशमन्दिरम् ” महानसं पाकशाला अवस्करं मलमूत्रपुरीषोत्सर्गशाला-इति ।



अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधनहानिमश्रुते ।  
मीनचापमिधुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ ९३ ॥

इति भोजनवचनम् ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, सौर श्रावण, फाल्गुन, भाद्रपद और माघके महीनेमें पूर्व पश्चिमाभिमुखका घर बनावै, और कार्तिक, वैशाख ज्येष्ठ, अग्रहा-यणके महीनेमें दक्षिण और उत्तरमुखका मकान बनवाना चाहिये, घरका मालिक यदि बुद्धिहीन होकर इसके अन्यथा बनावै तो उसको रोग, शोक और धनकी हानि होती है, सौर चैत्र, पौष, आपाद और आश्विनके महीनेमें कमी भी घरको न बनवावै ॥ ९१ ॥ ९३ ॥

अपराश्र ।

न प्रधानं गृहारम्भं कुर्यात्पौषे शुचावपि ।

यदि कुर्यात्सोऽचिरेण महतीमापदं व्रजेत् ॥ ९४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि प्रधान घर बनानेमें पौष और चैत्र मही-नेको छोड़देवे जो मनुष्य पौष और चैत्रके महीनेमें घर बनवाते हैं उनको शीघ्रही आपदायें घेरलेती हैं ॥ ९४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

निषिद्धेऽपि हि काले तु स्वानुकूले शुभे दिने ।

वृणवस्त्रगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ ९५ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ-महाभारतमें लिखा है कि, निषिद्ध कालमें यदि शुभदिन होय और उसमें सूर्य चन्द्रमादि अनुकूल होय तब वृण और वस्त्र घर बनवानेमें महीनेका दोष ग्राह्य नहीं होता है ॥ ९५ ॥

अपिच ।

पूर्णिमातोऽष्टमी यावत्पूर्वांस्यं वर्जयेद्गृहम् ।

उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् ॥ ९६ ॥

अमावस्याष्टमिमध्ये पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ॥

नवमीतश्च याम्यास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ॥ ९७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें लिखा है कि, पूर्णिमासे कृष्णपक्षकी अष्टमीतक पूर्वांस्य घर न बनवाना चाहिये इसी प्रकार कृष्णपक्षकी नवमीसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी

तक उत्तरास्य घरका निषेध है और अमावास्यासे शुक्लपक्षकी अष्टमीतक पश्चि-  
मास्य घरको न बनवावे और शुक्लपक्षकी नवमीसे शुक्लपक्षकी चतुर्दशीतक  
दक्षिणास्य गृह बनवानेका निषेध है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथ देवगृहारम्भे विशेषः ।

यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे ।

गर्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः ॥ ९८ ॥ ( क )

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—अथ देवगृह ( टाकुरद्वारा ) बनवानेका मुहूर्त कहते हैं, देवीपुराणमें  
लिखा है कि, जिस देवताकी प्रतिष्ठा और ध्वजरोपणके विषयमें जो काल  
विहित है उस देवताके मन्दिर बनवानेमें वही काल शुभदायक होता है ॥ ९८ ॥

अपिच ।

चैत्रेऽथ फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माघवेऽपि वा ।

माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥ ९९ ॥ ( ख )

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, चैत्र, फाल्गुन, वैशाख और माघ इन  
महीनोंमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायक होती है ॥ ९९ ॥

अन्यच्च ।

महिषासुरहन्त्याश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने ॥ २०० ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, महिषासुरनाशिनी भगवती दुर्गादेवीकी  
प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें करनी चाहिये ॥ २०० ॥

अपरञ्च ।

गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः ।

स एव विदुषा कार्यो देवतायतनेऽपि ॥ १ ॥ ( ग )

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ—कृत्यचिन्तामणिमें लिखा है कि, पूर्वमें जो सब विषय घर बनवानेमें कहे

( क ) यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्तापूरशिलान्यासे स  
कालः पूजित इत्यर्थः ।

( ख ) प्रतिष्ठासमुच्चये—‘ज्येष्ठापाठकयोर्वापि’ इत्युक्तेरापाठे दक्षिणायनेऽपि दुर्गाप्र-  
तिष्ठाऽभिहिता ।

( ग ) एतत्तु मासव्यतिरिक्तशुभमन्त्रादिविषयम् । अन्यथा प्रागुक्तविरोधापत्तेरिति  
ज्योतिरतत्त्वे स्मर्तव्यमिति ।

हैं उनमेंसे महीनोंको छोड़कर शुभ चन्द्रादि और नक्षत्रप्रभृति सभी देवमन्दिरके बनवानेमें प्रशस्त हैं ॥ १ ॥

अथ तृणकाष्ठादिसञ्चयनिषेधः ।

छेदनं संग्रहश्चैव काष्ठादीनां न कारयेत् ।

श्रवणादौ बुधः पट्टे न गच्छेदक्षिणां दिशम् ॥

नाहरेत्तृणकाष्ठानि न कुर्याद्दृढबन्धनम् ॥ २ ॥ ( घ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब घगेके लिये तृणकाष्ठादिसञ्चय करनेका निषेध कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, श्रवणसे आदि लेकर छः नक्षत्रोंमें पण्डितगण घर बनानेके अर्थ काष्ठादिका छेदन वा ग्रहण न करें और उक्त छः नक्षत्रोंमें दक्षिणको जाना भी न चाहिये विशेष करके इन सब नक्षत्रोंमें तृणआह्रण और दृढ बन्धनकी सर्वदा परित्याग करें ॥ २ ॥

आपेच ।

अग्निदाहो भयं शोको राजपीडा धनक्षयः ।

संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते द्रविणपञ्चके ॥ ३ ॥

अर्थ—धनिष्ठासे आदि लेकर पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादिका संग्रह करनेसे वा दृढ बन्धन करनेसे अग्निदाह, भय, शोक, राजपीडा और धनका नाश होता है ३॥

अथ वास्तुग्रहकरणऋचनम् ।

ध्वजो धूमश्च सिंहश्च आ वृषःखर एव च ।

गजः काकपदश्चैव स्थानान्यष्टौ च वास्तुनि ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब वास्तुग्रहकरण कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, ध्वजा, धूम्र, सिंह,

( घ ) श्रवणादिपट्टके काष्ठादिछेदननिषेधमाह—छेदनमिति । काष्ठादीनां तृणादीनां छेदनं संग्रहं समानयनञ्च श्रवणादौ रेवत्यन्ते नक्षत्रपट्टके न कारयेत् तथा श्रवणादिपट्टके दक्षिणदिशं न गच्छेत् । तथा राजमात्तण्डे—“ छेदनं तृणकाष्ठानां सहतञ्च विशेषतः । भूतिकामो न कुर्वीत पट्टकेन श्रवणादिना ॥ ” अत्रोत्तरापाडाशेषपाः नो दोष इति लोकाचारस्तत्रैव युक्तिः उत्तरापाढायाः शेषपादे श्रवणतारा तिष्ठति तत्सम्पर्कात्तत्र दोष इति । यथा सूर्यसिद्धान्ते तारानिर्णयाध्याये । “ आप्यस्यैवाभिजिष्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थितः ” इति । “ वाल्मीकी मूर्षिको नागो व्याघ्रचौराग्निज भयम् । रेवत्यो निर्मिता लङ्का तेन दग्धा हनुमता ” इति सारसंग्रहे । “ वृद्धितस्करराजानो मूर्षिको भशकः फणी ” इति सत्कृत्यमुक्तायल्याम् ॥ इति ॥

श्वान वृष, खर, गज और काकपद इन आठोंको वास्तुका स्थान कहने हैं ॥ ४ ॥

अपिच ।

चतुरस्रं कृतं वास्तु सूत्राभ्यां तीर्यगूर्ध्वतः ।

कोणसूत्रद्वयेनापि विभजेदष्टधा ततः ॥

ईशानतो ध्वजाद्याः स्युस्तत्र वेश्मफलं यथा ॥ ५ ॥

अर्थ—वास्तुभूमिको चतुरस्र करके तिर्यग् और ऊर्ध्व भागमें दो रेखा खींचें, अन्तर दो कोणके अंकित करनेसेही आठभागमें विभक्त होजाता है, अनन्तर ईशान कोणसे ध्वजादि गिनना चाहिये, फलको नीचे लिखते हैं ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

ध्वजे विभूतिर्मरणञ्च धूम्रे सिंहे यशः श्वानकरोत्यनर्थम् ।

वृषे च भोगी खरदेहपीडा सिद्धिर्गजे काकपदे च मृत्युः ॥ ६ ॥

अर्थ—अब ध्वजादिका फल कहते हैं । ध्वजाके स्थानमें घर बनानेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है इसी प्रकार धूम्रस्थानमें बनानेसे मृत्यु होती है, सिंहमें बनानेसे यशका लाभ होता है, श्वानमें बनानेसे अनर्थ होता है, वृषमें बनानेसे भोगी होता है, खरमें बनानेसे देहकी पीडा होती है, गजमें बनानेसे सिद्धि प्राप्त होती है और काकपदमें मकान बनानेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वद्वारं गवां स्थानं कुर्याद्द्वारं तु पश्चिमम् ।

गजे सिंहे न कुर्वीत गृहस्थः पशुवृद्धये ॥ ७ ॥

अर्थ—गोशालाका द्वार पूर्वमें वा पश्चिममें करना चाहिये, पशुवृद्धिकी इच्छा करनेवाले गृहस्थ गजमें वा सिंहमें पशुओंका घर न बनावे ॥ ७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

वास्तु षोडशविधं तत्रायतादिचतुष्कं प्रशस्तम् ।

चक्रादिद्वादशप्रकारं निषिद्धम् ॥ ८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहनामक ग्रन्थमें हृदयानन्दने कहा है कि वास्तु सोलह प्रकारके हैं तिनके मध्यमें आयतादि चार प्रकारके प्रशस्त हैं और चक्रादि दश प्रकारके निषिद्ध हैं ॥ ८ ॥

आपिच ।

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः ।

भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविबर्द्धनम् ॥ ९ ॥

अर्थ-आयतवास्तुमें सर्वार्थ सिद्धि होती है. इसी प्रकार चतुरस्र वास्तुमें धन प्राप्त होताहै, भद्रासनमें कृतार्थता और वृत्त वास्तुमें पुष्टिकी वृद्धि होती है ॥ ९ ॥  
अथामतादिलक्षणम् ।

आयते मुनिदिवप्रोक्तं चतुरस्रे नवाष्टकम् ।

तिथिस्रयोदशं वृत्ते भद्रे रुद्रदिवाकरे ॥ २१० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब आयतादि वास्तुके लक्षण कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि दश दण्ड ( क ) दीर्घमें सात दण्ड प्रस्थमें जो भूमि होय उसको आयत कहते हैं, नौ दण्ड दीर्घमें और आठ दण्ड प्रस्थमें जो भूमि होय उसको चतुरस्र कहते हैं, पांचदण्ड दीर्घ और त्रयोदश दण्ड प्रस्थको वृत्त कहते हैं और द्वादश दण्ड परिमित दीर्घ और एकादश दण्डपरिमित प्रस्थ इस प्रकारकी भूमिको भद्रासन कहते हैं ॥ २१० ॥

अथ वास्तुनक्षत्रकथनम् ।

प्रस्तारदैर्घ्ययोर्मानं ( ख ) त्रिभ्रं चैकेन वर्जितम् ।

हरेर्द्वै सप्तविंशेन शेषमृक्षन्तु वास्तुनः ॥ ११ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-आठ हस्त परिमाण दण्ड द्वारा वास्तुभूमिको नापनेसे दीर्घ और प्रस्थमें जितने दण्ड होंय उनको मिलाकर तिगुना करनेसे जितने संख्यक अंक होंय उन अंकोंको तीन भागमें विभक्त करै और तीन भागमेंसे एक भागको छोड देवै । अनन्तर शेष दोनों भागोंमें जितने अंक होंय उनको सत्ताईससे भाग करनेसे ही वास्तुके नक्षत्र जाने जाते हैं ॥ ११ ॥

अथ वास्तुराशिकथनम् । ( × )

अश्विन्यादित्रयमेपे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् ।

( क ) अष्टहस्तदण्डेन गृहमापनम् । यथा-“वसुहस्तो भवेद्दण्डो वाटी तेनेव माप-  
येत् । चतुर्हस्तेन वा स्वरूपा भापयेद्विच्छया बुधः ” इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

( ख ) मान दण्डमानमित्यर्थः ।

( × ) नक्षत्रानुरोधेन राशितः कन्यावरयोस्त्रि गृहपुरुषयोर्षोडशशुद्धिज्ञेया । इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

**मूलादित्रितयं चापे द्वौ द्वौ तु नवराशिषु ॥ १२ ॥**

इति ज्योतिःसारसारसंग्रहे ।

अर्थ--अथ वास्तुभूमिकी राशिका निर्णय करते हैं ज्योतिःसारसंग्रह नामक ग्रन्थमें लिखा है कि, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका इन नक्षत्रोंमें मेष राशि होती है, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें सिंह राशि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा, इन नक्षत्रोंमें धन राशि होती है, और शेष नौ राशियें दो दो नक्षत्रोंमें होती हैं, वास्तुभूमिकी राशि और वास्तुके मालिककी राशिसे "कन्या और बरकी राशिसे विवाहप्रकरणमें जिस प्रकार योद्धक शुद्धि कही है " उसी प्रकार देखना चाहिये ॥ १२ ॥

अथ गृहारम्भे लोकपालादिपूजा ।

**बलिभिःपुष्पधूपार्घ्यैर्लोकपालानथ ग्रहान् ।**

**पूजयेत्क्षेत्रपालांश्च क्रूरभूतांश्च वाह्यतः ॥ १३ ॥ ( १ )**

अर्थ--घर बनवानेके समय लोकपालादिकी पूजा कहते हैं पूजोपहार पुष्प और धूपादि द्वारा लोकपाल नवग्रह और क्षेत्रपाल गणकी पूजा करै और घरके बहिर्देशमें क्रूरभूतगणोंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ गृहारम्भे ब्रह्मादिपूजा ।

**कुशपुष्पैस्तथा लाजैस्तिलतण्डुलमिथितैः ।**

**ब्राह्मणं वास्तुपुरुषं तद्देशस्थांश्च देवताः ॥ १४ ॥**

अर्थ--ब्रह्मा, वास्तुपुरुष और उस देशमें वास करनेवाले समस्त देवताओंकी पुष्प, तिल और तिल तण्डुल मिलाकर रखसे पूजा करै ॥ १४ ॥

( १ ) गृहारम्भकाले लोकपालादिपूजा श्लोकद्वयेनाह--बलिभिरिति । कुशपुष्पैरिति च । पुष्पधूपार्घ्यैर्बलिभिः पूजोपहारैरित्यर्थः । वाह्यतः गृहस्थानयाहो क्रूरभूतान् पूजयेत् । तद्देशस्थास्तद्देशग्रामेष्वधिपदेवना इत्यर्थः । शेष सुगमम् । अत्र विशेषमाह गणैः "पूण्ड्रम् समारोप्य चतुष्षट्सप्ततम् । गन्धपुष्पादिभिर्लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन प्रपूजयेत् । इन्द्रादिलोकपालांश्च स्वस्वदिक्षु घटे यजेत् । ज्येष्ठी वसुश्च सप्तम्य मातृकाश्च प्रपूजयेत् । अनन्त वास्तुपुरुषं कूर्मं पृथ्वीं ग्रहानव । वास्तुकि तक्षकश्चैव कर्षट कुलिक तथा । पद्मश्च शरपूटश्च महापद्म धनञ्जयम् । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्नागानष्टौ प्रथमतः । हस्तमात्रमिते गते सप्त संहिष्ययम् । वास्तोष्पतेभिमन्त्रेण दद्याद्दृष्यं घटाम्बुभिः । ततः पृथिव्यै कूर्माय अनन्ताय पृथक् पृथक् । ओं वसुभ्यो हेमगर्भासि शेषयोपरिशायिनि । तत्र पृष्ठे दद्याम्येतद्गृहाणार्घ्यं धरिष्वि मे । ओं सरलक्षणमम्पन्न सर्वंश कर्मठाकृते । स्थानं देहि गृह कर्तुं विष्णुर्ऋषियमोऽस्तुते । ततोऽनन्ताय । ओं हिमकुन्ववृणाळान नागानन्त महाफणिव । स्थानं देहि गृह कर्तुं गृहाणार्घ्यं नमो नमः" ॥

पूर्वादिचतुर्दिक्षु गृहबन्धध्रुवः ।

पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाममेकादयो ध्रुवाः ।

प्रस्तारस्याथ दैर्घ्यस्य तत्र वैकसमन्विताः ॥ १५ ॥ (क)

अर्थ-अब पूर्वादि चारों दिशाओंके गृहबन्धके ध्रुवांकको कहते हैं वामावर्त्तसे क्रमानुसार प्रस्थका परिमाण पूर्वादि चारों दिशाओंमें एकादि अंक ध्रुवांक होता है अर्थात् पूर्वमें एक, उत्तरमें दो, पश्चिममें तीन और दक्षिणमें चार और दीर्घका परिमाण पूर्वादिक्रमसे वामावर्त्तमें एकाधिक एकादि अंक ध्रुवांक होता है अर्थात् पूर्वमें दो, उत्तरमें तीन, पश्चिममें चार और दक्षिणमें पांच ॥ १५ ॥

अथ वायव्यादिचतुष्कोणे गृहबन्धध्रुवकथनम् ।

वामं वातादिकोणेषु ध्रुवाः प्रस्तारदैर्घ्ययोः ।

एकाद्याः स्वेच्छया (\*) सर्वं कार्या वेदसमन्विताः ॥ १६ ॥ (ख)

अर्थ-वामावर्त्तमें वायव्यादि चारों कोनोंमें प्रस्थके परिमाणमें एकादि अंक और दीर्घके परिमाणमें एकादि अङ्कके योग करनेसे जो परिमाण होता है उसकोही ध्रुवाङ्क कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ गृहाणामायकथनम् ।

व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये वसुभिर्विहते ततः ।

यच्छेषमायं तद्विद्यात्पूर्वादिभवनाएके ॥ १७ ॥ (ग)

अर्थ-अब घरकी आयका ज्ञान कहते हैं, प्रस्थको हस्तपरिमित अंकद्वारा दीर्घके हस्त परिमित अंकको गुणकरके आठसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचे उनकोही पूर्वादि आठों कोनोंकी आय जानना चाहिये ॥ १७ ॥

( क ) गृहबन्धनस्य व्यवस्थामाह-पूर्वादिष्विति । पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वाम विपरीतेन पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः प्रस्तारस्य ध्रुवाः एक पूर्वं द्वावुत्तरे त्रयः पश्चिमायां चत्वारो दक्षिणस्याम् । अथ दैर्घ्यस्य ध्रुवास्त एव पूर्वोत्तरक्रमेणैकादयः एकयुक्ताः द्वौ पूर्वं त्रयः उत्तरे चत्वारः पश्चिमे पञ्च दक्षिणे । इति ।

( \* ) उभयतः स्वेच्छयानुरूपतश्चतुःसस्यादानेन ध्रुवशुद्धिश्च इति दीपिकायां मूलम् ।

( ख ) वायव्यादिकोणेषु गृहबन्धस्य व्यवस्थामाह-वाममिति । वातादिकोणेषु वामे विपरीतेन वायुनैर्ऋताग्नीशानक्रमेण प्रस्तारदैर्घ्ययोस्त एवोक्ता एकाद्या ध्रुवाः प्रस्तारे एको द्वौ त्रयश्चत्वारः दैर्घ्ये एकसमन्विता द्वौ त्रयश्चत्वारः पञ्च इत्यर्थः । अथ सर्वं एवाष्टगृहध्रुवाः प्रस्तारे दैर्घ्ये च स्वेच्छया वेदसमन्विताः कार्याः युक्तयनुरूप यावद्विषो गृहाः शोभन्ते तावद्विश्रुताभिर्विक्ता ध्रुवाः कार्या इत्यर्थः ।

( ग ) गृहायज्ञानमाह-व्यासेनेति । व्यासेन प्रस्तारहस्तप्रमाणेन दैर्घ्ये दैर्घ्यहस्तप्रमाणे पूरितेऽष्टाभिर्विहते सति यच्छेषं तिष्ठति तदायं विद्यात् । यथा पशुपतिदीपिका-

अथ गृहाणां सामान्यनक्षत्रकथनम् ।

तस्माद्वाचसगुणाद्देव्यात्पुनर्मङ्गलताडितात् ।

त्रिघनेन हृताच्छेषे नक्षत्रं तस्य वेदमनः ॥ १८ ॥ (घ)

अर्थ—अब घरके सामान्य नक्षत्रोंको कहते हैं । प्रस्थांकद्वारा गुणित दीर्घ परिमित अंकको पुनः आठसे पूरण करै अनन्तर सत्ताईससे भाग करनेमें जो अङ्क शेष बचै उनकोही उस घरके नक्षत्र जानना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ गृहाणामायज्ञानमायव्ययफलञ्च ।

वसुशिष्टं यदा जातं नक्षत्रं भवति व्ययः ।

व्ययाधिकं न कर्तव्यं गृहमायाधिकं शुभम् ॥ १९ ॥ (ङ)

अर्थ—पूर्वाक्तवचनके अनुसार घरके नक्षत्र निर्णय करके उनको आठसे भाग करनेमें जो अङ्क शेष बचै उनको व्यय कहते हैं दीर्घ और प्रस्थके परिमित अङ्कोंको मिलानेसे जो अङ्क हो उनको पिण्ड कहते हैं उक्त पिण्डाङ्कको आठसे गुणकरके बारहसे भाग करनेमें जो अंक शेष बचै उनको आय कहते हैं, आयके अंकोंसे व्ययके अंक अधिक होनेसे घरको न बनवावै और यदि व्ययके अंकोंसे आचाङ्क अधिक होय तभी घर बनवाना चाहिये ॥ १९ ॥

—याम् “ आयामेन च ये हस्ताः प्रस्तारेण च तान्गुणेत । अष्टाभिर्भागमाहृत्य शेषमाय प्ररूपयेत् ।

(घ) गृहस्य नक्षत्रज्ञानमाह—तस्मादिति । तस्माद्देव्यात्पुनर्मङ्गलताडितात् देव्यात्प्रमाणात् पुनरपि मङ्गलेनाष्टभिस्ताडितात्प्ररितात् त्रिघनेन मत्तविशत्या हृतात् यच्छेष स्यात्तस्य वेदमनो नक्षत्रं स्यात् यथा राजमार्तण्डे—“पिण्डमष्टगुण कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमादिष्ट कृत्वा दिव्यव्ययया ” पिण्डमुक्तं तत्रैव “ आयामसगुणितविस्तारहस्ताः पिण्डम् ” इति ।

(ङ) गृहाणां व्ययज्ञानमाह—वसिति । तस्माद् व्यासगुणितादिति वचनोक्त त्रिघनेन हृताच्छेषमङ्क परनक्षत्रसङ्कक आधात तद्वसुशिष्टं अष्टहृताच्छेष व्यय स्यात् । यथा पशुपतिदीपिकायाम् । “ पिण्डमष्टगुण कृत्वा त्रिघनेन विभाजयेत् । शेष नक्षत्रमादिष्टमष्टाभिर्हरणाश्रयः ” इति । ततश्च व्ययाधिकं न कर्तव्यम् । “ आयामिदं न्तु शुभं समं सम् ” इति । केनचित् आयादिज्ञानप्रकारान्तरेणोक्तम् । यथा “गृहभूमिसमाहृतपिण्डपटवसुलोचनरन्ध्रगर्जिगुणितम् । गविभूधरत्रिशदोगहृत भवनव्ययस्थिति नक्षत्रम् ” अस्यार्थ—गृहभूमिसमाहृतस्य समाहृत प्रस्तारदेव्याभ्याम् अन्योऽन्येन पूरित पिण्डपटपिण्डसङ्कम् । यथा राजमार्तण्डे—आयामसगुणितविस्तारहस्तः पिण्डमिति तत्र पिण्डे पृथक्पृथक् स्थानेषुपुष्टये कृत्वा वसुलोचनरन्ध्रगर्जिगुणितं यथामग्य द्वादशसतार्धशतसतार्धशतिभिर्हृतशेष गृहस्थायव्ययस्थितिनिर्ज्ञापाणि स्युः । यथाक्रमम् । अन्येऽस्यार्थं न बुद्ध्या अन्यथा व्याचक्षते तद्वेयम् । एतत् प्रकारमात्र उक्ताः अपि दृश्यते किन्तु अन्यत्रा-रमतमेव राजमार्तण्डादीनां बहूनां सम्मतं सप्रमाणम् । इति ।



अथ गृहाणां नक्षत्रव्यवस्था ।

प्रत्यग्दक्षिणयोर्भे द्रविणाद्यं विदक्षु दहनादि ।

पूर्वोत्तरयोर्गृहयोरश्विन्यादीनि भानि स्युः ॥ २२० ॥ ( १ )

अथ-अब गृहनक्षत्रोंके विषयमें विशेष कहते हैं । पश्चिम और दक्षिण दिक्स्थित घरके नक्षत्र धनिष्ठादि होते हैं, इसी प्रकार विदिक्स्थित ( कोणस्थित ) घरोंके नक्षत्र कृत्तिकादि होते हैं, और पूर्व और उत्तरदिक्स्थित घरके नक्षत्र अश्विन्यादि होते हैं ॥ २२० ॥

अथ शल्योद्धारादि कथनम् ।

सुनिश्चितां मन्दिरभूमिमादौ निखाय तोयावधि यत्नतस्ताम् ।

कुर्याद्विशल्यामथवा नृमानं खात्वाथवा प्रश्रवशाद्विधिज्ञः ॥ २१ ॥

दूर्वाप्रवालाक्षतपुष्पपाणिः शुचिः शुचिं देवविदं नमिन्वा ।

पृच्छेद्विनीतो मधुरस्वरेण शल्यस्य तत्त्वं भवने तदीशः ॥ २२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब शल्योद्धारादि कहते हैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, घर बनानेके अर्थ भूमि स्थिर करके जितनी खोदनेसे जल दिखलाई देवै उतनीही खोदें अथवा मनुष्यकी बराबर खोदकरके, घरका मालिक शुद्ध होकर दूर्वा, प्रवाल, अक्षत, तण्डुल और पुष्प, हाथमें लेकर देवज्ञको नमस्कार करके बिनयपूर्वक मधुर वाक्यसे शल्यके वृत्तान्तकी जिज्ञासा करनी चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

ततः प्रश्नादिमो वर्णः सन्धायो यत्नतोऽथवा ।

क्रमात्पुष्पनदीदेवफलानां ब्राह्मणादितः ॥ २३ ॥

प्रणवो धरणीधारिणी करा च तदनन्तरम् ।

न भूत्यै नम इत्येप मन्त्रो वह्निप्रियान्तकः ॥ २४ ॥

मन्त्रेणानेन कठिनमिभिमन्त्र्य विभाजयेत् ।

नवधा सदनक्षेत्रं तथा पश्चाद्विलेखयेत् ॥ २५ ॥

( १ ) प्राप्तस्य गृहनक्षत्रस्य व्यवस्थामाह-प्रत्यागात् । पश्चिमदक्षिणगृहयोर्नक्षत्र द्रविणाद्य धनिष्ठाद्य स्यात् धमिष्ठामारभ्य गणयेदित्यर्थः । विदिक्षु कोणस्थग्रहाणां दहनादि कृत्तिकादि स्यात् पूर्वोत्तरग्रहयोरश्विन्यादीनि नक्षत्राणि स्युः । एतन्तु नक्षत्रज्ञानं चक्षुम्राणव्ययज्ञानार्थं ग्रहपतितक्षत्रेण सार्द्धं विवाहवद्योटकनाडिनक्षत्रादिशुद्धया शुभाशुभज्ञानार्थञ्चेति बोद्धव्यमिति ।

वक्चतएहाः शपया नव चेतप्रश्राक्षराणि जायन्ते ।

प्रागादिकोष्टनवके वर्णास्ते शल्यमाख्यान्ति ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अथ—अनन्तर देवज्ञ क्रमानुसार घरके मालिकके प्रश्रका आद्यक्षर द्वारा शल्य है वा नहीं तिसको देखे। प्रश्रके विषयमें ब्राह्मणादिक्रमसे द्रव्यादि ग्रहण करना चाहिये, उसका नियम इस प्रकारसे है कि, ब्राह्मण पुष्प, क्षत्रिय, नदी, वैश्य, देवता और शूद्रको फल ग्रहण करे; तदनन्तर प्रणवका उच्चारण करके “धरणी” इत्यादि मन्त्रद्वारा कठिनी अर्थात् खडि अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा गृह-भूमिको नौ अंश ( भाग ) में विभक्त करे । अनन्तर व, क, च, त, ए, ह, श, ष य इन नौ अक्षरोंके मध्यमें जो वर्ण प्रश्रका अक्षर होय उसको पूर्वोक्त नौ कोठोंमें पूर्वोदिक्रमसे विन्यस्त करके शल्यको जानना चाहिये ॥ २३-२६ ॥

प्रश्ने वकारः पुरतो नरास्थि ब्रवीति शल्यं मरणप्रदायि ।

क्षोणीशदण्डोरगहेतुमृत्युप्रदं ककारः खरशल्यमग्रौ ॥ २७ ॥

याम्यां चकारः पुवगास्थिवेष्मप्रभोर्विनाशावहमाह शल्यम् ।

रक्षोदिशि श्वास्य गृहस्थितानां महद्भयं वक्ति सुनिश्चितं ताः २८

एः पाशिदिश्यस्थि शिशां ब्रवीति मृत्युं प्रवासाद्गृहमेत्य शल्यम् ।

हा वायुकोणे नररूपमस्थि दारिद्र्यमित्रक्षयकृद्विषत्ते ॥ २९ ॥

धनपदिशि शकारः प्राह विप्रास्थि वित्त-

क्षयकृदथ पकारो वक्ति ऋक्षास्थि शम्भौ ।

तदिह कुलविनाशं गोधनानाञ्च हानिं

वितरति गृहनाथस्यापि गुप्तस्य देवैः ॥ २३० ॥

यो मध्यभागेभ्यसितं कपालं कालाय सञ्चाय कुलक्षयाय ।

यत्नादपास्यान्यधुना प्रमाणं सर्वत्र तथ्यं कथयामि शल्ये ॥ ३१ ॥

अथ—पूर्वोक्त प्रश्रका पहिला अक्षर ‘व’ होनेसे पूर्व दिशामें घरके मालिकका मृत्युदायक मनुष्यास्थि होता है इसी प्रकार प्रश्रका अक्षर ‘क’ होनेसे राजदण्ड अथवा सर्पदंशनद्वारा मृत्युप्रद गर्दभस्थि अग्निकोणमें, ‘च’ दक्षिणदिशामें पानरास्थि घरके मालिकका विनाश कर्ता है, ‘त’ नैऋतकोणमें कुत्तेकीस्थि महद्भयजनक होता है, ए पश्चिम दिशामें बालकास्थिरूप शल्य प्रवाममें मृत्युदायक

होता है, ' ह ' वायुकोणमें मनुष्यके सर्वावयवकी अस्यि दारिद्र्यप्रद और बान्ध-  
वोंका नाश करनेवाला होता है, ' ज ' उत्तर दिशामें ब्राह्मणास्थि धनका नाश-  
कारक होता है, ' प ' ईशान कोणमें भल्लूकास्थि देवताओंकी रक्षा होनेसेभी  
घरके मालिका नाश करनेवाला और गोधनादि विनाशक होता है और ' च ' मध्यभाग  
नृकपालरूप शल्य घरके मालिकका और उसके वंशका नाश करनेवाला  
होता है । अत एव यत्नपूर्वक उक्त प्रकार शल्य वास्तुभूमिसे उखाड करके एका-  
न्तमें करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३३० ॥ ३१ ॥

अथ दिग्विशेषे शल्यस्थितिकथनम् ।

इन्द्ररक्षोजलेशाने शल्यं सार्द्धं करे कटौ ।

वह्न्यन्तककुबेरपु पुरुषे मध्यवातयोः ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अथ दिग्विशेषमें शल्यकी स्थिति निर्णय करतेहैं, ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है  
कि, पूर्व, नैर्ऋत, पश्चिम और ईशान कोणमें डेढ हाथ भूमिके मध्यमें शल्य  
होता है, और अग्निकोणमें, दक्षिणमें और उत्तर दिशामें कटिपरिमित भूमिके  
मध्यमें शल्य होता है और मध्यस्थानमें और वायुकोणमें पुरुष परिमित भूमिके,  
मध्यमें शल्यका स्थान होता है ॥ ३२ ॥

आपिच ।

पुरुपाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ।

प्रासादे दोषदं शल्यं भवेद्यावज्जलान्तकम् ॥ ३३ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, पुरुषप्रमाण भूमिके निम्नमें स्थित शल्य घरके  
मध्यमें दोषकारक नहीं होता है, किन्तु मनुष्य परिमित भूमिके मध्यमें स्थित  
शल्यही घरके मध्यमें दोष कारक होता है, और जलान्तक शल्य प्रासादमें ( अष्टा  
लिका प्रभृतिमें ) दोषकारक होता है ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

गृहारम्भेऽपि कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यदि जायते ।

शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवनेऽपि वा ॥ ३४ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, घर बनावानेमें यदि घरके मालिकका शरीर  
खुजलाय तो जानना चाहिये कि घरमें वा प्रासादमें शल्य है, अतएव यह शल्य  
जिस प्रकारसे निकलसके उसमें अवश्यही यत्न करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ गृहारम्भे हस्तप्रमाणम् । ( १ )

स्वामिहस्तप्रमाणेन धर्मपत्नीकरेण वा ।

मापयेद्गर्भमात्रं तु गृहकर्माणि कोविदः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अब घर बनवानेमें हाथका प्रमाण कहतेहैं, घरके मालिकके हाथमें अथवा धर्मपत्नीके हाथसे घरको नापना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रादीनामारोपणस्यानम् ।

ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भारोपणम् ।

द्वारं नवमभागे तु कार्यं वामात्प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ ( २ )

अर्थ—गृहारम्भमें ईशान कोणमें सूत्रपात करै, आग्नेकोणमें स्तम्भ रोपण और वाम वर्त्तमं क्रमानुसार अष्टमभागके एकभागका द्वारकरै ॥ ३६ ॥

अथ गृहस्य वामस्य द्वारकरणव्यवस्था ।

तृतीयतुर्ययोः प्राच्यां याम्ये तुर्येऽथ पश्चिमे ।

( १ ) हस्तोऽप्यत्र रूफोऽप्युपक्रममध्यमांगुल्यप्रपर्यन्तम् । “ मध्यमांगुलीरूर्ध्वयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः ” इत्यभियुक्तस्मरणादिति कल्पनरुत्नाकरौ । इति स्मात्तेनोक्तम् ।

( २ ) सूत्रादारोपणमाह—ईशान इति । ईशानकोणे सूत्रपातः कार्यः अग्निकोणत्व-व्यादिक दत्त्वा गते स्तम्भारोपणञ्च स्तम्भे वास्तुपुरुषं पूजयित्वा पठेत् । “ आँ यथाचलो गिरिर्भरुहिंमवाश्च यथाचलः । शुभप्रदमहास्तम्भ तथा स्वमचलो भव ” अत्र च मासा-दिविलम्बे पुनः कर्त्तव्यमिदम् तथा—“ मासान्तरे त्वनारम्भे ईशानारोपण पुनः ” इति गृहहारश्चाष्टभागीकृतस्य गृहस्यैकभागे वक्ष्यमाणश्लोकेन विशिष्योक्ते कर्त्तव्यम् । तत्र ग्रहस्य वामपार्श्वत्वात्प्रदक्षिणक्रमेण कर्त्तव्यमेतदुक्त भवति निर्गच्छतः पुंसो वामभागो गृहस्य वामपार्श्वः । तदादित आरभ्य प्रदक्षिणक्रमेणाष्टौ भागान्कृत्वा वक्ष्यमाणश्लोकै-कभागेकद्वार कार्यमित्यर्थः । इति । वामात्प्रदक्षिण वामाक्षेप्या प्रकृष्ट दक्षिणम् । तथा च दक्षिणेऽधिकांशं स्थापयित्वा द्वार कुर्यादित्यर्थः । विस्तागद्विगुणोन्त्राय द्वार तुर्या-त्तया गृहे ” इति हृदयानन्दः ।

( ३ ) पूर्वोदिदिम् स्थितानां, गृहाणामष्टभागीकृतानां द्वागव्यवस्थामाह—तृतीयेति । प्राच्यां दिशि स्थितस्य गृहस्य तृतीयचतुर्थभागयोर्द्वारं शुभद् दक्षिणदिशि स्थितस्य गृहस्य चतुर्थभाग द्वाग् शुभद् पश्चिमगृहस्य चतुर्थपञ्चमभागयोर्द्वारं शुभद् । उत्तरगृह-स्य पञ्चमतृतीयचतुर्थभागेषु द्वारं शुभदिति एतदेव व्यक्तीकृत्योक्त राजमार्तण्डे— “ अनलभय स्त्रीजन्म प्रभूतधनतो नरेन्द्रसायुज्यम् । क्रोधपरतावृत्तत्वं क्रिये चोदिय च पूर्वणा अल्पसुखत्व प्रेष्य नीचत्व भक्ष्यपालसुतशब्दिः । रौद्र स्वनिधनमघन सुतवीर्यश्च याम्येन । सुनपीदारिपुशुद्धिर्धनसुननाशः सुनायचलसम्पत् । धनसम्पत्पतिमघ्न धनक्षयो रोग इत्य-परे । एधवन्धी रिपुशुद्धिर्धनसुनलाभः ममरनगणमपत् । पुत्रघनासिधेर मीम्येन दोष-त्रिया निःस्पृम् ” इति ।

**तुर्यपञ्चमयोः पञ्चत्रिंशत्तुर्येऽपि चोत्तरे ॥ ३७ ॥**

अर्थ-किस दीवालके कितने अंशमें घरका दरवाजा लगावै अब उसको वर्णन करते हैं, पूर्वदिशाके घरमें तीसरे अथवा चौथे भागके एकभागमें द्वार करना चाहिये, इसी प्रकार दक्षिण दिशाके घरके चौथे भागमें दरवाजा शुभ होता है, पश्चिमदिशाके घरका चौथे वा पांचवें भागके एकभागमें दरवाजा लगावै और उत्तरदिशाके घरका पांचवें तीसरे वा चौथे भागके एक भागमें दरवाजा लगाना चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ गृहारम्भे सूत्रच्छेदादिदोषकथनम् ।

**सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युः काले चावाङ्मुखे महात्रोगः ।**

**गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युर्वादेश्यः ॥ ३८ ॥ ( क )**

अर्थ-घर बनवानेके समयमें सूत्रादि छिन्न होनेसे जो फल होता है अब उसको वर्णन करते हैं सूत्र छिन्न होनेसे घरके मालिककी मृत्यु होती है कालके उखडनेसे महारोग होता है और घरके नापनके समयमें यदि गिनती भूलजाय तो घरके मालिककी और घर बनानेवालेकी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ गृहार्घ्यदानोपस्थापितकुम्भभंगादिदोषः ।

**स्कन्धाच्च्युते शिरोरुग्गलोपसर्गोऽपवजिते कुम्भे ।**

**भग्नेऽपि च कर्मिवधः कराच्च्युते गृहपतेर्मृत्युः ॥ ३९ ॥ ( ख )**

अर्थ-अब अर्घ्यके निमित्त स्थापित घटभंगआदि होनेसे जो दोष होता है उसको कहते हैं जल आते समयमें कुम्भ स्कन्धदेशसे खलित होनेमें घरके मालिकके शिरमें पीडा होती है, स्थापित कुम्भ किसी प्रकार अधोमुख होनेसे गलेमें रोग होता है घट भग्न होनेसे कुम्हारकी मृत्यु होती है और यदि कुम्भ हाथसे गिरजावे तो घरके मालिककी मृत्यु होती है ॥ ३९ ॥

अथ सूत्रदाने कुञ्जादिदर्शननिषेधः ।

**कुञ्जं वामनकं भिक्षुं वैद्यं रोगातरानपि ।**

( क ) सूत्रच्छेदादिफलमाह-सूत्रोति । सूत्रे छिन्ने गृहपतेर्मृत्युः स्यात् आरोपिते कालिके सूत्राकर्षणरेवाङ्मुखे उन्पादिते वा महान् रोगः स्यात् । मानकाले हस्तप्रमाणस्य स्मृतिलोपे भ्रान्ते गृहिणः कर्मणश्च मृत्युः स्यात् ।

( ख ) अर्घ्यार्थोपस्थापितस्य कलशस्य भङ्गादिफलमाह-स्कन्धादिति । जलानयनसमये स्कन्धाच्च्युते कुम्भे साति गृहपतेः शिरोरुग् अर्घ्यार्थोपस्थापिते कुम्भे अपवजिते किञ्चिदासङ्गादिना पतितत्वाद्वाङ्मुखे गृहपतेर्गलोपसर्गो गलरोगः स्यात् शेष सुगमामिति ।

दर्शने सूत्रकाले तु संत्यजेत्क्षेमहेतवे ॥ २४० ॥ (ग)

अर्थ—घर बनवानेके समय कुब्जादि दर्शनमें सूत्रपातादिक निषेध कहते हैं वरका मालिक यदि मङ्गलकी इच्छा करे तो घरके सूत्रपात समयमें कुब्ज, चामन, भिक्षुक, वैद्य और रोगी मनुष्यका दर्शन न करे ॥ २४० ॥

अथ सूत्रदानकाले हुलहुलादिश्रवणफलम् ।

श्रुतौ हुलहुलानाञ्च मेघानां गर्जितेन च ।

गजानामपि हंसानां ध्वनितं धनदं भवेत् ॥ ४१ ॥ (घ)

अर्थ—सूत्रपातसमयमें हुलहुलि ध्वनि ( द्वियोंके मङ्गलजनक मुखकी ध्वनि ) मेघोंकी गर्जना और हाथी और हंसकी ध्वनि श्रवण गोचर होनेसे धनप्रद होता है ॥ ४१ ॥

इति गृहारम्भः ।

अथ गृहप्रवेशः ।

( ङ ) ज्येष्ठापुनर्वसूवर्जं गृहारम्भोदितञ्च यत् ।

तत्सर्वं चिन्तयेद्देश्मप्रवेशे देवचिन्तकः ॥ ४२ ॥

अर्थ—अब गृहप्रवेशका मुहूर्त कहते हैं, जेष्ठा और पुनर्वसु, नक्षत्रको छोड़करके जो गृहारम्भोक्त नक्षत्र हैं उनमेंही गृहप्रवेश करना चाहिये इस वचनमें ज्येष्ठा और पुनर्वसु वर्जित इस व्यर्थ निषेधसे गृहप्रवेशमें उक्त दोनों नक्षत्र प्रशस्त हैं ॥ ४२ ॥  
अपि च ।

हस्तेपुण्यपुनर्वसौशतभिषाज्येष्ठास्वस्थो धातृभे ।

( ग ) सूत्रपातादिकाले कुब्जादिदर्शननिषेधमाह—कुब्जामिति । स्पर्शायम् ।

( घ ) सूत्रदानकाले हुलहुलादि श्रुतिफलमाह—श्रुताविति । हुलहुलानां स्त्रीकपोलध्वनीनां मेघगर्जितस्य श्रुतौ सत्यां धन स्यात् । शेषं सुगमम् । राजमातृण्डे । “ सूत्रे विस्तार्यमाणे तु दासोऽग्निप्रयोद दृश्यते । नरो वा वोढकारूढो रुमेद्राज्यं न संशयः । शततूर्यादिनिषेधे वसतिविपुला गृहे । योपिता कन्यकार्णा च क्रीडिते वित्तवर्द्धनम् ।

( ङ ) ज्येष्ठादितिभ्यां संपुक्तमित्यपि पाठान्तरमस्ति तदा व्यक्त एवार्थः । गृहप्रवेशमाह—ज्येष्ठोत् । गृहारम्भोक्तं यद्विधानं तत्सर्वं ज्येष्ठापुनर्वसुं च वर्जयित्वा गृहप्रवेशे देवज्ञो योजयेत् । अयमर्थः । अत्र ज्येष्ठापुनर्वसोर्निषेध उक्तः । अत्र निषेधस्य निषेधादिभिरिति अतो ज्येष्ठा पुनर्वसोः गृहप्रवेशः कार्यः । काश्चित्तु ज्येष्ठापुनर्वसुं वर्जयित्वा सामान्यनक्षत्रं यत् अन्यच्च गृहारम्भोक्तं यत् तत्सर्वं योजयेत् । तत्र । ज्येष्ठापुनर्वसोः पार्श्वोत्पणोक्तेन गृहप्रवेशे विहितत्वात् । तथाच राजमातृण्डे—“ज्येष्ठा पुण्य पुनर्वसु शतभिषा स्वाती तथा रोहिणो रेवत्युत्तरमत्रयं हरिमृगौ मूलापनिष्ठाकरः । कन्या कुम्भ मृगाश्रितिह मियुनस्पर्शद्विराशुद्रमे धारा जीव सुपर्श-सौम्यमृगुजा धेशमप्रवेशे दिनाः ” इति ।

खेत्युत्तरविष्णुभाग ( १ ) शशभृन्मूलेधनिष्ठासु च ॥

कन्याकुम्भवृपालिसिंहमिथुनेष्वृक्षोदयेऽकेशुभे

शुक्रेज्येन्दुजशीतरश्मिदिवसे वेश्मप्रवेशः शुभः ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, शतभिषा, ज्येष्ठा रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, मृगशिर, मूल और धनिष्ठा नक्षत्रमें, कन्या, कुम्भ, वृश्चिक, सिंह और मिथुन लग्नमें, गोचरमें सूर्य शुद्ध होनेसे शुक्र गृहस्पती, बुध और सोमवारमें गृहप्रवेश शुभ होता है ॥४३ ॥

अन्यच्च ।

सकलं हन्ति सा रिक्ता देवैरपि विनिन्दिता ।

इति वचनात्तिथिस्तु रिक्ताभिन्न एव ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रह ग्रन्थमें हृदयानन्दने कहा है कि, रिक्तातिथिमें कर्म नष्ट होता है, विशेषकरके देवताओंनेभी रिक्ता तिथिकी निन्दा करी है, अतएव रिक्ता भिन्न तिथिमेंही गृहप्रवेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अपरञ्च ।

स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशो गजवाजिवन्धः ।

ग्रामे प्रवेशो नगरे पुरे वा दिने प्रशस्तानि ज्ञानेश्वरस्याऽ४५ ॥

अर्थ—यज्ञीय यूपकाष्ठका स्थापन वा विसर्जन, गृहप्रवेश हाथी और घोड़े आदिका प्रथम खरीदना, ग्राममें वा नगरमें प्रवेशकरना इन सब कार्योंमें शनि वार प्रशस्त है ॥ ४५ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

गोपुच्छविन्यस्तकरः प्रविशेच्च गृहं गृही ।

अनुलिप्तः सुखी स्रग्वी सपत्नीकस्तथैव च ॥ ४६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चन्दनादिको लगाकर हर्षचित्तसे पुष्पोंकी मालाको धारण करके घरका मालिक पत्नीके साथ गौकी पूँछ पकडकर घरमें प्रवेश करे ॥ ४६ ॥

( १ ) भागशशभृदित्यत्र भागशभृदिति पाठो न्याय्य एव । भाग भगोदेवता अस्त्येति पूर्वाफाल्गुनत्थिर्यः । उग्रगणत्वेन पूर्वाफाल्गुन्या गृहारम्भे वर्जनादिति साप्रदायिकाः ।

अथ गृहप्रवेशविधिः ।

कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदल-

पुष्पफलापशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा

द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेषेण ॥ ४७ ॥ ( ❀ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब गृहप्रवेशकी विधि कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, घरका मालिक ब्राह्मण और दध्यक्षत ( दही और चावल ) आम्रकी शाखा, पुष्प, और फलसे उपशोभित पूर्णकुम्भको आगे करके ब्राह्मणको सुवर्ण और बछादि दान कसके नवीन घरमें प्रवेश करे ॥ ४७ ॥

अथ पारावतादिपोषणम् ।

पारावतमयूराश्च शुका वै सारिकास्तथा ।

गृहस्थेन सदा पोष्या आत्मनः श्रेय इच्छता ॥ ४८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ—महाभारतमें लिखा है, गृहस्थ मनुष्य अपने मङ्गलकी इच्छा करे तो पारावत ( कबूतर ) मयूर ( मोर ) शुक ( तोता ) और सारिका ( मयना ) को सर्वदा खिलावे ॥ ४८ ॥

सूर्यास्तात्परं गवादीनां गृहाद्गृहिनिष्कासननिषेधः

गोगजाश्वाविशालासु तत्पुरीपस्य निर्गमम् ।

अस्तं गते न कर्त्तव्यं देवदेवे दिवाकरे ॥ ४९ ॥

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, भगवान् सूर्यदेवके अस्त होजानेपर गाध हायी, घोडा और बकरी इनको घरके बाहर न निकालना चाहिये ॥ ४९ ॥

गृहपार्श्वेनिषिद्धवृक्षाः ।

वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्यं पुंसं ( ❀ ) दक्षिणतस्तथा ।

न्यग्रोधमपरादेशादुत्तराच्चाप्युदुम्बरम् ॥ २२० ॥

इति गोभिलः ।

अर्थ—गोभिलने कहा है कि, घरके पूर्व दिशामें पीपल, दक्षिणमें पाकड़,

( \* ) गृहप्रवेशविधिमाह—कृत्वेति । अग्रतो ब्राह्मणान् कृत्वा दध्यादिशोभित पूर्ण कुम्भं चामे कृत्वा पूजितद्विजेभ्यो हिरण्य वछाणि दत्त्वा माङ्गल्यकर्मणः शान्तिरर्मणश्च निलयं स्थानं गृहं प्रविशेत् । ( + मक्षः पर्कटी ।



पश्चिममें वट और उत्तरमें उदुम्बरके वृक्षको पारित्याग करे ॥ २५० ॥

फलम् ।

अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्यात्पुक्षो ब्रूयात्प्रमायुकाच्च ।

न्यग्रोधो राजसंपीडां कुक्ष्यामयमुदुम्बरः ॥ २५१ ॥

इति गोमिलः ।

अर्थ-घरकी पूर्वादिशामें पीपलका वृक्ष होनेसे अग्निका भय होता है, दक्षिणमें पाकडका वृक्ष होनेसे पित्तकी वृद्धि होती है, पश्चिममें वटका वृक्षहोनेसे राजपीडा होती है और घरके उत्तरमें गूलरका वृक्ष होनेसे उदरामय रोग होता है ॥ २५१ ॥

इति वंशावरेल्यांतर्वात्तिकांन्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रे त्रिपाठ्युपनाम-  
केन पाण्डित बँकेलालात्मजेन श्यामुन्दरशर्मणा सम्पादिते भाषाटीका  
विभूषिते च ज्योतिषतत्त्वमुधारणवे जातककर्मादि  
गृहप्रवेशान्तश्चतुर्थस्तरङ्गः ।

## पञ्चमस्तरङ्गः ५.

अथ देवताघटनम् ।

ध्रुवलघुमृदुवर्गं वारुणे विष्णुदैवे मरुदादितिधनिष्ठे

शोभने वासरे च ॥ त्रिदशमदनजन्मेकादशे

शीतरश्मौ विबुधकृतिरभिष्टा नाडिनक्षत्रहीने ॥ १ ॥ ( क )

अर्थ-अब देवताओंकी प्रतिमा बनानेका सुहूर्त कहते हैं-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, अश्विनी, हस्त, चित्रा, अश्लेषा, शतभिषा, श्रवण, स्वाति, पुनर्वसु और धनिष्ठा नक्षत्रमें, शुभ-अहोके वारमें गोचरमें चन्द्रमा तीसरे, दशवे, सातवे, जन्मका अथवा ग्यारहवें स्थानमें स्थित होनेसे, नाडी नक्षत्रहीन दिनमें देवताओंकी प्रतिमाको निर्माण करना चाहिये ॥ १ ॥

( क ) देवताघटनमाह-श्रुतेति । विष्णुदैवो यस्य स विष्णुदैवः श्रवणः शोभने वासरे शुभग्रहस्य वारे जन्मराशेः सकाशात् त्रिदशमदनजन्मेकादशस्थे जन्मादिनाडीनक्षत्रहीने च चन्द्रे विबुधकृतिदेवताकरणमिष्टा । इति ।

अथ सामान्यदेवताप्रतिष्ठा ।

शस्तेन्दौ माघपट्टके शुभदिवसतिथौ गोगुरुशुक्रशुभलग्ने  
वित्तद्वन्द्वहियुग्मादितिहयभरणीयुग्विशाखान्येषु ।

क्षीणं पष्ठाष्टमेन्दुं हरिशयनमसद्युक्तलग्नञ्च हित्वा

केन्द्रे जीवे च शुक्रे त्रिभवरिपृष्ठहेऽस्तसु देवप्रतिष्ठा ॥ २ ॥ (ख)

अर्थ-अब सामान्यदेवताओंकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहते हैं-गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे, माघादि छः महीनोंके मध्यमें, शुभग्रहोंके वारमें, शुभतिथिमें, वृष, धन, मीन, मिथुन और कन्यालग्नमें, धनिष्ठा, शताभिषा, आश्लेषा, मघा, पुनर्वसु, आश्विनी, भरणी, कृत्तिका और विशाखा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, लग्नके छठे आठवें और क्षीण चन्द्रमाको छोड़कर, श्रीहरिका शयनसमय और पापयुक्त लग्नको परित्याग करके केन्द्रस्थानमें बृहस्पति और शुक्र स्थित होनेसे और तीसरे ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रहोंके होनेसे देवताओंकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ २ ॥

आपिच ।

प्रतिष्ठा सर्वदेवानां केशवस्य विशेषतः ।

उत्तरायण आपन्ने शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥

कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामष्टम्याञ्चैव शस्यते ॥ ३ ॥

इति व्यवहारसमुच्चये ।

अर्थ-व्यवहारसमुच्चय ग्रन्थमें लिखा है कि, उत्तरायणमें, शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमें और कृष्णपक्षकी पञ्चमी और अष्टमीतिथिमें सब देवताओंकी प्रतिष्ठा करी जासक्ती है, किन्तु विशेषकरके उक्त दिनोंमें विष्णुकीही प्रतिष्ठा प्रशस्त है ॥३॥

अन्यच्च ।

युगादावयने पुष्ये कर्त्तव्यं विपुत्रद्वये ।

चन्द्रसूर्यग्रहे वापि दिने पुष्येऽथ पर्वसु ॥ ४ ॥

( ख ) सामान्यदेवताप्रतिष्ठामाह-शस्तेन्दाधिति । गोचरशुद्धे चन्द्रे माघादौ पट्टके च मासि शुभवारे शुभतिथौ वृषधनुर्मानामिथुनकन्यालग्ने वित्तद्वन्द्वं धनिष्ठाशताभिषा आदि-युग्मेऽश्लेषामघायाम् आदितिः पुनर्वसुः हयोऽश्विनी भरणी गुरु भरणी कृत्तिका विशाखा एतदन्येषु भेषु लग्नात् पष्ठाष्टमस्थं चन्द्रं क्षीणचन्द्रञ्च हित्वा हरिशयनं पापयुक्तलग्नञ्च हित्वा एतीर्यैकादशपष्ठेषु पापेषु देवप्रतिष्ठा कार्या । इति ।

या तिथि ( × ) र्यस्य देवस्य तस्यां वा तस्य दक्षिणे ।  
गृह्यागमविशेषेण प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी ॥५॥

इति भुजबलभीमपराक्रमे ।

अर्थ-भुजबलभीमपराक्रमे लिखा है कि-युगादिमें, दोनों अयन संक्रान्तिमें, दोनों विषुव संक्रान्तिमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें पुण्याहमें, पर्वके दिनमें और जिस देवताकी जो तिथि कही है उसमें और टीका देनेके दिनमें अपनी अपनी गृह्याक्त प्रतिष्ठा मुक्तिकी देनेवाली होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वासुदेवप्रतिष्ठा ।

प्राजेशवासवकरादितिभाशिनीपुष्यमरेज्यशशिं ( ✽ )

भेषु तथोत्तरासु ॥ कर्तुः शुभे शशिनिकेन्द्रगते च जीवे ।

कार्या हरेः शुभतिथौ विधिवत्प्रतिष्ठा ॥ ६ ॥ ( क )

अर्थ-अथ विष्णुभगवान्की प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त कहते हैं रोहिणी, ज्येष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तरामाद्रपदा नक्षत्रमें कर्त्ताके गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे बृहस्पति केन्द्रस्थानमें होनेसे शुभतिथिमें विष्णुभगवान्की प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ६ ॥

हरेः प्रतिष्ठायां तिथिशेषकथनम् ।

द्वादशैकादशैराका शुक्ले शुक्ले च पञ्चमी ।

अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां हरेः शुभा ॥ ७ ॥ ( ख )

अर्थ-विष्णुकी प्रतिष्ठामें तिथिविशेष कहते हैं, द्वादशी, एकादशी, पूर्णिमा,

( + ) प्रतिपद्भनदस्योक्ता पवित्रारोहणे तिथिः ।

श्रिया देव्या द्वितीया च तृतीयामुत्तमा स्मृता ॥ १ ॥

चतुर्थी तत्सुतस्य च ।

पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गृहस्य च ॥ २ ॥

सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी तिथिः ।

मातृणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुकेस्तथा ॥ ३ ॥

एकादशी ऋषिणाश्च द्वादशी चक्रपाणिनः ।

त्रयोदशी त्वनङ्गस्य शिवस्य च चतुर्दशी ॥ ४ ॥

मम चापि मुनिश्रेष्ठ योगीमासी तिथिः स्मृता ॥ ५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे ।

( × ) अश्विनीशु इति पाठान्तरम् ।

( क ) विष्णुप्रतिष्ठामाह-प्राजेशेति । प्राजेशो रोहिणी आदितिभ पुनर्वसुः अम-  
रेज्यः पुष्यः लग्नात्केन्द्रस्थे जीवे शेष स्पष्टमिति ।

( ख ) हरिप्रतिष्ठाया तिथिविशेषमाह-द्वादशीति । राका पूर्णिमा पञ्चमी अष्टमी  
च पक्षद्वयेऽपि शस्ता इत्यर्थः ।

दोनों पक्षोंकी पञ्चमी और अष्टमी इन सब तिथियोंमें विष्णुकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ महेशादिप्रतिष्ठा ।

पुष्याश्विश्क्रभगदैवतवासवेपुसौम्यानिलेशमघ  
रोहिणिमूलहस्ते ॥ पौष्णानुराधहरिभेषु पुनर्वसौ च  
कार्याभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठा ॥ ८ ॥ ( ग )

अर्थ—वृक्ष और शिवादिकी प्रतिष्ठाका सुहूर्त्त कहते हैं. पुष्य, अश्विनी, ज्येष्ठा, पूर्वाफाल्गुनी, धनिष्ठा, मृगशिर, स्वाति, आर्द्रा, मघा, रोहिणी मूल, हस्त, रेवती, अनुराधा, श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्रमें अभिषेक, वृक्षकी प्रतिष्ठा और शिवकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अथ परीक्षाकरणम् ।

नो शुक्रास्तेऽष्टमेकं गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ  
विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ ।  
नाडीनक्षत्रहीने गुरुरविरजनीनाथताराविशुद्धौ  
प्रातः कार्या परीक्षा द्वित्तनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने ॥ ९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब परीक्षा करनेका सुहूर्त्त कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, शुक्रके अस्त न होनेसे और गोचरमें सूर्य आठवें न होय, शुर्वादित्ययोग, जन्ममास, अष्टमचन्द्रमा, विष्टि, ( भद्रा ) मलमास, मङ्गल और शनिवार, जन्मतारा और नाडीके नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, वृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा और तारा शुद्ध होनेसे ब्यात्मफ और चरलग्नके नवांशमें प्रशस्त लग्नमें प्रातःकालके समय परीक्षा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

अपिच ।

नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे ।  
न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने तथा ॥ १० ॥

इति व्यवहारचिन्तामणी ज्योतिषतत्त्वे च ।

अर्थ—व्यवहारचिन्तामणिग्रन्थमें और ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, अष्टमी

( ग ) वृक्षादिप्रतिष्ठा—पुष्येति । भगदैवत पूर्वाफाल्गुनी वसुः देवतमस्येतिवासवो धनिष्ठा अभिषेकयुक्ता तरुभूतपति प्रतिष्ठा कार्या शिवाभिषेकः तरुप्रतिष्ठा भूतपति प्रतिष्ठा च भूतपतिमहेशस्तस्य प्रतिष्ठा कार्या एवं पुष्करिणीसेतुमठादिप्रतिष्ठा शेष स्पष्टम् । इति । अथैव योगाभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठायाः पठन्ति ।

और चतुर्दशी तिथिमें प्रायश्चित्त और परीक्षा निषेध है, शनि और मङ्गलवारमें विवाह और परीक्षा न करनी चाहिये किसी २ आचार्यके मतसे शनि और मङ्गलवारमें प्रायश्चित्तकाभी निषेध है ॥ १० ॥

अथ दीक्षाग्रहणम् ।

ध्रुवमृदुनक्षत्रगणो रवि शुभवारे सत्तिथौ दीक्षा ।

स्थिरलग्ने शुभचन्द्रे केन्द्रे कोण शुभे गुरौ धर्मे ॥ ११ ॥ (❀)

अर्थ-अब दीक्षा ग्रहण करनेका मुहूर्त्त कहते हैं-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवतीनक्षत्रमें रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुकवारमें, शुभतिथिमें, स्थिरलग्नमें, चन्द्रमा शुद्ध होनेसे लग्नके केन्द्रस्थानमें और त्रिकोणमें शुभग्रह होनेसे और बृहस्पतिके नववें स्थानमें स्थित होनेसे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ दीक्षाया मासकथनम् ।

मधुमासे भवेदुःखं माघवे रत्नसञ्चयः ।

मरणं भवति ज्येष्ठे आपाठे बन्धुनाशनम् ॥ १२ ॥

समृद्धिः श्रावणे नूनं भवेद्भाद्रपदे क्षयः ।

प्रजानामाश्विने मासि सर्वतः शुभमेव हि ॥ १३ ॥

ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि ।

पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम् ॥

फाल्गुनेऽपि विवृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

इति दीक्षामलमासतत्त्वयोः ।

अर्थ-अब दीक्षाग्रहण करनेके महीनोंका फल कहते हैं-चैत्रके महीनेमें दीक्षा ग्रहण करनेसे दुःख प्राप्त होता है । इसी प्रकार वैशाखमें रत्नोंका सञ्चय, ज्येष्ठमें मरण, आपाठमें बान्धवोंका नाश, श्रावणमें समृद्धिलभ, भाद्रपदमें प्रजाका नाश, आश्विनेमें सर्वप्रकारसे शुभ, कार्तिकमें सुख, अग्रहायणमें भी सुख, पौषमें ज्ञानका नाश, माघमें मेधाकी वृद्धि और फाल्गुनके महीनेमें मन्त्रग्रहण करनेसे शुभ होता है किन्तु इन महीनोंके मध्यमें जो किसी महीनेमें मलमास होय तो उसमें दीक्षा ग्रहण न करना चाहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

(\*) दीक्षाग्रहणमाह-ध्रुवेति । रविवारे शुभग्रहवारे च गोचरशुभे चन्द्रे लग्नात् केन्द्र-त्रिकोणे शुभग्रहे नमस्ये गुरौ दीक्षा कार्येत्यर्थः । दीक्षाविचारस्तु तन्त्रप्रसिद्धत्वान्न-लिखितः । इति ।

अथ दीक्षायाः वारादिकथनम् ।

गुरौ रवौ दिने ( १ ) शुक्रे कर्त्तव्यं बुधसोमयोः ।

अश्विनीरोहिणी ( २ ) स्वातिविशाखाहस्तभेषु च ।

ज्येष्ठोत्तर ( ३ ) त्रयेष्वेवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ १५ ॥

इति मलमासतत्त्वे ।

अर्थ—अथ दीक्षाग्रहण करनेके वारादि कहते हैं—मलमासतत्त्वमें लिखाहै कि, बृहस्पति, रवि, शुक्र, बुध और सोमवारमें अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें मन्त्र-ग्रहण करना चाहिये ॥ १५ ॥

अपिच ।

शुक्रपक्षे च कृष्णे वा दीक्षा सर्वसुखावहा ।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ १६ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिखा है कि—शुक्रपक्षमें वा कृष्णपक्षमें दीक्षाग्रहण करनेसे सुख होता है. पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथिमें दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे सोदये शशितारयोः ।

गुरुशुक्रोदये शुद्धलग्न्ये द्वादशशोधिते । ( ❀ )

चन्द्रातारानुकूल्ये च शस्यते सर्वकर्म च ॥ १७ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिखा है कि—तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग और चन्द्रमा

( १ ) 'गुरौ रवौ शनी सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः' । इति पाठान्तरम् ।

( २ ) 'अश्विनी भरणी स्वाति' इति पाठान्तरम् ।

( ३ ) 'ज्येष्ठोत्तरादश्विनोभिव' इत्यपि दीक्षातत्त्वे पाठान्तरम् ।

( ४ ) पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे तिथिवारनक्षत्रकरणयोगशुद्धिदिवसे । तथा च महाकपिल पञ्चरात्रम् । एव नक्षत्रतिथ्यादी करणे योगवासरे । मन्त्रोपदेशो गुरुणा साधकस्य शुभा-  
वहः । सोदये शशितारयोरिति जन्मचन्द्रावतारयोरानुकूल्यसहिते गुरुशुक्रोदये गुरुशु-  
क्रानस्तसमये एतत्तु समयशुद्धान्तरोपलक्षणम् द्वादश शोधिते द्वादशशोधिते इति  
मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

जन्मतारा शुद्ध होनेसे कालशुद्धिमें, शुद्ध लग्नके द्वादशांशमें सब कर्मही प्रशस्त हैं अतएव इसमें दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ १७ ॥

सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ १८ ॥

न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि । ( १ )

ददातीष्टं गृहीतं यत्तस्मिन्काले गुरोर्नृषु ॥

सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन सेव्यतः ॥ १९ ॥

इति दीक्षातत्त्वे ।

अर्थ—दीक्षातत्त्वमें लिख है कि—सूर्य ग्रहणके समान दूसरा कोई समय नहीं है, इस समयमें जो कार्य करे उसका अनन्त फल होता है और संक्रान्तिमें भी मास, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण प्रभृतिका शुद्ध अशुद्ध विचार नहीं होता है उक्त समयमें गुरुके निकटसे इष्टमन्त्र ग्रहणकरनेसे अनायासमेंही सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

रोहिणीश्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।

पुष्या शतभिषाकाँ ( २ ) च दीक्षानक्षत्रमुच्यते ॥ २० ॥

इति वीरतन्त्रे ।

अर्थ—वीरतन्त्रमें लिखा है कि—रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य, शतभिषा और हस्तनक्षत्र दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं ॥ २० ॥

योगाश्च प्रीतिरायुष्मान्सांभाग्यः शोभनो धृतिः ।

वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्रश्च हर्षणः ॥ २१ ॥

वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्म इन्द्रश्च षोडश ।

शुभानि करणानि स्युर्दीक्षायां तु विशेषतः ।

शकुन्यादीनि विष्टिश्च विशेषेण विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—रत्नावलीग्रन्थमें लिखा है कि—प्रीति, आयुष्मान्, सांभाग्य, शोभन,

( १ ) “ अमा वै सोमवारे च भोमवारे चतुर्दशी । चतुर्थ्यङ्गारवारे च सूर्यपर्वशतेः समा ”

( २ ) अर्को हरतः ॥

धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्र, हर्षण, वरीयान्, सिद्ध, ब्रह्मा और ऐन्द्र इन सोलह योगोंमें, शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न और विष्टे भिन्न-करणमें दीक्षाकर्म प्रशस्त है ॥ २१ ॥ २२ ॥

कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां पूर्वपञ्चदिने तथा ॥ २३ ॥ ❀

अर्थ--कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथि और प्रतिपदासे पञ्चमातिक तिथियोंमें दीक्षाकर्म प्रशस्त है ॥ २३ ॥

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।

अत्र लग्नादिकं किञ्चिदविचार्य कथञ्चन ॥ २४ ॥

इति ज्ञानमालायाम् ।

अर्थ--ज्ञानमालामें लिखा है कि--संक्रान्तिमें और सूर्यग्रहणमें दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछ भी नहीं देखा जाता है ॥ २४ ॥

यदेवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः ।

न तिथिर्न व्रतं होमो न स्नानं न जपक्रिया ।

दीक्षायां कारणं किन्तु स्वेच्छावासे तु सद्गुरौ ॥ २५ ॥

इति तत्त्वसागरे ।

अर्थ--तत्त्वसागरमें लिखा है कि, जिस समय इच्छा होय तभी गुरुकी आज्ञासे क्रमानुसार मन्त्रकी ग्रहण करसक्ता है. तिथि, व्रत, होम, स्नान और जपादि कुछभी दीक्षामें कारण नहीं है, केवल सद्गुरुकी इच्छानुसारही मन्त्रग्रहण करना चाहिये ॥ २५ ॥

शिष्यत्रिजन्मदिवसे संप्राप्ते विपुवायने ।

सत्तीर्थेऽर्कविधुयासे तन्तुदामनपर्वणोः ( + )

मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥ २६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि--शिष्यके त्रिजन्मदिनमें, विपुवसंक्रान्तिमें और अयनसंक्रान्तिमें, महातीर्थमें, सूर्य और चन्द्र ग्रहणमें, श्रावणी पूर्णिमामें और चैत्रशुक्र चतुर्दशी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे मास, नक्षत्र, तिथ्यादिका विचार नहीं होता है ॥ २६ ॥

इति स्मार्त्तधृतदीक्षाकालः ।

( \* ) कृष्णपक्षे इति शेषः ।

( + ) तन्तुपर्व परमेश्वरोपरि तद्दानतिः-श्रावणा पूर्णिमा । दामनपर्व्यं मर्दनभञ्जन तिथिश्चैत्रशुक्र चतुर्दशीति स्मार्त्तनाभिहितम् ।



अथ तन्त्रसारोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

तत्र मासनिर्णयः ।

मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः ।

वशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे तु मरणं भवेत् ॥ २७ ॥

आषाढे ( अ ) बन्धुनाशः स्यात्पूर्णाद्युः श्रावणे भवेत् ।

प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥ २८ ॥

कार्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथा भवेत् ।

पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ।

फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ॥ २९ ॥ (आ)

इति गौतमीये ।

१. अर्थ-अब तन्त्रशास्त्रकी रीतिसे दीक्षा ग्रहण करनेके महीनोंको कहते हैं-गौतमी तन्त्रमें लिखा है कि, चैत्रके महीनेमें गोपालका मन्त्र ग्रहण करनेमें समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं वैशाखमें मन्त्र ग्रहण करनेसे रत्न प्राप्त होते हैं इसी प्रकार ज्येष्ठमें मन्त्रग्रहण करनेसे मृत्यु होता है, आषाढमें बान्धवोंका नाश होता है. आश्विनमें रत्नोंका सञ्चय होता है, कार्तिकमें और अग्रहायणमें मन्त्रसिद्धि होजाती है, पौषमें शत्रुद्वारा पीडा होती है, माघमें मेधाकी वृद्धि होती है और फाल्गुनके महीनेमें मन्त्रके ग्रहणकरनेसे सम्पूर्ण कामना पूर्ण होती है, किन्तु मलमासके महीनेमें मन्त्रको ग्रहण न करना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अपिच ।

मन्त्राद्यारम्भणं मेघे धनधान्यप्रदं भवत् ।

वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशनम् ॥ ३० ॥

कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात्सिंहे मेधाविनाशनम् ।

कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥ ३१ ॥

( अ ) 'ज्येष्ठे मृत्युप्रदा चैव आषाढे सुखसम्पदः' इति योगिनीहृदयात् आषाढे दीक्षाग्रहणे निन्दा श्रीविद्यायां नास्ति ।

( आ ) चैत्रे तु गोपालविषय गौतमीयोक्तत्वात् यथा " मधुमासे भवेद्दीक्षा दुःखाय मरणाय च " इति वचनात्प्रान्यत्र । अत्र च मासः सौर एव 'सोरे मासि शुभा दीक्षा न चान्द्रे न तारके' इति गौतमीयात् ।

वृश्चिके स्वर्णलाभः स्याद्भ्रुमानविनाशकः ।

मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भो धनसमृद्धिदः ।

मीनो दुःखप्रदो नित्यमेवं मासविधिक्रमः ॥ ३२ ॥

इति वैशम्पायनसंहितायाम् ।

अथ-वैशम्पायन संहितामें लिखा है कि-वैशाखमें मंत्रग्रहण करनेसे धनधान्यका लाभ होता है, इसी प्रकार ज्येष्ठमें मृत्यु होती है-आषाढमें सन्ततिका नाश होता है-श्रावणमें सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, भाद्रपदमें मेधाका नाश होता है, श्रावणमें दीर्घायु होती है, भादोंमें सन्ततिका नाश होता है आश्विनमें लक्ष्मीकी वृद्धि होती है, कार्तिकमें सब सिद्धियाँ प्राप्त होती, अश्लेषा में स्वर्णलाभ होता है, पौषमें मानहानि होती है, माघमें पुण्यका सञ्चय होता है, फाल्गुनमें धन मिलता है और चैत्रके महीनेमें मन्त्रग्रहण करनेसे सर्वदा दुःख भागी होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ दीक्षायास्तिथिनिर्णयः ।

प्रतिपदि कृता दाक्षा ज्ञानकाशकरी मता ।

प्रतिपत्तिद्वितीयायां ( १ ) तृतीयायां शुचिर्भवेत् ॥ ३३ ॥

चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात्पञ्चम्यां बुद्धिवर्धनम् ।

षष्ठ्यां ज्ञानक्षयं सौख्यं लभते सप्तमीदिने ॥ ३४ ॥

अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः ।

दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत् ॥ ३५ ॥

द्वादश्यां सर्वांसिद्धिः स्यात्रयादश्यां दरिद्रता ।

तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां शनिर्मासावसानके ॥ ३६ ॥

पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं ( २ ) विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-अथ दीक्षाका तिथिनिर्णय कहते हैं-प्रतिपत्ति तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे ज्ञानका नाश होता है, इसी प्रकार द्वितीयामें प्रतिपत्ति (लाभ) होता है, तृतीयामें पवित्रता प्राप्त होती है, चतुर्थीमें अयका नाश होता है, पञ्चमीमें बुद्धि बढ़ती है षष्ठीमें ज्ञानका नाश होता है सप्तमीमें सुख प्राप्त होता है, अष्टमीमें बुद्धिका नाश होता

( १ ) द्वितीयायां जनेऽज्ञानम् इत्यपि पाठः ।

( २ ) "सन्ध्यागर्जितनिर्घोष भक्त्यपोलकानिपातने । एतानन्यांश्च दिवसान्द्रुत्सुकान्परिषर्जयेत् ॥"

हे नवमीमें देहका नाश होता है, दशमीमें राजसौभाग्य प्राप्ति होती है, एकादशीमें पवित्रता प्राप्त होती है, द्वादशीमें सर्व सिद्धियां करतलगत हो जाती हैं, त्रयोदशीमें दरिद्रता प्राप्त होती है, चतुर्दशीमें तिर्यग्योनि प्राप्त होती है, अमावास्यामें नाश होता है और पूर्णिमातिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है, किन्तु उक्त तिथि यदि मासविशेषमें वा अन्य किसी कारणसे अस्वाध्यायमें निन्दित होय तो उसमें मन्त्रग्रहण न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अपिच ।

द्वितीया पञ्चमी चैव षष्ठी चैव विशेषतः । (क)

द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं त्रयोदश्यामथापि वा ॥ ३८ ॥

इति रामार्चनचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-द्वितीया, पञ्चमी, षष्ठी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिमें मन्त्रग्रहण करे किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, षष्ठी और त्रयोदशी तिथि विष्णुके मन्त्रग्रहण करनेमेंही प्रशस्त है, इस प्रकार रामार्चनचन्द्रिकामें लिखा है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

पञ्चमी सप्तमी षष्ठी द्वितीया पूर्णिमा सिता ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ॥ ३९ ॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे ।

अर्थ-सनत्कुमारतन्त्रमें लिखा है कि, पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा और शुक्लपक्षकी त्रयोदशी और दशमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करना चाहिये उक्त समस्त तिथियोंमें मन्त्रग्रहण करनेसे सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ ३९ ॥

अपरञ्च ।

चतुर्थी पञ्चमी चैव चतुर्दश्यामपि तथा ।

तिथयः शुभदाः प्रोक्ता दीक्षाग्रहणकर्माणि ॥ ४० ॥ (ख)

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ-तन्त्रान्तरमें लिखा है कि-चतुर्थी, पञ्चमी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथि दीक्षाविषयमें शुभदायक होती हैं, किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, चतुर्दशी

(क) इति यत् षष्ठीत्रयोदशीविधानं तद्विष्णुविषय रामार्चनचन्द्रिकाभूतरत्नम् । इति कृष्णानन्दः ।

(ख) अत्र वचने चतुर्दश्यामपि शक्तिविषय चतुर्थी तु गणेशविषय तत्तत्कल्पोक्तत्वात् । इति तन्त्रसारे कृष्णानन्दः ॥

और अष्टमी तिथि शक्तिदीक्षामें प्रशस्त हैं और चतुर्थी तिथिमें गणेशका मन्त्र-ग्रहण करनेसे शुभफल प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

शुक्रपक्षस्य दशमी सप्तमी च विशेषतः ।

निन्द्या सदैव पृथी स्यादिति शैवागमान्तरे ॥ ४१ ॥

अर्थ-शुक्रपक्षकी दशमी, सप्तमी और पृथी तिथि दीक्षाविषयमें निन्दित हैं इस प्रकार शैवागममें लिखा है अत एव इन सब तिथियोंमें शिवमन्त्र ग्रहण न करना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथ दीक्षायाः वारनिर्णयः ।

रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत्किल ।

आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

बुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञान स्यात्तु बृहस्पतो ।

शुके सौभाग्यमाप्नोति यशोहानीः शनैश्चरे ॥ ४३ ॥

इति तन्त्रान्तरे ।

अर्थ-दीक्षाके वार कहते हैं--तन्त्रान्तरमें लिखा है कि, रविवारमें मन्त्रग्रहण करनेसे धन प्राप्त होता है, इसी प्रकार सोमवारमें शान्ति प्राप्त होती है, मङ्गलवारमें आयुका नाश होता है, बुधवारमें सौन्दर्य प्राप्त होता है, बृहस्पतिवारमें ज्ञान प्राप्त होता है, शुक्रवारमें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है और शनिवारमें मन्त्रग्रहण करनेसे यशकी हानि होती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ दीक्षायाः नक्षत्रनिर्णयः ।

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ॥

कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥

मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।

पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥ ४५ ॥

आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।

सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥ ४६ ॥

ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तायाश्च धनी भवेत् ।

चित्रायां ज्ञानासिद्धिः स्यात्स्त्रात्यां शत्रुविनाशनम् ॥ ४७ ॥

विशाखायां सुखं चानुराधायां बन्धुवर्द्धनम् ।

ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलायां कीर्तिवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥

पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्तिदायिके ।

श्रवणायां भवेदुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता ॥ ४९ ॥

बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत् ।

सौख्यञ्चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्तिवर्धनम् ॥ ५० ॥

अर्थ-अब दक्षिणके नक्षत्र कहते हैं-अश्विनी नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करनेसे सुख प्राप्त होता है इसी प्रकार भरणीमें मृत्यु होती है, कृत्तिकामें दुःख होता है, रोहिणीमें बृहस्पतिके तुल्य होता है, मृगशिरमें सुख होता है, आर्द्रामें बुद्धिका नाश होता है, पुनर्वसुमें धन प्राप्त होता है, पुष्यमें शत्रुओंका नाश होता है, आश्लेषामें मृत्यु होती है मघामें दुःखकी शान्ति होती है, पूर्वाफाल्गुनीमें सौंदर्यलाभ होता है, उत्तराफाल्गुनीमें ज्ञानका उदय होता है, हस्तमें धनप्राप्ति होती है चित्रामें ज्ञानकी सिद्धि होती है, स्वातिमें शत्रुओंका नाश होता है विशाखामें सुख प्राप्त होता है, अनुराधामें बान्धवोंकी वृद्धि होती है. ज्येष्ठामें सुतकी हानि होती है, मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढामें कीर्तिकी वृद्धि होती है, श्रवणमें दुःख होता है, धनिष्ठामें दरिद्रता प्राप्त होती है, शतभिषामें बुद्धिकी वृद्धि होती है पूर्वाभाद्रपदामें और उत्तराभाद्रपदामें सुख प्राप्त होता है और रेवती नक्षत्रमें मन्त्र ग्रहण करनेसे प्रतिष्ठा बढ़ती है ॥ ४४-५० ॥

अपिच ।

आर्द्रायां कृत्तिकायाञ्च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते ।

यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भौ यथाक्रमात् ॥ ५१ ॥

अथ-आर्द्रा और कृत्तिका नक्षत्रमें मन्त्रको ग्रहण न करै, किन्तु आर्द्रा नक्षत्रमें शिवमन्त्र और कृत्तिकानक्षत्रमें अग्निके मन्त्रको ग्रहण करना चाहिये ॥५१॥

अपरञ्च ।

अश्विनीभरणीस्वतिविशाखाहस्तभेषु च ।

ज्येष्ठोत्तरात्रये चैवं कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ ५२ ॥ ( × )

अर्थ-अश्विनी, भरणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-

( + ) इति ज्येष्ठा भरण्योर्विधान तदगस्त्यसहितोक्तत्वात् ।

पौषे च नवमा शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।

फाल्गुने नवमा (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥६२॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—अत्र निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं—भादोंकी पष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी ( काम ) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सब तिथियोंमें मासादिका विचार नहीं होता है ॥ ६१॥ ६२ ॥

अन्यत्र ।

“वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।

आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥

एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।

अत्र दीक्षा प्रकर्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥

न वारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।

न योगकरणं चैव शंकरेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—अत्र देवपर्वको वर्णन करते हैं—वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, ( अक्षय्य तृतीया ) ज्येष्ठका दशहरा, ( शुक्लपक्षकी दशमी ) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन ( नागपञ्चमी ) सब तिथियोंको देवपर्व कहते हैं, उक्त सब तिथियोंमें पुण्यकर्म करनेसे कीर्त्तिकोटीका फल प्राप्त होता है और यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नहीं होती है और वार, नक्षत्र, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेका भी प्रयोजन नहीं होता है इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहा है ॥६३--६५॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।

ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥

श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।

आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

( क ) फाल्गुने दशमी शुक्लोति पाठः ।

( ख ) चैत्रे कामचतुर्दशी इति क्वाचित्पाठः ।

कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी ( कामत्रयोदशी ) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आपाढकी नागपञ्चमी ( कृष्णपक्षकी पञ्चमी ) श्रावणकी एकादशी, भाद्रोंकी रोहिणी युक्त अष्टमी ( जन्माष्टमी ) आश्विनकी महाष्टमी ( शुक्लपक्षकी अष्टमी ) कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी ( जगद्धात्री नवमी ) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी, पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि ! दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्तरोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्माणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-शिवजीने कहाहै कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

पादा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करना चाहिये, इस वचनमें जो ज्येष्ठा और मरणी नक्षत्रमें मन्त्रग्रहण करनेका विधान है उसको अगस्त्यसंहितोक्त जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ दीक्षायाः योगकथनम् ।

शुभः सिद्धस्तथायुष्मान्ध्रुवयोगस्ततः परम् ।

प्रीतिः सौभाग्ययोगश्च वृद्धियोगस्ततः परम् ।

हर्षणश्च तथा योगाः सर्वतन्त्रे शुभावहाः ॥ ५३ ॥

इति विश्वसारतन्त्रे ।

अर्थ-विश्वसारतन्त्रमें लिखा है कि-शुभ, सिद्ध, आयुष्मान्, ध्रुव, प्रीति सौभाग्य वृद्धि और हर्षण इन सब योगोंमें दीक्षा प्रशस्त है ॥ ५३ ॥

अथ दीक्षायाः करणनिर्णयः ।

वववालवकौलवतैतिल (, १ ) स्तदनन्तरम् ।

करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम् ॥ ५४ ॥

अथ-अब दीक्षाविषयमें प्रशस्तकरण कहते हैं-वव, बालव, कौलव, तैतिल यह सब दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं किन्ती २ आचार्यके मतसे गर और शणिज करण भी दीक्षामें प्रशस्त हैं ॥ ५४ ॥

अथ दीक्षायाः लग्ननिर्णयः ।

वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नेके ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्तनम् ॥ ५५ ॥

अथ-अब दीक्षामें प्रशस्तलग्नोंको कहते हैं-वृष, सिंह, कन्या, धनु और मीनलग्नेमें चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे दीक्षाग्रहण करनी चाहिये ॥ ५५ ॥

अपिच ।

स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम् ।

द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ-अब लग्नसम्बन्धमें विशेष कहते हैं वृष, सिंह वृश्चिक और कुम्भ लग्नेमें विष्णुके मन्त्रको ग्रहण करे. मेष, कर्क तुला और मकर इन सब लग्नोंमें

( १ ) गत्वरजस्तदनन्तरम् । इति कश्चिदुक्तके पाठः ।



कार्तिके नवमी शुक्ला मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी ( कामत्रयो-  
दशी ) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आपादकी  
नागपञ्चमी ( कृष्णपक्षकी पञ्चमी ) श्रावणकी एकादशी, भादोंकी रोहिणी  
युक्त अष्टमी ( जन्माष्टमी ) आश्विनकी महाष्टमी ( शुक्लपक्षकी अष्टमी ) कार्ति-  
कके शुक्लपक्षकी नवमी ( जगद्धात्री नवमी ) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी,  
पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी  
यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास  
तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ—योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि !  
दाक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें,  
चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्त-  
रोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी  
मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे  
अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विज्ञेयतां महादेवि दीक्षाग्रहणकर्माणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ—शिवजीने कहा है कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

पौषे च नवमा शुक्ला माघे शुक्ला चतुर्थिका ।

फाल्गुने नवमा (क) शुक्ला चैत्रे कामचतुर्दशी ॥६२॥ (ख)

इति रत्नावल्याम् ।

अर्थ—अब निषिद्ध मासादिमें तिथिविशेषकी प्रशस्तता कहते हैं—भाद्रकी पष्ठी तिथि, आश्विनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, अग्रहायणके शुक्लपक्षकी तृतीया, पौषकी शुक्लनवमी, माघके शुक्लपक्षकी चतुर्थी, फाल्गुनके शुक्लपक्षकी नवमी और चैत्रमासके शुक्लपक्षकी ( काम ) चतुर्दशी तिथि, मन्त्रग्रहणमें प्रशस्त हैं अर्थात् उक्त सब तिथियोंमें मासादिका विचार नहीं होता है ॥ ६१॥ ६२ ॥

अन्यत्र ।

वैशाखे चाक्षया चैव ज्येष्ठे दशहरा तिथिः ।

आषाढे नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥ ६३ ॥

एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलं लभेत् ।

अत्र दीक्षा प्रकर्तव्या न मासञ्च परीक्षयेत् ॥ ६४ ॥

न वारं न च नक्षत्रं न तिथ्यादिकदूषणम् ।

न योगकरणं चैव शंकरेणेति भाषितम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—अब देवपर्वको वर्णन करते हैं—वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, ( अक्षय्य तृतीया ) ज्येष्ठका दशहरा, ( शुक्लपक्षकी दशमी ) आषाढके शुक्लपक्षकी नवमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी पञ्चमी इन ( नागपञ्चमी ) सब तिथियोंको देवपर्व कहते हैं, उक्त सब तिथियोंमें पुण्यकर्म करनेसे कोटितीर्थोंका फल प्राप्त होता है और वह सब तिथियें दीक्षाविषयमें अतिप्रशस्त हैं इनमें दीक्षाग्रहण करनेसे मासपरीक्षा नहीं होती है और वारं, नक्षत्रं, तिथि, योग और करण इनके विचार करनेका भी प्रयोजन नहीं होता है इस प्रकार देवादिदेव महादेवजीने कहा है ॥६३॥-६५॥

चैत्रे त्रयोदशी शुक्ला वैशाखैकादशी सिता ।

ज्येष्ठे चतुर्दशी कृष्णा आषाढे नागपञ्चमी ॥ ६६ ॥

श्रावणैकादशी भाद्रे रोहिणी सहिताष्टमी ।

आश्विने च महापुण्या महाष्टम्यप्यभीष्टदा ॥ ६७ ॥

( क ) फाल्गुने दशमी शुक्लेति पाठः ।

( ख ) चैत्रे कामत्रयोदशी इति काचित्पाठः ।

कार्तिके नवमी शुक्ल मार्गशीर्षे तथा सिता ॥

पष्ठी चतुर्दशी पौषे माघेऽप्येकादशी सिता ॥

फाल्गुने च सिता पष्ठी चेति कालविनिर्णयः ॥ ६८ ॥

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, चैत्रके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी ( कामत्रयो-  
दशी ) वैशाखके शुक्लपक्षकी एकादशी, ज्येष्ठके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, आषाढकी  
नागपञ्चमी ( कृष्णपक्षकी पञ्चमी ) श्रावणकी एकादशी, भाद्रोंकी रोहिणी  
युक्त अष्टमी ( जन्माष्टमी ) आश्विनकी महाष्टमी ( शुक्लपक्षकी अष्टमी ) कार्ति-  
कके शुक्लपक्षकी नवमी ( जगद्धात्री नवमी ) अग्रहायणके शुक्लपक्षकी पष्ठी,  
पौषकी चतुर्दशी, माघके शुक्लपक्षकी एकादशी और फाल्गुनके शुक्लपक्षकी पष्ठी  
यह सब तिथियें दीक्षाविषयमें प्रशस्त हैं और इनमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मास  
तिथि और नक्षत्रादिके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ६६॥६८ ॥

अपरञ्च ।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

रविसंक्रातिदिवसे युगाद्यायां सुरेश्वरि ।

मन्वन्तरासु सर्वासु महापूजादिने तथा ॥ ६९ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें महादेवजीने पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे सुरेश्वरि !  
दाक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें, विषुव और जलविषुव संक्रान्तिमें,  
चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें, अन्य साधारण संक्रान्तिमें, युगाद्यामें, सब मन्वन्त-  
रोंमें और महाष्टमी और महानवमीमें दीक्षाग्रहण अतिपुनीत होता है, इसमें भी  
मास, तिथि, नक्षत्रादिका विचार नहीं होता है, परन्तु साधारण संक्रान्तिसे  
अयन और विषुव संक्रान्तिमें मन्त्रग्रहण अधिक पुनीत होता है ॥ ६९ ॥

अपिच ।

निन्दितेष्वपि कालेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे तु वा ।

सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्तिभूतले ॥ ७० ॥

विशेषतो महादेवि दीक्षाग्रहणकर्मणि ।

तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ-शिवजीने कहा है कि, हे देवि ! निन्दित कालमें भी ग्रहणके समान

दूसरा काल मन्त्रग्रहणमें नहीं है, विशेषकरके दीक्षामें सूर्यग्रहणके समान पुण्यकाल पृथिवीमें और नहीं है, सूर्यग्रहणके समय जिस किसी पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया जाय तो उसमें अनन्तफल प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अन्यच्च ।

रविसंक्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा ।

तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्य कथञ्चन ॥ ७२ ॥

अर्थ-संक्रान्तिके पुण्यकालसमयमें और सूर्यग्रहणके कालमें दीक्षाग्रहण करनेसे लग्नादि कुछभी विचार नहीं होता है ॥ ७२ ॥

अपरञ्च ।

रविसंक्रमणे चैव नान्यदन्वेपितं भवेत् ।

न वारतिथिमासादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥ ७३ ॥

अर्थ-संक्रान्तिके पुण्यकालमें और ग्रहणसमयके कालमें मन्त्र ग्रहण करनेसे मास तिथि और वारादिके शुभाशुभ देखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७३ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

देव्यावोधं समारभ्य यावत्स्यान्नवमीतिथिः ।

कृते तस्य शुभा दीक्षा सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ७४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, भगवती दुर्गा देवीके बोधनसे महानवमीतक जो पन्द्रह तिथि हैं उनमें दीक्षाग्रहण करनेसे सम्पूर्ण अभीष्टसिद्धि होती है ॥ ७४ ॥

तत्रापि शावरीपूजा यत्र देवि गृहे गृहे ।

तत्र दीक्षा प्रकर्तव्या मासक्षादीन्न शोधयेत् ॥ ७५ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, जिस समयमें घर २ के प्रती भगवती शारदा देवीका पूजन होवे उस समयमें भी दीक्षाग्रहणकरनेसे मास, नक्षत्र और तिथ्यादिका विचार नहीं होता है ॥ ७५ ॥

अन्यच्च ।

शुक्लपक्षे विशेषेण तत्रापि तिथिरष्टमी ।

बोधने चैव दुर्गायाः कालकालं न शोधयेत् ॥ ७६ ॥

इति रुद्रयामले ।

अर्थ-रुद्रयामलमें लिखा है कि, भगवती दुर्गादेवीके बोधनमें विशेष करके

महाष्टमी तिथिमें मन्त्रग्रहण करनेसे कालाकालका विचार नहीं होता है॥ ७६ ॥

अपरञ्च ।

न कुर्याच्छाक्तिकीं दीक्षामुपरक्ते विभावसौ ।

न कुर्याद्विष्णुवन्तान्तु यदि चन्द्रमसो ग्रहः ॥७७ ॥ (क)

इति सूत्रयामले ।

अर्थ-रुद्रयामलमें लिखा है कि, सूर्यग्रहणमें शक्तिमन्त्र न ग्रहण करे और चन्द्रग्रहणमें विष्णुमन्त्रका निषेध है [ किन्तु गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि, चन्द्रग्रहणमें और सूर्यग्रहणमें विष्णुका मन्त्र ग्रहणकरना चाहिये और योगिनी हृदयमें भी सूर्यग्रहणके समय शक्तिमन्त्रके ग्रहणकरनेको कहा है इस विरोधकी सीमांसा तन्त्रसारमें कृष्णानन्दमहाचार्यने इस प्रकार करी है कि, सूर्यग्रहणमें श्रीविद्याका मन्त्र ग्रहण करै और चन्द्रग्रहणमें गोपालमन्त्रका ग्रहणकरना चाहिये, इसके अतिरिक्तमें निषेधका सार्थक होता है ॥ ७७ ॥

सूर्यग्रहणे विशेषमाह ।

श्रीपराकालीबीजानि लोपादौर्गश्च यो मनुः ।

सूर्यस्योपग्रहे लब्धो नृणां शीघ्रफलप्रदः ॥ ७८ ॥

अर्थ-मन्त्रग्रहणके विषयमें सूर्यग्रहणमें, विशेष कहते हैं, यथा-श्रीबीज, मायाबीज, कालीबीज लोपादुर्गाका मन्त्र यदि मान्यवशासे किसी मनुष्यको सूर्यग्रहणकालमें प्राप्त होय तब वह मन्त्र शीघ्र फलदान करता है ॥ ७८ ॥

अथ तारादिविद्यायां विशेषः ।

दीक्षाकालं प्रवक्ष्यामि नीलतन्त्रानुसारतः ।

कृष्णपक्षस्य चाष्टम्यां शुभे लग्ने शुभे क्षणे ॥ ७९ ॥

पूर्वाभाद्रपदायुक्ते मित्रतारादिसंयुते ।

अथवा अत्रुराधायां रेवत्यां वा प्रज्ञस्यते ॥ ८० ॥

अर्थ-अब तारादिविद्याकी दीक्षाविषयमें नीलतन्त्रोक्त लक्षण कहते हैं, कृष्ण-पक्षकी अष्टमी तिथिमें शुभलग्ने 'शुभ घडीमें' पूर्वाभाद्रपदा, अत्रुराधा, अथवा रेवती नक्षत्रमें मित्रादि ताराहोनेसे दीक्षा प्रज्ञस्त है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

( क ) एतच्च गोपालश्रीविद्येतरविषयम् । अन्येषु पुण्ययोगेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो-  
रिति गौतमीयात् । सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषित भवेदिति योगिनीहृदयाच्च । इति  
तन्त्रसारे कृष्णानन्देनोक्तम् ॥

अन्यच्च ।

जानीयाच्छोभनं कालं मन्त्रस्य ग्रहणं प्रति ।

इपे चैव विशेषेण कार्तिके च विशेषतः ॥ ८१ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, मन्त्रके ग्रहणविषयमें आश्विन और कार्तिक मासही अधिक प्रशस्त है ॥ ८१ ॥

सूर्यग्रहणसमकालकथनम् ।

अमावस्या सोमवारे भौमवारे चतुर्दशी ।

सप्तमी रविवारे च सूर्यग्रहणैः समा ॥ ८२ ॥

अर्थ-अब सूर्यग्रहणके समानकाल कहते हैं-सोमवारमें अमावस तिथि मङ्गलवारमें चतुर्दशी और रविवारमें सप्तमी तिथि होनेसे शत ( १०० ) सूर्य ग्रहणके समान काल होता है ॥ ८२ ॥

अशोकाष्टम्यां विशेषमाह ।

अशोकाख्याष्टमी यत्र रामाख्या नवमी तथा ।

लग्ने वाप्यथवाऽलग्ने यत्र तत्र तिथावपि ॥ ८३ ॥

गुरोराज्ञानुसारेण दीक्षा कार्या विशेषतः ॥ ८४ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, अशोकाष्टमी तिथि वा श्रीरामनवमी तिथिमें लग्नके शुद्ध होनेसे वा अशुद्ध होनेसे भी दीक्षाग्रहण की जाती है और विशेषकरके गुरुकी आज्ञानुसार हरेक तिथिमें दीक्षा हो सकती है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे नास्ति कालस्य निर्णयः ॥ ८५ ॥

इति योगिनीतन्त्रे ।

अर्थ-योगिनीतन्त्रमें लिखा है कि, महातीर्थमें और ग्रहणसमयमें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८५ ॥

अपिच ।

पुण्यतीर्थे कुरुक्षेत्रे देवीपीठचतुष्टये ।

प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥ ८६ ॥

इति यामले ।

अर्थ-यामलमें लिखा है कि, पुण्यतीर्थमें, कुरुक्षेत्रमें, महादेवीकी पीठचतुष्ट-

यमें, प्रयागमें, श्रीशैलपर्वतमें और काशीधाममें कालाकालका विचार नहीं होता है ॥ ८६ ॥

युगाद्यायां विशेषः ।

युगाद्यायां जन्मदिने विवाहदिवसे तथा ।

विषुवायनयोर्द्वन्द्वे नैव किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ८७ ॥

इति समयातन्त्रे ।

अर्थ-समयातन्त्रमें लिखा है कि, चारों युगोंके आदिकी तिथिमें, जन्मदिनमें, विवाहके दिनमें, विषुवसंक्रान्ति और अयनसंक्रान्तिमें, मन्त्रादिके ग्रहणमें कुछ भी विचार नहीं होता है ॥ ८७ ॥

अकालदो दीक्षानिषेधः ।

अस्तंगते दैत्यगुरौ शिशौ च वृद्धेऽथ बाले च गुरौ तथैव ।

भवेन्न दीक्षायहणं शुभाय जीवातिचारे मलमाससंज्ञे ॥ ८८ ॥

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमें लिखा है कि, शुक्र, बुध वा बृहस्पतिके अस्त, वृद्ध अथवा बाल्य होनेसे और बृहस्पतिके वक्ती होनेसे वा मलमासमें दीक्षायहण न करना चाहिये ॥ ८८ ॥

अन्यच्च ।

जीवे हरौ दैत्यगुरौ ससूर्ये केतूद्रमे भूचलनादिदोषे ।

अकालवृष्टौ जलदे सगर्जे दीक्षा भवेन्नैव च साधकानाम् ॥ ८९ (१) ॥

इत्यागमार्णवे ।

अर्थ-आगमार्णवमें लिखा है कि, बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित होनेसे अथवा शुक्र वा सूर्यके साथ स्थित होनेसे, धूमकेतुके उदयमें, भूमिकम्पादिमें, अकालवृष्टिमें और सन्ध्यागर्जनमें वा अकालमें मेघके गर्जनेसे साधकको दीक्षायहण न करनी चाहिये ॥ ८९ ॥

अकाले प्रातिप्रसवमाह ।

शुक्राऽस्ते यदि वा वृद्धौ गुर्वादित्यो भवेद्यदि ।

मेपवृश्चिकसिंहेषु यदा दोषो न विद्यते ॥ ९० ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ-पूर्वोक्त अकालके प्रातिप्रसव कहते हैं-वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, मेप,

( १ ) एतत्सर्वं कालाशुद्धिप्रदर्शकम् । अशुद्धकालमुक्त्वा । “परोक्षारामयज्ञाश्च पुरश्चरणदीक्षणे” इत्यनेन ज्योतिषे दीक्षानिषेधदर्शनात् ।

चूप वा सिंहराशिमें शुक्र अस्त वा वृद्ध होनेसे और उक्त सब राशियोंमें शुक्रादि-  
त्ययोगके लिये अकाल नहीं होता है ॥ ९० ॥

अन्यच्च ।

श्रीगुरोर्दर्शनाद्देवि ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

न चात्र नियमं कुर्याद्दीक्षायाः कालदेशयोः ॥९१॥(२)

इति यामले ।

अर्थ—यामलमें लिखा है कि, गुरुके दर्शन पानेसे, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें  
दीक्षाका काल और देशका नियम प्रतिपालन न करनेसे भी दोष नहीं होता है ॥९१॥

अथ महाविद्याविषये विशेषफलकथनम् ।

महाविद्यासु सर्वासु कालादिविचारो नास्ति

तदुक्तं दश महाविद्यामधिकृत्य ।

कालादिशोधनं नास्ति न चामित्रादिद्वूपणम् ॥ ९२ ॥

इति मुण्डमालातन्त्रे ।

अर्थ—मुण्डमालातन्त्रमें लिखा है कि, दशमहाविद्याके मन्त्रग्रहणकरनेमें  
कालाकालकी न देखना चाहिये और अमित्रादिकाभी विचार न करना  
चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ दशमहाविद्याकथनम् ।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥ ९३ ॥

बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।

एता दशमहाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९४ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे चामुण्डातन्त्रे च ।

अर्थ—अब दशमहाविद्याको वर्णन करते हैं, निरुत्तर और चामुण्डातन्त्रमें  
लिखा है कि, काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती,  
बगलामुखी, मातङ्गी और कमला, इनकोही दशमहाविद्या और सिद्धिविद्या कहते  
हैं किन्तु इनके मध्यमें विशेष यही है कि, काली और ताराको महामहाविद्या  
और सिद्धिविद्या कहते हैं और बगलाको सिद्धसिद्धिविद्या और महाविद्यानामसे  
कहते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

( २ ) निपिद्धदेशमाह—“गयाया भास्करक्षेत्रे विरजे चन्द्रप्रवृत्ते । चट्टले च मतङ्गे च  
तथा कन्याश्रमेषु च । न गृह्णीयात्ततो दीक्षां तीर्थेष्वेतेषु पार्वति ” इति ।



नात्र कालविशुद्धिः स्यात्समयासमयादिकम् ।  
न वारतिथिनक्षत्रं न योगः करणं तथा  
सिद्धविद्यामहाविद्यायुगसेवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९५ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-निरुत्तरतन्त्रमें लिखा है कि, अठारह महाविद्या सिद्धविद्या इत्यादिके मन्त्र ग्रहण करनेमें कालाकाल न देखना चाहिये, वार, तिथि और नक्षत्र देख-नेकीभी आवश्यकता नहीं और योगकरणादिके शुद्धाशुद्ध विचार करनेका प्रयो-जन नहीं है । किन्तु सिद्धविद्या और महाविद्याकी युगसेवा करनी चाहिये ॥ ९५ ॥

अष्टादशमहाविद्यामाह ।

काली तारा तथा छिन्ना मातङ्गी भुवनेश्वरी ।  
अन्नपूर्णा तथा नित्या दुर्गा महिषमर्दिनी ॥ ९६ ॥  
त्वरिता त्रिपुरा त्रिपुटा भैरवी बगला तथा ।  
धूमावती तथा ज्ञेया कमला च सरस्वती ॥ ९७ ॥ ॥  
जयदुर्गा तथा भद्रा तथा त्रिपुरसुन्दरी ।  
अष्टादश महाविद्यास्तन्त्रादौ कथिताः प्रिये ॥ ९८ ॥

इति निरुत्तरतन्त्रे ।

अर्थ-अब अष्टादश महाविद्याको कीर्त्तन करते हैं-निरुत्तरतन्त्रमें सदाशिव महादेवजीने स्वयं पार्वतीके प्रति कहा है कि, हे प्रिये ! काली, तारा, छिन्नमता, मातङ्गी, भुवनेश्वरी, अन्नपूर्णा, नित्या, दुर्गा, महिषमर्दिनी, त्वरिता, त्रिपुरभै-रवी, त्रिपुटाभैरवी, बगला, धूमावती, कमला, सरस्वती, जयदुर्गा और त्रिपुर-सुन्दरी ( पौडशी ) इन अठारह महाविद्याओंको मैंने तुम्हारे निकट अन्यान्य तन्त्रमें भी कही हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

गुरुकृपाऽयं दीक्षाकालः ।

शिष्यानाह्वय गुरुणा कृपया दीयते यदि ।  
तदा लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्य कथञ्चन ॥ ९९ ॥

इति विष्णुयामले ।

अर्थ-विष्णुयामलमें लिखा है कि, जिस किसी कालमें दीक्षाग्रहण करनेको कहा है गुरुदेव कृपाकर जिस समयमें शिष्यको मन्त्रग्रहण करावे उसी कालमें

वह मन्त्र शुभदायक होता है इसमें लग्नादि किसीका भी विचार न करना, चाहिये ॥ ९९ ॥

अपिच ।

सर्वे वारा ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः ।

यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः ॥ १०० ॥

इति समयान्तन्त्रे ।

अर्थ—समयातन्त्रमें लिखा है कि, गुरुदेव प्रसन्न होकर जिस दिन शिष्यको मन्त्र प्रदान करे उसी समयमें वार, तिथि, ग्रह और नक्षत्रादि सभी शुभफल प्रदान करते हैं ॥ १०० ॥

इति तन्त्रशास्त्रोक्तदीक्षाकालकथनम् ।

अथ पुरश्चरणकालः ।

चैत्रे मास्यथवा कुर्याच्छुभक्षे गुरुशासनात् ।

द्वादश्यां शुक्लपक्षे च माघवे मासि तत्तिथौ ।

आरभेदमलायां वै पुरश्चर्यां सुसिद्धये ॥ १ ॥

इति गौतमीये ।

अर्थ—अथ पुरश्चरण करनेका समय कहते हैं—गौतमीयतन्त्रमें लिखा है कि चैत्रके महीनेमें, शुभ नक्षत्रमें, गुरुकी आज्ञानुसार अथवा वैशाखके महीनेकी शुक्लाद्वादशी तिथिमें गुरुकी आज्ञानुसार पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥१॥

चन्द्रताराब्रह्मण्ये च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।

आरभेन्मकरादौ च सुप्ते विष्णौ जपेन्नच ॥ २ ॥

इति वैशम्पायनसहितायाम् ।

अर्थ—वैशम्पायनसंहितामें लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे शुक्लपक्षमें शुभदिनमें माघसे आदि लेकर छः महीनेमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये, किन्तु श्रीहरिके शयनकालमें पुरश्चरणका आरम्भ न करे ॥ २ ॥

चन्द्रताराब्रह्मण्ये च शुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।

आरभेयुः पुरश्चर्यां हरौ सुप्ते न चाचरेत् ॥ ३ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ—वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, चन्द्रमा और ताराके शुभ होनेसे शुक्लपक्षमें, शुभ दिनमें, श्रीहरिके जाग्रतकालमें पुरश्चरणका आरम्भ करना चाहिये ॥३॥

अन्यच्च ।

कार्तिकाश्विनवैशाखमाघे वा मार्गशीर्षके ।

फाल्गुने श्रावणे दीक्षा पुरश्चर्या प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति वाराहीतन्त्रे ।

अर्थ-वाराहीतन्त्रमें लिखा है कि, कार्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, अग्रहा-  
यण, फाल्गुन और श्रावणमासमें दीक्षा और पुरश्चरण प्रशस्त है ॥ ४ ॥

अपरश्च ।

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधवासरे ।

चन्द्रतारानुकूल्ये च पुरश्चरणमाचरेत् ॥ ५ ॥

इति वाराहातन्त्रे ।

अर्थ-रवि, बृहस्पति, शुक्र, सोम और बुधवाग्में चन्द्रमा और ताराके  
शुद्ध होनेसे पुरश्चरण करना चाहिये । वाराहीतन्त्रके वचनान्तरमें इस प्रकार  
कहा है ॥ ५ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

रोहिणी श्रवणार्द्रा च धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् ।

पुष्या शतभिषा शस्ता पुरश्चरणकर्मसु ॥ ६ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ-नारदतन्त्रमें लिखा है कि-रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा, उत्तराफा-  
ल्गुनी, उत्तरापादा, उत्तरामाद्रपदा, पुष्य और शतभिषा नक्षत्रमें पुरश्चरणका  
प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ६ ॥

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।

त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकर्मणि ॥ ७ ॥

इति नारदतन्त्रे ।

अर्थ-नारदतन्त्रके वचनान्तरमें कहा है कि-पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी  
त्रयोदशी और दशमी तिथिमें सभी कर्म प्रशस्त हैं ॥ ७ ॥

सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तुदामनपर्वणोः ।

पुरश्चर्या प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोषयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-सुन्दर तीर्थमें, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणमें, श्रावणी, पूर्णिमामें और  
चैत्रके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीमें पुरश्चरणके प्रारम्भ करनेमें मास और नक्षत्रादिका  
विचार नहीं होता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

ग्रहणे च महातीर्थे न कालमवधारयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, ग्रहणमें और महातीर्थमें ( गङ्गादिमें ) पुरश्चरणका आरम्भ करनेसे कालाकालका कुछ प्रयोजन नहीं होता है ॥ ९ ॥  
इति पुरश्चरणकालः ।

अथ ज्ञान्तिपुष्टि कथनम् ।

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च

शुभराशीन्दुलग्नेषु शुभं ज्ञान्तिकपौष्टिकम् ॥ ११० ॥ (क)

अर्थ-अब ज्ञान्ति और पुष्टिकर्मको कहते हैं-शुभग्रहोंके वारमें, रविवारमें, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, पुष्य, अश्विनी, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमें, शुभराशिमें, गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे और शुभलग्नेमें ज्ञान्तिक और पौष्टिक कर्म करना चाहिये ॥ ११० ॥

अथ हलप्रवाहः ।

पूर्वाग्निवाम्यफणिचित्रशिवायन्यभेषु

रिक्ताष्टमीविगतचन्द्रतिथिं विहाय ।

द्वयङ्गालिगोसमुदये विकुजाकिंवारे

ज्ञान्तेन्दुयोगकरणेषु हलप्रवाहः ॥ ११ ॥ (ख)

अर्थ-अब हलारम्भ करनेका मुहूर्त्त कहते हैं-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, भरणी, आश्लेषा चित्रा और आर्द्राइन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, रिक्ता, अष्टमी और अमावास्या मित्रतिथिमें, मङ्गल और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें, शुभचन्द्रमा, शुभयोग और शुभकरणमें, व्यात्मक, वृश्चिक और वृष लग्नेमें हल प्रवाह करना अर्थात् हल चलाना चाहिये ॥ ११ ॥

( क ) ज्ञान्तिकर्मणः पुष्टिकर्मणश्च विधिमाह-शुभेति । शुभग्रहवारे रविवारे च मृदुलघुध्रुवगणेषु शुभराशी गोचरशुद्धे चन्द्रे शुभलग्ने ज्ञान्तिकं पौष्टिकञ्च कुर्यादिति ।

( ख ) हलप्रवाहमाह-पूर्वेति । पूर्वाग्निवाम्यफणिचित्राश्लेषादिभ्यारिक्तेषु नक्षत्रेषु रिक्ताष्टमी विगतचन्द्रमावस्याञ्च त्यक्त्वा अन्यतिथौ द्व्यात्मकलग्ने वृश्चिकवृषलग्ने च मङ्गलशनिवारं त्यक्त्वा हलप्रवाहः कार्यः । तिथिदोषमाह-कृषिपराशरः “ सस्यक्षयं प्रतिपादि द्वादश्यां वधवधनम् । बहुविघ्नकरी पष्टी कुहूः कृपकनाशिनी । हन्त्यष्टमी बलीवर्दानवमी सस्यवातिनी । चतुर्थी कीटजननी पातं हन्ति चतुर्दशी ” अथ शुभतिथिमाह-“ दशम्येकादशी चैव द्वितीया पञ्चमी तथा । त्रयोदशी चतुतीया च सतमी च शुभावहा ” अथ वाराणाह-“ मीमांसादिक्से चैव तथैव शनिवासरे । कृषिकर्मसमाप्त्ये

अपि च ।

संक्रान्त्यां पौर्णमास्याञ्च ह्यमावास्यां तथैव च ।

हलस्य वाहनात्पापं गवामयुतहत्यया ॥ १२ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ-स्मृतिमें लिखा है कि, संक्रान्ति, पूर्णिमा और अमावस्या तिथिमें हलको न चलाना चाहिये जो मनुष्य उक्तसमयमें, हल चलाते हैं उनको अयुत ( दश हजार ) गोहत्याका पाप होता है ॥ १२ ॥

अन्वय ।

रिक्ताष्टमीविष्टिषु नष्टचन्द्रे क्षीणेन्दुभौमार्कजवासरेषु ।

निरंशके वा निशि सन्ध्ययोर्वा कृता कृपिः पूर्वफलं निहन्ति ॥ १३ ॥

अर्थ-रिक्ता, अष्टमी, विष्टि ( भद्रा ) और अमावस्या तिथिमें, क्षीण चन्द्रमार्गमें, मङ्गल और शनिवारमें, संक्रांतिमें रात्रिमें वा सन्ध्यासमयमें कृपिकार्य करनेसे पूर्वके अनुसार फल होता है ( अर्थात् ) अयुत गोहत्याका पातक लगता है ॥ १३ ॥

अपरश्च ।

वामे कृष्णं बलीवद्धं दक्षिणे लोहितं न्यसेत् ।

-राजोपद्रवमादिशेत्" अत्र च नक्षत्रमाह पराशरः-“अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसो । पुन्यश्रवणहस्तासु कुर्याद्धलप्रसारणम् ” अथ लग्नमाह-“वृषे भीमे च कन्यायां युग्मे घनापि वृश्चिके । एतेषु शुभलग्नेषु कुर्याद्धलप्रसारणम् ” तथा पाराशरः-“भेषलग्ने पशुं हन्यात्कर्कटे जलज भयम् । सिंहे सर्पभयं चैव कुम्भे चौरभयं भवेत् । मकरे सस्यनाशः स्यात्तुलायां प्राणसंशयः । तस्माल्लग्नं प्रयत्नेन कृष्णारम्भे विचारयेत्” तथा-“स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा यथाधिधि । पृथिवीं ग्रहसंपुक्तां पृथुं चैव प्रजापतिम् । सम्पूज्यात्प्रोक्ष्य द्विज देव कुर्याद्धलप्रसारणम् । छिन्नरेखा न कर्त्तव्या यथा प्राह पराशरः । एका तिस्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्त्तिताः । एका जयकरी रेखा तृतीया चार्यसिद्धिदा । पञ्चसंख्या तु या रेखा बहुसस्यप्रदायिनी । हलप्रसारणं येन न हृतं मृगकुम्भयोः । गृहस्थस्य कृशा तस्य फलदा कृपिकर्मणि” इति । भेषे पशुविनाशः स्यार्कर्कटे जलज भयम् । सिंहे सस्यविनाशः स्यात्तुलायां प्रवराक्षतिः । मृगे शशुभयं विद्यात् कुम्भे चौर समादिशेत् । समृज्य कनकेः फाल लेपयेन्मधुसर्पिणा । एका तिस्रस्तथा पञ्च हलरेखाः प्रकीर्त्तिताः । उत्तराभिमुखो भूत्वा कृपकः कृपिमारभेत् । एका रेखा शुभा प्रोक्ता त्रिरेखा वृद्धिदायिनी । पञ्चरेखा बहुफला करोति धरणीषु च । अत ऊर्ध्वं प्रजुर्वाणो महापातकमाप्नुयात् । गोषु पीडा भवेन्नित्यं दृष्टिनाञ्च भयं तथा ” इति सारसंग्रहे हृदयानन्दः ।

उत्तराभिमुखो भूत्वा कर्षकः कृपिमारभेत् ॥ १४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है कि, वामदिशामें कृष्णवर्णका बैल और दाक्षिण-दिशामें लोहित वर्णके बैलको खडाकरके हल जोतनेवाला मनुष्य उत्तरको मुख करके कृषिकार्यका आरम्भ करे ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

हले तु योजिते यत्र क्षेत्रे आसं करोति गाः ।

तत्र स्याद्विगुणं शस्यमवश्यं गर्गभाषितम् ॥ १५ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है, कि, हलमें जुतकर बैल यदि खेतमें घासको खाय तो उस खेतमें दूना नाज उत्पन्न होता है, गर्गमुनिने इस प्रकार कहा है ॥ १५ ॥

अथ बीजवपनम् ।

हलप्रवाहवद्बीजवपनस्य विधिः स्मृतः ।

चित्रायां च शुभे केन्द्रे स्थिरस्वमनुजोदये ॥ १६ ॥ ( १ )

अर्थ—अब बीज बोनेकी विधि कहते हैं, हलमें कहे हुए नक्षत्रोंमें और चित्रा-नक्षत्रमें, लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह होनेसे वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ-लग्नमें, अपनी जन्मलग्नमें और मिथुन, तुला, कन्या और धन लग्नके पूर्वार्द्धमें बीज बोना चाहिये ॥ १६ ॥

( १ ) बीजवपनमाह—हलेति । हलप्रसारणे यो विधिः बीजवपनेऽपि सः किन्तु हल प्रवाहः चित्रायां निषिद्धः बीजवपन कार्यमित्यर्थः । केन्द्रस्थे शुभग्रहे स्थिरलग्ने वृषसिंह-वृश्चिककुम्भलग्ने मिथुनतलावटकन्याषतुःपूर्वाह्णेषु कर्त्तव्यमित्यर्थः । विशेषमाह पराशरः “वेशाखे वपन श्रेष्ठं ज्येष्ठे च रोहिणी रवौ । आपादे चाधम प्राहुः श्रावणे चाधमाध-मम् । रोपण सर्वसस्यानां श्रेष्ठ हि मिथुने रवौ । श्रावणे मध्यम प्रोक्तं भाद्रे मध्यममध्य-मम् ” वपनविधिमाह पराशरः—“क्षेत्रमध्ये स्वयं गत्वा द्विराचम्य समाहितः । सकल्पं कारयेद्बीमान्वास्तिवाचनपूर्वकम् । गणनायादिकं देवं पूजयित्वा विधानतः । प्रादुसुलः कलश घृत्वा पठेन्मन्त्रं विधानतः । ॐ वसुधारेऽसिते देवि बहुसस्यफलप्रदे । देवराशि नमस्तुभ्यं शुभगे सस्यकारिणि । रोपणे सर्वसस्यानां काले मेघः प्रवर्षतु । सुस्या भवन्तु कृपका धनधान्यसमृद्धिभिः । तथा “ हिमवारिणि सिक्तस्य बीजस्य तन्मनाः शुचिः । इन्द्र चित्ते समाधाय स्वयं मुष्टित्रयं वपेत् । कृत्वा धान्यस्य पुण्याहं कृषका हृष्टमानसाः । दिव्यगन्धैश्च पुष्पैश्च तदलकृतवान्गृही । कृत्वा तु वपन क्षेत्रे कृपाणां घृतपायसैः । भोज-यित्वा तु ते तृषा निविन्ना जायते कृपिः ” इति ।

अपिच ।

सुखदा प्रतिपच्चैव द्वितीया कार्यसाधिनी ।

आरोग्यदा तृतीया च चतुर्था कीटकृत्सदा ॥ १७ ॥

पञ्चमी श्रीप्रदा नूनं पष्ठी च कलहप्रिया ।

सप्तमी स्थानदा भोग्या वृषं हन्ति तथाष्टमी ॥ १८ ॥

नवमी सस्यनाशाय दशमी भूतिदा सदा ।

एकादशी तथा कुर्याद्धनं धान्यं मनोरथम् ॥ १९ ॥

द्वादशी प्राणसन्देहा सर्वसिद्धा त्रयोदशी ।

चतुर्दशी पार्ति हन्ति पञ्चदश्येव निष्फला ॥ २० ॥

इति कृत्यचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणीमें लिखा है कि, प्रतिपदामें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे सुख प्राप्त होता है, इसी प्रकार द्वितीयामें कार्यका साधन होता है, तृतीयामें आरोग्यताप्राप्ति होती है, चतुर्थामें कीटद्वारा नाजका नाश होता है, पञ्चमीमें श्री ( लक्ष्मी ) प्राप्ति होती है, पष्ठीमें कलह होता है, सप्तमीमें स्थान और भोगकी वृद्धि होती है, अष्टमीमें बैलकी मृत्यु होती है, नवमीमें नाजका नाश होता है, दशमीमें पेश्वर्यलाभ होता है, एकादशीमें धन धान्य और मनोरथसिद्धि होती है, द्वादशीमें प्राणका संशय होता है, त्रयोदशीमें सर्वप्रकारकी सिद्धियां प्राप्ति होती हैं, चतुर्दशीमें खेतके मालिककी मृत्यु होती है और पूर्णिमा और अमावस्यामें खेती आरम्भ करनेसे निष्फल होजाती है ॥ १७-२० ॥

अन्यथा ।

अमावास्याष्टमीपष्ठीरिक्ताश्च परिवर्जयेत् ।

सौरिभौमदिने चैव कृष्यारम्भे धनक्षयः ॥ २१ ॥

इति बलभद्रः ।

अर्थ-बलभद्रने कहा है कि, अमावस्या, अष्टमी, पष्ठी और रिक्ता तिथिमें, शनि और मङ्गलवारमें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे धनका नाश होता है ॥ २१ ॥

अपरञ्च ।

प्राजेशविष्णुतिष्येषु पितृहस्तोत्तरासु च ।

अश्विनीवातपौष्णेषु मूलादित्येन्दुभे तथा ॥ २२ ॥

वारे भानुजशुके च जीवे शीतकरे तथा ।

लग्ने स्त्रीगोमीनयुग्मे कृष्यारम्भं शुभं विदुः ॥ २३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—रोहिणी, श्रवण, पुष्य, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, आश्विनी, स्वाति, रेवती, मूल, पुनर्वसु और मृगशिर नक्षत्रमें शनि, शुक्र, बृहस्पति और सोमवारमें, कन्या, वृष, मीन और मिथुन लग्नमें कृषिकर्म आरम्भ करनेसे शुभ होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

पूर्वाभाद्रपदा मूलं रोहिण्युत्तरफाल्गुनी ।

विशाखा शतभिषा वाथ धान्यानां रोपणे वराः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—पूर्वाभाद्रपदा, मूल, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और शतभिषा नक्षत्र बीज बोनेमें प्रशस्त हैं ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

हस्ताश्विप्यचन्द्रेषु ब्रह्मेन्द्रविष्णु वारुणे ।

वायव्येन्द्राग्निभे चैव रोहिण्यामुत्तरासु च ॥ २५ ॥

वारे जीवे च शुक्रे च सोमे दिनकरे तथा ।

युग्मे युवतिगोमनि शस्तं स्याद्बीजवापनम् ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—हस्त, आश्विनी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा श्रवण, शतभिषा, स्वाति, विशाखा, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्रमें बृहस्पति, बुध, शुक्र, सोम और रविवारमें, मिथुन, कन्या, वृष और मीन लग्नमें बीज बोना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

अपिच ।

प्राजेशश्रवणोत्तरादितिमघामार्तण्डतिष्याश्विनी

पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषास्वातिविंशाखा तथा ।

जीवाकेंदुसितेन्दुनन्दनदिने वारे स्थिरस्योदये

शस्यानां वपने भवन्ति लवने शस्ते तित्थौ रोपणे ॥ २७ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्तण्डमें लिखा है कि, रोहिणी, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, पुनर्वसु, मघा, हस्त, आश्विनी, रेवती, मृगशिर, शतभिषा, स्वाती



और विशाखा इन नक्षत्रोंमें, बृहस्पति, रवि, सोम, शुक्र और, बुधवारमें और स्थिरलग्नमें नाज बोना और काटना चाहिये ॥ २७ ॥

अपरञ्च ।

गुरुसोमसूर्यशुक्राः क्षेम्याः सम्पत्कराः शुभाः ।

बुधार्किभूमिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः ॥ २८ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-भैरवाचार्यने कहा है कि, बृहस्पति, सोम, रवि और शुक्रवारमें कृषि आरम्भ करनेसे मङ्गल और सम्पत्की वृद्धि होती है और बुध-शानि और मङ्गलवारमें कृष्यारम्भ करनेसे निष्फल होती है ॥ २८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

इन्ति मेघः पशून्सर्वान्स्वभावेनाथ वृश्चिकः ।

कर्कटेन भवेत्सौख्यं तुलायां न प्ररोहति ॥ २९ ॥

केशरी सस्यघाती स्यात्पार्थिवोपद्रवं धनुः ।

मकरे चैव कुम्भे च भयमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मेघलग्नमें खेती आरम्भ करनेसे पशुओंका नाश होता है, इसी प्रकार वृश्चिक लग्नमें कर्ताको बौद्ध काटना है कर्क लग्नमें सुखहीन होता है, तुला लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेका निषेध है, सिंह लग्नमें नाजका नाश होता है, धनमें पार्थिवका उपद्रव होता है मकर और कुम्भ लग्नमें खेतीके आरम्भ करनेसे भय होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यथ ।

गोस्त्रीमन्मथमनिषु लस्यं सम्पद्यते महत् ।

प्रशस्ते चन्द्रतारे च शुचिः शुक्ले न वाससा ॥ ३१ ॥ (क)

अर्थ-वृष, कन्या, मिथुन और मीन लग्नमें बीज बोनेसे बहुत नाज उत्पन्न

( क ) ज्ञात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विधानतः । पृथ्वीञ्च ग्रहसमुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिम् । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दायते भरिदक्षिणा । कृष्णो वृषो नियोक्तव्यो नवनी-  
तैर्दृतेन वा । मुखपार्श्वे तयोर्लिप्यात्फालाग्र कनकैः स्पृशेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरे-  
णार्धं प्रदापयेत् । ततः शुभकारः श्रीमान्कृषिकर्म समाचरेत् । वज्रयेद्भ्रमशूद्रञ्च रुरभ-  
मञ्च वज्रयेत् । विफलं छिन्नलोगूलं कपिल वृषभे तथा । हलप्रशाहन कार्यं नीहग्भिः  
कृषिकर्मकैः । हलादिभिर्दंटेः क्षेम कुट्टेर्न शुभ वदेत् । वृषमा यदि मुह्यन्ति तस्य विघ्न-  
प्रदा भवेत् ” कृषिराते शेषः । “तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्विघ्नं कारयेत्तदा । एका जय-

होता है, अतएव चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे उक्त लग्नोंमें पवित्र होकर सफेद वस्त्रको पहिरकर खेतीका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ धान्यच्छेदनम् ।

याम्याजपादहिधनानलतोयशक्र  
चित्रोत्तरोडुषु कुजार्कजवारवर्जम् ।

शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथावारिके

धान्यच्छिदिः स्थिरनरस्वमृगोदयेषु ॥ ३२ ॥ ( १ )

अर्थ—अब खेतमेंसे नाज काठनेका मुहूर्त कहते हैं । भरणी, पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेषा, धनिष्ठा, कृत्तिका, पूर्वाषाढा, ज्येष्ठा, चित्रा और तीनों उत्तरा इन सब नक्षत्रोंमें मङ्गल और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें, योग और करण शुभ होनेसे, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें स्थिर, द्विपद, अपने जन्मकी लग्न और मकर लग्नमें खेतका नाज काटना चाहिये ॥ ३२ ॥

आपिच ।

रोहिणीरेवतीमूलस्वातिहस्तमृगास्तथा ।

फाल्गुन्यौ श्रवणे चैव पूर्वाभाद्रपदा तथा ।

बन्धने सर्वबीजानां तथा गोलीप्रवेशने ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहेः ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-रोहिणी, रेवती, मूल, स्वाति, हस्त

करी रेखा तृतीया चार्थदायिका । पञ्चमी या भेदरेखा बहुसस्यफलाहि सा । अत ऊर्ध्वं न कर्त्तव्य महादोषस्तदा भवेत् । सम्पूज्याग्नि द्विजं देवं कुर्याद्बलप्रवर्त्तनम् । हेमनिर्दृष्टफालाग्र छिन्नरेखा न कारयेत् । स्मर्त्तव्या वसवैश्चन्द्रः सर्वविघ्नोपशान्तये । हले प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पाटयते यदि । गृहणी त्रियते तस्य ततोऽग्नेश्च भय भवेत् । लग्गुले भिद्यते चापि प्रभुस्तत्र विनश्यति । ईशानमङ्गलश्चेत्कर्तुः सशयो जीवितस्य च । सुतनाशो युगामङ्गे समीने त्रियते सुतः ” समीने योत्कबन्धनकाष्ठद्वये । “योत्कच्छेदे तु व्यासङ्गः सस्यहानिश्च जायते । हले प्रवाह्यमाणेतु गौरेकः प्रपतेद्यादि । प्रपतेन्मुक्तमात्रस्तु बन्धन स प्रपद्यते । ज्वरातिसाररोगेण कृपिमङ्ग विनिर्दिशेत् । प्रवाह्यमुक्तमात्रस्तु ततो गौः प्रपतेद्यादि । वत्सालीदेननर्दन्तिः ततः सस्य चतुर्गुणम् । हेमवारिविलिप्तस्य कीजस्योन्नयतः अचिः । इन्द्र चित्ते निधायाथ स्वय मुष्टिप्रय वषेत् । इत्यादि । “चैत्रे च कृष्णपञ्चम्या काशमीरा च रजस्वला । नित्य भवति तस्मात्ता स्मृत्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ” इत्यादि । “अष्टम्याश्च ततः क्षाप्य ताभिरेव गृहे गृहे” इत्यादि च ज्योतिषतत्त्वेऽनुसन्धयेम् ॥ इति ।

( १ ) धान्यच्छेदनमाह—याम्योति । याम्यादिषु नक्षत्रेषु रिक्तावर्जिते तिथी स्थिरलग्ने नरलग्ने स्वलग्ने स्वनीयजन्मलग्ने मकरलग्ने च धान्याच्छिदिः कार्या शेष सुगमम् । मेधि-

मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें  
बीजबन्धन और गोला प्रवेश करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ धान्यादिसंस्थापनम् ।

याम्याग्निरुद्राहिविशाखपूर्वामाहेन्द्रपिष्येतरभैः शुभाहे ।

धान्यादिसंस्थापनमेव कुर्यान्मृगस्थिरद्व्यङ्गगृहोदयेषु ॥ ३४ ॥ (क)

अर्थ-अब नाजके रखनेका मुहूर्त कहते हैं-भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा,  
विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, ज्येष्ठा और मघा इन सब  
नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, शुभ दिनमें, शुभ ग्रहोंके वारमें, स्थिर और  
द्वयात्मक लग्नमें नाज रखना चाहिये ॥ ३४ ॥

अथ धान्यादिविवर्द्धनज्ञानम् ।

श्रवणत्रयविशाखाध्रुवपौष्णपुनर्वसूनि पुष्यं च ।

अश्विन्यथ च ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धने कथिता ॥ ३५ ॥ (ख)

अर्थ-अब नाजके बढ़नेका प्रयोग कहते हैं, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा,  
विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, रेवती, पुनर्वसु,  
पुष्य, अश्विनी और ज्येष्ठा नक्षत्र नाजके वृद्धि होनेके विषयमें प्रशस्त है ॥ ३५ ॥

अथ धान्यमहाध्यादिकथनम् ।

हशपूरोरवं मूल्यं पक्षादौ लक्षयेद्बुधः ।

उकूमूरे समं विद्याच्छेपे धान्यप्रधः क्रमम् ॥ ३६ ॥ (ग)

अर्थ-अब नाजके मूल्य जाननेकी रीति कहते हैं-हस्त, शतभिषा, तीनों  
माह प शर । “न्यग्रोध. सप्तपर्णा वा गाम्भारो शाल्मली तथा । उदुम्बरो पिशेपेण  
चान्धे वा क्षीरवाहेन । एभिर्मेधि नरो मार्गे कुर्यात्पौषे विवर्जयेत् । कपित्थवशपित्तानां  
न च मोधि. कदाचन ॥ ”

(क) धान्यादीनां स्थापनमाह-याम्येति । याम्यादिवाजंतिनक्षत्रे मकरलग्ने स्थिर-  
लग्ने व्यात्मकलग्ने च शुभग्रहणारे धान्यतिलमुद्गादीनां स्थापन कार्यम् पिशेपमाह पटा  
शर “लिखित्वा द्वाविमौ मन्त्री धान्यागारे विनि क्षिपेत् । “ओं धनदाय सर्वलोकहिताय  
देहि मे धन स्वाहा । ओं नवे हायं नवे देवि सर्वलोकविर्द्धिनि । कामरूपाणि सुभगे  
धन मे दोहि स्वाहा ” इति ।

(ख) वृद्धिनिमित्त धनधान्यदाने विहितनक्षत्रमाह-श्रवणेति । स्पष्टार्थम् ।

(ग) धान्यमूल्यज्ञानमाह-हशेति । आद्यक्षरसक्तेन नक्षत्रकथन हस्तशतभिषापू-  
र्वात्रय रोहिणी पक्षादौ प्रतिपदारम्भकाले एतानि नक्षत्राणि यादे स्यु तदा वरम् अधिक  
मूल्य धान्यस्य लक्षयेत् । एवम् ‘उकूमूरे’ उत्तरात्रय वृत्तिकामूल रेवती प्रतिपदारम्भ  
काले यादे स्यात्तदा धान्यमूल्य सम गतपक्षे य-मूत्य तदेव वर्तमानेऽपि न साहाय्य नथ

पूर्वा अथवा रोहिणी नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें होय तब नाज मँगा विकता है, तीनों उत्तरा, कृत्तिका, मूल अथवा रेवती नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरम्भकालमें होय तो नाज समान मूल्यमें विकता है और उक्त नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्र यदि प्रतिपदाके आरंभ कालमें होय तो धान्य ( नाज ) सस्ता विकता है ॥ ३६ ॥ इति पाक्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

अपिच ।

यदाह्नि मेपसंक्रांतिस्तुलासंक्रमणं निशि ।

तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ ३७ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि—यदि मेपकी संक्रान्ति दिनमें और तुलाकी संक्रान्ति रातमें लगै तो प्रजा धनधान्यसे सुखी होती है ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

कुजाकेशनिवारणे महासंक्रमणं यदा ।

भवेत्तदा प्रजाहानिर्दुर्भिक्षादिभयं तदा ॥ ३८ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि—मङ्गल, रवि वा शनिवारमें यदि संक्रान्ति होय तो प्रजाका नाश और अत्यन्त दुर्भिक्षादिका भय होता है ॥ ३८ ॥

अथ वार्षिकधान्यमूल्यज्ञानम् ।

रवौ शनौ कुजे चैव पौषे दशौ भवेद्यदा ।

तदा धान्यस्य मूल्यं स्यादेकद्वित्रिगुणं क्रमात् ॥ ३९ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ—अब वार्षिक नाजका मूल्य जाननेकी रीति कहते हैं—सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, पौषके महीनेमें रविवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नाजका मूल्य एक गुण बढ़जाता है, इसी प्रकार शनिवारमें होनेसे नाज दूना मँगा होजाता है, और मङ्गलवारमें पौष महीनेकी अमावस हो तो नाजका मूल्य तिगुना होजाता है ॥ ३९ ॥

अपिच ।

दशौ पौषस्य रात्रौ चेज्ज्येष्टामूलजलानि च ।

—माहात्म्यमित्यर्थः । एतेषां शेषनक्षत्रे प्रतिपदारम्भकाले धान्यानामधः क्रयोऽल्पमूल्यं स्यात्सदा शुक्ले कृष्णे चान्न च प्रतिपदारम्भकाले तन्सुहृत्ताधिपनक्षत्रं ज्ञात्वा अतिशय समारुपं ज्ञातव्यामीति श्रीमत्पितृचरणाः ॥ इति ।

**क्रमान्मूलस्य वृद्धिः स्याद्धान्यानां वत्सरे तदा ॥ ४० ॥**

इति सत्कृत्यमुक्तावस्थाम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखाहै कि-पौष महीनेकी अमावस्या तिथिकी रातमें ज्येष्ठा, मूल वा पूर्वाषाढा नक्षत्र होय तो उस वर्षमें उत्तरोत्तर नाजका मूल्य बढ़जाता है ॥ ४० ॥

अन्यच्च ।

**संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारयुक्तं द्रव्याक्षरं वामहतं भवेत्तु ।**

**एकं समर्घ्यं समतां द्वितीये शून्ये महर्घ्यमुनयो वदन्ति ॥ ४१ ॥**

इति सत्कृत्यमुक्तावस्थाम् ।

अर्थ-अब प्रकारान्तरसे नाजका मूल्य निर्णय करतेहैं-सत्कृत्यमुक्तावलीग्रन्थमें लिखाहै कि, संक्रान्तिसमय जो नक्षत्र होय उसकी संख्या उस दिनकी तिथिकी संख्या, धारकी संख्या और द्रव्यके अक्षरोंकी संख्याको मिलाकर जितनी संख्या होय उनको तीनसे भाग करै भाग करनेसे यदि एक बचै तो पूर्वके भावसे कुछ महँगा नाज होजाताहै इस प्रकार दो बचनेसे पहिलेके समान भाव रहता है और कुछ न बचनेसे पहलेके भावसे अत्यन्त महँगा नाज होता है, इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ४१ ॥

अथ गोशालाप्रवेशः ।

**पूर्वात्रये धनिष्ठायां पौष्णे सौम्यविशाखयोः ।**

**आश्लेषा चाश्विनी चैव यात्रा सिद्धिश्चतुष्पदाम् ॥ ४२ ॥**

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार गौआदिका शाला ( घर ) में जानेका मुहूर्त्त कहते हैं-तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, रेवती, मृगशिर, विशाखा, आश्लेषा और आश्विनी नक्षत्रमें चतुष्पद ( गो ) इत्यादिके गृहप्रवेशकी यात्रा सिद्ध होती है ॥ ४२ ॥

अथ गोयात्रादिनिषेधः ।

**त्रिपूतारासु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी ।**

**श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा चैव तथाष्टमी ।**

**गवां यात्रां न कुर्वीत प्रवेशान्नापि कारयेत् ॥ ४३ ॥**

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, श्रवण, हस्त, चित्रा नक्षत्रमें, अमावस्या, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमें, गोयात्रा वा गोप्रवेश न करावै इस प्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है ॥ ४३ ॥

अथ गवामानयनादि ।

दर्शाष्टमीभूततिथिप्रवेशपूर्वात्तराकेशवयाम्यचित्राः ।

कूराहविष्टिव्यतिपातयोगा नेष्टा गवाञ्चानलविक्रयादौ ॥४४॥(क)

अर्थ-ममावस्या अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा-  
षाढा पूर्वाभाद्रपदा, तीनों उत्तरा, श्रवण, भरणी और चित्रा नक्षत्रमें, रवि,  
मङ्गल और शनिवारमें, विष्टि भद्रा तिथिमें और व्यतीपातयोगमें गोचालन और  
बेचनेसे शुभफल नहीं होता है ॥ ४४ ॥

अथ वृष्टिज्ञानम् ।

वर्षप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो

लग्ने यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे ।

सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः

प्रावृट्काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ ४५ ॥(ख)

इति प्रश्नाहृष्टिज्ञानम् ।

अर्थ-अब प्रश्नद्वारा वृष्टि ( वर्षा ) जाननेकी रीति कहते हैं-कर्क, मकर वा  
मीन यदि प्रश्नकी लग्न होय और उसमें चन्द्रमा स्थित होय अथवा चन्द्रमा यदि  
शुक्लपक्षमें लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और उस चन्द्रमाको शुभ ग्रह देखतै होय

( क ) वर्षा यात्राप्रवेशक्रयविक्रयेषु निषेधमाह-दर्शति । अमावस्याष्टमी चतुर्दशी तिथि  
नेष्टा । रोहिणी पूर्वात्रयोत्तरात्रयश्रवणभरणीचित्रा रविशनिमङ्गलवाराः विष्टिव्यतीपात-  
योगाश्च नेष्टाः । गवामित्युपलक्षणं सर्वेषां पशूनामिति राजमार्त्तण्डे-“श्युत्तरेषु च रोहिण्यां  
सिनीवाली चतुर्दशी । श्रवणेपि च नक्षत्रे चित्रायामष्टमीषु च । गोषु कार्यं न कुर्वीत .प्रन-  
यश्च प्रवेशनम् । पशवस्तस्य नश्यन्ति ये चान्ये तृणचारिणः ” इति ।

( ख ) प्रश्नाहृष्टिज्ञानमाह-वर्षति । वृष्टिप्रश्ने चन्द्रो यदि सलिलनिलयराशि कर्कट-  
मकरमीनमाश्रित्य लग्नमुदय प्राप्तः स्यात् यदि वा केन्द्रगश्चन्द्रः शुक्लपक्षे स्यात्तदा  
शुभग्रहदृष्टः प्रचुरमुदकं जलं सृजति पापदृष्टोऽल्पजल एव सृजति । वर्षाकाले  
जलराशिगः जलराशिलग्नौ स्यात् शुक्लपक्षे केन्द्रगो वा स्यात्तदा शुभदृष्टः-प्रचुरं जलं  
पापदृष्टोऽल्पजलं सृजति वर्षति । सौभरिस्तु जलराशिमाश्रित्य चन्द्रस्तिष्ठति यात्किञ्चिद्वा  
लग्नं वा प्रश्ने भवति केन्द्रगो वा स्यादिति व्याचष्टे तदशुद्धं तिष्ठतीति त्रिधानन्तराध्याहा-  
रात् तथा देवज्ञवल्गमायाम् “कर्कटमृगमीनानामुदये चन्द्रः सितो वा वृष्टिकरः । तद्वत्के-  
न्द्रोपगतौ सितश्चन्द्रश्च शुभदृष्टौ ” योगान्तरमुक्तं तत्रैव “ पक्षे सिते सलिलराशिगताः  
शुभाश्च केन्द्रेद्वितीयसलिलालयगाश्च सम्यक् । चन्द्रोऽथवा सलिलराशिविलग्नश्च वृष्टि  
वदेन्नियतमेव ततो धरिष्याम् ” तथा कृषिपराशरः-“ जलस्थो जलहस्तो वा निकटे च  
जलस्य वा । पृष्टोऽवृष्टौ च वृष्टचर्थं वृष्टिः सजायतेऽचिरात् ॥ ” इति ।

तो प्रचुर ( इच्छानुसार ) वर्षा होती है और चन्द्रमाको यदि पापग्रह देखते हो तब अल्प ( थोड़ी ) वर्षा होती है वर्षा समयमें कर्क, मकर वा मीन लग्नमें यदि शुक्र स्थित होय अथवा शुक्रपक्षमें लग्नके केन्द्रस्थानमें होय और शुक्रपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो इच्छानुसार जलकी वर्षा होती है और यदि शुक्रपर पापग्रहोंकी दृष्टि होय तो अल्प वर्षा होती है ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहसंस्थानेन संघोवृष्टिज्ञानम् ।

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात्सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः ।

सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगोऽपि जलागमनाय ॥ ४६ ॥ ( १ )

अर्थ-वर्षाकालमें ग्रहसंस्थापनद्वारा वृष्टि ( वर्षा ) जाननेकी रीति कहते हैं, वर्षाकालमें यदि शुक्रसे सातवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय और चन्द्रमाको शुभग्रह देखते होय तो उसी दिनमें वर्षा होती है और शनिसे नववें, पांचवें, वा सातवें, चन्द्रमा होय और उसको शुभग्रह देखते होय तो उसी दिन वर्षा होती है ॥ ४६ ॥

अथ नवान्नम् ।

भेषुग्राहिशिवान्येषु विभौमशनिवासरे ।

अन्नप्राशनवत्कुर्यान्नवान्नफलभक्षणम् ॥ ४७ ॥ ( २ )

अर्थ-अब नये नाजके तथा नये फलके खानेका सुहृत् कहते हैं- तीनों पूर्वा,

( १ ) वर्षाकाले ग्रहसंस्थानवशेन वृष्टिज्ञानमाह-प्रावृषीति । यस्मिन्दिने चन्द्रः शुक्रात्सप्तमगः शुभदृष्टः स्यात्तस्मिन् दिने जलागमनाय वर्षाकाले स्यात् । तथा सूर्यसुतान्नवपञ्चमगः सप्तमगो वा चन्द्रः शुभदृष्टो यत्र दिने तस्मिन्दिने वृष्टिर्भवतीत्यर्थः । इति ।

( २ ) पूर्वोक्तान्नप्राशनप्रकरणप्राप्तं नवान्नफलभक्षणमाह-भेषुग्राहिशिवान्येषु विभौमशनिवासरे । अन्नप्राशनवत्कुर्यान्नवान्नफलभक्षणम् ॥ ४७ ॥ ( २ )  
 २० । २९ । १० । २ अहिः ९ शिवः ६ एतदन्येषु नक्षत्रेषु मङ्गलशनिवर्जितेषु वारेषु नवान्नस्य नवफलस्यान्नादेश्च भक्षणं कुर्यात् । अन्नप्राशनवदिति एतदतिरिक्ते पूर्वस्मिन् अन्नप्राशनोक्तश्लोके योऽन्नप्राशनविधिः “गो ज्ञक्षीमिनोदय ” इत्यादिरुक्तः सोऽत्रैव विधेय इत्यर्थः । एतच्च कृष्णपक्षाद्गौ न कर्त्तव्यमिति । तथाच-“ नवान्न नैव नन्दायां न च सुते जनार्दिने । न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन । तथा च वराहः-“वृश्चिके शुक्रपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः । अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् । यत्कृतं धनुषि श्राद्ध मृगनेत्रासु रात्रिषु । पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नामिपकांक्षिणः ॥ ” अपरे कृष्णपक्षे मृगनेत्रा ज्येष्ठानक्षत्रपराद्धं गते सूर्ये भवति । शुक्रवारे तु सावकाशश्राद्ध-निषेधादेव प्राप्तोऽत्र निषेधः । स च त्रयोदशीं जन्मदिनश्चेत्यादिना वक्ष्यते । इति । नवान्न मलमासेऽपि कार्यम् । “ गार्हितो मलमासः स्यादुत्तरे मासि तत्क्रिया । नित्य-श्राद्ध नवान्नश्च विना निरवकाशतः ” इति स्मृतिसागरधृतवचनम् ।

मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा इन सब नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें, मंगल और शनिभिन्न वारमें, शुक्रपक्षमें, अन्नप्राशनकी लग्नोंमें नया अन्न और नया फल खाना चाहिये ॥ ४७ ॥

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा ।

दशमी च प्रशस्यन्ते नवान्नाशनकर्मणि ॥ ४८ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब नये अन्न खानेकी तिथियें कहते हैं दीपिकामें लिखा है कि, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी और दशमी तिथि नये अन्नके खानेमें प्रशस्त हैं ॥४८॥

हरियुगलेऽदितिपूपयुगले विरिञ्चियुगले च ।

करपञ्चोत्तरेष्विनवुधगुरुशशिषु नवान्नभक्षणम् ॥ ४९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अभिनी, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें, रवि, बुध, बृहस्पति और सोमवारमें नया अन्न खाना चाहिये ॥ ४९ ॥

अपि च ।

सूर्ये चैव विशाखगे (१) स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते

नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मघौ कार्तिके ।

भेषूयाद्दिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे

श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे श्राद्धतत्त्वे च ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें और श्राद्धतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्य विशाखा नक्षत्रगत होनेसे त्रयोदशी और नन्दा तिथिमें, तीनों जन्मतारा (२) और तीनों प्रत्यरि (३) तारामें, सौर पौष चैत्र और कार्तिकके महीनेमें, शनि मंगल और शुक्रवारमें

(१) सूर्ये चैव विशाखगे मार्गशीर्षस्य त्रिंशतिदण्डाधिकप्रथमादिनत्रयावस्थिते सूर्ये स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चमतारात्रये त्रिजन्मान्वित इत्यत्र त्रिजन्मपदं जन्मचन्द्रजन्मतिथिजन्मनक्षत्रपरामिति श्राद्धतत्त्वे-स्मार्त्तनाभिहितम् ।

(२) स्मार्त्तमहाचार्यने जन्मराशि, जन्मतिथि और जन्मनक्षत्रकोही त्रिजन्मशब्दका अर्थ करा है ।

(३) जन्मनक्षत्रसे पांचवें नक्षत्रको पापतारा वा प्रत्यरितारा कहते हैं । अत एव सत्तार्दस नक्षत्रोंको जन्म, सम्पत् इत्यादिसे गिननेमें ही तीन प्रत्यरितारा होते हैं ।



विष्णुके शयनकालमें, कृष्णपक्षमें, आठवें चन्द्रमामें और तीनों पूर्वा, मघा, भरणी, आश्लेषा और आर्द्रा नक्षत्रमें जो मनुष्य नया अन्न श्राद्धकर्ममें वा भोजनमें स्वीकार करता है उसके पुत्र और धन आदिका नाश हो जाता है ॥ ५० ॥

अन्यत्र ।

पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः ।  
भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठते ॥ ५१ ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ-भोजराजने कहा है कि-सौर पौषमें, सौर चैत्रमें और कृष्णपक्षमें नये अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये, जो मनुष्य उक्तकालमें नये अन्नसे श्राद्ध करता है वह जन्मान्तरेमें रोगी होता है और उक्त श्राद्धमें पितृगण नहीं स्थित होते हैं ॥ ५१ ॥

अपरत्र ।

ज्येष्ठाशोषार्द्धगे सूर्ये मृगनेत्रानिशात्मके । (क)  
नवान्नैर्भाजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रे तिथौ न च ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, ज्येष्ठानक्षत्रके शोषार्द्धमें सूर्यके होनेसे अर्थात् सौर अग्रहायणके २३ दिन २० दण्डके गतमें मृगनेत्रा रात्रि होती है, उसमें और जन्मराशिमें और जन्मतिथिमें नये अन्नसे श्राद्ध और नये अन्नका भोजन न करना चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरो मार्त्तण्डपौष्णादितौ  
मैत्रे चित्रविशाखवायुधनभे मूलाश्विबह्वौ तथा ।  
शाक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते  
नन्दाभागवभूमिजेषु न भवेच्छ्राद्धं नवान्नोद्भवम् ॥ ५३ ॥ (ख)

इति भोजराजः ।

अर्थ-राजा भोजने कहा है कि, रोहिणी, श्रवण, मृगशिर, हस्त, रेवती, पुन-

( क ) “दिनत्रयाधिके विशे मार्गशीर्षस्य वै गते । मृगनेत्रा स्मृता रात्रिः श्राद्ध तत्र न कारयेत् ” इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

( ख ) अत्र वचने नवान्नश्राद्धे मूलकृत्तिकाज्येष्ठाविधानात्तच्छेषभक्षणप्राप्ते वक्ष्यमाणश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठा मूलाजपादकेषु च इत्यादि वचन श्राद्धशेषाभोजिमात्रपरम् । इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

वसु अनुराधा, चित्रा, विशाखा, स्वाति, धनिष्ठा, मूल, अश्विनी, कृत्तिका, ज्येष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें, शुभदिनमें, नये अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये किन्तु ( प्रतिपदा, एकादशी और पष्ठी ) तिथिमें, शुक्र और मङ्गलवारमें, नए अन्नसे श्राद्ध न करे ॥ ५३ ॥

अपिच ।

आश्लेषाकृत्तिकाज्येष्ठा मूलाजपादकेषु च ।

भृगुभौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवादनम् ॥ ५४ ॥

अर्थ—आश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें, शुक्र और मङ्गलवारमें और रिक्तातिथिमें नया अन्न न खाना चाहिये [ इस वचनमें जो नये अन्नके खानेमें मूल कृत्तिका और ज्येष्ठा, नक्षत्रका निषेध होनेसे नये अन्न द्वारा श्राद्ध न करके जो मनुष्य नया अन्न खाते हैं उन्हींके पक्षमें जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

अन्यच्च ।

स्वौ बुधे गुरौ चन्द्रे नवान्नस्य च भक्षणम् ।

भक्षयेन्न शनौ शुके तथा भूमिजवासरे ॥ ५५ ॥

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—बुध, वृहस्पति और सोमवारमें नया अन्न खाना चाहिये शनि और शुक्र और मंगलवारमें नये अन्नको न खावे ॥ ५५ ॥

अपरञ्च ।

वृषे मिथुनकन्यायां मीनलग्ने शुभान्विते ।

भक्षणं स्यान्नवान्नस्य ददात्यायुर्वलं धनम् ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि वृष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न शुभग्रहयुक्त होनेसे यदि उसमें नया अन्न खायाजाय तो खानेवालेकी आयु बल और धनकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि ।

अन्नं श्राद्धं न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयात् ॥ ५७ ॥ ( १ )

अर्थ—नन्दातिथि, जन्मतिथि, त्रयोदशी, शुक्रवार, जन्मराशि और जन्म-

( १ ) अत्र त्रिजन्मनीत्यस्य जन्मतिथिः जन्मतारा जन्मराशिस्वरूप इत्यर्थः । हला-  
युधोऽप्येव वक्ष्यमाणोक्तत्रयोदशीम् । जन्मदिनश्च नन्दामित्यत्र दिनपद तिथिपरं तिथि-

तारामें श्राद्ध करनेसे पुत्र भार्या और धनकी हानि होती है ॥ ५७ ॥

नक्षत्रेऽपि न कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।

न प्रौष्ठपदयोः (×) कार्यं न चाग्नेये च भारतः ।

दारुणेषु ( क ) च सर्वेषु प्रत्यरा च विवर्जयेत् ॥ ५८ ॥

इति महाभारते ।

अर्थ-महाभारतमें लिखा है कि-मनुष्यका जिस नक्षत्रमें जन्म होय उसमें श्राद्ध न करे और पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें भी श्राद्ध न करना चाहिये [ फल यह है कि, “ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरः” इत्यादि वचनसे नये अन्नसे श्राद्ध करनेमें मूल, कृत्तिका और ज्येष्ठा नक्षत्र विहित है । उक्त वचनमें मूल कृत्तिका और ज्येष्ठानक्षत्रक श्राद्धमें निषेध है अतएव उसको नये अन्नके श्राद्धमें कहा है ॥ ५८ ॥

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्न शस्यती बुधैः ।

अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् ॥ ५९ ॥

इति वराहमिहिराचार्यः ।

अर्थ-वराहमिहिराचार्यने कहा है कि, सौर अग्रहायणके महीनेमें विशाखा नक्षत्र और ज्येष्ठानक्षत्रमें और ज्येष्ठानक्षत्रके शेषार्द्धमें सूर्य स्थित न होनेसे शुक्लपक्षमें नया अन्न खाना चाहिये, किन्तु कृष्णपक्षमें नये अन्नसे श्राद्धकरनेसे धनुमें (सौर पौषमें) नवान्नश्राद्ध जिस प्रकार निष्फल होता है उसी प्रकार होता है ॥५९॥

यत्कृतं धनुषि श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।

पितरस्त गृह्णन्ति नवान्नामिपकांक्षिणः ॥ ६० ॥

इति वराहमिहिराचार्यः ।

अर्थ-वराहमिहिराचार्यने कहा है कि, सौर पौषके महीनेमें वा मृगनेत्रामें ( ज्येष्ठाके शेषार्द्धमें सूर्य होनेसे ) जो मनुष्य नये अन्नसे श्राद्ध करता है, उसके पितृगण उस श्राद्धके अन्नको ग्रहण नहीं करते हैं ॥ ६० ॥

अनावश्यकश्राद्धकालकथनम् ।

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जर्नादने ।

संक्षेपात् तत्र त्रिजन्मनि त्रिजन्म नक्षत्रमिति व्याख्यानं गुरुचरणानामपि प्रामाणिकं राजमार्त्तण्डात् यथा ताराप्रकरणे “सर्वमङ्गलकार्याणि त्रिषु जन्मसु कारयेत् । विवादश्राद्धमैप्ययथाज्ञोराणि वर्जयेत् ” इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तन लिखितम् ।

( + ) प्रौष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा द्वितारकत्वाद्दिवचनम् । इति ।

( क ) “दारुणश्चौरां रोद्रमैन्द्र नैर्ऋतमेव च ” इति च श्राद्धविवेककृद्भूतवचनम् ।

न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां नैव कारयेत् ॥ ६१ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, नन्दातिथिमें, श्रीहरिके शयनमें, कृष्णपक्षमें, सौर पौषमें और सौर कार्तिकमें नये अन्नसे श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अपिच ।

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशभिनम् ।

गच्छेत्क्षेत्री विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः ॥ ६२ ॥

इत्यभिधाय ।

तेन देवान्पितृंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा ॥ ६३ ॥

इत्याश्विनाधिकारे ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, आश्विनके महीनेमें शुक्लपक्षमें, धान पकता है उस समय खेतका मालिक गीतवाद्यादिको आगे करके खेतमें जाकर नाजको कटावै पीछे उस धानके चावलोंसे देवताओंकी और पितरोंकी पूजा करनी चाहिये ।

[ इस ब्रह्मपुराणके वचनसे प्रतीत होता है कि, पूर्ववचनमें श्रीहरिके शयनकालमें, जो नये अन्नसे श्राद्ध करनेका निषेध है उसको आश्विनमासके शुक्लपक्षके इतर जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च(×)नन्दां

जन्मक्षतारां सितवासरं च ।

त्यक्त्वा हरीशेन्दु(१)करान्त्यमैत्र-

ध्रुवेषु च श्राद्धविधानमिष्टम् ॥ ६४ ॥ (२)

अर्थ—अब अनियत अर्थात् अनावश्यक श्राद्धका समय कहते हैं, त्रयोदशी, जन्मतिथि, नन्दातिथि, जन्मराशि, जन्मतारा और शुक्रवारको छोड़करके श्रवण,

(क) न च सुप्ते जनार्दने इति आश्विनशुक्लपक्षेतरपरम् । इति श्राद्धतत्त्वेस्मार्त्तनोक्तम् ।

(×) जन्मतिथिश्चेति पाठान्तरम् ।

(१) हरीज्येन्द्राति मलमासतत्त्वादी पाठः । तत्र हरिः श्रवणः इज्यः पुष्य इति स्मार्त्तन व्याख्यातम् ।

(२) अनावश्यकश्राद्धमाह—त्रयोदशीमिति । त्रयोदशीं जन्मदिनं नन्दातिथिं जन्मराशिं जन्मतारां शुक्रवारञ्च त्यक्त्वा हरीशो यस्य स हरीशः श्रवणः इन्दुर्गणेशिरः करो-

मृगाशिर, हस्त, रेवती, अनुराधा, तीनों उत्तरा और रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६४ ॥

नवान्नाकरणोनिन्दाकथनम् ।

नवं ( अ ) कृशरूपानि पायसं मधुसर्पिणी ।

वृथा मांसं न चाश्रीयात्पितृदेवविवर्जितम् ॥६५॥ ( ❀ )

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है, नये धानोंके चावल, कृशर ( गुडयुक्ततिल चावल ) पिष्टक, पायस, मधु, घृत और मांस इन सब वस्तुओंसे पहिले पितरोंकी और देवताओंकी पूजाकरके पीछेसे खाना चाहिये ॥ ६५ ॥

आपिच ।

वृथा कृशरसंयावपायसापूपशङ्कुर्लीः ।

भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥६६॥ ( क )

इति शंखः ।

अर्थ-कृशर, संयाव ( घृतक्षीराद्विद्वारा पक गोधूमचूर्ण ) पायस, पिष्टक,

हस्तः अन्त्यं रेवती भैत्रम् अनुराधा एषु ध्रुवगणेषु च श्राद्धमिष्टम् । एतच्च सावकाश-  
श्राद्धविषय यच्छ्राद्धमन्यदिने कर्तुं शक्यते यदकरणे प्रत्यवायाभावः यथा व्रीहियवपाक-  
श्राद्धं द्रव्यब्राह्मणप्राप्तिश्राद्ध संक्रान्त्यादिकाम्यातिथिश्राद्धश्चेति अमावस्यादिनित्यश्राद्धन्तु  
तद्दिनाकरणे प्रत्यवायादवश्यकर्तव्यत्वेन नास्य विषय इति सौभरिणा तु हरिः श्रवण  
ईश आर्द्रा इति व्याख्यात तदशुद्धम् आर्द्राया निषेधश्रवणात् । यथा विष्णुधर्मोत्तरे  
“ नक्षत्राणितथैवात्र दारुणोग्राणि वर्जयेत् ” दारुणगण उक्तः “ दारुणश्चौरां रौद्रमैन्द्रं  
नेर्ऋतमेव च ” इति । उरगमाश्लेषा रौद्रमार्द्रा ऐन्द्रं ज्येष्ठानिर्ऋत मूलेति । उग्रगणन्तु  
उग्रः पूर्वमघान्तकेति । तथा महाभारते-“ नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिञ्जातो भवेन्नरः ।  
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाग्नेये च भारत । दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरो च विवर्जयेत् ”  
प्रोष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा आग्नेयं कृत्तिका प्रत्यरिः पञ्चतारा अत्र यत्र च साक्षाच्छब्दो-  
च्चारणेन विशेषविधिरस्ति तत्र विधिवेयर्थ्याभयान्नानेन निषेध इति यथात्रप्राशने सिते-  
न्दुजीवदिवस इति । शुक्रवारेऽपि कण्ठोक्तत्वात् विधानमेव । कुर्यात्पुसवनं सुयोगकरणे  
चन्द्रे सभद्रे तित्थाविति वचनान्नन्दाधामापि पुसवन कर्त्तव्यमेव । तथा च मूलानुराधा  
मघोति वचनाद्दारुणोग्रगणत्वेन निषिद्धयोरपि मूलमघयोर्विवाहः कर्त्तव्य एवान्यथा  
विधिवैयर्थ्यापत्तेः एवमन्यत्राप्युक्तः । इति ।

( अ ) नव नवान्नम् ।

( + ) पितृदेवविवर्जित पितृदेवोद्देशं विना कृतम् नवान्नादि मासास्तं अतएव वृथा कृतमिति ।

( क ) तेन देवपित्रतिथिवर्जं कामतः सकृदमीषां भक्षणे त्रिरात्रं कृशरादिस्ताह-  
चर्येण नवान्नेऽपि तथा । इति मलमामतत्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

और शङ्खुली ( तिलतण्डुलादिमिश्रित यवागुविशेष ) जो मनुष्य इन सब वस्तु-  
ओंको देवताओंको और पितरोंको निवेदन न करके वृथा भोजन करता है तो  
उसको त्रिरात्रि उपवासका प्रायश्चित्त होता है अथवा तदनुकल्प दान करना  
चाहिये । और नया अन्नभी जो देवताओंको और पितरोंको बिना निवेदन किये  
भोजन करनेसे इसी प्रकारका प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ६६ ॥

नवान्नभोजनविधिः ।

प्राश्रियादधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम् ॥ ६७ ॥ (ख)

इति ब्रह्मपुराणम् ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, नये अन्नमें दही मिलाकर ब्राह्मणमें गायत्री  
मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित कराकर भोजन करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अपिच ।

गृहीत्वा ब्राह्मणानुज्ञां स दधि प्राशयेन्नवम् ॥ ६८ ॥

इति स्मृतिः ।

अर्थ—स्मृतिमें लिखा है कि, ब्राह्मणकी आज्ञासे दधिमें मिलाकर नये अन्नको  
खाना चाहिये ॥ ६८ ॥

अन्यच्च ।

अत्र त्रीह्यभावे शालिना नूतनाभावे पुरातनेनापि श्राद्धा-  
दिकमाह भट्टभाष्ये स्मृतिः । गृहमेधी त्रीहियवाभ्यां शरद्व-  
'सन्तयोर्यजेत । श्यामाकैर्वनीवर्षासु आपत्कल्पे अन्येन  
पुरातनैर्वीति ॥ ६९ ॥

अर्थ—नवान्नश्राद्ध नये त्रीहिनामक धानोंके चावलसे करना चाहिये, उसके  
अभाव होनेसे रौंठीके चावलसेभी किया जासक्ता है, नये धानोंका अभाव  
होनेसे नवा श्राद्ध पुराने धानोंके चावलसे करना चाहिये भट्टभाष्यधृत स्मृतिके  
वचनमें इसी प्रकार लिखा है कि, गृहस्थमनुष्य त्रीहिके चावलसे शरत्कालमें  
श्राद्ध करे और यवद्वारा वसन्तकालमें श्राद्धकरे, वानप्रस्थाश्रमीको श्यामाक-  
धान्यके चावलसे वर्षाकालमें श्राद्ध करना चाहिये, किन्तु आपत्कालमें पुराने  
धानोंके चावलसेही श्राद्धका निर्वाह होजाता है ॥ ६९ ॥

( ख ) अभिमन्त्रितम् । “ मन्त्रानादेशे गायत्री ” इति वचनाद्गायत्र्या इति  
श्राद्धतत्त्वे स्मार्ताः ।

अपरञ्च ।

प्रेतमातापितृकस्य पुरातनधान्यालाभे नवेनैव वैश्वदेवं  
कृत्वा । नवञ्च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा  
भोजनादिकं कर्त्तव्यम् ॥ ७० ॥

अर्थ-माता वा पिताके प्रेत होनेसे पुराणे धानोंके चावलोंका अभाव होनेसे नये धानोंके चावलोंसे विश्वेदेवका बलि देकर नया अन्न ब्राह्मणोंको दान करके और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे नये अन्नका भोजन करे इसका प्रमाण नीचे लिखा है ॥ ७० ॥

दत्त्वैवं ब्राह्मणेभ्यश्च हुत्वा वा वैश्वदेविकम् ।

अन्यो ( ❀ ) नवान्नमश्रीयादिति वौधायनोऽब्रवीत् ॥ ७१ ॥

इति नव्यवर्धमानधृतास्मृतिः ।

अर्थ-नवान वर्द्धमानकी स्मृतिमें लिखा है कि, श्राद्धके करनेमें असमर्थ मनुष्य वैश्वदेवकी आहुति और ब्राह्मणोंको दानकरके स्वयं नया अन्न खाना चाहिये ॥ ७१ ॥

इति नवान्नम् ।

अथ जन्मादिनकृत्यम् । ( क )

सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः ।

गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥

स्वनक्षत्रञ्च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः ।

प्रतिसंवत्सरञ्चैव कर्त्तव्यश्च महोत्सवः ॥ ७३ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ-मनुष्यकी जन्मतिथिके दिनमें जलमें तिल मिलाकर उससे स्नान करके नये वस्त्रको पहनकर दूर्वा गौरोचनादियुक्त जन्मग्रन्थि दहिने हाथमें धारण करके गुरु, देवता, अग्नि, ब्राह्मण, स्वीय जन्मनक्षत्र, पिता, माता और प्रजापति देवताकी ( ब्रह्माकी ) विधानपूर्वक पूजा करनी चाहिये । प्रतिवर्षकी जन्मतिथिमेंही उक्तप्रकारसे महोत्सव करना चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

( • ) अन्येः श्राद्धाकरणसमर्थः श्राद्धानधिकारी च अत एव विधया नवमेकोद्दिष्टे दीयते मुज्यते च । इति श्राद्धतत्त्वे स्मार्त्ताः ।

( क ) जन्मतिथिकृत्यं मलमासे न कर्त्तव्यं चान्द्रमासीयत्वेन सावकाशस्थात् । न च तस्य सौरमासीयत्वं तथात्वे तन्मासे तत्तिथेः कदाचिदप्राप्ती तदर्थं तत्कृत्यलोपापत्तेः । नचोष्ठापात्तिः प्रतिसंवत्सरे तद्विधानात् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

अपिच ।

तिलोद्धर्तस्तिलस्त्रायीतिलहोमी तिलप्रदः ।

तिलभुक्तिलवापी च पट्टतिली नावसीदति ॥ ७४ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि जन्मतिथिमें तिलोद्धर्त, तिलस्त्रान, तिलहोम, तिलप्रदान, तिलभोजन और तिल बोनसे उस मनुष्यको अवसन्नताप्राप्ति नहीं होती है ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

गुडदुग्धतिलानद्याज्जन्मग्रन्थेश्च बन्धनम् ।

गुग्गुलं निम्बसिद्धार्थं दूर्वागोरोचनायुतम् ॥ ७५ ॥

इति कृत्याचिन्तामणी ।

अर्थ-कृत्याचिन्तामणिमें लिखा है कि, जन्म तिथिमें दूधमें गुड और तिल मिलाकर खाय और गुग्गुल, निम्ब, श्वेतसर्पप, दूर्वा और गोरोचनायुक्त सूत्रसे दहने हाथमें ग्रन्थि बन्धन करे ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च ।

आमिपं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-स्कन्दपुराणमें लिखा है कि-जन्मतिथिमें नाखून और बालोंका कटाना, मैथुन, अध्वगमन ( यात्रा ) आमिपभक्षण, कलह और हिंसा इन सब कार्योंको न करना चाहिये ॥ ७६ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन्प्राप्तोत्पभीष्टां श्रियं  
मत्स्यान्मोचयतो द्विजाय ददतोऽप्यायुश्चिरं वर्द्धते ।

सङ्गन्खादति यस्तु तस्य रिपवो नाशं प्रयान्ति ध्रुवं  
भुङ्क्ते यस्तु निरामिपं स हि भवेज्जन्मान्तरे पण्डितः ॥ ७७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि-जन्मतिथिमें स्नान करके और स्त्रीसंसर्ग



परित्यागकरनेसे अतुल श्री ( लक्ष्मी ) प्राप्ति होती है और मत्स्यमोचनपूर्वक  
ब्राह्मणको दान करनेसे आयुकी वृद्धि होती है जन्मतिथिमें सक्तु ( भर्जितयवा-  
दिचूर्ण सतुआ ) खानेवाले मनुष्यके शत्रुओंका नाश होता है, और निरामिप  
( मांसरहित ) भोजनकरनेसे जन्मान्तरमें पण्डित होता है ॥ ७७ ॥

अन्यच्च ।

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।

अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥ ७८ ॥

इति बृहमनुः ।

अर्थ-बृहमनुने कहा है कि-मृतक शरीरको छूनेसे, पुत्रके होनेसे, संक्रान्तिके  
निमित्त, श्राद्धके दिन, जन्मतिथिके दिन और न छूनेकी वस्तुको छूनेसे गरम-  
पानीसे स्नान करना चाहिये ॥ ७८ ॥

अथ जन्मतिथेरुभयदिने लाभे व्यवस्थामाह ।

युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया ।

रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥ ७९ ॥

इति देवीपुराणम् ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, युगाद्या जन्मतिथि और आश्विनके मही-  
नेकी शुक्लासप्तमी यदि उभयदिन पूर्वाह्णमें प्राप्ति होय तब उदयगामिनी तिथि-  
कोही ग्रहण करे अतएव जन्मतिथि दो दिनके पूर्वाह्णमें होय तो परादिनमें कृत्य  
करना चाहिये ॥ ७९ ॥

अपिच ।

घस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात्पूज्या तदा जन्मभसंयुतैव ॥

असंयुता भेन दिनद्वयेऽपि पूज्या परा या भवतीह यत्नात् ८० ॥

इदं वचनं बृहद्राजमार्त्तण्डेपि ।

अर्थ-बृहद्राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि-दोनों दिनके पूर्वाह्णमें जन्मतिथि होनेसे  
जिस दिन जन्मका नक्षत्र पूर्वाह्णमें होय तो उसी दिन जन्मतिथिका कृत्य  
करना चाहिये और दोनों दिन पूर्वाह्णमें जन्मनक्षत्र होनेसे वा एकादिन भी न

होनेसे परदिनमें जन्मतिथिका कृत्य करना चाहिये । पूर्वाह्नके इतर कालमें जन्मनक्षत्र होनेसे भी ग्रहण करे ॥ ८० ॥

विस्तरेणालं प्रकृतमनुसरामः ।

अथ स्वनक्षत्रे जन्मतिथिफलम् ।

जन्मक्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च ।

भवन्ति संवत्सरमेव यावन्नैरुज्यसन्मान सुखानि तस्य ॥ ८१ ॥ (x)

अर्थ-जन्मनक्षत्रका जन्मतिथिमें होनेसे फल कहते हैं-यदि किसी मनुष्यके जन्म महीनेमें जन्मनक्षत्रयुक्त जन्मतिथि होय तो उस वर्षमें उस मनुष्यको रोग नहीं होता है और वर्षभरतक सन्मान सुख और अनेकप्रकारके भोग प्राप्त होते हैं ॥ ८१ ॥

वारफलम् ।

कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् ।

अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे ॥ ८२ ॥ (१)

अर्थ-यदि किसी मनुष्यकी शनिवारमें वा मङ्गलवारमें, जन्मतिथि होय तो उस मनुष्यको विघ्न होता है और उसमें यदि जन्म नक्षत्र न होय तो वह संवत्सर उस मनुष्यके पदपदमें विघ्नदायक होता है ॥ ८२ ॥

अथ शनिमङ्गलवारयुक्तजन्मनक्षत्रफलम् ।

जन्मनृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशनिश्वरौ ।

स मासः कल्मषो नाम मनोदुःखप्रदायकः ॥ ८३ ॥ (२)

अर्थ-जिस किसी महीनेमें जन्मनक्षत्र यदि मङ्गलवारमें वा शनिवारमें होय तो उस मनुष्यके उस महीनेको पापका महीना कहते हैं और उस मनुष्यको उसी महीनेमें अनेकप्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥

(x) जन्मतिथौ स्वनक्षत्रयोगे फलमाह-जन्मक्षेति सुगमम् ।

(१) शनिकुजवारे जन्मतिथिप्राप्तौ दोषमाह-कृतान्तेति । शनिमङ्गलवारे जन्मतिथौ सत्यां विघ्नः स्यात् । तथा अनृक्षयोगसंप्राप्तौ ऋक्षयोगाभावे पदेपदे विघ्नः स्यादित्यर्थः । अतएव सौरारयोर्दिने मुक्ता देया अनृक्षे तु काञ्चनमिति पृथक्पृथक् प्रतीकारोऽनन्तर वक्ष्यते । सौभारिणा तु यदि नक्षत्रयोगाभावः स्यात्तदैव शनिकुजवारे दोषो भवेत् इति निगदित आत्मनो भूखत्व प्रतिपादितामिति ।

(२) यस्मिन्कास्मिन्नपि मासि शनिकुजवारे जन्मनक्षत्रे सति दोषमाह-जन्मतीति कल्मषः पाप इत्यर्थः ।

अथ दोषशान्तिः ।

तस्य सर्वोपधिसानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ।

सौरारयोर्दिने मुक्ता देयाऽनृक्षे तु काञ्चनम् ॥ ८४ ॥ (१)

अर्थ-जन्मके तिथिमें जन्मके महीनेमें और जन्मके नक्षत्रमें शनिवार अथवा मङ्गलवारके होनेसे जो दोष होता है उस दोषके शान्तिके अर्थ सर्वोपधि जलमें मिलाकर उस जलसे स्नान करे और ग्रह ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा करनी चाहिये और शनि मंगलवारमें जन्मकी तिथि और जन्मका नक्षत्र होनेसे दोष-शान्तिके अर्थ मुक्ता ( मोती ) का दान करे, जन्मनक्षत्रहीन जन्मकी तिथिमें काञ्चन ( सुवर्ण ) दान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अथ सर्वोपधिकथनम् ।

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।

शुंठी चम्पकमुस्तञ्च सर्वोपधिगणः स्मृतः ॥ ८५ ॥

अर्थ-अब सर्वोपधिको कहते हैं-मुरामांसी ( जटामांसी ) वचा, कूठ, शैलेय अर्थात् शैलज हल्दी, दारुहल्दी, सोंठ, चम्पक ( भूमिचम्पक ) नागरमोया इन सब वस्तुओंको सर्वोपधि कहते हैं ॥ ८५ ॥

इति जन्मतिथिकथनम् ।

इति वंशावरेत्यांतर्वीतिकान्यकुब्जकुलभूपणभारद्वाजमोत्रोद्भवेनत्रिपाठ्युपनाम-

केन पण्डित बाँकेलालात्मजेन श्यामुन्दरशर्मणा सम्पादितभाषाटीकया

विभूषिते ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे देवताघटनादि

तिथ्यन्तः पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

( १ ) एतत्प्रतिकारमाह-तस्येति । यस्य जन्मतिथौ, प्रतिमास जन्मनक्षत्रे वा दोष उक्तस्तस्येत्यर्थः । सौरारयोर्दिने जन्मतिथौ जन्मनक्षत्रे वा मुक्ता देया तथा अनृक्षे जन्म तिथौ स्वनक्षत्रयोगाभावे तु काञ्चनं देयमित्यर्थः । इति ।

## षष्ठस्तरङ्गः ६.

अथ यात्राप्रकरणम् ।

निषिद्धलग्नकथनम् ।

सिंहे घनुषि मीने च स्थिते सप्ततरङ्गमे ।

यात्रोद्वाहगृहारम्भक्षौरकर्माणि वर्जयेत् ॥ १ ॥ ( अ )

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ--अब यात्राप्रकरण कहते हैं--संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, सिंहमें, धनमें और मीनमें सूर्य होनेसे अर्थात् भादोंमें, पौषमें और चैत्रमें यात्रा, विवाह गृहारम्भ और क्षौरकर्म न करना चाहिये ॥ १ ॥

निषिद्धतिथिकथनम् ।

पष्ट्यष्टमीद्वादशीषु न गच्छेत्रिदिनस्पृशि ।

पूर्णिमाप्रतिपदशरिक्तावमादिनेषु च ॥ २ ॥ ( आ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ--दीपिकामें लिखा है कि--पष्टी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, प्रतिपदा और

( अ ) एष यात्रानिषेधः राजेतरपर इति मलमासतत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् । भाद्रचैत्र-पौषे बृहद्यात्रानिषेध इति ज्योतिःसारे रामकान्तः ।

( आ ) निषिद्धतिथिमाह--पष्टीति । त्रिदिनस्पृशि त्र्यहस्पृशि पूर्वोक्ते अत्र च प्रति-प्रदोषिषिनिषेधश्च श्रूयते । यथा राजमार्तण्डे --“प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः” एतच्च चन्द्रस्य क्षणित्वपूर्णत्ववशेन शुक्लकृष्णभेदेन निषेधो विधिश्च ज्ञातव्य इति । दशोऽमावस्था रिक्ता चतुर्थीनवमी चतुर्दशः । अवमादिनं पूर्वोक्तं त्र्यहस्पृगवमादिनयोश्च भेदस्तत्रैव कृतः । इति--शेषं सुगमार्थम् । अत्र च लग्नविशेषवशेन तिथिनिषेध उक्तः । पशुपतिदीपिकायाम्--“द्वितीयाभीनधनुषोश्चतुर्थी वृषकृम्भयोः भेषकर्कटयोः पष्टी कन्या-मिथुनकेऽष्टमी । दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले । एभिर्यतो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत् । एष गन्तुर्विनाशः स्यात्प्रवेशे भद्रभागगृहे । विवाहे चैव वैधव्यं ब्रूडार्या मरणं भ्रुवम् । कृष्णारम्भे फलं नास्ति व्रतदाने च मूर्खता । शुभकर्माणि सर्वाणि नैव कुर्याद्विचक्षणः ॥” अत्र केचित्तिथिभेदात्पूर्वादिद्विसु योगिन्यवस्थितत्वेन तत्तद्विधि यात्रा-निषेध वदन्ति वचनञ्च पठन्ति । “प्रतिपन्नवमी पूर्वं रामारुद्राश्च पावके । शरत्रयोदशी याम्ये वेदा मासाश्च नेर्द्धते । पष्टी चतुर्दशी पश्चाद्वायौ पूर्णा च सप्तमी । द्वितीया दशमी सौम्यामैशान्यामष्टमी कुहूः । वामे शुभकरी देवी दक्षिणे मृत्युदा स्थिता । वधवन्धकरी चात्रे पृष्ठे सर्वार्थसाधिनी ” एतदनाकरं साकरत्वे वा योगिन्याश्चतुर्दण्डक्रमेण घोटकगत्या वामावर्त्तनं प्रतिदिक्स्थभ्रमणादनास्थाप्रसङ्गः स्यात् । तथा च पठन्ति “यामार्द्धेनाश्व-गत्या तु भ्रमते द्विसु योगिनी ” इति ।

रिक्ता तिथिमें ग्रहस्पर्श और अवम दिनमें यात्रा न करना चाहिये ॥ २ ॥  
आपिच ।

तथा यमद्वितीयायां यात्रायां मरणं भवेत् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि-यमद्वितीया ( भ्रातृद्वितीया ) तिथिमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३ ॥

शुभाशुभतिथिकथनम् ।

अज्ञातचन्द्रा प्रतिपत्तिथियां सा सर्वथा सिद्धिकरी न पुंसाम् ।

कलोनचन्द्रा प्रतिपत्तिथियां सा सर्वदा सिद्धिकरी नियुक्ता ॥ ४ ॥

अर्थ-अज्ञातचंद्रमा अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिमें यात्रा करनेसे जाने-वालेकी मनकामना सिद्ध नहीं होती है और कलोनचंद्रमा ( कृष्णपक्षकी प्रतिपदा ) तिथिमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी यात्रा शुभ होती है ॥ ४ ॥

आपिच ।

प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः ।

द्वितीयायां शुभः पन्थास्तृतीयायां जया भवेत् ॥ ५ ॥

वधवन्धनसंक्लेशश्चतुर्थ्यां नात्र संशयः ।

पञ्चम्यामीप्सितार्थः स्यात्पष्ट्यां व्याधियुतो भवेत् ॥ ६ ॥

सप्तम्यामर्थलाभः स्यादष्टम्यामन्त्रपीडनम् ।

नवम्यां मृत्युसंयोगात्र गन्तव्यं कदाचन ॥ ७ ॥

दशम्यां भूमिलाभः स्यादेकादश्यामरोगिता ।

द्वादश्याञ्च न गन्तव्यं सर्वसिद्धा त्रयोदशी ॥ ८ ॥

चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां गमनञ्च निषेधयेत् ॥ ९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कृष्णपक्षकी प्रतिपदामें यात्रा करनेसे मनोरथ सिद्ध होता है, इसी प्रकार दोनों पक्षोंकी द्वितीयामें यात्रा शुभ होती है, तृतीयामें जयप्राप्ति होती है, चतुर्थीमें वध, बन्धन और क्लेश होता है, पञ्चमीमें अभीष्टसिद्धि होती है, षष्ठीमें रोग होता है, सप्तमीमें धनकी प्राप्ति होती है, अष्टमीमें अछाघात होता है, और नवमीमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है. अतएव इस तिथिमें कभी न जाना चाहिये और दशमी तिथिमें यात्रा करनेसे भूमि

( पृथिवी ) मिलती है. इसी प्रकार एकादशीमें आरोग्यताप्राप्ति होती है किन्तु द्वादशीमें यात्रा न करे, त्रयोदशीमें सब कार्य सिद्ध होते हैं. चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें यात्रा न करना चाहिये ॥ ५-९ ॥

वारादिकथनम् ।

सत्यजेदिवसे यात्रां सूर्यारार्कान्दुवक्रिणाम् ।

अष्टवर्गदशापाकेष्वनिष्टफलदस्य च ॥ १० ॥ ( इ )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—रवि, मंगल, शनि और सोमवारमें ओर ग्रहोंके वक्री होनेसे उनके वारोंमें यात्रा न करना चाहिये और अष्टवर्गमें वा दशमें जो ग्रह अनिष्टदायक हों उन सब ग्रहोंके वारमेंभी यात्रा न करनी चाहिये ॥१०॥ ( टीकामें जो सब वचन लिखे हैं उनके मध्यमें किसी किसी अत्यन्त आवश्यक वचनोंका सर्वसाधारणके जानने निमित्तसे मूलमें लिखकर उनकाभी भाषानुवाद कर दिया है जिसके देखनेसे पाठकगण अनायासमें समझ जायेंगे । )

अपिच ।

सूर्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च ।

ज्वलनासृक्पितरुजः भौमे बुधे सुहृत्प्राप्तिः ॥ ११ ॥

( इ ) यात्राया निषिद्धवारानाह—सत्यजेदिति । सूर्यस्यारस्य मङ्गलस्य आर्कः शने-  
रिन्दोश्चन्द्रस्य वक्रिग्रहस्य वारे यात्रा त्यजेत् । तथा लघुयात्रायां “ सूर्यदिवसे विनाश-  
श्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च । ज्वलनासृक्पितरुजः भौमे बुधे सुहृत्प्राप्तिः । जेने जयध-  
नलाधिः शीक्रे ख्रिविख्रगन्धधनलाभः । दैन्यवधवन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य ”  
तथाच तत्रैव—“वक्री न शुभः केन्द्रे तदहस्तद्वर्गलग्नश्च ” इति । अत्र च वाराधिपतेरनु-  
लोमदिशि गमनं प्रशस्तं प्रतिलोमदिशि न प्रशस्तम् । यथा राजमार्तण्डे—“ तोयेश  
वद्विधनदान्तकराक्षसाना यातो गदानिलशतक्रतुशङ्कराणाम् । दिग्भागमुष्णाकिरणादि  
दिनेषु देवैः सरक्षितोऽपि निधनं न चिरादुपैति । प्रतीर्त्वां रविवारेण प्राचींश्च रविनन्दने ।  
उदीर्त्वां भूमिपुत्रेण न यात्रा दक्षिणां बुधे ॥ तथा पशुपतिदीपिकायाम् “ दक्षिणादिङ्गु-  
स्त्रगमनं गमनं वाप्यभिनवासु नारीषु । व्ययमपि शस्यफलानां न बुधो बुधवासरे कुर्यात् ”  
सामान्येनोक्तं विशेषमाह अष्टवर्गंति । अष्टवर्गाद्युक्तगोचरे दशापाकादी आदिशब्दान्त-  
दैशादी नाडीनक्षत्रादी चानिष्टफलदस्य शुभग्रहस्यापि वारे यात्रा सत्यजेत् । एवञ्च  
पापग्रहस्यापि अष्टवर्गादी शुभफलदस्य वारे यात्रा प्रशस्ता । तथा प्रतिलोमादिग्रह-  
स्यापि वारे गोचरादी शुभदत्तेन यात्रा शुभेति तात्पर्यार्थः । यथा राजमार्तण्डे—“आश्व-  
र्यक पुनरिदं त्वशुभः शुभो वा यः स्याद्ग्रहः शुभफलो दिनयः प्रशस्तः ” तथा लघुया-  
त्रायाम् “ उपचयग्रहादिने सिद्धिः क्रूरेष्वपि याधिना भवति । सीम्येत्यनुपचयस्यै न  
भवति यात्रा शुभा यातुः ” ॥

जैवे धनजयलब्धिः शौके स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभः ।

दैन्यवधबन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य ॥ १२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें यात्रा करनेसे मृत्यु होती है, इसी प्रकार सोमवारमें शक्तिका क्षय और धनकी हानि होती है, मंगलवारमें आग्नेका भय और रक्तपित्तकी पीडा होती है, बुधवारमें बन्धुकी ( भाईकी ) प्राप्ति होती है, बृहस्पतिवारमें धनप्राप्ति और जयप्राप्ति होती है, शुक्रवारमें स्त्री, वस्त्र, गन्धद्रव्य और धनकी प्राप्ति होती है और शनिवारमें यात्रा करनेसे दैन्यता, वध, बन्धन और रोगकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

उपचयग्रहादिने सिद्धिः क्रूरेष्वपि यायिनां भवति ।

सौम्येऽप्यनुपचयस्ये न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्रूरग्रह यदि उपचयस्थ ( तीसरे, ग्यारहवें, छठे वा दशवें स्थानमें स्थित ) होयें तब उन सब ग्रहोंके वारोंमें जानेवालेकी यात्रा शुभ होती है और शुभग्रह यदि अनुपचयस्थ होयें तो शुभग्रहोंके वारोंमें यात्रा शुभ होती है ॥ १३ ॥

अपरञ्च ।

शुक्रादित्यदिने न वारुणादिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां

मन्देन्दोश्च दिने न शक्रककुभं याम्यां गुरो न व्रजेत् ।

शूलानोतिविलङ्घ्य यान्ति मनुजा ये सौख्यवित्ताशया

भ्रष्टाशाः पुनरापतन्ति यदि ये शक्रेण तुल्या अपि ॥ १४ ॥

अर्थ-शुक्रवार और रविवारमें पश्चिमदिशाको न जाना चाहिये, इसी प्रकार बुधवार और मंगलवारकी उत्तरदिशामें न जाय, शनिवार और सोमवारमें पूर्वदिशाको न जावे और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाना चाहिये, जो मनुष्य इन दिशाशूलोंके दिनमें सुख और धनकी आशा करके यात्रा करता है तो इन्द्रके समान होनेसेभी उस मनुष्यका नाश होता है ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

दिगीशाहे शुभा यात्रा पृष्ठाहे मरणं ध्रुवम् ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दिशाके स्वामीके वारमें यदि उसी दिशामें

यात्रा करनेसे शुभफल होता है और दिशाके मालिककी पीठकी तरफ जानेसे यात्रीकी मृत्यु होती है ॥ १५ ॥

अथ दिग्धिपतिकथनम् ।

सूर्यः शुक्रः क्षमापुत्रः सैहिकेयः शनिः शशिः ।

सौम्यस्त्रिदशमन्त्री च प्राच्यादिदिग्धीश्वराः ॥ १६ ॥ (✽)

अर्थ—अब दिशाओंके स्वामी वर्णन करते हैं, यथा दीपिकामें लिखा है कि, पूर्वदिशाके मालिक सूर्य हैं, इसी प्रकार आग्निकोणके मालिक शुक्र, दक्षिणके मालिक मंगल, नैऋत कोणके मालिक राहु, पश्चिमके मालिक शनि, वायुकोणका मालिक चन्द्रमा, उत्तरका मालिक बुध और ईशान कोणका मालिक बृहस्पति होता है ॥ १६ ॥

अपि च ।

दिग्गीश्वारे गमनं प्रशस्तं विहाय सौम्यं यदि जीविताशा ।

न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतोऽर्कावनिभूशनीनाम् ॥ १७ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गने कहा है कि, दिशाके स्वामीके वारमें उसी दिशामें जाना चाहिये किन्तु बुधवारको जीनेकी आशा करनेवाला मनुष्य उत्तरदिशामें न जाय । रात्रिमें यात्रा करनेसे उक्त वारोंका दोष नहीं होता है, विशेष करके रवि, मंगल और शनिवारमें यात्रा करनेसे दोष नहीं होता है ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

पूर्वस्यां सूर्यशुक्रौ च प्रतीच्यां शनिसोमकौ ।

दक्षिणस्यां क्षितिस्तुतश्चोत्तरस्यां बृहस्पतिः ॥ १८ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें लिखा है कि—रवि और शुक्रवारमें पूर्वदिशामें जाना चाहिये इसी प्रकार शनि और सोमवारमें पश्चिमदिशाको जाय, मंगलवारमें दक्षिणदिशाको जाय और बृहस्पतिवारमें उत्तरदिशाको जाना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ दिशाशूलकथनम् ।

न गच्छेदुत्तरे भौमे न प्राच्यान्दिशि सोमके ।

याम्ये देवगुरौ चैव न गन्तव्यं कदाचन ॥ १९ ॥



ईशाने चैव नैर्ऋत्यामाग्नेय्यां मारुते तथा ।

न गन्तव्यं सुराचार्ये प्रतीच्यां रविशुक्रयोः ॥ २० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, मंगलवारमें उत्तरदिशाको यात्रा न करनी चाहिये, इसी प्रकार सोमवारमें पूर्वको न जाय, दक्षिण ईशानकोण नैर्ऋत अग्निकोण और वायुकोणमें बृहस्पतिवारको न जाना चाहिये और रविवार शुक्रवारको पश्चिम दिशामें न जाय ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रकारान्तरश्च ।

शानिसोमदिने प्रार्चीं दक्षिणां बुधजीवयोः ।

प्रतीर्चीं रविशुक्राहे गच्छेद्द्रौमे न चोत्तराम् ॥ २१ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, शानि और सोमवारमें पूर्वदिशाको न जाना चाहिये इसी प्रकार बुध और बृहस्पतिवारमें दक्षिणदिशाको न जाय, रवि और शुक्रवारमें पश्चिमको न जावे मङ्गलवारमें उत्तरदिशाकी यात्रा न करनी चाहिये ॥ २१ ॥

अथ वारवेलाकथनम् ।

कृतमुनियमशरमङ्गलरामर्षुपु भास्करादियामार्द्धे ।

प्रभवति हि वारवेला न शुभा शुभकार्यकरणाय ॥ २२ ॥ ( × )

अर्थ-अथ वारवेलाको कहते हैं-दिनमानको आठभागमें विभक्त करनेसे उसके एक २ भागका नाम यामार्द्ध होता है । रविवारके चौथे यामार्द्धको वारवेला कहते हैं, अर्थात् डेढ प्रहरके बाद एक यामार्द्ध वारवेला होता है, इसी प्रकार सोमवारके सातवें यामार्द्धको वारवेला कहते हैं, मंगलवारके दूसरे यामार्द्धमें वारवेला होती है, बुधवारके पांचवें यामार्द्धमें, बृहस्पतिवारके आठवें यामार्द्धमें, शुक्रवारके तीसरे यामार्द्धमें और शनिवारके छठे यामार्द्धमें वारवेला होती है अर्थात् अढ़ाई प्रहरके बाद वारवेला होती है । इन सब वारवेलाओंमें शुभाशुभ कोई कार्य न करना चाहिये ॥ २२ ॥

( × ) वारवेलामाह-कृतोति । कृतादिसस्यासु चतुरादिसरयात्रिपथेषु यथासस्य भास्करादीनां यामार्द्धं प्रहरार्द्धं तत्र वारवेला स्यात्सा शुभाशुभकर्मकरणाय न शुभा स्यात् । रविवारे चतुर्थयामार्द्धं वारवेला सोमवारे सप्तमयामार्द्ध इत्यादि । अत्र च वारप्रवृत्तिकालादेव वारवेला गणनीयेत्याहुरेतच्च मुक्तिसिद्ध व्यपदिपते च कैश्चित् । इति ।  
“ रविः कविः कुजो रहुर्गुरुश्चन्द्रः शनिर्बुधः । एतेषां राहुवेलायां वारवेलाः प्रकीर्त्तिताः ”  
इति ग्रन्थान्तरे ।

अथ कालादिकथनम् ।

कालस्य वेला रवितः शरक्षी कालानलागाम्बुधयो गजेन्द्र ।  
दिनेनिशायामृतवेदनेत्रनगेषुरामा विधुदन्तिनौ च ॥२३॥ (\*)

अर्थ—अब कालवेलाको कहते हैं—रविवारके पांचवें यामार्द्धमें कालवेला होती है अर्थात् दोपहरके बाद एक यामार्द्धको कालवेला कहते हैं, इसी प्रकार सोमवारके दूसरे यामार्द्धको कालवेला कहते हैं, मङ्गलवारके छठे यामार्द्धको, बुधवारके तीसरे यामार्द्धको, बृहस्पतिवारके सातवें यामार्द्धको शुक्रवारके चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले यामार्द्धको और आठवें यामार्द्धको कालवेला कहते हैं। यह कालवेला दिनमें होती है, रात्रिमें रविवारके छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं। इसी प्रकार सोमवारके रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधवारकी रात्रिके सातवें यामार्द्धको बृहस्पतिवारकी रात्रिके पाँचवें यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले और आठवें यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं ॥ २३ ॥

अपिच ।

रवौ वर्जं चतुःपञ्च सोमे सप्तद्वयं तथा ।

कुजे पष्ठद्वयं चैव बुधे पञ्चतृतीयकम् ॥ २४ ॥

गुरौ सप्ताष्टमञ्चैव त्रिचत्वारि च भार्गवे ।

शनावाद्यञ्च पष्ठञ्च शेषं च परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें चौथे और पांचवें यामार्द्धको अर्थात् डेढ प्रहरके बाद एक प्रहरको त्यागकरके कर्म करना चाहिये, इसी प्रकार सोमवारके दूसरे और सातवें यामार्द्धको, मङ्गलवारके दूसरे और छठे यामार्द्धको बुधवारके तीसरे और पांचवें यामार्द्धको बृहस्पतिवारके सातवें और आठवें यामार्द्धको, शुक्रवारके तीसरे और चौथे यामार्द्धको और शनिवारके पहिले, छठे और आठवें यामार्द्धको परित्यागकरके कार्य करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

( + ) कालवेलाभाह—कालस्येति । रवितो रविवागदितः दिने यथासंख्यं शरक्षी यामार्द्धानि कालस्य वेला स्यात् । गजेन्द्र इति द्विवचनात् शनिवारं प्रथमं शेषञ्च यामार्द्धं कालवेला स्यात् । रात्रौ तु यथासंख्यं तुभेदादियामार्द्धानि कालवेला इत्यर्थः । अत्र च कालस्य वेलेति संज्ञया अशुभत्वं दर्शितमिति ।

अथ कालरात्र्यादिकथनम् ।

रवौ पष्टं विधौ वेदं कुजवारे द्वितीयकम् ।

बुधे सप्त गुरौ पञ्च भृगुवारे तृतीयकम् ॥ २६ ॥

शनावाद्यं तथा चान्तं रात्रौ कालं विवर्जयेत् ॥ २७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारकी रात्रिमें छठे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसी प्रकार सोमवारकी रात्रिके चौथे यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धको, बुधकी रात्रिके सातवें यामार्द्धको, वृहस्पतिकी रात्रिके पांचवें यामार्द्धको, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धको और शनिवारकी रात्रिके पहिले यामार्द्धको और आठवें यामार्द्धको कालरात्रि कहते हैं, इसमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

रवौ रसाब्धी हिम गौहयाब्धी द्वयं महीजे विधुजे शराश्वौ ।

गुरौ शराश्वौ भृगुजे तृतीयं शनौ रसाद्यन्तामिति क्षपायाम् ॥ २८ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ-सत्कृत्यमुक्तावल्याम् लिखा है कि, रविवारकी रात्रिके छठे और चौथे यामार्द्धमें कालरात्रि होती है, इसी प्रकार सोमवारकी रात्रिके सातवें और चौथे यामार्द्धमें मङ्गलकी रात्रिके दूसरे यामार्द्धमें बुधकी रात्रिके पांचवें और सातवें यामार्द्धमें वृहस्पतिकी रात्रिके पाँचवें और आठवें यामार्द्धमें, शुक्रवारकी रात्रिके तीसरे यामार्द्धमें और शनिवारकी रात्रिके पहिले, छठे और आठवें यामार्द्धमें कालरात्रि होती है ॥ २८ ॥

अथ फलम् ।

यात्रायां मरणं काले वैधव्यं पाणिपीडने ।

व्रते ब्रह्मवधः प्रोक्तः सर्वकर्मसु तं त्यजेत् ॥ २९ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-कालवेलादिमें यात्रा करनेसे यात्रीकी मृत्यु होती है इसी प्रकार विवाह करनेसे कन्या विधवा होती है और यज्ञोपवीत करनेसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है अतएव कालवेला दिमें कोई काम न करै ॥ २९ ॥

अथ कुलिककालनिरूपणम् ।

मन्वर्कादिगवस्वृत्तुवेदपक्षैर्कान्मुहूर्तैः कुलिका भवन्ति ।

दिवा निरैकरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥ ३० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, रव्यादि सात वारोंमें दिनके समय क्रमानुसार चौथे, बारह, दश, आठ, छः चार और दो मुहूर्त कुलिक संज्ञक होते हैं, और रात्रिमें इन सब मुहूर्तोंके एक २ न्यूनक्रमसे होताहै अर्थात् तेरह, ग्यारह, नौ, सात, पांच, तीन और पहिला मुहूर्त क्रमानुसार रव्यादि सातों वारोंमें कुलिकसंज्ञा होतीहै कुलिक समय सम्पूर्ण मङ्गलकार्योंमें अप्रशस्त है ॥ ३० ॥

अथ यामार्द्धे माहेन्द्रादिदण्डकथनम् ।

ख्यातं वा वयमासूर्य्ये मावावयकलानिधौ ।

यमावावकुजे ज्ञेया वयमावा सुधांशुजे ॥ ३१ ॥

जीवे चैव वावयमा मावावय भृगोः सुते ।

सूर्य्यपुत्रे यमायाव वटीयुग्मं शुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ (x)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-अब यामार्द्धमें माहेन्द्रादियोग कहते हैं, ज्योतिःसारमें लिखाहै कि, रविवारमें प्रत्येक यामार्द्धके प्रथम दण्ड वायु, द्वितीयदण्ड वरुण, तृतीय दण्ड यम और चतुर्थ दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै, इसी प्रकार सोमवारमें पहिला दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होता है, मङ्गलवारमें पहिला दण्ड यमसंज्ञक, दूसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तीसरा दण्ड वायुसंज्ञक और चौथा दण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, बुधवारमें पहिला दण्ड वरुणसंज्ञक, दूसरा दण्ड यमसंज्ञक, तीसरा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक और चौथा दण्ड वायुसंज्ञक होताहै, बृहस्पतिवारमें पहिला दण्ड वायुसंज्ञक, दूसरा दण्ड वरुणसंज्ञक, तीसरा दण्ड यमसंज्ञक और चौथा दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक होताहै; शुक्रवारमें प्रथम दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक दूसरा दण्ड वायुसंज्ञक, तीसरा दण्ड वरुणसंज्ञक और चौथा दण्ड यमसंज्ञक होताहै और शनिवारके प्रत्येक यामार्द्धमें प्रथम दण्ड यमसंज्ञक, द्वितीय दण्ड माहेन्द्रसंज्ञक, तृतीयदण्ड वायुसंज्ञक और चतुर्थदण्ड वरुणसंज्ञक होताहै, प्रत्येकवारमेंही चार दण्डमें शुभाशुभ देखना चाहिये फल नीचे लिखते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

(x) वा. वायुः व. वरुणः य. यमः मा. माहेन्द्रः इति ज्योतिःसारे रामकान्तः ।

अथ फलम् ।

माहेन्द्रवरुणयोर्यात्रा शुभा प्रोक्ता मनीषिभिः ।

अन्यत्र चाशुभा ज्ञेया दैवज्ञैरिति निश्चितम् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-माहेन्द्र और वरुणसंज्ञक दण्डमें यात्रा करनेसे शुभफल होता है और वायु और यमसंज्ञक दण्डमें यात्रा करनेसे अशुभ होता है इस प्रकार ज्योतिषके ज्ञाननेवाले विद्वानोंने ज्योतिःसारनामक पुस्तकमें लिखा है ॥ ३३ ॥

अथ योगिनीस्थितिकथनम् ।

प्रतिपन्नवमी पूर्वे रामा रुद्राश्च पावके ।

शरत्रयोदशी याम्ये वेदा मासाश्च नैर्ऋते ॥ ३४ ॥

पष्ठी चतुर्दशी पश्चाद्वायव्या मुनिपूर्णमे ।

द्वितीया दशमी यक्षे ऐशान्यामष्टमी कुहूः ॥ ३५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब योगिनीस्थितिको वर्णन करते हैं ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमें योगिनी पूर्वादिशामें रहती है, इसी प्रकार तृतीया और एकादशीको आग्निकोणमें, पञ्चमी और त्रयोदशीको दक्षिणमें, चतुर्थी और द्वादशीको नैर्ऋतकोणमें, षष्ठी और चतुर्दशीको पश्चिममें, सप्तमी और पूर्णिमाको वायुकोणमें, द्वितीया और दशमीको उत्तरमें, अष्टमी और अमावस्यातिथिके दिन योगिनी ईशानकोणमें रहती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

त्याज्यकालकथनम् ।

योगिनीनवदण्डास्तु शेषा वर्ज्याः प्रयत्नतः ।

दक्षसन्मुखयोगिन्यां गमनं नैव कारयेत् ॥ ३६ ॥ ( × )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि योगिनीके शेष नौ दण्डोंको यत्नपूर्वकः परित्याग करै, दक्षिणदिशामें और सन्मुख योगिनी होनेसे कभी यात्रा न करनी चाहिये ॥ ३६ ॥

( × ) “त्रयोदयगता देवी तत्र मातङ्गभुक्तिका । भ्रमन्ती तेन मार्गेण भवेत्तत्काल-योगिनी ॥ तेन मार्गेण परतिथिक्रमेण क्रममाह-इन्द्रे सोम्याग्निनैर्ऋत्ययाम्यतो यानिले शिवे ” इति ज्योतिःसारे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

अपिच ।

प्राचीधनेश्वरहुताशनकौणपेय-

वैवस्वतीवरुणवायवशङ्करेषु ।

एषु क्रमान्निवसति प्रतिपन्नवम्यो-

र्वामाग्रतोऽभयकरीनिधिराजपुत्री ॥ ३७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रतिपदा और नवमी तिथिमें योगिनी प्रथमके चार दण्डमें पूर्वादिशामें नहीं रहती है और उत्तरमें, अग्रिकोणमें, नैऋत-कोणमें दक्षिणमें, पश्चिममें वायुकोणमें और ईशानकोणमें परतिथिक्रमानुसार प्रतिपदा, द्वितीया इत्यादिक्रमसे योगिनी वामगतिमें भोग करती है । योगिनी बायें वा पीछे होनेसे अभयदान करती है ॥ ३७ ॥

अन्यच्च ।

वामे शुभकरी देवी पृष्ठे सर्वार्थदायिनी ।

वधबन्धकरी चाग्रे दक्षिणे मृत्युदायिनी ॥ ३८ ॥

इत्यस्य पूर्वार्द्धे ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-योगिनीदेवी बायें होनेसे शुभफल दान करती है पीछे होनेसे सर्वार्थ सीद्ध होती है, सन्मुख होनेसे वध बन्धन होता है और दहिने योगिनीके होनेसे मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥

अथ दिवारात्रौ आहिततिथ्याद्योपि यात्रायां शुभा इत्याह ।

गुणवति तिथावृक्षेऽनिष्टे दिवागमनं हितम्

निशि च भगुणैः शस्तं यानं तिथौ गुणवर्जिते ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, तिथि शुभ होय और नक्षत्रके अशुभ होनेसे भी दिनकी यात्रा करना चाहिये, रात्रिमें नक्षत्र शुभ होय और तिथिके अशुभ होनेसे भी यात्रा शुभ होती है ॥ ३९ ॥

अथ दक्षिणायने निशिसौम्यायने च दिवा यात्राकथनम् ।

याम्यायने निशायात्रा शुभा स्यादुत्तरे दिवा ।

चन्द्रसूर्यो मृगादिस्थौ पूर्वा यायात्तयोत्तराम् ॥ ४० ॥

दक्षिणां पश्चिमामाशां कर्कर्यादौ तौ स्थितौ यदा ।

अन्यथा वधबन्धादिक्लेशमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दक्षिणाधनमें रात्रिके समय और उत्तरायणमें दिनके समयमें यात्रा शुभ होती है । चन्द्रमा और सूर्य जबतक मकरादि मिथुन राशिमें रहे उस समय पूर्व दिशामें और उत्तरदिशामें यात्रा करना चाहिये । उक्त दोनों ग्रह कर्क राशिसे धन राशिमें जबतक रहें उस समय दक्षिणदिशामें और पश्चिम दिशामें यात्रा शुभ होती है । इसके विपरीतमें यात्रा करनेसे वध बन्धन और क्लेशादिको भोगना पडता है ॥ ४१ ॥

अथ राहुभ्रमणचक्रम् ।

पश्चादकं विधौ वह्नौ सौम्यां ज्ञे वायवे कुजे ।

रक्षोदिशि भृगौ याम्यां गुरावशि शनौ दिने ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--अब राहुके भ्रमणचक्रको कहते हैं--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारके प्रथम यामार्द्धमें पश्चिमदिशामें राहु रहता है, सोमवारको अग्निकोणमें, बुधवारको उत्तरमें, मङ्गलवारको वायुकोणमें, शुक्रवारको नैऋतकोणमें, वृहस्पति वारको दक्षिणमें और शनिवारके प्रथमयामार्द्धमें राहु ईशानकोणमें रहता है । ४२ ।

राहुर्भ्रमति यामार्द्धादश्वगत्या च वामतः ।

प्रतर्च्यां वह्निकोणे तु ततः सौम्यामतोऽस्रपे ॥ ४३ ॥

ततः प्राच्यामतो वायौ तस्माद्याम्यां ततः शिवे ।

रवावेवमन्यवारेपूह्यमेवं क्रमेण हि ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ--ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, राहु एक एक यामार्द्धके बाद घोडेकी चालसे वामावर्तमें भ्रमण करता है । रविवारके प्रथम यामार्द्धमें राहु पश्चिमदिशामें रहता है । इसी प्रकार दूसरे यामार्द्धमें अग्निकोणमें, तीसरे यामार्द्धमें उत्तरमें, चौथे यामार्द्धमें नैऋतमें, पांचवें यामार्द्धमें पूर्वदिशामें, छठे यामार्द्धमें वायुकोणमें, सातवें यामार्द्धमें दक्षिणमें और रविवारके आठवें यामार्द्धमें राहु ईशानकोणमें रहता है । रविवारके दिनकी राहुकी स्थिति कहीगई इसी प्रकार अन्यान्य वारमें भी जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

द्यूते युद्धे विवादे च यात्रायां सम्मुखस्थितम् ।

राहुं विवर्जयेद्यत्नाद्यदीच्छेत्कर्मणः फलम् ॥ ४५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, द्यूतक्रीडामें ( चौपड खेलनेमें ) युद्धमें, विवादमें और यात्रासमयमें फलके चाहनेवाला मनुष्य सम्मुख राहुको परि-  
त्याग करै ॥ ४५ ॥

इति राहुस्थित्यादिकथनम् ।

अथ यात्रिकनक्षत्रकथनम् ।

अश्विहस्तगुरुमैत्रदैवतैः पौष्णविष्णुवसुशतिरश्मिभिः ।

यानमेभिरतिसुन्दरं विदुः सर्व एव मुनयस्तु नेतरे ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब यात्राविषयमें नक्षत्र कहते हैं—अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा और मृगशिर नक्षत्रमें यात्रा करना चाहिये सब मुनियोंने इस प्रकार कहाहै । किन्तु उक्त नक्षत्रोंको छोडकर अन्य नक्षत्रोंमें यात्रा करनेसे अमङ्गल होताहै ॥ ४६ ॥

अन्वयश्च ।

अश्विनीमैत्ररेवत्यो मृगमूलपुनर्वसुः ।

पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा प्रस्थाने चोत्तमाः स्मृताः ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र यात्रामें उत्तम हैं ॥ ४७ ॥

अपरञ्च ।

रोहिणी त्रीणि पूर्वाणि चित्रा स्वातिश्च वारुणम् ।

श्रवणं च धनिष्ठा च यात्रायां मध्यमाः स्मृताः ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि—रोहिणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, चित्रा, स्वाति, शतभिषा, श्रवण और धनिष्ठा इन सब नक्षत्रोंको यात्रामें मध्यम कहते हैं ॥ ४८ ॥

अथ निन्दनक्षत्रकथनम् ।

चित्राश्लोषास्वातिविशाखाभरणीपित्र्येशकृत्तिकाः ।

नातिशुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभाशुभानि विष्णयानि ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—चित्रा, आश्लेषा, स्वाति, विशाखा, भरणी, मघा, आर्द्रा और कृत्तिका



नक्षत्र यात्रामें अत्यन्त अशुभदायक हैं, इनको छोड़कर अन्य नक्षत्र कौन शुभदायक और कौन अशुभदायक है ॥ ४९ ॥

अपिच ।

उत्तरासु विशाखासु मघाद्राभरणीषु च ।

कृत्तिकाश्लेषयोश्चैव प्रस्थाने मरणं भवेत् ॥ ५० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा-  
भाद्रपदा, विशाखा, मघा, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्रमें यात्रा  
करनेसे उस मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ५० ॥

अथ नक्षत्राणां दिग्ब्यवस्थाकथनम् ।

पूर्वाग्रिमघानुराधवसुभादीन्यत्र दण्डोऽन्तरे

वायव्याग्नेर्न सलङ्घ्यमैक्यमनलप्राच्योस्तथान्या विदिक् ।

लग्ने दिग्बदने तु दण्डगमनं प्राच्यादिशूलं विना

तज्येष्टाज्ञपदं सरोजनिलयः स्यादुत्तराफाल्गुनी ॥५१॥(क)

अर्थ-अब नक्षत्रोंकी दिग्ब्यवस्था कहते हैं, पूर्वदिशाकी कृत्तिकादि सात

( क ) नक्षत्राणां दिग्ब्यवस्थामाह-पूर्वादीति । पूर्वादि यथा स्यात्तथाग्रिमघानुगध  
वसुभादीनि नक्षत्राणि स्युः । पूर्वं कृत्तिकादीनि सात, दक्षिणे मघादीनि सात, पश्चिमेऽनुरा-  
धादीनि सात, अभिजित्सह उत्तरे धनिष्ठादीनि भरण्यान्तानि सात स्युः । एतेन स्वस्वदि-  
श्युक्तनक्षत्रैस्तदिदिशि गमनं शान्भित्यर्थः । तत्रैव विशेषमाह-अत्रेति । अत्र वायव्या-  
ग्नेरन्तरे मध्ये दण्डः स्यात्स तु न लघ्यः । एतेन पूर्वोत्तरस्थनक्षत्रैर्दक्षिणपश्चिमयोर्न गन्त-  
व्यम् । दक्षिणपश्चिमस्थनक्षत्रैः पूर्वोत्तरयोर्न गन्तव्यं किन्तु पूरस्थनक्षत्रैरुत्तर गन्तव्यम्  
उत्तरस्थनक्षत्रैः पूर्व गन्तव्यं दक्षिणस्थनक्षत्रैः पश्चिम गन्तव्यं पश्चिमस्थनक्षत्रैर्दक्षिण  
गन्तव्यमिति । तथा लघुयात्रायाम् । “ प्राच्यादि सात सात क्रमेण धिष्यानि कृत्तिका-  
दीनि । अनुलोमान्येकत्र पूर्वोत्तरयोश्च दक्षिणापरयोः । अनिलानलादिग्रेखा परिधारया  
यान्ति ये समुल्लङ्घ्य । आज्ञाभिन कुलिशभृतः पतन्ति न चिरेण ते व्यसने ” इति ।  
इदानीं दिग्ब्यवस्थामाह-एक्यमिति । आग्नेयपूर्वदिशोरैक्यं पूर्वदिह्नक्षत्रैरग्निकोणे गन्त-  
व्यमित्यर्थः । तथैव प्रकारेणान्या विदिक् ज्ञेया दक्षिणैर्ऋतयोरैक्यं पश्चिमवातयोरुत्तरे-  
शानयेत्येति । विशेषमाह-लग्नइति । प्रागादिभक्तुमा नाथा इत्यादिनाक्त दिग्बदने दिग्-  
नुल्लङ्घनं तच्च दिग्मुख लग्नं यदि स्यात्तदा प्राच्यादिशूलं विना पूर्वादिदिशा शूलसं-  
ज्ञक नक्षत्रं विहाय दण्डगमनं दण्डमुल्लङ्घ्यापि गमनं कार्यम् । मध्यमपदलोपी समासः ।  
शूलेपि कदापिच गमनमित्यर्थः । तथा बृहदात्रायाम् । “उल्लङ्घ्यं दण्डमपि काममु-  
श्नन्ति यान् शूलं विहाय यदि दिग्मुखलग्नं शुद्धिः ” इत्यनेन दिग्बदने लग्ने सर्वदेवयात्रा-  
शस्तेत्यर्थः । पूर्वादिशूलनक्षत्रमाह-तदिति । तच्छूलं पूर्वं ज्येष्ठा दक्षिणेऽज्ञपदं पूर्वं भाद्र-  
पदं पश्चिमे रोहिणी उत्तरे उत्तराफाल्गुनी शूलमित्यर्थः ।

नक्षत्रोंमें जाय, इसी प्रकार दक्षिणको मघादि सात नक्षत्रोंमें, पश्चिमको अनुराधादि सात नक्षत्रोंमें और उत्तरको धनिष्ठादि सात नक्षत्रोंमें, यात्रा करनी चाहिये और वायुकोणसे आग्निकोणतक एक दण्डकी कल्पना करै, उक्त दण्ड अलंघनीय अर्थात् पूर्व और उत्तर दिक्स्थ नक्षत्रोंमें दक्षिण और पश्चिमको यात्रा न करै और दक्षिण और पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमें पूर्व और उत्तरकी यात्रा करै, किन्तु पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा करै, उत्तर दिक्स्थनक्षत्रोंमें पूर्वकी यात्रा करै, दक्षिणादिक्स्थ नक्षत्रोंमें पश्चिमकी यात्रा करै और पश्चिम दिक्स्थनक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये, और पूर्वदिक्स्थ नक्षत्रोंमें आग्निकोणकी यात्रा करै, दक्षिणादिक्स्थ नक्षत्रोंमें नैऋतकोणकी यात्रा करै, पश्चिमस्थ नक्षत्रोंमें वायुकोणकी यात्रा करै और उत्तरदिक्स्थ नक्षत्रोंमें ईशान कोणकी यात्रा करनी चाहिये, विशेषकरके दिग्नुकूल लग्न यदि दिङ्मुख लग्न होय तो पूर्वादि दिशाओंके शूलसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़करके पूर्वोक्त दण्डका लंघन करकेभी यात्रा करनी चाहिये । दिक्शूलनक्षत्र यथा पूर्वदिशामें ज्येष्ठा, दक्षिणमें पूर्वाभाद्रपदा, पश्चिममें रोहिणी और उत्तरमें उत्तराफाल्गुनी इन्हीं नक्षत्रोंको दिक्शूल नक्षत्र कहते हैं ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रशूलकथनम् ।

प्राचीं श्रवणशक्राभ्यां च भद्राश्विभ्यां च दक्षिणाम् ।

प्रतीचीं पुष्यरोहिण्योः करेऽर्यमनुचोत्तराम् ॥ ५२ ॥

इति सत्कृत्यमुक्तावल्याम् ।

अर्थ--सत्कृत्यमुक्तावलीमें लिखा है कि, पूर्व दिशामें श्रवण और ज्येष्ठानक्षत्र दक्षिणमें पूर्वाभाद्रपदा और अश्विनीनक्षत्र, पश्चिममें पुष्य और रोहिणी नक्षत्र और उत्तरमें हस्त और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र महाशूल संज्ञक होता है ॥ ५२ ॥

अपि च ।

एते चाष्टौ महाशूला देवैरपि विनिन्दिताः ।

यदि प्रमादतो गच्छेज्जिवनं तस्य दुर्लभम् ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिषसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यह शूलनक्षत्र देवताओंकोभी त्याज्य है इनमें यात्रा करनेसे मनुष्यको जीनेमेंभी संशय होता है ॥ ५३ ॥

अथ यात्रायां निषिद्धनक्षत्रकथनम् ।

नेशाजाभिषिञ्जाखवाय्वहिमघायाम्यैः पराद्धं न स-  
च्चित्रा ह्यन्तकजं परं प्रथमजं पित्र्यानिले चाखिले ।

राहुकूरयुगस्तसन्निधितथोत्पातप्रदुष्टं ग्रहै-

द्व्याद्यैर्गममसदिने निशि तिथावृक्षेऽप्यनिष्टे गमः ॥५४॥ (२)

अर्थ-अब यात्राविषयमें निषिद्ध नक्षत्रादि कहते हैं-आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका, विशाखा, आश्लेषा, मघा और भरणी नक्षत्रमें यात्रा न करना चाहिये, किन्तु चित्रा, आश्लेषा और भरणी नक्षत्रका परार्ध अत्यन्त निन्दनीय है और आर्द्रा, पूर्वाभाद्रपदा, कृत्तिका और विशाखाका पूर्वार्ध अतिनिषिद्ध है. मघा और स्वातिके सभी अंश अत्यन्त निन्दनीय है और राहु और कूरग्रहयुक्त नक्षत्र, रविभुक्त नक्षत्र रविभोग्यनक्षत्र उत्पात ( धूमकेतु उल्कापात भूकम्प और पांसु-वृष्ट्यादि ) से दुष्ट नक्षत्र और दो तीन ग्रहोंकरके युक्त नक्षत्र, अशुभतिथि और अशुभ दिनमें कभी यात्रा न करनी चाहिये, दीपिकाकारने यात्राके नक्षत्रसम्बन्धमें इस प्रकार लिखाहै, किन्तु इन वचनोंकी व्यवस्था सभी देशमें नहीं है। ५४।

( + ) अधुना निषिद्धनक्षत्राण्याह-नेशेति । ईश आर्द्रा अजः पूर्वाभाद्रपदा । अग्निः कृत्तिका विशाखा वायुः स्वातिः अहिराश्लेषा मघा याम्या भरणी एभिर्न गम इति पश्चादन्वयः । अत्र च चित्रापि बोद्धव्या विशेषनिन्दायां तस्या वक्ष्यमाणत्वात् । तथा लघुयात्रायाम् । “ चित्रास्वातीविशाखाभरणीपिड्येशकृत्तिकाश्लेषाः । नाति शुभदाः प्रयाणे शेषाणि शुभानि धिष्ण्यानि ॥ ” इति । अत्रैव विशेषनिन्दामाह-पराद्धमिति । चित्राश्लेषाभरणीनां पराद्धमत्यन्त न सदित्यर्थः । परेषामेतदन्वेषा निषिद्धनक्षत्राणाम् । आर्द्रापूर्वाभाद्रपदाकृत्तिकाविशाखानां प्रथमजमर्द्धमत्यन्तमसत् पिड्यानिष्ठे मघास्वात्यौ तु अखिले समस्ते नक्षत्रे सती न शुभे नेत्यर्थः । तथा राहुकूरयुक् नक्षत्रमसत् तथा राहुयुक्तं कूरं रविशनिर्मुजैर्युक्त चासदिति । केषाञ्चिन्मते राहोरपापत्वात् राहुग्रहणम् अस्तसन्निधि अस्तगतस्य रविभुक्तस्य नक्षत्रस्य सन्निधि समीपे स्थित रविभुक्त रविभोक्तव्यञ्च नक्षत्रमसादित्यर्थः । अस्तनक्षत्रस्य तु कूरयुतत्वेन सुतरां निषेध एव । तथा उत्पातेन धूमकेतुल्कापातभूकम्पपांसुवृष्ट्यादिना प्रदुष्टम न सत् । तथा द्व्याद्यैर्ग्रहैर्द्व्याभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः शुभैरशुभैर्ग्रहैः युक्तं चासत् । तथा बृहद्यात्रायाम् । “ ऋक्षे द्व्याद्यैः सयुतेऽत्राप्रकोपो लक्ष्मीभ्रशो राहुणाकेण रोगः । केतुल्काभ्यां पीडिते देहनाशः क्लेशः सारे सोष्णरश्म्यात्मजे च ” तथा म्यानान्तरे उक्तं नक्षत्रमटकिरणमित्यादि । विशेषान्तरमाह-दिन इति । तिथावृक्षे दिवा कदापि न गमः दिवसे तिथेचलत्त्वात् । ऋक्षेऽनिष्टे रात्रौ कदापि न गमः रात्रौ तस्य बलवत्त्वादिति तात्पर्यम् । तथा बृहद्यात्रायाम् । “ गुणवति तिथावृक्षेऽनिष्टे दिवा गमन शुभ निशि च भृगुणैः शस्तं यान तिथौ गुणवर्जिते । भतिथिगदितान्दोषान्प्राप्तोत्पतः प्रतिलोमगं गुणमपि तयोः सम्यग्ज्ञाने जगाद् भृगुर्मुनिः ” इति । अन्ये त्वन्यथा प्रलपन्ति तदुपेक्षितम् । अत्र च उग्रतीक्ष्णचरमृदुसज्ञकानि यानि प्रोक्तानि तानि च तत्कर्मणि यात्रायां विहितान्येवोक्तनिषेधस्य तु न तत्रावकाशः । किन्त्वत्रैत्र्यादिनक्षत्रगणानां तत्कर्मण्युदयादिकालभेदेनैव निषेधः अन्यथा सर्वदा निषेधस्य कालभेदेन पुनर्निषेधानुपपत्तिरिति ।

अथ निषिद्धनक्षत्राणां विशेषकथनम् ।

दग्धुं शत्रुपुरं सदाग्निभमुदेत्यर्को न चेदुत्तरे  
रोहिण्याश्च विशाखभे च न गमः पूर्वाह्निकाले शुभः ।  
मध्याह्ने न शिवाहिमूलत्रलभिद्रेष्वह्निशेषेऽश्विनी  
पुष्येहस्तमस्तसु चित्रशशिमैत्र्यान्त्ये न रात्र्यादितः ॥५५॥

अर्थ—यात्रामें समयके भेदसे निषिद्धनक्षत्रादिक कहते हैं—जिस समय सूर्य उदय होय उस समयको छोडकर सभी समयमें ही कृत्तिका नक्षत्र शत्रुपुरदहन करनेकी यात्रामें प्रशस्त है । उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापादा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी और विशाखा नक्षत्रमें पूर्वाह्नसमय यात्रा न करनी चाहिये. आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और ज्येष्ठा नक्षत्रमें मध्याह्नसमय यात्रा न करै. अश्विनी, पुष्य, हस्त और स्वाति नक्षत्रमें अपराह्नके समय यात्रा न करनी चाहिये । रात्रिके प्रथम भागमें चित्रा, मृगाशिर अनुराधा और रेवती नक्षत्रमें यात्रा न करै ॥ ५५ ॥

अपि च ।

रात्रेर्मध्यमसत्तुपूर्वभरणीपित्र्येषु शेषे निशा  
हर्म्यादित्रितयादितिष्वपि जलं मध्याह्नरत्र्यान्तयोः )

( x ) एतदेव श्लोकद्वयेनाह—दग्धुमिति । शत्रुपुरदोह तीक्ष्णकर्मणि मृदुतीक्ष्णगण-  
त्वेनाग्नेयत्वेन च कृत्तिका विहितैव अत एव शत्रुपुरं दग्धुमग्निं सदैव विहितमित्यर्थः ।  
किन्त्वर्को न चेदुदेति । अर्कोदयं कालं त्यक्त्वा अग्निमन्सर्वकाल एव शत्रुपुरं दग्धुं  
कृत्तिका शस्तेत्यर्थः । तथा च बृहद्यात्रायाम् । “स्वेस्वे कर्माणि पूजितानि मुनिभिः  
प्रोक्तानि सर्वाण्यपि त्यक्त्वाकोदयमाननेऽरिविषयं यात्रादिऋक्षे शुभा” इत्यग्निमन्वचने  
सर्वाण्यपि इति अपिशब्दानिषिद्धान्यपि स्वे स्वे कर्माणि विहितानित्यर्थः । तथा लघुया-  
त्रायाम् “शत्रुविषयं दिग्क्षोरन्यत्राकोदयाच्छभाग्नेयी” एतेनार्को न चेदुदेति । अर्को-  
दयात्पूर्वं रात्रिदण्डद्वये स्थिते एव शत्रुपुरं दग्धुम् अग्निं सत् नान्यत्रेति कैश्चित्प्रलपितं  
तदशुद्धमेवेति । अथुना तत्तत्कर्मणि विहितानामुग्रादिनक्षत्राणां शुभकर्मणि यात्रार्थं  
पूर्वोक्तानां नक्षत्राणाञ्च सर्वेषां दिनस्य पूर्वाह्नादिषु षट्सु भागेषु यथाक्रमं निषेधमाह-  
उत्तर इति । पूर्वाह्ने उत्तरात्रये रोहिणीविशाखाश्च गमो न शुभ इति । अत्र केचिद्दग्धुं  
शत्रुपुरमित्यस्य सर्वत्रान्वयं कुर्वन्ति तत्र बृहद्यात्रादिषु सामान्येनैव निषेधात् । यथा  
बृहद्यात्रायाम् । “रोहिण्यां त्रिषु चोत्तरेषु विजयो यातुर्विशाखासु च त्यक्त्वा वासव-  
पूर्वमेवमवदद्गर्गोऽरिराज्याथिनः” इति । अत्र चारिराज्याथिनो यातुर्विजय इत्युक्त्वा  
तथा “निशान्त्यभागे त्रिषु वेष्णवाद्ये यायाद्धनार्था न पुनर्गसी च” इति । मध्याह्न इति  
आर्द्राश्लेषामूलज्येष्ठासु मध्याह्ने न गम इति अह्नःशेषेऽपगह्नेऽश्विनीपुष्यहस्तस्वातिषु न  
गमः । रात्रः प्रथमभागे मृगाशरोऽनुराधारेवतीषु न गमः । इति ।

पुष्योहस्तमृगाच्युतेषु शुभदाः सर्वेऽपि कालास्तथा

सार्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च ॥५६॥ ❀

अर्थ-पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी और मघा नक्षत्रमें रात्रिके मध्यभागमें यात्रा न करै, श्रवण, धनिष्ठा, जतमिषा और पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके शेषभागमें यात्रा न करै, पूर्वाषाढा नक्षत्रमें रात्रिके मध्य और शेषभागमें यात्रा न करनी चाहिये पुष्य, हस्त, मृगशिर और श्रवण नक्षत्रमें सर्वदा यात्रा करै और पुष्य, हस्त, आश्विनी और अनुराधा नक्षत्रको सार्वद्वारिकसंज्ञक जानना चाहिये ॥ ५६ ॥

अथ नक्षत्रामृतयोगकथनम् ।

ध्रुवगुरुकरमूलापौष्णभान्यर्कवारे

हरियुगविधियुगमे फाल्गुनीभाद्रयुगमे ।

दिवसकरतुरङ्गौ शर्वरीनाथवारे

गुरुयुगनलवातोपान्त्यपौष्णानि कौजे ॥ ५७ ॥

दहनविधिज्ञताख्यामैत्रभं सौम्यवारे

मरुददितिभपुष्यामैत्रभं जीववारे ।

भगयुगजयुगश्वोविष्णुमैत्रे सित्ताहे

स्वज्ञानकमलयोनी सौरिवारेऽमृतानि ॥ ५८ ॥ (\*)

अर्थ-अब बार और नक्षत्रयोगसे अमृतयोग कहते हैं-रविवारमें उत्तराफा-

• पूर्वात्रये भरणी मघयोश्च रात्रेर्मध्यं मध्यभागन्तु न सत् न शुभमित्यर्थः । निशो-  
रात्रेः शेषे हर्म्यादित्रये पुनर्वसो चासन्न शुभ इत्यर्थः । अवटितव्यञ्जानान्तो निशाशब्दोऽ-  
प्यस्ति । जल पूर्वाषाढा मध्याह्ने रात्र्यन्ते चासत् इति । रात्रिमध्ये चास्य निषेध उक्त  
एव । सार्वकालिकनक्षत्राप्याह-पुष्यहस्तामृगशिरश्रवणेषु सर्वेऽनिपिद्धा अपि कालाः  
शुभाः । नन्वपरान्ते पुष्यहस्तयोर्निषेध उक्तः । तथा रात्रिप्रथमे मृगशिरसःरात्रिशेषे श्रव-  
णायाश्चेति तत्कथमेतेषु सर्वेषु कालाः शुभा इत्युक्त निषेधवैयर्थ्यात् । पौषाशिनं यद्वाति  
इति वदिकल्पः । तथा च गौतमसूत्रे । “ तुल्यबलनिरोधे विकल्पः ” इति । पुष्यादिषु  
पूर्वनिपिद्धाः कालाः निपिद्धाः विहिता अपि स्युः यदि कार्यं ज्ञात्र वास्यात्तदा पुष्या-  
द्यक्षेपु पूर्वोक्तकालेषु न निपिद्धाः किन्तु शुभदा एव न वा तत्र प्रतीकारः कार्यः ।  
स्वेच्छागमने तु निपिद्धकाल त्यक्त्वा गन्तव्यामिति विकल्पस्य फलम् । अत एव आक्षेपेऽ-  
पिशब्दः । एषु सर्वेऽपि कालाः शुभाः किं निषेधविचारणेत्यर्थः ॥ इति ।

( \* ) श्लोकद्वयेनामृतयोगमाह-ध्रुवेति, दहनेति । सुगममिति ॥

लग्नी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, पुष्य, हस्त, मूल और रेवती नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त और अश्विनी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है, मङ्गलवारमें पुष्य आश्लेषा, कृत्तिका, स्वाति, उत्तराभाद्रपदा और रेवतीनक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है- बुधवारमें कृत्तिका, रोहिणी, शतभिषा और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है, बृहस्पतिवारमें स्वाती, पुनर्वसु, पुष्य और अनुराधा नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है, शुक्रवारमें पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, श्रवण और अनुराधा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है और शनिवारमें स्वाति वा रोहिणी नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अपिच ।

आदित्यहस्ते गुरुपुष्ययुक्ता बुधानुराधा शनिरोहिणी च ।  
सोमे च विष्णुःकुजरेवती च शुक्राश्विनी चामृतयोगवर्गः ॥५९॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें हस्तनक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है इसी प्रकार बृहस्पतिवारमें पुष्य होनेसे, बुधमें अनुराधा होनेसे, शनि-वारमें रोहिणी होनेसे, सोमवारमें श्रवण होनेसे, मङ्गलवारमें रेवती होनेसे और शुक्रवारमें अश्विनी नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ५९ ॥

अमृतयोगप्रशंसा ।

यद्विष्टिव्यतीपातौ दिनं वाप्य शुभं भवेत् ।

हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥ ६० ॥ ( क )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—दीपिकामें लिखा है कि, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका नाश हो जाता है उसी प्रकार इस अमृतयोगके होनेसे विष्टि भद्रा वैधृति और व्यती-पातादि दोषोंका नाश हो जाता है ॥ ६० ॥

( क ) अमृतयोगफलमाह—यदीति । विष्टिव्यतीपातौ भवतः व्यतीपात इत्युपलक्षणं वैधृत्यादयोऽपि मन्दयोगः इयहस्पर्शदिनं वा यद्यशुभं भवेत् तत्सर्वममृतयोगेन हन्यत इत्यर्थः । तथाच राजमार्त्तण्डे—हन्यत्यमृताख्यो योगः सर्वाप्यशुभानि हेलया नियतम् । न भवन्ति पुनरिह शक्ता वैधृति विष्टिव्यतीपाताः ॥ इति । कस्यचिन्मते वैधृत्यादि योग-हननेऽमृतयोगस्य न सामर्थ्यामिति ज्योतिषतत्त्वे स्मार्त्ताः ॥

उत्पातादियोगः ।

रव्यादिदिवसैर्युक्ता विशाखादिचतुश्वतुः ।

उत्पाता मृत्यवः काणा अमृतानि यथाक्रमम् ॥ ६१ ॥ (ख)

अर्थ-अब उत्पातादियोग कहते हैं । रव्यादिवारमें विशाखादि चार चार नक्षत्र युक्त होनेसे क्रमानुसार उत्पात, मृत्यु, काण और अमृतयोग होता है यथा-रविवारमें विशाखा नक्षत्र होनेसे उत्पात, अनुराधा होनेसे मृत्यु, ज्येष्ठा होनेसे काण और मूल नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है । इसी प्रकार सोमवारमें पूर्वाषाढा नक्षत्र होनेसे उत्पात, उत्तराषाढा होनेसे मृत्यु, अभिजित् होनेसे काण और श्रवण नक्षत्र होनेसे अमृतयोग होता है । मङ्गलादिवारोंमें धनिष्ठादि चार चार नक्षत्रके होनेसे क्रमानुसार उत्पातादियोग जानना चाहिये ॥ ६१ ॥

अथ क्रकचयोगः ।

वाजिचित्रोत्तराषाढामूलपाशीज्यभान्तकाः ।

सूर्यादिवारसंयुक्ता योगास्ते क्रकचाः स्मृताः ॥ ६२ ॥ \*

अर्थ-अब क्रकचयोग कहते हैं-रविवारमें अश्विनी नक्षत्र होनेसे क्रकच योग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें चित्रा नक्षत्र होनेसे, मंगलवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधवारमें मूलनक्षत्र होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य नक्षत्र होनेसे और गनिवारमें रेवतीनक्षत्र होनेसे क्रकचनामक योग होता है ॥ ६२ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनी रविवारे च सोमे चित्रा तथा भवेत् ।

नक्षत्रमुत्तराषाढा मङ्गले च प्रकीर्तिता ॥ ६३ ॥

बुधे मूलं तथा जीवे शतभिषा प्रकीर्तिता ।

शुके पुष्यः शनौ चैव भरणीति प्रकीर्तिता ॥ ६४ ॥

( ख ) उत्पातादिचतुरोयोगानाह-रव्यादिति । रव्यादिवारिर्विशाखादिचत्वारि नक्षत्राणि यथासंख्यम् उत्पातमृत्युकाणामृतसंज्ञकानि स्युः । यथा-रविवारे विशाखा-उत्पातः, अनुराधा मृत्युः, ज्येष्ठा काणः, मूलः अमृत सोमवारे पूर्वाषाढा उत्पातः, उत्तराषाढा मृत्युः, अभिजित्काणः, श्रवणा अमृतम् । इत्याद्येवं बोद्धव्यमिति ।

( \* ) क्रकचादियोगमाह-वाजीति । सूर्यादिवारे यथासंख्यम् अश्विन्यादिनक्षत्र योगात्क्रकचादियोगाः स्युः । पाशी वरुणः शतभिषाति यावत् । इज्यो गुरुः पुष्येति

योगे ऋकचसंज्ञे वै सर्वकर्माणि वर्जयेत् ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार ऋकचयोग कहते हैं. रविवारमें अश्विनीनक्षत्रके होनेसे ऋकच योग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें चित्राके होनेसे, मंगलवारमें उत्तराषाढा होनेसे, बुधमें मूल होनेसे, बृहस्पतिवारमें शतभिषा होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य होनेसे और शनिवारमें भरणी नक्षत्रके होनेसे ऋकच योग होता है इस ऋकचयोगमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ ऋकचादि प्रति प्रसवमाह ।

ऋकचो मृत्युयोगश्च दिनं दग्धं तथापरे ।

शुभे चन्द्रे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रदृता इव ॥ ६६ ॥ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--अब ऋकचादि योगके प्रतिप्रसव कहते हैं--ऋकचयोग मृत्युयोग, दिन-दग्धा और अन्यान्य अनिष्टकारक योग, चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नाशको प्राप्त होते हैं जिस प्रकार वज्रके आघातसे वृक्षका नाश होजाता है ॥ ६६ ॥

अथ तिथिनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि ।

पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्याश्च रोहिणी ॥ ६७ ॥

द्वादश्याश्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि ।

एतेषु यदि गच्छन्ति नियतं मरणं भवेत् ॥ ६८ ॥ (❀)

अर्थ--अब तिथि और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहते हैं--प्रतिपदा तिथिमें उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है, इसी प्रकार नवमीमें कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे, अष्टमीमें पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रके होनेसे, एकादशीमें रोहिणी नक्षत्रके होनेसे, द्वादशीमें आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे, त्रयोदशी तिथिमें मघानक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है उक्त समस्त तिथि और नक्षत्रके योगमें यात्रा करनेसे मनुष्यकी निश्चयही मृत्यु होती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

—यावत् । भान्तका भान्तं नक्षत्रान्तं रेवतीति यावत् । एते सर्वे दग्धादयो योगाः अशुभ फला इत्यर्थः ।

( • ) कृप्यारम्भे फलं नास्ति विद्यारम्भे च मूर्खता ।

सङ्गमे गर्भपातश्च विवाहे मरणं ध्रुवम् ॥

इति दीपिकायाम् ।



अथ वारनक्षत्रयोगे मृत्युयोगः ।

त्यज रविमनुराधे वैश्वदेवं च सोमे  
शतभिषमपि भौमे चन्द्रजे चाश्विनी च ।  
मृगशिरमपि जीवे सर्पदेवं च शुक्रे  
रविसुतमपि हस्ते मृत्युयोगोऽस्य संज्ञा ॥ ६९ ॥

अर्थ—अब वार और नक्षत्रके योगसे मृत्युयोग कहते हैं, रविवारमें अनुराधा नक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें उत्तराषाढा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें शतभिषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें आश्विनी नक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्तनक्षत्रके होनेसे मृत्युयोग होता है ॥ ६९ ॥

अथानन्दयोगः ।

अश्विनी सह सूर्येण सोमे मृगशिरस्तथा ।  
आश्लेषा भौमवारेण बुधे हस्तं प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥  
अनुराधा गुरोर्वारे वैश्वदेवश्च भागंवे ।  
वारुणं शनिसंयुक्तमानन्दोऽयं प्रकीर्तितः ॥ ७१ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—आनन्दयोग कहते हैं—भीमपराक्रममें लिखा है कि, रविवारमें अश्विनी-नक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है, इसी प्रकार सोमवारमें मृगशिर नक्षत्रके होनेसे, मङ्गलवारमें आश्लेषानक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें हस्तनक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें अनुराधानक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें धनिष्ठानक्षत्रके होनेसे आनन्दयोग होता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथामृतासिद्धियोगः ।

हस्तं सूर्ये मृगः सोमे भौमवारे तथाश्विनी ।  
बुधे मैत्रो गुरो पुष्यं रेवती भृगुनन्दने ॥ ७२ ॥  
रोहिणी सूर्यपुत्रे च सर्वसिद्धिप्रदायकः ।  
असावमृतसिद्धिचारुयो योगः प्रोक्तः पुरातनैः ॥ ७३ ॥

इति ऋषोति सारसग्रहे ।

अर्थ—अब अमृतासिद्धिनामक योग कहते हैं—ऋषोतिःसारसग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें हस्त, सोमवारमें मृगशिर, मङ्गलवारमें अश्विनी, बुधवारमें अनुराधा,

बृहस्पतिवारमें पुष्य, शुक्रवारमें रेवती और शनिवारमें रोहिणीनक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धि नामक योग होता है यह योग सब कार्योंमें सिद्धिप्रदान करता है, इस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने कहा है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ प्रशस्तयोगः ।

रेवती रविवारे च हस्तः सोमे न संयुतः ।

पुष्योऽप्यवनिपुत्रेण रोहिणी बुधसंयुता ॥ ७४ ॥

स्वाती च गुरुणा युक्ता शुक्रेणोत्तरफाल्गुनी ।

मूलन्तु पङ्क्तसङ्गेन सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखाहै कि, रविवारमें रेवती, सोमवारमें हस्त, मङ्गलवारमें पुष्य, बुधवारमें रोहिणी, बृहस्पतिवारमें स्वाति, शुक्र वारमें उत्तरफाल्गुनी और शनिवारमें मूलनक्षत्र होनेसे सभी कार्योंमें प्रशस्त होताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टयोगः ।

द्वे मवा पूर्वाफाल्गुन्यौपुष्याश्लेषार्कचन्द्रयाः ।

ज्येष्ठानुराधाभरणी चाश्विनी कुजवासरे ॥ ७६ ॥

हस्तार्द्रा चन्द्रजे मूलपूर्वाषाढा च रेवती ।

जीवे तृत्तरभाद्रश्च शुक्राहे स्वाति रोहिणी ॥ ७७ ॥

शनिवारे च श्रवणा शतभिषा यमघण्टकः ॥ ७८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब यमघण्टयोग कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें मवा, वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके होनेसे यमघण्टयोग होती है इसी प्रकार सोमवारमें पुष्य, वा आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, वा अश्विनी नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें हस्त वा आर्द्रा, नक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें मूल, पूर्वाषाढा, रेवती वा उत्तरभाद्रपदाके होनेसे, शुक्रवारमें स्वाति वा रोहिणीके होनेसे और शनिवारमें श्रवण वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे यमघण्टनामक योग होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ अमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरह्नि नन्दामरुद्रारुणार्द्रान्त्यचित्राहिमूलाग्निभिः ।  
भार्गवेणाङ्ग्योरह्नि भद्रा भवेत्फल्गुयुग्माज्युग्मोडुभिः

संयुता ॥ ७९ ॥ सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्वि-  
न्द्रयाम्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेराह्नि युक्ता च रिक्ता यदा  
विश्वशक्राग्निद्युक्पिष्यादित्यम्बुभिः ॥ ८० ॥ सूर्यसुतस्य  
दिने यदि पूर्णा ब्रह्मदिनाधिपतिद्रविणेः स्यात् ॥ योगवा-  
रास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितसिद्धिनियुक्ताः ॥ ८१ ॥ ( \* )

अर्थ--अब अमृतयोग कहते हैं:- मंगलवारमें वा रविवारमें नन्दातिथि, स्वाति, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग हाता है इसी प्रकार शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदाके होनेसे बुधवारमें जयातिथि, मृगशिर, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी अभिजित् वा अश्विनीनक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा कृत्तिका, रोहिणी, मघा, हस्त वा पूर्वाषाढा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें पूर्वातिथि, रोहिणी, हस्त, वा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है । यह अमृतयोग सब योगोंसे श्रेष्ठ है इस योगमें मनुष्यको वाञ्छित फल प्राप्त होता है ॥ ७९-८१ ॥

अथ तिथ्यमृतयोगः ।

बुधमन्दगता नन्दा कुजे भद्रा जया गुरौ ।

भृगौ रिक्तामृतं प्रोक्तं पूर्णा च रविचन्द्रयोः ॥ ८२ ॥ ( १ )

इति -योति'सारसंग्रहे ।

अर्थ--अब तिथ्यमृतयोग कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-बुधवारमें वा शनिवारमें नन्दा ( प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी ) तिथिके होनेसे अमृतयोग होता है, इसी प्रकार मंगलवारमें भद्रा ( द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, ) तिथिके होनेसे बृहस्पतिवारमें जया ( त्रयोदशी, अष्टमी, तृतीया ) तिथिके होनेसे, शुक्रवारमें

( \* ) दण्डरक्षकैः अमृतयोगमाह-भूमिपुत्रेति । सुगमम् । अन्यत अमृतयोगमे-  
तेषां फलञ्चाह-सूर्यसुतस्येति । उक्तेस्त्रिभिवारितिनक्षत्रयुक्ता योगा सर्वसमीहितसि-  
द्धिकरा ।

( १ ) “चन्द्रार्कयोर्भेदोऽपूर्णा कुजे भद्रा जया गुरौ । बुधमन्दो च नन्दायां शुके रिक्ता-  
मृतातिथिः ” इति राजमातङ्गणे । अथ नन्दादितिथिमाह सारसंग्रहे “एकादशी च प्रति-  
पत् पष्ठी नन्दा सदा भवेत् । द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चापि सा भवेत् । अष्टमी च  
तृतीया च जया स्याच्च त्रयोदशी । चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव स्याच्चतुर्दशी । पञ्चमी  
दशमी पूर्णा पूर्णानामी ततः परम् ॥ ”

बृहस्पतिवारमें पुष्य, शुक्रवारमें रेवती और शनिवारमें रोहिणीनक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धि नामक योग होता है यह योग सब कार्योंमें सिद्धिप्रदान करता है, इस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने कहा है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अथ प्रशस्तयोगः ।

रेवती रविवारे च हस्तः सोमे न संयुतः ।

पुष्योऽप्यवनिपुत्रेण रोहिणी बुधसंयुता ॥ ७४ ॥

स्वाती च गुरुणा युक्ता शुक्रेणोत्तरफाल्गुनी ।

मूलन्तु पङ्क्तुसङ्गेन सर्वकार्ये प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ—श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णय ग्रन्थमें लिखाहै कि, रविवारमें रेवती, सोमवारमें हस्त, मङ्गलवारमें पुष्य, बुधवारमें रोहिणी, बृहस्पतिवारमें स्वाति, शुक्र वारमें उत्तराफाल्गुनी और शनिवारमें मूलनक्षत्र होनेसे सभी कार्योंमें प्रशस्त होताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टयोगः ।

द्वे मघा पूर्वाफाल्गुन्यौपुष्याशुपार्कचन्द्रयाः ।

ज्येष्ठानुराधाभरणी चाश्विनी कुजवासरे ॥ ७६ ॥

हस्ताद्रा चन्द्रजे मूलपूर्वापाठा च रेवती ।

जीवे तूत्तरभाद्रश्च शुक्राहे स्वाति रोहिणी ॥ ७७ ॥

शनिवारे च श्रवणा शतभिषा यमघण्टकः ॥ ७८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ यमघण्टयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें मघा, वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके होनेसे यमघण्टयोग होती है इसी प्रकार सोमवारमें पुष्य, वा आश्लेषा नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें ज्येष्ठा, अनुराधा, भरणी, वा अश्विनी नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें हस्त वा आर्द्रा, नक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें मूल, पूर्वापाठा, रेवती वा उत्तराभाद्रपदाके होनेसे, शुक्रवारमें स्वाति वा रोहिणीके होनेसे और शनिवारमें श्रवण वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे यमघण्टनामक योग होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ अमृतयोगः ।

भूमिपुत्रार्कयोरङ्घ्रि नन्दामरुद्रारुणार्द्रान्त्यचित्राहिमूलाग्नि-  
भिः । भार्गवेणाङ्घ्रयोरङ्घ्रि भद्रा भवेत्फल्युगमाज्युगमोडुभिः

संयुता ॥ ७९ ॥ सोमपुत्रस्य वारे जया स्यान्मृगोपेन्द्रगुर्वि-  
न्द्रयाम्याभिजिद्वाजिभिः । गीष्पतेरह्नि युक्ता च रिक्ता यदा  
विश्वशक्रामियुषिपत्पादित्यम्बुभिः ॥ ८० ॥ सूर्यसुतस्य  
दिने यदि पूर्णा ब्रह्मदिनाधिपतिर्द्रविणैः स्यात् ॥ योगवा-  
रास्त्रिभिरेव समेताः सर्वसमीहितसिद्धिनिपुक्ताः ॥ ८१ ॥ ( \* )

अर्थ-अब अमृतयोग कहते हैं:- मंगलवारमें वा रविवारमें नन्दातिथि, स्वाति, शतभिषा, आर्द्रा, रेवती, चित्रा, आश्लेषा, मूल वा कृत्तिका नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग हाता है इसी प्रकार शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदाके होनेसे बुधवारमें जयातिथि, मृगशिर, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, भरणी अभिजित् वा आश्विनीनक्षत्रके होनेसे बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि, उत्तराषाढा, ज्येष्ठा कृत्तिका, रोहिणी, मघा, हस्त वा पूर्वाषाढा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें पूर्वातिथि, रोहिणी, हस्त, वा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे अमृतयोग होता है । यह अमृतयोग सब योगोंसे श्रेष्ठ है इस योगमें मनुष्यको वाञ्छित फल प्राप्त होता है ॥ ७९-८१ ॥

अथ तिथ्यमृतयोगः ।

बुधमन्दगता नन्दा कुजे भद्रा जया गुरौ ।

भृगौ रिक्तामृतं प्रोक्तं पूर्णां च रविचन्द्रयोः ॥ ८२ ॥ ( १ )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब तिथ्यमृतयोग कहते हैं, ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि-बुधवारमें वा शनिवारमें नन्दा ( प्रतिपदा, एकादशी, पष्ठी ) तिथिके होनेसे अमृतयोग होता है, इसी प्रकार मंगलवारमें भद्रा ( द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी, ) तिथिके होनेसे बृहस्पतिवारमें जया ( त्रयोदशी, अष्टमी, तृतीया ) तिथिके होनेसे, शुक्रवारमें

( \* ) दण्डकश्चाकेन अमृतयोगमाह-भूमिपुत्रेति । सुगमम् । अन्यत् अमृतयोगमे-  
तेषा फलञ्चाह-सूर्यसुतस्येति । उक्तेस्त्रिभिवारतिथिनक्षत्रैर्युक्ता योगाः सर्वसमीहितसि-  
द्धिकराः ।

( १ ) “चन्द्राक्रैयोर्भवेत्पूर्णा कुजे भद्रा जया गुरो । बुधमन्दौ च नन्दायां शुक्रे रिक्ता-  
मृतातिथिः” इति राजमार्त्तण्डे । अथ नन्दादितिथिमाह सारसंग्रहे “एकादशी च प्रति-  
पत् पष्ठी नन्दा सदा भवेत् । द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी चापि सा भवेत् । अष्टमी च  
तृतीया च जया स्याच्च त्रयोदशी । चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव स्याच्चतुर्दशी । पञ्चमी  
दशमी पूर्णा पौर्णमासी ततः परम् ॥ ”

रिक्ता ( चतुर्थी नवमी, चतुर्दशी ) तिथिके होनेसे, और रविवारमें वा सोमवारमें पूर्णा ( पञ्चमी, दशमी, अमावस्या पूर्णिमा ) होनेसे अमृतयोग होता है ॥८२॥

अन्यच्च ।

अर्कोहि पूर्णार्थ जया शशाङ्के भौमे च भद्रा बुधवारनन्दा ।

गुरौ द्वितीया भृगुजे तृतीया शनौ जया चेदमृतं वदन्ति ॥८३॥ (\*)

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारमें लिखा है कि—रविवारमें पूर्णातिथि, सोमवारमें जयातिथि मङ्गलवारमें भद्रातिथि, बुधवारमें नन्दातिथि, बृहस्पति वारमें द्वितीयातिथि, शुक्रवारमें तृतीयातिथि और शनिवारमें जयातिथिके होनेसे अमृतयोग होता है ॥ ८३ ॥

अथ सिद्धियोगः ।

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया ।

गुरौ पूर्णा च संयुक्ता सिद्धियोगः प्रकीर्तितः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ सिद्धियोग कहते हैं ज्योतिः सारसंग्रहमें लिखा है कि—शुक्रवारमें नन्दातिथि बुधवारमें भद्रातिथि, शनिवारमें रिक्तातिथि, मङ्गलवारमें जयातिथि और बृहस्पतिवारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होता है ॥ ८४ ॥

अथ रत्नाङ्कुरयोगः ।

यदि सोमदिने नन्दा विहाय हरिवासरम् ।

जया भद्रार्कयोवारि रिक्ता भूमिसुते तथा ॥

पूर्णा बुधसिताहे च भद्रा चेद्गुरुवासरे ।

रत्नाङ्कुराख्यो योगोऽयं सर्वकार्ये प्रज्ञस्यते ॥८५॥ (\*\*)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ रत्नाङ्कुरनामक योग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—सोमवारमें एकादशी तिथिको छोड़कर नन्दातिथि, शनिवारमें वा रविवारमें जयातिथि, मङ्गलवारमें रिक्तातिथि, बुधवारमें वा शुक्रवारमें पूर्णातिथि और बृहस्पतिवारमें भद्रातिथिके होनेसे रत्नाङ्कुरनामक योग होता है यह योग सभी-कार्यमें प्रशस्त है ॥ ८५ ॥

(\*) इदं वचनं ग्रन्थान्तरे लिख्यमिति ज्योतिःसारे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

(•) अथन्तु स्मार्त्तभोजराजसंग्रहकारदीपिकाकारादिभिर्बहुभिरालिखितत्वादप्रमाणमिष लक्ष्यते इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ पापयोगः ।

आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः ।  
बुधे जया गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा च पापदा ॥ ८६ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब पापयोगको कहते हैं, दीपिकामें लिखा है कि, रविवारमें वा मङ्गलवारमें नन्दातिथि, शुक्रवारमें वा सोमवारमें भद्रातिथि, बुधवारमें जयातिथि, बृहस्पतिवारमें रिक्तातिथि और शनिवारमें पूर्णा तिथिके होनेसे पापयोग होता है ॥ ८६ ॥

अथ विषयोगः ।

सूर्ये सूर्यसुते भद्रा नन्दा वाक्पतिवासरे ।  
जया सोमसिताहे च पूर्णा च धरणीसुते ॥  
बुधवारे यदा रिक्ता तथा चन्द्रार्कयोरपि ।  
विषयोगोऽयमुद्दिष्टः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ ८७ ॥ ❀

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब विषयोग कहते हैं—ज्योतिःसारमें लिखा है कि, रविवारमें वा शनिवारमें भद्रातिथि, बृहस्पतिवारमें नन्दातिथि, सोमवारमें वा शुक्रवारमें जयातिथि, मंगलवारमें पूर्णातिथि और बुधवार सोमवार वा रविवारमें रिक्तातिथि होनेसे विषयोग होता है, इस योगको सभी कार्योंमें परित्याग करना चाहिये ॥ ८७ ॥

अपिच ।

अमृतं सिद्धियोगश्च यद्येकस्मिन्दिने भवेत् ।  
तद्दिनन्तु भवेद्दुष्टं मधुसर्पिर्भयथाविषम् ॥ ८८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि—मधु और घृतके मिलानेसे जिस प्रकार विषके समान होजाता है उसी प्रकार नक्षत्रामृतयोग और सिद्धि एक समयमें होनेसे विषयोग होजाता है कोई २ कहते हैं कि, एक दिनमें अमृत (तिथ्यमृत) और सिद्धियोगके होनेसे विषयोग होजाता है ॥ ८८ ॥

अथ सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगाः ।

नन्दाद्याः सिद्धियोगा भृगुजबुधकुजाकार्क्यवारैः प्रशस्ताः  
सूर्यशाशाग्निषड्दृष्टमुनिमिततिथयोर्कादिवारैः प्रदग्धाः ॥ ८९ ॥

• अयमापि रत्नांकुरयोगवादेति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

पापोर्काहे विशाखात्रययममुडुपस्याह्नि चित्राचतुष्कम्  
 तोयं विश्वाभिजिद्रं त्वथ कुजदिवसे स्वत्रयं विश्वरुद्रौ ॥ ९० ॥ (क)  
 ज्ञाहे मूलाविशाखा यमघनतुरगान्त्यानि जविऽह्नि पैत्र्य-  
 रोहिण्यार्द्रायमेन्दुं शतभमथ भृगोराह्नि पुष्यत्रयेन्द्रौ ॥ ९१ ॥  
 सौराहे हस्तयुग्मार्यमयमजलयुक्पौष्मपुष्यां धनानि  
 घण्टोऽखण्डक्षयुक्ते स्वगृहपतिदिने सौम्यवारेऽर्थमापि ॥ ९२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ सिद्धि, दग्ध, पाप और यमघण्टयोग कहते हैं-दीपिकामें लिखा है कि, शुक्रवारमें नन्दा, बुधमें भद्रा, मङ्गलमें जया, शनिवारमें रिक्ता और बृहस्पति वारमें पूर्णातिथिके होनेसे सिद्धियोग होता है-रविवारमें द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मङ्गलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें षष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया, और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे दिनदग्धनामक योग होता है । रविवारमें विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, वा भरणी नक्षत्रके होनेसे पापयोग होता है इसी प्रकार सोमवारमें चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, वा अभिजित् नक्षत्रके होनेसे मङ्गलवारमें धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराषाढा, वा आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे बुधवारमें मूल, विशाखा, भरणी, धनिष्ठा, आश्विनी वा रेवती नक्षत्रके होनेसे, बृहस्पतिवारमें मघा, रोहिणी, आर्द्रा, भरणी, मृगशिर वा शतभिषा नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें पुष्य, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेसे और शनिवारमें हस्त, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, भरणी, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, रेवती पुष्य अथवा धनिष्ठा नक्षत्रके होनेसे पापयोग होता है नक्षत्रोंके मध्यमें जो अभग्न

( क ) सिद्धिदग्धपापयमघण्टयोगान्श्लोकद्वयेनाह-नन्दाद्या इति । ज्ञाह इति । भृगु-  
 जादिवारे यथासख्य नन्दाद्यास्तिययः प्रशस्ताः सिद्धियोगाः स्युः । तथाच “भृगो  
 नन्दा बुधे भद्रा शनौ रिक्ता कुजे जया । गुरौ पूर्णा च सिद्धिः स्यात् त्रैलोक्य साधयेद्ब्र-  
 वम् ” इति । तथा यथाक्रममर्कादिवारेः द्वादश्यादयस्तिययो दग्धाः स्युः । फलन्तु  
 सज्ञानरूपमिति । तथाच राजमार्तण्डे-“मास १२ रुद्रा ११ दिशी १० रामाः ३ पद्  
 ६ पक्ष २ मुनयस्तथा । दहन्ते तिययः सप्त सूर्याथैः सप्तभिर्धैः ” तथा रव्यादिवारे  
 यथोक्तनक्षत्रैः पापयोगाः स्युः । स्वत्रय धनिष्ठादित्रयमित्यर्थः । अभग्ननक्षत्रयोगे स्वगृ-  
 हपतिदिने यमघण्टयोगः स्यात् । बुधवारे अर्थमा उत्तराफाल्गुनी यमघण्टः तत्रेय  
 व्याख्या राशिद्वयगत भग्ननक्षत्र एकराशिगत त्वभग्ननक्षत्रम् अभग्ननक्षत्रस्य यद्गृह यो  
 राशिः तत्पतिवारे अभग्न नक्षत्रयोगे यमघण्टः स्यात् । तथा रविवारे मघा, उत्तरा,  
 फाल्गुनी, सोमवारे पुष्याश्लेषा, मङ्गलवारे आश्विनी, भरणी, अनुराधा, ज्येष्ठा, बुधवारे  
 आर्द्रा, हस्त बृहस्पतिवारे मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती शुक्रवारे रोहिणी,  
 स्वाती, शनिवारे श्रवण, शतभिषा इत्यर्थः इति ।



नक्षत्रं है वह सब नक्षत्र क्षेत्रके मालिक ख्यादिवारमें युक्त होनेसे यमघण्टकयोग होता है ॥ उदाहरण यथा-मघा पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीका एकपाद सिंहराशि इनका मालिक सूर्य है अतएव भग्ननक्षत्र उत्तराफाल्गुनी भिन्न मघा वा पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र रविवारमें युक्त होनेसे यमघण्टयोग होता है ॥ ८९ ॥ २० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ यमघण्टयोगादीनां त्याज्यकालकथनम् ।

यमघण्टे (१) त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादशनाडिकाः ।

अन्येषां (२) पापयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ ९३ ॥ (३)

अर्थ-अब यमघण्टादियोगका त्याज्यकाल कहते हैं यथा-यमघण्टयोगमें सूर्योदयके बाद आठ दण्ड और मृत्युयोगमें द्वादशदण्ड परित्याग करना चाहिये अन्यान्य समस्त पापयोगमें मध्याह्नकालके बादही शुभ होता है ॥ ९३ ॥

विष्ट्यादीनां प्रतिप्रसवः ।

विष्ट्यावङ्गारके चैव व्यतीपाते शनैश्चरे ।

निधने जन्मनक्षत्रे मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीपतिव्यवहारनिर्णये ।

अर्थ-विष्टि भद्रा, मङ्गलवार, व्यतीपातयोग, शनिवार, जन्मतारा और जन्मतारासे सातवाँ तारा-इन सब तिथि, नक्षत्र, वार और योगके कर्मसमय मध्याह्नके उपरान्त शुभ होता है इस प्रकार श्रीपतिभट्टाचार्यने व्यवहारनिर्णयनामक ग्रन्थमें कहा है ॥ ९४ ॥

अथ त्रिपुष्करयोगकथनम् ।

वाराः क्रूरास्तिथिर्भद्रा पादैकखण्डितश्च भम् ।

एतन्नयसमायोगे त्रिपुष्करमुदाहृतम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिषतत्त्वे ।

अर्थ-अब त्रिपुष्करयोग कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, क्रूर अर्थात् रवि शनि वा मंगलवारमें यदि भद्रा ( द्वितीया, द्वादशी वा सप्तमी ) तिथि और मङ्गलपादनक्षत्र पुनर्वसु, उत्तराषाढा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखा नक्षत्रके होनेसे त्रिपुष्करयोग होता है ॥ ९५ ॥

( १ ) कालण्डे इति पाठः ।

( २ ) सर्वेषामिति च पाठान्तरम् ।

( ३ ) एतेषां निन्दनीयकालमाह-यमघण्ट इति । सूर्योदयादष्टौ दण्डान् यमघण्टे त्यजेत् । मृत्युयोगस्य द्वादश दण्डान् त्यजेत् । ततः परं शुभमित्यर्थः । अन्येषां दग्धादीनामनिष्टयोगान् मध्याह्नात् परकाले शुभं मध्याह्नात् पूर्वकालं त्यजेदित्यर्थः इति ।

फलम् ।

त्रिपुष्करे तु यत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ।

जायते त्रिगुणं सर्वं प्राणी जातस्तु जारजः ॥ ९६ ॥ ( \* )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, शुभ वा अशुभ जो कार्य होय त्रिपुष्कर-योगमें त्रिगुना फल होताहै, किन्तु प्राणी उत्पन्न होनेसे वह जारज होताहै॥९६॥

अथ कालघण्टयोगः ।

पट्यां शीतांशुवारे परिहर दशमीं सप्तमीं भार्गवे च  
अष्टम्यां देवमंत्री बुधादिननवमीं सौरिवारे दशम्याम् ॥

भौमे चैकादशीञ्च दशशतकिरणे वर्जयेद्वाशीञ्च ।

सर्वारम्भ न कुर्याज्जनयति विपदं कालघण्टोऽपियोगः॥९७॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब कालघण्टयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, सोमवारमें पट्टीतिथिके होनेसे कालघण्टयोग होताहै, इसी प्रकार शुक्रवारमें दशमी वा सप्तमी तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें अष्टमी होनेसे, बुधवारमें नवमी होनेसे, शनिवारमें दशमी होनेसे मंगलवारमें एकादशी होनेसे रविवारमें द्वादशी तिथिके होनेसे कालघण्ट योग होता है इस कालघण्टयोगमें कार्यके करनेसे विपत्तियाँ होती हैं अतएव इसमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

अथ महादग्धाकथनम् ।

द्वादशी च मघादित्ये कृत्तिकैकादशी विधौ ।

दशम्यङ्गारके चार्द्रा बुधे मूलतृतीयका ॥ ९८ ॥

गुरौ पट्टा भरण्याञ्च शुक्रेऽश्विन्यां द्वितीयका ।

आश्लेषा सप्तमी मन्दे महादग्धाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ९९ ॥

अर्थ—अब महादग्धायोग कहते हैं—रविवारमें द्वादशी तिथि और मघा नक्षत्रके होनेसे महादग्धा होताहै, इसी प्रकार सोमवारमें कृत्तिकानक्षत्र और एकादशी तिथिके होनेसे, मङ्गलवारमें दशमीतिथि और आर्द्रा नक्षत्रके होनेसे, बुधवारमें मूलनक्षत्र,

( \* ) “लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च । नष्ट दत्त मृतं वापि तत्सर्वं त्रिगु-  
णापते । सर्वदेशविशेषेण फल स्याच्छुभयोगजम् ।

और तृतीया तिथिके होनेसे, बृहस्पतिवारमें पष्ठीतिथि और भरणी नक्षत्रके होनेसे, शुक्रवारमें आश्विनी नक्षत्र और द्वितीया तिथिके होनेसे और शनिवारमें आश्लेषानक्षत्र और सप्तमी तिथिके होनेसे महादग्धा होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथ दग्धादिनकथनम् ।

द्वादश्येकादशी च दशमी च त्रिपष्टिका ।

द्वितीया सप्तमी चैव दग्धा सूर्यादिवारतः ॥ १०० ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-रविवारमें द्वादशी, सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें पष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथिके होनेसे वह दग्धादिन होता है इस प्रकार ज्योतिःसारमें लिखा है ॥ १०० ॥

अपिच ।

आदित्यरुद्रकाष्टाग्निसप्तपक्षतुरङ्गमाः ।

आर्कादिवारयोगेन दह्यन्ते तिथयः क्रमात् ॥ १ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है, रव्यादि सात वारमें द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, पष्ठी, द्वितीया और सप्तमी इन सब तिथियोंके होनेसे वह इतिन दग्ध होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

मासा रुद्रा दिशो रामाः पट्पक्षमुनयस्तथा ।

दह्यन्ते तिथयः सप्त रव्यादिसप्तभिर्गृहैः ॥ २ ॥

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, रव्यादि सात वारमें क्रमानुसार द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, पष्ठी, द्वितीया और सप्तमी तिथि दग्धा होती है ॥२॥

अपरञ्च ।

द्वादश्यर्कयुता भवेदशुभपा सोमेन चैकादशी

भौमे चापि युता तथैव दशमी नेष्टा तृतीया बुधे ।

पष्ठी नेष्टफलप्रदा सुरगुरौ शुके द्वितीया तथा

सर्वारम्भविनाशविघ्नजननी सूर्यात्मजे सप्तमी ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है कि, रविवारमें द्वादशी तिथि शुभ नहीं होती है

इसी प्रकार सोमवारमें एकादशी, मंगलवारमें दशमी, बुधवारमें तृतीया, बृहस्पतिवारमें पष्ठी, शुक्रवारमें द्वितीया और शनिवारमें सप्तमी तिथि सभी कार्यमें विघ्नदात्री होती है ॥ ३ ॥

अथ देशविशेषे योगव्यवस्था ।

सर्वेषु देशेषु विशेषतोऽमी  
विष्कुम्भकाद्या मुनिभिः प्रदिष्टाः ॥ ( × )  
वारर्क्षयोगास्तिथिवारयोगा  
वज्जेषु योज्या न तु तेऽन्यदेशे ॥ ४ ॥ ( क )

अर्थ—विष्कुम्भादि सत्तार्ईस नित्ययोगका फल सभी देशोंमें होता है किन्तु अमृतयोग पापयोगादि, नक्षत्रामृतादि और तिथिवारयोगमें जो सिद्धि और दग्धादियोग हैं उनका शुभाशुभ केवल वज्जदेशमें ही होता है अन्य किसी देशमें इनकी व्यवस्था नहीं है अतएव और जगह शुभाशुभ फल नहीं होता है ॥ ४ ॥

अथ यात्रादिषु करणव्यवस्था ।

गरवणिजविष्टिर्वज्जितानि करणानि यातुरिष्टानि ।  
गरमपि कैश्चिच्छस्तं वणिजस्तु वणिक्रियास्वेव ॥५॥ ( × )

अर्थ—अब यात्रादिमें करण कहते हैं, गर वणिज और विष्टिभिन्न सभी करण यात्रादिमें प्रशस्त हैं- किसी २ मुनिके मतसे गर करणभी यात्रामें प्रशस्त है और वणिज करण वाणिज्यमें प्रशस्त है ॥ ५ ॥

( × ) यह वचन नित्ययोगप्रकरणमें लिखा है परन्तु आवश्यकता समझकर यहाँ भी लिखा है ।

( क ) सर्वेषां शुभाशुभयोगानां देशविशेष एव फलमाह—सर्वेष्विति । वारर्क्षयोगा अमृतयोगादयः तिथिवारयोगाः सिद्धिदग्धादयः वज्जेषु योज्याश्चान्यदेशे गुणदोषो नास्तीत्यर्थः । इति । ‘विरुद्धसंज्ञास्तिथिवारयोगा नक्षत्रवारप्रभवाश्च ये वै । हूणाङ्गवज्जेषु स्वशेषु वर्ज्याः शेषेषु देशेषु न ते विरुद्धाः ॥’

इति श्रीपातिः ।

( + ) यात्रायां करणान्याह—गरोति । गरवणिजविष्टिसंज्ञकं करणत्रयं त्यक्त्वान्यानि करणानि यातुर्जनस्य इष्टानि शुभानि । कैश्चिन्मुनिभिर्गरोमिति प्रशस्तमुक्तम् । वणिजमपि वणिक्रियासु वाणिज्येष्वेव कैश्चिदुक्तं शस्तं नान्यत्रेति । तथाच बशिष्ठः—“गरं हि शुभदं याने वाणिज्ये वणिजं तथा । विष्टिः सर्वात्मना वर्ज्या यातुः प्राणार्थनाशिनी ”

अथ यात्रायां नक्षत्रवत्करणव्यवस्था । .

नक्षत्रवत्क्षणानां परिघः शूलं समयभेदश्च ।

ताराचन्द्रविशुद्धिः सर्वं तत्स्वामिभिश्चिन्त्यम् ॥ ६ ॥ (अ)

अर्थ—अब यात्रामें नक्षत्रकी समान नक्षत्रके मुहूर्त्तकी व्यवस्था कहते हैं, नक्षत्रके समान नक्षत्रके क्षणमें (मुहूर्त्तमें) दण्डमें, नक्षत्र शूलमें, समयके भेदसे नक्षत्रके मालिक और मुहूर्त्तका मालिक ऐक्य होनेसे और तारा चन्द्रमा शुद्ध होनेसे नक्षत्राविहित कर्म नक्षत्रके मुहूर्त्त होसकते हैं ॥ ६ ॥

अथ निपिद्धलग्नकथनम् ।

मीने कर्किक्यालिनि च वृषे जन्मकालस्थपापे

वामे वा दिग्द्युनिशबलिनां जन्मलग्नाष्टमे वा ।

वर्गे पापानुपचयकृतां वक्रिणां पृष्ठलग्ने

पापास्तम्भे न गतिरबले जन्मलग्नानधीनं ॥ ७ ॥ (×)

अर्थ—अब यात्रामें निपिद्ध लग्न कहते हैं—मीन कर्क, वृश्चिक और वृष इन सब लग्नों और जन्मसमय पापग्रह जिस राशिमें होय उस लग्नमें वा राशिमें

(अ) यात्रायां मुहूर्त्तफलमाह—नक्षत्रवदिति । नक्षत्रवत्क्षणानामपि परिवोऽत्र दण्डोऽन्तरे वाय्वग्नेरित्यनेनोक्तो दण्डः । तज्येष्ठाजपदमित्यनेनोक्तं शूल समयभेदो दग्धु शत्रुपुरमित्यादिनोक्तः । कालभेदश्चन्द्रताराविशुद्धिः चकारात्सार्वाकारिकश्च चिन्त्यमित्यर्थः । न केवल यात्रायां किन्तु यस्मिन्मन्त्रक्षत्रे विहित यद्यत्कर्मोक्तं तत्तत्सर्वं कर्म च क्षणानामपि चिन्त्य कथामिति चेदाह तच्च स्वार्थिभिरेवेति । तेषां क्षणानां स्वामिभिः पूर्वोक्तैर्नक्षत्रैरित्यर्थः । तथा चोक्तं नक्षत्रे यद्विहितं तत्कार्यं तन्मुहूर्त्तरितं । बृहद्यात्रायाम् । “ अहोरात्रश्च सम्पूर्णं चन्द्रनक्षत्रयोजितम् । तत्रक्षत्रमुहूर्त्ताश्च सर्वकर्मगुणाः स्मृताः ” यद्वा तयोर्नक्षत्रक्षणयोः स्वामिभिर्देवैरिति अश्विनमदहनेत्यादिना नक्षत्राधिपदेवा उक्ताः । शिनभुजग इत्यादिना मुहूर्त्ताधिपा देवाश्चोक्ताः तयोर्देवैक्यवशेन नक्षत्राविहितं कर्म क्षणेऽपि कार्यमित्यर्थः । अन्ये त्वन्यथा प्रलपन्ति तदुपेक्षितमिति ।

(×) यात्रायां निपिद्धलग्नमाह—मीन इति । मीने कर्कटे वृश्चिके वृषलग्ने गमनं न शुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् । “ वृषवृश्चिककर्कटे नृणामनुकूलैरपि लग्नमाश्रितैः । गमनं प्रवदन्त्यशोभनं मुनयोऽन्यर्क्षसमाश्रितैरपि ” तथा लघुयात्रायाम् । “ मीने कुटिलो मार्गो भवति तदशेऽपि ” इत्यादि वक्ष्यति । एतेन नौयानं मीनकर्कटयोरेषु शस्तं जलजराशित्वादिति । जन्मेति जन्मकालस्थपापं होयस्मिन् तत्र राशौ लग्ने वा गमनं न शस्तमिति । तथा लघुयात्रायाम् । “ आसन्नं जन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्कराद्द्वितीयाश्च । ते लग्ने शस्यन्ते नेष्टाः पापग्रहाद्युपेक्षाः ” इति । एतेन मीनादीनां विशेषणं जन्मकालस्थपापं इति कस्यचिद् प्रलापो हेय इति । वाममिति दिशां वामं दिवाबलिनां निशाबलिनांश्च लग्नानां वामं विपरीत

औग दिवाबली राशि लग्नमें रात्रिसमय निशाबली राशिलग्नमें दिनके समय और जन्मराशिके वा जन्मलग्नके आठवें लग्नमें और पापग्रहोंके क्षेत्रमें वा नवांशादिमें गोचरमें अथवा दशादिमें अनुपचयकारक शुभग्रहोंके और वक्री ग्रहोंके क्षेत्रादिमें और पृष्ठोदय लग्नमें दो पापग्रहोंके मध्य स्थित लग्नमें बलहीन लग्नमें जन्मलग्न और जन्मराशिके अवशीभूत लग्नमें यात्रा न करनी चाहिये ॥ ७ ॥

अथ शुभाशुभलग्नकथनम् ।

मीने कुटिलो मार्गो भवति तदंशेऽन्यराशिलग्नोऽपि ।

नौयानमाप्सलग्नं कार्यं तेषां नवांशे वा ॥ ८ ॥

—गमन न शुभमेतदुक्तं भवति दिशा वाम यस्यान्दिशि गन्तव्यं तदिशो विमुखलग्ने न गन्तव्यम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । “ यातव्यदिहसुखगतस्य सुखेन सिद्धिव्यर्थे प्रभोर्भवति दिनपतिनोदलग्ने ” इति । एतेन पूर्वोदिलग्नो पूर्वोत्तरदिशिणेषु गमनं शस्त न कदाचित् पश्चिम इति । एव मन्यदप्यूह्यम् । तथा गोऽजा-श्वीत्यादिना दिवाबलिनो निशाबलिनश्च राशयः उक्तास्तेषां वामं दिवाबलिराशिलग्नो रात्रौ गमनं न शुभम् । निशाबलिराशिलग्नो च दिवा गमनं न शस्तमिति । यथा बृहद्यात्रायाम् “ शस्ते दिवा दिनवरे निशि नक्तवीर्ये राशौ विपर्ययवले गमनं न शस्तमिति ” जन्मेति जन्मराशेर्जन्मलग्नस्य चाष्टमे लग्नो न शुभ गमनम् । वाशब्दश्चाथे । तथा पापग्रहस्य वर्गे ग्रहनवाशादौ गोचरे दशापाके वा अनुपचयकृता शुभानामपि वर्गे गमनं न शुभम् । एतेनोपचयकरस्यापि पापग्रहस्य च वर्गे गमनं शस्तमिति ध्वनितम् । तथाच लघुयात्रायाम् “ उपचयकरस्य वर्गः क्रूरस्यापि प्रशस्यते लग्ने । चन्द्रेऽपि च तदयुक्ते न तु विपरीतस्य सौम्यस्य ” इति तथा वक्रिणा वर्गे ग्रहनवाशादौ गमनं न शस्तम् । तथा लघुयात्रायाम् “ वक्री न शुभकेन्द्रे तदहस्तद्वर्गशुभलग्नश्च ” इति । तथाच पृष्ठलग्ने पृष्ठोदये लग्नो गमनं न शस्तम् । यथा बृहद्यात्रायाम् । “ शीर्षोदये स्वमभिव्यक्तकार्यासिद्धिः पृष्ठोदया विफलता बलविद्रवश्च ” इति । एतेन पापानां पापग्रहावस्थितराशिनाम् अनुपचयकरस्थित राशिनाञ्च वर्गे गमनं न शुभं वक्रिग्रहाणां पृष्ठलग्ने पश्चालग्नो च न शुभमिति सीमरेर्मतिविभ्रमजन्यप्रलप इति । पापान्तस्थ इति पापहयमध्यमे लग्नो न शुभम् । तथा अवले बलहीने च लग्नो न शुभम् । तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्चाविधेये विधेयो विदातव्यः । आज्ञाप्यो वशग इति यावत् । तथा चामरसिंहः—विधेयो विनयग्राही वचने स्थित आश्रयः । वश्यः प्रणेतो निभृताविनीतप्राश्रिताः समाः ” इत्याविधेयेऽवले लग्नो गमनं न शुभमित्यर्थः । द्विपदवशाग इत्यादिना तु वश्यावश्यत्वमुक्तमेवेति । तथा बृहद्यात्रायाम् “ अविधेय यद्भवनं स्वजन्मलग्नक्षयोः प्रयातुणाम् । अप्यनकूलं लग्नं घनक्षयाय स्पेदमद्रवाति । सतिवश्यतामुपेते स्वजन्मलग्नक्षयोर्विलग्नस्थे । अपचयकरकेऽपि यातु-र्लक्षधनमानागमाः क्षिप्रम् ” इति सीमरेणातु अविधेयेत्यादि । अविधेयात्रिलामरिष्ठि-वर्म्मस्थानवर्जिते लग्नो इति सर्वार्थाज्ञानादेव प्रलपितं तदशुद्धमेवेति । इति वामे विपरीते “ घटमिशुनकुलीराक्षापगो मीनकन्याः खलु शुभमवतत्वाद्वाशयः सप्त सौम्याः । अलिषट्मृगासिंहाजश्च पापाश्रयत्वान्मुनिभिरभिहितारने राशयः क्रूरभावाः ” इति ज्योतिस्तत्त्वे स्मार्त्तनोक्तम् ।

अर्थ-मीनलग्नमें वा अन्यराशिकी लग्नमें मीनके अंशमें गमन करनेसे यात्रीकी वक्रपथमें गति होती है। जलजराशिकी लग्नमें वा जलजराशिकी लग्नके नवांश दिमें नौकामें सवार होकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अपिच ।

लग्ने कार्मुकमेपतौलिगमने कार्ये विलम्बो नृणां  
पञ्चत्वं मकरे तथा शशिशुभे तद्वत्फलं वृश्चिके ।  
सिंहे वा यदि गोघटेषु गमनं सर्वार्थसिद्धिप्रदं  
स्यादाशापतिषु प्रयाति सकलं कन्याज्ञपे मन्मथे ॥ ९ ॥ (क)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, धन, मेप और तुलालग्नमें यात्रा करनेसे यात्रीका विलम्बसे कार्य सिद्ध होता है, मकर, कर्क और वृश्चिकलग्नमें यात्रा करनेसे पञ्चत्व प्राप्ति होती है। सिंह, वृष और कुम्भलग्नमें यात्रा करनेसे सर्वार्थसिद्धि होती है और दिग्बदनलग्नमें और कन्या मीन वा मिथुन लग्नमें यात्रा करनेमें मनोरथ पूर्ण होता है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

नेष्टं दिशन्ति मकरालिकुलीरलग्ने  
मेपे घटे धनुषि दीर्घकरा हि यात्रा ।  
युग्माङ्गनाज्ञपवृषे ध्रुवमथैलाभो  
ज्योतिर्विदः सकलसिद्धिसुपैति लक्ष्मीः ॥ १० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वके वचनान्तरमें लिखा है कि, मकर, वृश्चिक कर्क, मेप, तुला और धनलग्नमें यात्रा करनेसे शुभफल नहीं होता है। मिथुन कन्या, मीन और वृष लग्नमें यात्रा करनेसे अर्थलाम और लक्ष्मीयुक्त होता है ॥ १० ॥

अपरञ्च ।

पूर्वान्तु गच्छेद्धनुः सिंहमेपे अथोत्तरां कर्कटकीटमीने ।  
प्रतीचिकां मन्मथतौलिकुम्भे ह्यपाचिका गोमकराङ्गनासु ११ (ख)

इति ज्योतिःसारसग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिषसारसंग्रहमें लिखा है कि, धन, सिंह और मेप लग्नमें पूर्वदिशाकी (क) “सिंहे वा यदि गोघटे गतनरः सर्वार्थसिद्धिं लभेत् कन्यायां मिथुने ज्ञपे त्वभिमते प्राप्नोत्यवश्य फलम्” ॥ इति ज्योतिःसारसंग्रहे परार्द्धस्य पाठः ।

(ख) “मेपसिंहधनुः प्राच्या वृषकन्यामृगा यमे । तुलाद्वन्द्वघटाः पश्चात्सौम्यां मीनालिकर्कटाः । इत्यपि सारसंग्रहे ।

यात्रा करैः करैः, वृश्चिक, और मीन लग्नमें उत्तरदिशाकी यात्रा करैः मिथुन, तुला और कुम्भलग्नमें पश्चिमदिशाकी यात्रा करै और वृष, मकर वा कन्या लग्नमें दक्षिणदिशाकी यात्रा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

प्रकारांतरश्च ।

यानेभं जन्मराशेरुपचयमुदयारित्रिलाभश्च वेशिर्मित्रं वश्यं  
स्वजन्मस्वतनुभवनयोर्यद्गृहेनोनिंशम् ॥ स्थानं सौम्यस्य  
जन्मन्यभिमतपलदस्यापि यत्र पुवश्च याम्यांत्यक्त्वा  
भिजिद्रं शुभदिवसफलेन्दोश्च या कालहोरा ॥ १२ ॥ ( + )

अर्थ—जन्मराशिसे तीसरे, छठे वा न्यारहवें लग्न हो, जन्मसमयके सूर्यसे

( + ) विहितलग्नमाह—यान इति । जन्मराशेः सप्तशत उपचय त्रिदशपष्ठशत-  
शस्थ लग्न तत् शुभ एतेन जन्मराशिलग्न न शुभमिति ध्वनिन तथा लघुयात्रायाम्  
“इष्ट स्वलग्नलग्न जन्मराशद्रुद्रमस्तरो” स्थानानि । षट् त्रयायग्रहाणि हितान्युदयेनेष्टानि  
शेषाणि” इति । तयोदयारित्रिलाभश्च सदुदय स्वजन्म लग्न अर्थोत्तदयारित्रिलाभश्च  
लग्न सदेतेन जन्मलग्नाद्दशमस्थान न शस्तमिति सूचितम् ॥ तथा बृहद्यात्रायाम् क्लेशा-  
दिनाफलमरिक्षयश्चेति केचित्तदयस्यारित्रिलाभ सत् किन्तु नोदयमिति पूर्वलिखितप्रच-  
नात् । “तथा क्लेशादिना फलमरिक्षयमर्थसिद्धि प्राप्नोति लग्नसहिते प्रवसन्स्वलग्ने ”  
इति । तथा वेशिर्जन्मकाले सूर्याद्वितीयपूर्वं लग्न शुभमिति । कश्चित् यात्राकाले सूर्यात्  
द्वितीयमंशमिति वदति तदसत् “आसन्नन्मनि राशिषु येषु शुभा भास्कराद्वितीयाश्च”  
इति लघुयात्रावचनात् । तथा स्वजन्म स्वलग्नग्रहयोर्देश्य भिन्नश्च लग्न सत् द्विपदवशना  
दत्यादिनावश्यत्वमुक्त भिन्नत्वश्च स्वामिद्वारेति ज्ञातव्यम् । यद्दशमग्रहेः शुभाशुभेन निर-  
शमशशेषीकृत यस्य शेषांशे ग्रहो न वर्तते तद्दशम सदेतेन निरशलग्न न शुभमिति  
निषेध एवतात्पर्यार्थः । तथाच “ यस्मिन्नाशापन्वभागे सौम्यः पापोऽथवा स्थितः ।  
गमने वर्जयेन्नित्य भयशोकप्रदो यतः ” अर्थाजन्मकाले सौम्यस्य स्थान शुभान्त  
यद्गृह तद्दशम सत् यथा आसन्नन्मनि राशिषु येषु शुभा इत्यादि । तथा जन्मन्यभिमतफ-  
लदस्य राजयोग उक्त योगादिना शुभफलदस्य पापस्यापि समाप्तान्त स्थान यद्गृह  
तद्दशम सत् । तथा यत्र षडः स्यात् यद्दशमग्रहामिनो विद् यस्मिन् गच्छी गन्तुमिष्टा स्यात्त-  
द्दशम मत् । तथा सारात्रयाम्—“ननाधिपद्विदनामप्य इह यज्ञैः प्रयत्नतः कथित ।  
तत्प्रयोगो विनिहन्त्यादाचिरेण महीपातिः ज्ञान्” इति । एतेन षडो वेशिस्थानाधिपो यत्र  
विद्यत इति सोभरे. प्रलापोऽशुद्ध एव । तथा याम्यां वृद्धिणा विद्य त्वत्त्वाभिजिद्रम्  
अभिजिद्रमुत्तर्थाधिष्ठितगणिलग्न सत् तथा लघुयात्रायाम् “यश्चाष्टमो मुहूर्त्तो दिनेऽभिजि-  
द्रामनिर्दिष्टः तस्मिन्स्यारत्ता याम्यामन्यत्र गतस्य जयलभ्य” इति ॥ शुभेति शुभ दिगात्  
गारक्त यस्य तस्य ग्रहस्थेन्दोश्च या कालहोरा तद्दशम सदेतदुक्तं गच्छति सत्यमेदिनास इत्या-  
दिना निषिद्धाग उक्ताः । लघुयात्रादिषु च ज्यो जयलभ्यश्चिरित्यादिना च शुभयात्रा  
उक्ताः अनुलोमदिग्देशेन च वारस्य शुभतस्तुक्ताः च यम्यग्रहस्य वारे शुभफल कथित तस्य



दूसरी राशिकी लग्न और जन्मराशिकी वा जन्मलग्नके वश्य वा मित्र लग्न अथवा जिस राशिके शेषांशमें ग्रह न होय उस लग्नमें, जन्मसमय शुभग्रह युक्त राशिकी लग्नमें, जन्मसमय शुभ फलप्रद पापग्रहयुक्त राशिकी लग्नमें गन्तव्यादेकपातिके क्षेत्रलग्नमें, दक्षिण दिग्भिन्न अभिजित् नक्षत्रके मुहूर्त्तकी लग्नमें और शुभग्रहोंके वारमें और चन्द्रमाके काल होरामें यात्रा शुभ होती है ॥ १२ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्थनिषिद्धग्रहनिर्णयः ।

पापः क्षीणो विधुररिदिनं यस्य जन्मर्क्षपीडा

होराजन्माष्टमगृहपतिर्जन्मभं प्रत्यनिष्टः ।

नीचस्थास्तं गतपरजितो जन्मलग्नशशत्रु-

लग्ने नेष्टः खचररहितं वक्रियुक्तञ्च केन्द्रम् ॥ १३ ॥ ( \* )

अर्थ-यात्रालग्नमें स्थित निषिद्ध ग्रहोंको कहतेहैं, पापग्रह, क्षीण चन्द्रमावारका

--कालहोराअस्यार्थःग्रहस्यदिवसफलधारफलशुभाशुभयदुक्ततस्यकालहोरातत्फलकरोति। तथा च लघुयात्रायाम् "यद्यस्य फल वारेतदशेष तस्य कालहोरायाम्" इति। एतेनाशुभेऽपि वारे शुभफलवारस्य ग्रहस्य कालहोराया गमन शस्तमिति ध्वनितम् । एतेन जन्मकोष्ठ्यां शुभदिवसफलस्य शुभदस्येति सीभरव्योरव्याकौशलहेल दिवसपद्वैवर्थ्यपत्तेश्चेति । कालहोराधिपाश्च देशवह्वभायामुक्ताः । "वारप्रवृत्तेर्षटिका द्विनित्राः कालार्यहोरापतयः शरासाः । दिनाधिपाद्या रवि मुक्रसौम्यशशाकसौरज्यकुजाः क्रमेण" ॥ इति ।

( \* ) लग्ने निषिद्धग्रहानाह-पाप इति । पापग्रहो लग्ने नेष्टः न शुभः । अत्र पापोऽपि यदि गोचरे दशापाके वा शुभ ग्रहोऽप्यनिष्टदः सोऽपि लग्ने न शस्तइत्यर्थः । यथा लघुयात्रायाम् "क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलदः" इति । तथा क्षीणश्चन्द्रो लग्ने न शस्तः । यदुक्त "केन्द्रकोणार्थेगो नेष्टः क्षीणः पूर्णः शशी" इति । तथा यस्य ग्रहस्यारिदिनं ग्रहवारः पश्मिन्वारे यात्रा कर्त्तव्या तस्य वारस्य स्वामी यस्य ग्रहस्य शत्रुः स ग्रहो लग्ने नेष्ट इत्यर्थः । तथा बृहद्यात्रायां "रिपुदिवसे यस्य भवेत्सौम्योऽपि स लग्नगो न शुभदाता । पापोऽपिष्ट जनयति भिन्नस्वलग्नस्थ विलग्नस्थः" इति । अत्र लग्नाधिपस्यारिदिनं गमने योग्यमिति सीभरेर्मताविभ्रम इति । तथा यस्य ग्रहस्य जन्मनक्षत्रपीडा स ग्रहो लग्ने नेष्टः । यरेत्युभयत्र सवध्यते मध्यपाठात् ग्रहाणां जन्मनक्षत्रयथा " विशाखा नलतोयानि वैष्णवे भगदैवतम् । पुष्य पौष्णं यमः सर्पो जन्मर्क्षोप्यर्कतः क्रमात् " इति । जन्मर्क्षपीडा च नक्षत्रमपट्टकिरणमित्यादिनोक्तैव तथा जन्मलग्नस्य जन्मराशेश्च यदष्टमं ग्रहं तस्य स्वामी लग्ने नेष्ट इति । तथा जन्मभ जन्मराशि प्रति गोचरे योऽनिष्टप्रदः स शुभोऽपि लग्ने नेष्टप्रदः । तथा क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्ने शुभोऽपि नानिष्टफलद इति । तथा ये नीचस्था ये चास्तेगता ये च युद्धे परैर्जितास्ते लग्ने नेष्टाः । तथा जन्मलग्नाधिपस्य जन्मराश्याधिपस्य यः शत्रुः स लग्ने नेष्टः । एव दशान्तर्दशापतेः शत्रुलग्ने नेष्ट इति । यथा बृहद्यात्रायाम् । "गणेशादौ लग्ने वर्गे वा तस्य

मालिक जो शत्रु वह ग्रह और जिस ग्रहका जन्मनक्षत्र पीडित होय वह जन्मग्रह और जन्मराशिके आठवें स्थानका मालिक ग्रह, गोचरमें अनिष्टग्रह शुभ वा अशुभ ग्रह नीचस्थानमें स्थित ग्रह, अस्तमित ग्रह, पराजित ग्रह जन्मलग्नका मालिकका और जन्मराशिके मालिकका शत्रु ग्रह यदि लग्नमें होय वा लग्नके केन्द्रस्थानमें ग्रह शून्य होय अथवा वकी ग्रह केन्द्रस्थानमें होय तो उस लग्नम यात्रा न करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अथ यात्रायां लग्नस्य होराज्ञानम् ।

तिर्यग्ध ऊर्ध्ववदनहोराः स्युः सूर्ययोगतः क्रमज्ञः । (x)

वाञ्छितफलदोर्ध्वमुखी शेषे द्वे चाशुभे यातुः ॥ १४ ॥

अर्थ—अब यात्रामें लग्नके होरा जाननेकी रीति कहते हैं—राशिको दो भागमें विभक्त करनेसे उसकी होरा कहते हैं, जिस होरामें, सूर्य स्थित होय उसका नाम तिर्यग्मुखी, उसके पीछेके भागका नाम अधोमुखी और उसके पीछेके भागका नाम ऊर्ध्वमुखी हैं ऊर्ध्वमुखी होरामें यात्रा करनेसे यात्रीको वाञ्छित फल प्राप्त होता है और शेष दोनों होरामें यात्रा करनेसे अशुभ होता है ॥ १४ ॥

अथ यात्रायां द्रेष्काणफलम् ।

लग्ने यद्यद्ग्राहाणां फलमुदितमिहांशेऽपि तेषां दृकाणे

सन्नाथे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते वा ।

—भूपतिर्गच्छन् । विनिहन्तारनराश्वः शत्रोगयाति वश्यताम्” इति । तथा केन्द्र. लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थान सर्वमेव खचररहित ग्रहशून्य नेष्टम् । तथा वक्रिग्रहयुतश्च केन्द्र नेष्टम् तथा बृहद्यात्रायाम् “एकोऽपि वक्रोपगतो ग्रहाण शुभाऽशुभो वापि चतुष्टयस्यः । वगोऽपि वास्योदयगो विनाश बृहत्प्रकार कुरुतेऽध्वगानाम् ॥” इति। अत्र च विशेषमाह राजमार्त्तण्डे—“शुभदः शुभदृष्टो वा शुभदर्शगतोऽथवा शुभदृष्टः । शुभगेहे वा शुभदो वक्रि केन्द्रोपगो यातु” इति । गोचरे दशापाके वा शुभदो वकी केन्द्रस्थः शुभफलदो भवतीत्यर्थः ।

(x) होराफलमाह—तिर्यग्गति । होगराश्वर्द्ध सूर्ययोगत क्रमेण तिर्यग्ध ऊर्ध्ववदन-सन्नराहोरा मश्वर्द्धानि स्युः । अथमथे । यस्मिन् राश्वर्द्धे सूर्यमिच्छति सा तिर्यग्मुखी तत्पश्चादधोमुखी पुनस्तत्पश्चादूर्ध्वमुखीत्यादि । तथा बृहद्यात्रायाम् । यस्मिन्महर्मांशु गतिस्थितोऽध्वेतिर्यग्मुखी सगणयेत्पुनः पुनः ”इति । अत ऊर्ध्वमुखी वाञ्छितफलदा शेषे द्वे होरे तिर्यग्मुखी अधोमुखी यातुर्न शुभप्रदत्यर्थः । तथाच देवज्ञरत्नभायाम् । “ धत्ते वाञ्छितफलार्थपूर्ध्वे वदना क्लेशादिना लग्नगा क्लेशायां मपरिग्रमाश्र कुरुते तिर्यग्मुखी गच्छन् । सैन्यभ्रशमधोमुखी च कुरुते क्लेशाद्ग्रहे चागमः मार्गाः पुष्टफलप्रदाः स्वप-गिना दृष्टा न पापग्रहेः” इति ।

सौम्येर्दृष्टे जयः स्यात्प्रहरणसहिते पापदृष्टे च भङ्गो

वह्ना दाहोऽथबंधः समुजगनिगडे पापयुक्ते च यातुः ॥१५॥ (क)

अर्थ-जब यात्रामें द्रेकाणका फल कहते हैं, पूर्वोक्त लग्नमें स्थित ग्रहोंका जिस प्रकार फल वर्णन किया है यात्रामें उन्हीं सब ग्रहोंके नवाशोंमेंभी तिसी प्रकार फल होता है शुभ ग्रहोंके द्रेकाणमें, सौम्यरूप द्रेकाणमें, फलपुष्पयुत द्रेकाणमें रत्नभाण्डान्वित द्रेकाणमें, और द्रेकाणोंपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होनेसे यात्रा करनेवाले मनुष्यकी जय होती है और उद्यताक्ष द्रेकाणमें वा पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे द्रेकाणम यात्राभङ्ग होती है भुजगद्रेकाणमें, निगडद्रेकाणमें और पाप-प्रदयुक्त द्रेकाणम यात्रा करनेसे यात्रीकी अग्निमें गह और बन्धन होता है ॥१५॥

अथ धरित्रीयोग ।

लाभशुसहजेषु यमारो साम्पशुक्रगुरवो बल्युक्ताः ।

गच्छतो यदि ततोऽस्य धरित्री सागराम्बुवसना वशमेति ॥१६॥ (ख)

अर्थ-जब धरित्री योग कहते हैं-यात्रासमयमें लग्नसे ग्यारहवें, छठे और

( क ) यात्रायां नवांशद्रेकाणयो फलमाह-लग्न इति । लग्ने स्थितानां ग्रहाणां यद्यत्फलं पाप क्षीणो विधुरित्यादिना पूजाक्तमिह यात्रायां तेषां ग्रहाणां नवांशेऽपि तत्फलमुदितमिति । उह्यात्रायाम् । “यद्वदयति फलं ग्रहे प्रदिष्टं जनयति तस्य नवांशको विलग्नैः ” इति । तथाच फलांतरमुक्त तत्रैव “ नवभागे तिग्माशोर्गहननाशो विलग्नसंप्राप्ते । वृच्छात्सगृहागमनं प्रभासमृदता च चन्द्राञ्च । कौजेऽग्निभयं वीधे मित्रप्रातिर्धनागमो ज्ञेयः । भोगनिवृद्धिं शोक्ने भूत्यग्निनाशो रविमुत्ताशे ” इति । द्रेकाणफलमाह सन् शुभग्रहो नाथो यस्य तस्मिन् द्रेकाणे जयः स्यात्तथा नृपग्रमर्भानयोरित्यादिनोक्तः । सौम्यद्रेकाणे जयः तथा फलपुष्पयुक्ते कर्कटादिद्रेकाणे जयस्तथा रत्नभाण्डान्विते धनुर्मध्ये तुलादिद्रेकाणे जयः स्यात्तथा सौम्ये शुभेर्दृष्टे द्रेकाणे जयः स्यादथ प्रहरणसहिते उद्यताक्षद्रेकाणे भङ्गोऽसदृशद्रेकाणे दाहोऽग्निभयम् । अथ समुजगनिगडेति । भुजगद्रेकाणे निगडद्रेकाणे च पापग्रहयुक्तं च द्रेकाणे यातुर्वन्धः स्यात् । यद्यपि भीनकर्कटयो-रित्यादिना मपनिगडयोरियमुक्तं तथाप्यन्यत्र भेददशनादत्रापि पृथगुक्तम् । तथाच ‘मृगालिपूर्वो निगडो प्रदिष्टो इति । अत्रच कश्चित् प्रहरणसहिते पापयुक्ते इति पाठं कृत्वा विशेषविशेषणभावेनान्वयं करोति तदसत् । ग्रहयात्रायाम् पापदृष्ट इत्यस्यैव दृष्टत्वात् चकार यवैयथापत्तेश्च इति ।

( ख ) अथकार्यं नशान्तरागमने यद्यदुक्तमेव सर्वं न लभ्यते तदा योगयात्रा कायति तत्र प्रथमं धरित्रीयोगमाह-लाभेति । एकादशपष्ठतीयेषु यथासम्भवमेकत्र पृथग्व्यवस्थितौ यमारो शनिगुरवौ यदि स्यातां बुधशुक्रगुरवन्तु यत्र कश्चित् स्थिता बल्युक्ता यदि स्युः तदा गच्छतोऽस्य नृपते पृथिवी सागराम्बुवसना समुद्रजलसीमा वशमेति । वसनेन वसना सीमेत्यर्थः । यदि । बुधशुक्रगुरवामेकोऽप्येव स्यात्तदाप्येव योगो न स्यादित्यर्थः ।

तीसरे स्थानमें शनि और मंगल रहकर यदि बुध, शुक्र और बृहस्पति उस समय बलवान् न हों तब धरित्रीप्रद योग होता है उक्त योगमें यात्रा करनेसे सागर-पर्यन्त पृथिवी वशमें होजाती है ॥ १६ ॥

अथ किंवसुयोगः ।

केन्द्रोपगतेन गुरुणा वीक्षिते त्रयायचतुर्थगे सिते ।

पापैरनवाष्टसप्तमैर्वसु किं तत्र यदाभुयाद्गतः ॥ १७ ॥ ( छ )

अर्थ—यात्रासमय लग्नसे तीसरे, ग्यारहवें वा चौथे स्थानमें शुक्र स्थित होय केन्द्र स्थानमें स्थित बृहस्पति शुक्रको देखता होय, और नववें आठवें और सातवें स्थानमें पापग्रह न होय तो किंवसुयोग होता है, इस योगमें यात्रा करनेसे यात्रीको ऐसा कौनसा धन है कि जिसको प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् सब धनकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

अथ विनासमरयोगः ।

शशिनित्तुर्थगृहं समुपगते बुधसाहितेऽस्तगते भृगोःपुत्रे ।

गमनमवाप्य पतिर्भुजानां जयति रिपून्समरेण विनैव ॥ १८ ॥ ( क )

अर्थ—यात्रासमय यदि बुधके साथ चन्द्रमा लग्नके चौथे स्थानमें होय शुक्र अस्त होय तो विना समर योग होता है, उक्तयोगमें यात्रा करनेसे राजा विना, युद्ध किये शत्रुओंसे जयप्राप्ति करता है ॥ १८ ॥

अथ विनारणयोगः ।

सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे ।

यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन्विनारणम् ॥ १९ ॥ ( ख )

अर्थ—यात्रासमय लग्नसे यदि चौथे स्थानमें शुक्र और चन्द्रमा सातवें स्थानमें स्थित होय तो विनारणयोग होता है, इस योगमें यात्रा करनेसे राजा विना युद्धसे शत्रुओंको पराजय करता है ॥ १९ ॥

( \* ) किंवसुयोगमाह—केन्द्रति । लग्नात्रयायचतुर्थस्थे शुके लग्नप्रथमसप्तमाष्टमस्थानरहितेः पापैर्गतः पुमान्यत्राभुयात्तत्किं धनुं धनं जगत्यस्ति । नवमाष्टमसप्तस्वेकोऽपि पापो यदि विद्यते तदा योगमद्ग इत्यर्थः ।

( क ) विनासमर योगमाह—शशिनिति । चन्द्रे लग्नाच्चतुर्थस्थानं प्राप्ते बुधयुक्ते शुकेऽस्तगते सप्तमस्थे गमनं प्राप्य भुजानां पतिर्भुजः समरेण युद्धेन विनैव रिपुं जयति । अरिभन्योगे रिपुजयकर्तृवोधिकारः नान्यस्य धनाद्धकाक्षिण इति ।

( ख ) विनारणयोगमाह—सितेति । चतुर्थस्थी शुक्रबुधौ समये च चन्द्रो यदा स्यात्तदा गतो नृपः शत्रुं प्रशस्ति अत्रापि रिपुनेतुरेवाधिकारो नान्यस्येति ।

अथ अरिप्रध्वंसयोगः ।

एकान्तरक्षे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्वा ।

प्रध्वंसतेरिस्त्वचिराद्गतस्य वेशाधिके भृत्य इवेश्वरस्य ॥२०॥ ( ग )

अर्थ-यात्रासमय शुक्र वा मङ्गलसे तीसरे स्थानमें शुभग्रह होय बुध और शनिसे तीसरे स्थानमें बृहस्पतिके होनेस अरिप्रध्वंसनामक योग होताहै, इसमें यात्रा करनेसे यात्रीके शत्रुओंका शीघ्रही नाश होताहै ॥ २० ॥

शशिनरेन्द्रयोगः ।

गुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधने न च शीतमयूखः ।

भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानाम् ॥२१॥ ( घ )

अर्थ-यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति और लग्नके छठे स्थानमें सूर्य होय और आठवें स्थानमें चन्द्रमा न होय तो शशिनरेन्द्र योग होताहै, उक्त योगमें यात्रा करनेसे राजाके शत्रुओंकी स्त्रियोंका मुख संकुचित होजाताहै ॥ २१ ॥

अथ शिलाप्रतरणयोगः ।

लग्नारिकर्महिबुकेषु शुभेक्षिते ज्ञे

दूनान्त्यलग्नरहितेष्वशुभग्रहेषु ।

यानुर्भयं न भवति प्रतरेत्समुद्रं

यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु ॥ २२ ॥ ( ङ )

अर्थ-यात्रासमय यदि लग्नमें वा लग्नके छठे, दशवें वा चौथे स्थानमें बुधपर शुभग्रहोंकी दृष्टि होय और सातवें, बारहवें और लग्नमें पापग्रह स्थित न होंय

( ग ) अरिप्रध्वंसयोगमाह-एकेति । शुक्राद्वा कुजाद्वा एकान्तरक्षे तृतीयगृहे सौम्येऽपापबुधे सूर्यसुताद् गुरोर् च स्थिते सति गतस्य राज्ञोऽचिरादेवारिः प्रध्वंसते नश्यति यवेश्वरस्य सेव्यस्य वेशाधिकोऽतिरेकवेशो भृत्योऽचिरान्नश्यति । अत्र तु रिपुजेतुरेवाधिकारो न लाभान्वाकाक्षिण इति । एवमुत्तरत्रापि विशेषदर्शनाद्बोद्धव्यमिति ।

( घ ) शशिनरेन्द्रयोगमाह-गुरुरिति । उदये लग्ने गुरुः पष्ठे स्थितोऽर्को यदि स्याद्-स्मिन् योगे निधनेऽष्टमे चन्द्रो यदि न स्यादष्टमस्ये तु चन्द्रे योगमद्भवति । अत्र योगे गतो नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानां शत्रुस्त्रीमुखपद्मानां शशीव सङ्कोचको भवति । पङ्केरुह तामरसभित्तमरः । रिपुस्त्रीणां पद्मत्वेन निरूपितस्य मुखस्य शोकादिना म्लानिकारकत्वेन राजा चन्द्रेणोपमायत इति ।

( ङ ) शिलाप्रतरणयोगमाह-लग्नेति । लग्नपष्ठचतुर्थदशमेषु शुभदृष्टे ज्ञे बुधे सति पापेषु सप्तमद्वादशलग्नरहितेषु सत्सु अश्मना प्रतरेणापि यदि समुद्र प्रतरेत्तयापि यानुर्भयं न भवेत् किमुत शत्रुसमागमेषु भयमिति ।

तव शिलाप्रतरण योग होताहै उक्त योगमें यात्राकरनेसे यात्री पापाण ( पत्थर ) लेकरभी समुद्रमें तैर सकताहै तब शत्रुके निकटसे उसे क्या भय होसकताहै ॥२२

अथ अरिशलभयोगः ।

मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः ।

यस्य यानसमय रणानले तस्य पान्ति शलभा इवारयः२३॥(च)

अर्थ—यात्रासमय लग्नमें शुक्र, लग्नके दूनरे स्थानमें बुध और लग्नके तीसरे स्थानमें सूर्यके होनेसे अरिशलभयोग होताहै, इसमें यात्राकरनेसे यात्रीके शत्रुगण रणमें पतङ्गकी समान नष्ट होजातेहैं ॥ २३ ॥

अथ अरिवैनतेययोगः ।

शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के ।

नृपनिर्गतो पतिरोति कृतार्थो वैनतेयवदरीन्विनिगृह्य ॥ २४ ॥ (छ)

अर्थ—यात्रासमयमें शुक्र, बृहस्पति और बुध यदि लग्नके दूसरे स्थानमें स्थित हों और सातवें स्थानमें चंद्रमा और लग्नमें सूर्य हों तो अरिवैनतेय-नामक योग होता है इस योगमें यात्रा करनेसे राजा शत्रुकी समान अपने शत्रुओंका नाश करके समस्त कृतार्थ होता है ॥ २४ ॥

अथ अरियोपाभरणयोगः ।

त्रिपण्णवान्त्येष्ववलः शशाङ्कश्चान्द्रिर्वली यस्य गुरुश्च केन्द्रे ।

तस्यारियोपाभरणैःप्रियाणि प्रियाःप्रियाणां जनयन्ति सैन्ये २५॥(ज)

अर्थ—यात्रासमयमें यदि बलहीन चन्द्रमा तीसरे, छठे, नववें वा बाह्यवें स्थानमें होय और बलवान् बुध और बृहस्पति केन्द्रस्थानमें स्थित हों तो आर्योपाभरणयोग होताहै, इसमें यात्रा करनेमें उस राजाके बान्धव गणोंकी स्त्रियें शत्रुओंकी स्त्रियोंके आभूषणोंसे अपने प्रियाओंकी प्रीतिको उत्पन्न करते हैं ॥ २५॥

( च ) अरिशलभयोगमाह—मूर्तिविति । शुक्रबुधसूर्यो यथासम्य लग्नद्वितीयतृतीयेषु स्थिता यस्य यानकाले म्युस्तस्यारयो रणानले युद्धाग्नी शलना इव पान्ति नश्यन्तीत्यर्थः ।

( छ ) अरिवैनतेययोगमाह—शुक्रोति रणार्थम् ।

( ज ) अरियोपाभरणयोगमाह—त्रिपटिनि । यस्य पुत्रो यानकाले बन्हीनश्चन्द्रमि-  
पण्णवान्त्येषु स्थितः चान्द्रिर्वुधो वली गुरुश्च वली केन्द्रमिन्तारुभौ म्याता तस्य सैन्ये  
प्रियाः प्रियजना बान्धवाः शत्रुपनितालद्रुभिः प्रियाणां स्वपत्नीन् प्रियाणि प्रीतीन् जन-  
यन्ति तत्पत्नयोऽपि शत्रुजये समर्था भवन्तीति तात्पर्यार्थः ।

अथ यात्राया राजयोगः ।

वर्गोत्तमगते चन्द्रे लग्ने वा चन्द्रवर्जितेः ।

चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥ २६ ॥ ( झ )

अर्थ-अब यात्रामें राजयोग कहते हैं, यात्रीकी जन्मराशि वा जन्मलग्न यदि वर्गोत्तमगत होय और चन्द्रमाको छोडकर चारों ग्रहोंकी यदि उसमें दृष्टि होय तो बाईस ( २२ ) प्रकारसे राजयोग होता है ॥ २६ ॥

अथ यात्राया राजयोगफलम् ।

यात्रिणां तु नृपयोगगतानां प्रत्यहं भवति राज्यविवृद्धिः ।

वातघूर्णितमिवार्षणवयानं वैरिणां बलमुपैति विनाशम् ॥ २७ ॥ ( झ )

अर्थ-जो राजा राजयोगमें यात्रा करता है उसका राज्य प्रतिदिन बढ़ता जाता है और विशेषकरक समुद्रमें नौका जिस प्रकार वायुसे घूर्णित होकर नष्ट होजाती है तिसी प्रकार उस राजाके शत्रुओंका सेन्य नष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

अथ वनवृद्धियोगः ।

लाभार्थलग्नेषु शुभो रविश्चेद्यस्यारसारौ सहजेऽरिभे च ।

तस्यार्थकोशः समुपैति वृद्धि लाभो यथा प्रत्यहमर्थवृद्ध्या ॥ २८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वम लिखा है कि, यात्रासमयमें लग्न ग्यारहवें वा दूसरे

( झ ) अथ राजयोगमाह-वर्गोत्तमेति । प्रतिराशी द्वाविंशतिप्रमाणेन लग्नचन्द्रवशा द्वाविंशत्यधिष्ठानि पञ्चशतानि राजयोगा म्यु । स्थानान्तरे व्याख्यातोऽय श्लोक इति । बृहज्जातके राजयोगान्तरमुक्तम् । यथा “ काकणिलग्नौ तत्स्थे जीवे चन्द्रसित-  
ज्ञेरेप प्राप्त । मेघगतेऽके जात विद्याद्वैत्रमयुक्त भूमेर्नाथम् । वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृगुरु-  
तीक्ष्णांशुतनये सुहज्जायार्थस्थैर्भवाति नियमान्मानवपति । मृगे मन्दे लग्ने सहजरिषु-  
धर्मव्यपगते शशाङ्कधे र्व्यात पृथुगुणयशा पुगणपति ” । एतन्मये च योगास्त  
त्रेप ज्ञेया इति मेघादिद्वादशराशिना स्वीयनवांशस्थे लग्ने चन्द्रे च यत्र कुत्रापि स्थिते  
चन्द्रवर्जितैश्चररादिभिर्ग्रहैर्वाक्षिते । अथमर्थ । द्वादशराशिषु लग्नम्य द्वादश एव स्वीय  
नवांशास्तत्र कुम्भ वर्जयित्वा एकादशेषु स्थिता । एव च द्रस्यापि वृश्चिकवर्जनात्  
एकादशेषु स्थानानि म्युराति द्वाविंशति कुम्भलग्ने दोषदर्शनाच्याग । यथा “ न कुम्भ  
लग्ने शुभमाह सत्यो न भागभेदान्यपना वदन्ति ” वृश्चिकगशिश्चन्द्रम्यनीचगृहामिति  
चन्द्रपक्षे वृश्चिकवर्जनम् । “ सर्वैर्गमनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवाति महीपाल । बलिभि शुभैः  
सर्वैर्धगतभयो दीर्घजीवी च ” इति जातकोत्तराजयोग इति ज्योतिस्तत्त्वैस्मार्त्त-  
नाभिहितम् ॥

( झ ) राजयोगगमने फलमाह-जातयेति बृहज्जातकादी जातके जन्मनि ये राजयोगा

स्थानमें अथवा लग्नमें यदि शुभ सूर्य होय और मंगल और शनि तीसरे वा छठे स्थानमें होय तो धनवृद्धि योग होता है अर्थात् उक्तयोगमें यात्रा करनेसे जिस प्रकार लोभी धनकी लालसाको बढ़ाता है उसी प्रकार यात्रीका धन प्रतिदिन बढ़ता है ॥ २८ ॥

अथ फलाप्तियोगः ।

लग्ने गुरुर्बुधभृगू द्विबुकात्मजस्थौ

पष्ठौ कुजार्कतनयौ दिनकृतृतीयः ।

चन्द्रस्य यस्य दशमो भवति प्रयातु-

स्तस्याभिवाञ्छितफलाप्तिरलं नृपस्य ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यात्रासमय लग्नमें बृहस्पति चौथे और पांचवें स्थानमें बुध और शुक्र छठे स्थानमें मङ्गल और शनि तीसरे स्थानमें और सूर्य दशवें स्थानमें चन्द्रमा होनेसे इस समयमें जो गजा यात्रा करे तो उसको वाञ्छित फलप्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

अथ यात्राजनित्रीयोगः ।

गुरौ विलग्नै यदि वा शशाङ्के पष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे ।

सितज्ञयोर्वन्धुसुतस्थयोश्च यात्राजनित्रीव सुखानि घत्ते ॥ ३० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मसमय बृहस्पति वा चन्द्रमा यदि लग्नमें होय और सूर्य छठे स्थानमें शनि दशवें स्थानमें, शुक्र चौथे स्थानमें और बुध पांचवें स्थानमें स्थित होय तो उस यात्रामें यात्रीको माताकी समान सुख प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

अथ योगोऽतिरिथागा योगातियोगश्च ।

एकेन वा बुधवृहस्पतिभार्गवाणां

यागा भवेन्नवमपञ्चमकण्टकेषु ।

द्वाभ्यां वदन्ति मुनयोऽप्यतियोगमेव

योगातियोगमपरे त्रिभिरुद्दिशन्ति ॥ ३१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यात्रासमय लग्नमें वा लग्नके नववें, पांचवें

—उक्तास्तत्र गतानां जनानां प्रत्यहं सन्त्यवृद्धिः स्वात् शशुवलश्च विनाशं प्राप्नोति तथा वायुना धूमितं समुद्रमप्यस्यं यानं नीका नाशमेति तद्वदिति ।



चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें बुध, बृहस्पति और शुक्र इन तीन ग्रहोंमेंसे जो कोई ग्रह होय तो उसको योग कहते हैं दो ग्रह होनेसे मुनिगण उसको अतियोग कहते हैं और तीनों ग्रह उपरोक्त स्थानमें होनेसे उसको योगातियोग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ योगयात्रादीनां व्यवस्था ।

महीभृतां योगवशात्फलोदयो द्विजन्मनामृक्षगुणैश्च जायते ।

शतन्धुरादेः शकुनिप्रभावतो जनस्य शेषस्य मुहूर्त्तशक्तिः ॥ ३२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब योगयात्रादिकी व्यवस्था कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, राजाके योगबलाधीन यात्राका फल होता है, द्विजातिगणके नक्षत्रबलाधीन फल होता है, शतन्धुरादिके शकुनिसे यात्राका शुभाशुभ फल होता है, और अन्यान्य मनुष्यके मुहूर्त्तके अधीन यात्राका फल होता है ॥ ३२ ॥

अत्र उपादियोगे यात्राकथनम् ।

तिथ्यादिषु निषिद्धेषु चन्द्रताराविलोमतः । ( \* )

उपां गोधूलियोगं वा स्वीकृत्य गमनञ्चरेत् ॥ ३३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, तिथिनक्षत्रादिविरुद्ध और चन्द्रताराके प्रति कूल होनेसे यदि स्थानान्तरमें जानेकी अत्यन्त आवश्यकता होय तो उपा वा गोधूलि योगको स्वीकार करके यात्रा करे कोई २ आचार्य कहते हैं कि, चन्द्रतारा गोचरमें शुद्ध होनेसेही उपा और गोधूलियोगमें यात्रा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

दिग्बिधे उपादिनिन्दा ।

प्राच्यामुपां प्रतीच्याञ्च गोधूलिं वर्जयेन्नृप ।

दक्षिणे चाभिजिञ्चैव उत्तरे च निशां तथा ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-पूर्वदिशाकी यात्रा उपामें न करनी चाहिये इसी प्रकार पश्चिमकी यात्रा गोधूलिमें न करे दक्षिणकी यात्रा अभिजिन्मुहूर्त्तमें न करे और उत्तरकी यात्रा रात्रिमें न करनी चाहिये इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ३४ ॥

अपिच ।

लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति प्राप्तकालोऽतिवर्तते ।

अविशेषेण वर्णानां तदा गोधूलिरिष्यते ॥ ३५ ॥

इति व्यासः ।

अर्थ—व्यासजीने कहा है कि, स्थानान्तरमें जाना आवश्यक ही प्रशस्त बार और तिथ्यादि न होय और लग्नभी शुद्ध न होय तो इस प्रकारकी अवस्थामें सभी वर्णोंको गोधूलिमें यात्रा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

उपा करोति कल्याणं यदि पूर्वं न गच्छति ।

वारुण्यां धूलियोगे तु न गन्तव्यं कदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ—पूर्वदिशाको छोड़कर अन्य दिशामें यात्रा करनेसे उपा मङ्गलकारक होती, है और गोधूलिमें पश्चिमदिशाको यात्रा कभी न करना चाहिये ॥ ३६ ॥

अथ उपाकालकथनम् ।

आरक्तसन्ध्यं रजनीविरामं वदन्त्युपायोगमिह प्रवीणाः ॥

आहुः प्रयातुःसकलार्थसिद्धिः संलक्ष्यते हस्ततलस्थितेव ॥ ३७ ॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

(ख) उपायोगमाह—आरक्तेति । उपायोग इति कृत्वा रजनीविराम रात्रिशयकालं वदन्ति ज्योतिषप्रवीणाः । आरक्ता ईषद्रक्तवर्णा सन्ध्या यत्र रात्रिशेषे इति । तत्रोपायोगे यातुर्हस्तस्थेव सकलकार्यसिद्धिर्लक्ष्यते । तथाच “प्रभ्रष्टद्युतितारका स्फुटतटी प्राची भवेन्निर्मला ईषद्रक्तविलोहिता च पतता नीटस्थितानां रविः । नो वारं न तार्यं न योगकारणं चन्द्रश्च नोपक्षते हत्वा दोषसहस्रक प्रतिदिन चोपा कगेत्युन्नतिम् ॥ ” अत्र च रविगुरुमंगलवारस्योपातीव प्रशस्ता इति । अत्र च पूर्वगमने नोपा विहिता लालाटिकत्वात् । तथाच “उपा करोति कल्याणं यदि पूर्वं न गच्छति” इति । अत्र च सर्वपासाधिकारः सामान्येनोक्तत्वात् एवं किं वसुयोगादिति बोद्धव्यमिति । तथा नारिमन् ग्रहा इत्यदिना गोधूलियोगे यात्रा प्रशस्तोक्ता । गोधूलियोगलक्षणश्च पूर्व-रिमन्नुक्तमिति । तथा “केन्द्रे गुरुशुक्रौ चलिनौ सर्वदोषक्षयकरौ” । यथा “किं कुर्वन्ति ग्रहाः सर्वं पश्य केन्द्रे बृहस्पतिः । मत्तवारणसपातः सिंहनेत्रेन हन्यते ॥ लग्नदो-पाश्च ये केचिद्ग्रहदोषास्तथापरे । ते सर्वं विलयं यान्ति लग्ने गुरुभृगू यदा ” । तथा योगमालायाम्—“उदये गुरुसौम्यभागवैः सहजेऽर्काकिंजुजैश्च गच्छतः । न भवन्त्यरथो रणे स्थिताः कितवानामिव वित्तसक्षयाः । येषां गमे नममपञ्चमकण्टकरथाः सीम्यास्तृ-तीवारिषुलामगताश्च पापाः । आपान्ति ते स्वभवनानि पुनः कृतार्था दत्ता द्विजातिषु पुरा विधिवद्यथायाः ” ॥ इत्यादि योगा उक्तास्ते ग्रन्थगौरवाद्गोपिता इति एवं केचिदपि दुर्गमने प्रशस्तान्तर वदन्ति । यथा “चन्द्रं शृपादौ जानियान्मेषादा-सुदधं तथा । तितयता मह सयोन्य त्रिभिर्नाग समाहेत् । ग्रन्थेभृत्सुर्धये

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, रात्रिके जेपमें पूर्वदिशा ( ईषत् रक्तवर्णा ) कुल्लेक लालवर्ण होनेसे पाण्डितगण उम कालकोही उपा कहते हैं इस समय यात्रा करनेमें यात्रीके सब कार्य करतलगत होजाते हैं ॥ ३७ ॥

अथाभिजित्कथनम् ।

अष्टमे दिवसस्यार्द्धे त्वभिजित्संज्ञकः क्षणः ।

स ब्रह्मणो वरान्नित्यं सर्वकामफलप्रदः ॥ ३८ ॥

इति ज्योतिष्मन्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, दिनके आठवें मुहूर्त्तका नाम अभिजित् है यह अभिजित् मुहूर्त्त ब्रह्माके वरसे सभी कार्योंमें शुभफल प्रदान करता है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

दिनमध्यगते सूर्ये मुहूर्त्ते ह्यभिजित् ( १ ) प्रभुः ।

चक्रमादाय गोविन्दः सर्वान्दोषान्निकृन्तात् ॥ ३९ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ज्योतिस्तत्त्वे च ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें और ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्यदेव पृथिवीके मध्यस्थलमें जानेसे अर्थात् आठवें मुहूर्त्तका नाम अभिजित् है इस समयमें स्वयंगोविन्द भगवान् चक्रको लेकर सब दोषोंका नाश करते हैं ॥ ३९ ॥

अथाभिजित्कथनम् ।

अभिजित्त्र बुधे शस्तं याम्यान्तु गमने तथा ।

अन्यदिग्गमने शस्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, अभिजित् मुहूर्त्त बुधवारमें प्रशस्त नहीं है दक्षिणकी यात्रा अभिजित् मुहूर्त्तमें न करना चाहिये, अन्य दिशाओंकी यात्रा अभिजित्तमयमें करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ४० ॥

अथैकाङ्कीयोगः ।

वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेपादौ लग्नमेव हि ।

—हानिरेकांके विजयी भवेत्” इति । अधुना राज्ञो यात्रादिवसात्पूर्वं सप्ताहादिनत्रये प्रथमं प्रथमयलिदानं तत्परं दिनत्रयं विजयस्नानं तत्परं सप्तमदिने ग्रहयागस्तत्परं यात्रेति । तथा वृहद्यात्रयाम्—“ यात्रा प्राक्सप्ताहाद्ब्रह्मक साहाय्यकं त्र्यहं पूर्वं त्र्यहमथ विजयस्नानं ग्रहयोगः सप्तमे दिवसे ” इति ।

( १ ) “सर्वेषां वर्णानामभिजित्संज्ञके मुहूर्त्तः स्यात्” इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

परियोज्य समं तिथ्या त्रिभिर्भागं हरेत्ततः।

शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेङ्काके विजयी भवेत् ॥ ४१ ॥ ( २ )

इति देवज्ञवहभाषाम् ।

अर्थ—अब एकाङ्की योग कहते हैं, यात्रासमयमें वृषादिको गिननेसे राशिकी जितनी संख्या हो और मेषादिसे गिनकर जो लग्नकी संख्या होय इन दोनों संख्याओंको उस समयकी तिथिकी अङ्कके साथ मिलाकर तीनसे भाग देवे शून्य बचनेसे यात्रीकी मृत्यु होती है दो बचनेसे हानि होती है और एक बचनेसे जयप्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

अथ सर्वाङ्की योगः ।

दिनं तिथिं वारयुक्तं स्वनक्षत्राङ्कयोजितम् ।

सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषे यात्रां विनिर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—अब सर्वाङ्की योग कहते हैं—भीमपराक्रममें लिखा है कि, महीनेके जिस दिनमें यात्रा करनेकी इच्छा होय उस दिनकी संख्याङ्क, तिथिके अङ्क, वारके अङ्क और जन्मसमयके नक्षत्राङ्कको मिलाकर सातसे भाग देवे भागके शेषाङ्कको देखकर यात्रा करनी चाहिये फल नीचे लिखते हैं ॥ ४२ ॥

फलम् ।

प्रथमे शोभना यात्रा द्वितीये लाभकृद्भवेत् ।

तृतीये वित्तलाभः स्याच्चतुर्थे सिद्धिरुत्तमा ॥ ४३ ॥

पञ्चमे मार्गविघ्नः स्यात्पष्ठे निधनमेव च ।

उक्तं प्रत्ययमुनिना शून्ये श्रीः सर्वतः सुखी ॥ ४४ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ—भीमपराक्रममें लिखा है कि, पूर्वोक्त अङ्क एक बचनेसे यात्रा शुभ होती है, इसी प्रकार दो बचनेसे यात्रा लाभदायिका होती है, तीन बचनेसे धनप्राप्ति होती है, चार बचनेसे कार्यासिद्धि होती है, पांच बचनेसे मार्गमें विघ्न उपस्थित होते हैं, छः बचनेसे मृत्यु होती है और शेषमें शून्यपडनेसे अर्थात् ( कुछ न बचनेसे ) यात्रामें सर्वप्रकारके सुख और लक्ष्मीकी वृद्धि होती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

( २ ) “वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेषादाहृदयस्तथा । तिथिना सह योगेन गङ्गिना भागमाहरेत् । शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेकाङ्की विजयी भवेत् । ” इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अथ घातचन्द्रमावर्णम् ।

चन्द्रभूतग्रहयमरसदिग्वाहिसागराः ।

वेदासिद्धिशिवादित्यौ घातचन्द्रः प्रकीर्तितः ॥ ४५ ॥

अर्थ-मेपराशिवाले मनुष्यको जन्मचन्द्र घातक होता है इसी प्रकार वृषराशिको पांचवाँ चन्द्रमा, मिथुन राशिको नववाँ चन्द्रमा, कर्कराशिको दूसरा चन्द्रमा, सिंहराशिको छठा चन्द्रमा, कन्या राशिको दशवाँ चन्द्रमा, तुलाराशिको तीसरा चन्द्रमा, वृश्चिक राशिको सातवाँ चन्द्रमा, धनराशिको चौथा चन्द्रमा, मकरराशिको आठवाँ चन्द्रमा कुम्भराशिको ग्यारहवाँ चन्द्रमा और मीन राशिवाले मनुष्यको बारहवाँ चन्द्रमा घातक होता है ॥ ४५ ॥

फलम् ।

घातचन्द्रे कृता यात्रा कृतोद्वाहादिमङ्गलम् ।

दुःखाय मृत्यवे वा स्याद्गार्गाचार्येण भाषितम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-घातकर्कचन्द्रमामें जो मनुष्य यात्रा वा विवाहादि माङ्गलिक कर्म करता है उसको क्लेशभोगना पडता है वा मृत्यु होती है ॥ ४६ ॥

अथाकालवृष्ट्यादी यात्रानिषेधः ।

पौषादिचतुरो मासान्वृष्टिं दृष्ट्वा न संव्रजेत् ।

यस्तु संप्रस्थितो यात्रां ब्राह्मणाननुमन्यते ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, पौषसे चैत्रतक वृष्टि होनेसे यात्रा न करनी चाहिये यदि जाना चाहै तो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यात्रा करे ॥ ४७ ॥

अथ यात्रादिगमनविधिः ।

दिगीशं हृदये ध्यात्वा गन्तव्याशामुखस्थितः ।

अन्तः समरिणे देही प्रवेशे समुपस्थिते ।

स्वस्तीति दक्षिणं पादमासनादवतारयेत् ॥ ४८ ॥

इति भागुरिः ।

अर्थ-अब यात्रा करनेकी रीति कहते हैं-जिस दिशामें यात्रा करनी हो उस दिशाके मालिक देवताका हृदयमें ध्यान करके उसी दिशामें अपना मुखकरके शरीरमें स्थित समीरण देहको प्रवेशकर जाने समय "स्वस्ति" इस प्रकारका शब्द उच्चारण करके आसनसे दहना पैर आगे रखकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

अपिच ।

ब्रजेद्दिगीशं हृदये निधाय यथेन्द्रमैन्द्र्यामपराञ्च तद्वत् ।

सुशुक्लमाल्याम्बरभृत्ररेन्द्रो विसर्जयेदक्षिणपादमादौ ॥ ४९ (\*)

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ—राजमार्त्तण्डमें लिखा है कि, जिस दिशामें यात्रा करै उस दिशाके स्वामी देवताका हृदयमें ध्यान करके सफेद वस्त्रोंको पहनकर और सफेद फूलोंकी मालाको अपने गलेमें धारण कर राजा पहिले अपने दाहिने पैरको आगे रखकर यात्रा करै ॥ ४९ ॥

अथ यात्राविधिकथनम् ।

गृहाद्गृहान्तरं गर्गः सीमः सीमान्तरं भृगुः ।

शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्गृहिः ॥ ५० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—यात्रा करनेके बाद यात्रीकी स्थिति कहते हैं, गर्गमुनिने कहा है कि, यात्रा करके एक घरसे दूसरे घरमें रह सकता है—भृगु मुनिने कहा है कि, एक सीमासे दूसरी सीमामें रहना चाहिये, भरद्वाज मुनिके मतसे एक तीरको चलावै जितनी दूर तक वह तीर जाय उसके बहिर्देशमें यात्रा करके रहना चाहिये और वसिष्ठ मुनिने कहा है कि, यात्रा करके एक ग्रामको त्यागकर दूसरे ग्राममें वास करना चाहिये ॥ ५० ॥

अथ यात्रानन्तरं निषिद्धानि ।

संत्यजेद्भोजनागारं तथा शयनमन्दिरम् ।

दूरस्थं जलमध्यस्थं शयानं व्याधिपीडितम् ।

गच्छन्तमपि यानस्थं ब्राह्मणं नाभिवादयेत् ॥ ५१ ॥

इति वराहः ।

अर्थ—वराह मुनिने कहा है कि, यात्राके बाद यदि घरमें रहना होय तो भोजनके मकानको और शयनके घरको छोड़देवे अर्थात् यात्रा करनेके बाद उक्त दोनों घरमें न जाना चाहिये अन्यान्य घरमें रहै यात्राके उपरान्त दूरस्थित, जलस्थ, शयान, रोगयुक्त अथवा यानस्थ ब्राह्मणको प्रणाम न करै ॥ ५१ ॥

(\*) यात्राविधिमाह—ब्रजेदिति । इन्द्रादिदिगीधरं हृदये निवेश्य ब्रजेत् । दिवर्षति-माह-यथेति । यथा ऐंशां पूर्वस्थां गमने इन्द्रं हृदये निवेशयेति । एवमाग्नेष्पादिषु अपरानग्न्यादींश्च दिगीशान् तद्वत् हृदये निवेशयेत्यर्थः । अतिशुक्लमाल्यवस्त्रधरो राजा प्रथमं दक्षिणं पादं विसर्जयेत् दद्यात् ।

बृहद्यात्रायाम् ।

प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त  
याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च ।  
त्रीण्येव पश्चिमादिशि क्षितिनायकानां  
प्रस्थानकेषु दिवसत्रयमुत्तरस्याम् ॥ ५२ ॥ ( \* )

इति राजमार्त्तण्डे ।

अर्थ-यात्रा करनेके बाद राजाको कितने दिन रहकर किस दिशामें जाना चाहिये अब उसको कहते हैं-राजमार्त्तण्डमें लिखाहै कि, यात्राके उपरान्त राजाको सात दिनके मध्यमें पूर्वदिशामें जाना चाहिये, इसी प्रकार दक्षिणदिशामें पांच दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये, पश्चिमादिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करे और उत्तर दिशामें तीन दिनके बाद यात्रा करनी चाहिये इस प्रकार मुनियोंने कहा है ॥ ५२ ॥

अपिच ।

यात्रां त्रिपञ्चसप्ताहात्पुनर्भद्रेण योजयेत् ।

वाञ्छितार्थफलावाप्तौ ( + ) यात्रा परिसमाप्यते ५३ ॥ ( क )

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-यदि कोई मनुष्य यात्रा करनेके बाद तीन दिन वा पांच दिन अथवा

( \* ) एतच्चायुक्तमित्याहुर्होराशास्त्रविदो बुधाः ॥ राजमार्त्तण्डोक्त " प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति " इत्यादि वचनकी व्यवस्थाको दृष्टित कहकर होराशास्त्रविद पण्डित गणोंने निर्देश करी है ।

( + ) केश्चिदिष्टफलावाप्तौ इति पाठान्तरम् ।

( क ) यात्रां कृत्वा स्थितस्य राज्ञः पुनः प्रस्थानमाह-यात्रामिति । एकरथाने त्रिपञ्चसप्ताह स्थित्वा तत्परं तस्मात्स्थानात् भद्रेण शुभलग्नेन पुनर्यात्रां योजयोदिति भैरवाचार्यो वदति । यदर्थं यात्रा कृता तत्फलप्राप्तावेव यात्रा समाप्यते सम्पूर्णा तु स्यात् न तु पुनर्भद्रेण योजयेत् । यथा बृहद्यात्रायाम् । " एकत्राप्युपितस्याग्निगौतमच्यवना जगुः । यात्रां पञ्चत्रिसप्ताह पुनर्भद्रेण योजयेत् । तच्चायुक्तमिति प्राहुर्होराशास्त्रविदो जनाः । वाञ्छितार्थफलावाप्तौ यात्रा परिसमाप्यते " तथा चाग्निः- " यात्रायाम् निर्गतो राजा ज्यह पञ्चाहमेव च । सप्ताह वा स्थितो यत्र पुनस्तस्माच्छुभे दिने । शुभे लग्ने च यातव्या यात्रा येनाप्नुवाच्छुभम् " इति । अत्र च नक्षत्रविशेषे कृतयात्रस्य स्थितिनिश्चय उक्तो बृहद्यात्रायाम् । " सीम्ये गत्वा निष्णरीद्राऽदितिंशे संप्रस्थाता चाध्यने शत्रुसंघान् । भेभे गत्वा पौरुहूत समूष्य मूले यावाच्छतुनाशाय भूयः । हस्ते गत्वा स्वातिचित्रे समूष्य शत्रुन्याख्ये प्रस्थितो वाच्यतेऽरीन् । तिम्ये पीष्णे वासभे चैरुगत्रं सीमि स्थित्वा भूतिमाप्नोति यात्रा " अम्यार्थः । मृगशिरसि यात्रां कृत्वाद्रायां स्थित्वा पुनर्गौ

सात दिन रहै तो दूसरे बार शुभलगादिमें यात्रा करनी चाहिये, किन्तु जबतक मनोरथसिद्धि न होय तबतक यात्रामङ्ग नहीं होताहै इस प्रकार भैरवाचार्यने कहाहै ॥ ५३ ॥

अन्यत्र ।

जन्मक्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमज्ञनैश्वरे ।

प्रस्थितेऽपि न गन्तव्यमत्यन्तगर्हिते दिने ॥ ५४ ॥

शति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखाहै कि, यात्रा करनेसे भी जन्मनक्षत्रमें, आठवें चन्द्रमामें, मङ्गल, रवि और शनिवारमें और अत्यन्त दूषित दिनमें न जाना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ यात्रायां मनःशुद्धिप्रशंसा ।

शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः ।

एकतस्तु मनो यातुस्तद्विशुद्धं जयावहम् ॥ ५५ ॥ (+)

अर्थ—अब यात्राकर्ममें मन-शुद्धिकी प्रशंसा करते हैं—शुभ वा अशुभके निमित्त ( तिथिनक्षत्रादि ) और मन यात्रामें इन दोनोंके समान होताहै अतएव तिथि नक्षत्रादिके शुभ होनेसे भी यदि मन अप्रसन्न होय तो यात्रा न करनी चाहिये, अतएव मनके प्रसन्न होनेसेही यात्रा शुभ होती है ॥ ५५ ॥

अपिच ।

शुभं वाप्यशुभं वापि तिथियोगादिकञ्च यत् ।

लब्ध्वा मनोबलं तत्र प्रयाणं शुभदं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

शति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, यात्रामें तिथि, नक्षत्र, वार और योगादि शुभ हो वा अशुभ हो मनका बल ग्रहणकरके यात्रा करनी चाहिये, अर्थात् तिथि नक्षत्रादिके शुभ होनेसेभी यदि इच्छा न होय तो यात्रा न करनी चाहिये ॥ ५६ ॥

—पुनर्गमनं तथा हस्तायां गत्वा शिवास्वात्थोः स्थित्वा विशाखायां पुनर्गमनं तथा पुष्यरेवतीधनिष्ठासु गर्विकरात्रं स्वसीमि स्थित्वा पुनर्यानम् । एवमन्येष्वप्युहनीयम् शति ।

(\*) मनःशुद्धिप्रशंसामाह—शुभेति । निमित्तानि फलसूचकानि शुभाशुभानि सर्वाण्येकतः एकस्मिन् पक्षे स्युः एकतोऽन्यस्मिन् पक्षे यातुः केवलं मनः फलदायकं तन्मनो विशुद्धं प्रसन्नं सत् जयावहं स्यात् । यदर्थं यात्रा कृता तदनन्तरं तदर्थं मनःप्रसादो यदि स्यात्तदा शुभम् अप्रसादे त्वशुभमित्यर्थः । तथाच बृहद्यात्रायाम् “प्रीयते न मनोऽनर्थे नासिद्धावभिनन्दति । तस्मात्सर्वात्मना यातुरुमेयं सदायतः ” इति ।



यात्रासमयेऽशुभदर्शनम् ।

शीर्षं तैलाभिषिक्तं भुजगमभिमुखं वामनं काष्ठभारं  
प्रत्राजं छिन्ननासं जटिलनखयुतं मुक्तकेशं च नम्रम् ।  
प्रस्थाने शून्यकुम्भं भयमदकुशलं रोदनं क्रोशनं च  
प्रस्थाने प्रस्थितानां यदि च न मरणं कार्यसिद्धिर्न च स्यात् ॥५७॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अथ यात्रासमयमें अशुभदर्शनादि कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यात्रासमयमें तेल लगाये हुए मनुष्य, सर्प, वामन, काष्ठका बोझा लिये मनुष्य, संन्यासी, नकटा आदमी, जटिल दीर्घनखयुक्त मुक्तकेश ( जिसको गिरके बाल खुलेहों ), नम्र ( बलहीन ) प्रस्थानमें स्थित शून्यकुम्भादिकी देखना और रोना मुनना वा पीछेसे कोई पुकारे तो उस समय यात्रा करनेसे यात्रीकी तो मृत्यु न होय किन्तु कार्य कभीभी सिद्ध नहीं होता है ॥ ५७ ॥

अपि च ।

कर्पासौषधिकृष्णधान्यलवणक्रीवास्थितैलं वसा-

पद्माङ्गारगुडाहिचर्मशकृतः केशायसव्याधिताः ।

खर्वोन्मत्तजटाधरं तृणतुपशुत्क्षामतकारयो

मुण्डभ्यङ्गविमुक्तकेशपतिताः कापायिणश्चाशुभाः ॥५८॥(+)

अर्थ-यात्रासमयमें कर्पास, औषधि, तिल, लवण, क्रीवा ( नपुंसक ) अस्थि, तेल, मांस पद्म, अङ्गार, गुड, सर्प, चमडा, विषा, केश, लोहा, रोगी, वामन, उन्मत्त, जटाधारी मनुष्य, काष्ठ, तृण, तुपार, भूँखसे कृश ( दरिद्री मनुष्य, ) तक्र ( मट्टा ), शत्रु, शिरको भुँडाए हुए मनुष्य, तेल लगाए हुए मनुष्य, जिस मनुष्यके शिरके बाल खुले हैं वह मनुष्य, पतित, कपड़े बर्छाकी पहिने हुए मनुष्यया यदि देवयोगसे दर्शन होजाय तो उस यात्रामें अमङ्गल होताहै ॥५८॥

+ अमङ्गलद्रव्याण्याह-कर्पासैति । औषध द्रव्यप्रयोगः, क्रीवा, नपुंसक, वसा भेदः, अहि, सर्पः, शकृत्विषा, आयसो रौहिभिरारः बुडाराद्यद्य वा व्याधितो रोगाभिभूतः उन्मत्तो वातुलः जटी जटायुक्तः पुष्पः । जटैति पाठे श्रोत्रादीन्द्रियहीनो जट इति । इन्धन काष्ठ, हृत्क्षामः कृशः, दग्धि इत्यर्थः । तक्र मथितम्, अरिः शत्रुः, मुण्डी मुण्डितमुण्डः, अभ्यङ्गरतेलादिना कृताभ्यङ्गः, विमुक्तकेशोऽवढोऽशो जनः, कापायिणः कापाययत्रा एते अनिष्टप्रदाः ॥ इति ।

अथ क्षुतनिषेधः ।

सर्वतः क्षुतमशोभनं स्मृतं गोक्षुतं मरणमेव करोति ।

केचिदाहुरफलं बलात्कृतं वृद्धपीनसितबालकृतञ्च ॥५९॥ ❀

अर्थ—सभी कार्योमें छींकसे अमङ्गल होता है, किन्तु यात्रादि कार्यमें गौकी छींक मृत्युजनक होती है । किसी २ आचार्यने कहाहै कि, जो तुनका नाकमें डालकर छींके वह छींक, वृद्धकी छींक, रोगीकी छींक, और बालककी छींकसे शुभाशुभ कुछभी फल नहीं होता है ॥ ५९ ॥

अथ क्षुतादिफलम् ।

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं

याम्यामग्निभयं सुरद्विपि कलिर्लाभः समुद्रालये ।

वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्यांगना चोत्तरे

ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ॥ ६० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ग्रन्थकारने खञ्जन देखनेका फलाफल मनुष्यकरके ज्येष्ठी (टिक्कटिकी) और क्षुतका ( छींकका ) फल उसी प्रकारसे कहा है, यथा ऊर्ध्वदिशामें खञ्जनको देखनेसे धन मिलता है, इसी प्रकार पूर्वदिशामें देखनेसे कार्य सिद्ध होताहै, आग्निकोणमें भय, दक्षिणमें अग्निभय, नैर्ऋतमें कलह, पश्चिममें लाभ, वायुकोणमें श्रेष्ठवस्त्र, गन्ध और सलिलादिकी प्राप्ति, उत्तरमें उत्तमा स्त्रीका लाभ और ईशानकोणमें खञ्जनको देखनेसे मृत्यु होती है ॥ ६० ॥

अपिच ।

ज्येष्ठीरुते क्षुतेऽप्येवमूचुः केचिच्च कोविदाः ॥ ६१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—कोई पण्डित टिक्कटिकीके रुदनमें छींकहीके सदृश फल कहते हैं ॥६१॥

(\*) क्षुतस्य फलमाह—सर्वत इति । सर्वकार्येषु प्रवेशेऽपि क्षुतमशोभनं गोक्षुतञ्च मरणमेव करोति । तथा बृहद्यात्रायाम्—“ प्रारम्भथानसमयेषु तथा प्रवेशे शेषं क्षुतं न च शुभं क्वचिदप्युशन्ति” केचित्तु बलात्कृतं नासायां तृणादिना कृतं क्षुतं वृद्धकृत पीनसितः श्लेष्मरोगार्त्तस्तेन कृतं शिशुकृतञ्च क्षुतमफलं फलशून्यमाहुः । तत्र बहूनां मतमिति ।

विष्णोरन्त्याधिकृत्य ।

नामसंकीर्तनं नित्यं क्षुतप्रखलितादिषु ।

वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वत्र नात्र संशयः ॥ ६२ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, छींकादि दोषशान्तिके निमित्त विष्णुका नाम सम्यक् प्रकारसे कीर्तन करनेसे दोषका नाश हो जाता है ॥ ६२ ॥

यात्रासमये परकीयस्वीयस्त्रीपुरुषयोस्ताडनादिनिषेधः ।

स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च ।

ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ६३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य यात्रासमयमें अपनी स्त्री वा पराई स्त्री अथवा पुरुषको मारकर यात्रा करता है उसकी शीघ्र मृत्यु होती है ६३ अपिच ।

यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निषेवते ।

रोगार्तः क्षीणकायश्च स निवर्त्तते वा न वा ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, जो मनुष्य यात्रासमयमें स्त्रीसेवन करके जाता है वह रोगसे युक्त और क्षीणकलेवर होकर फिर नहीं आता है ॥ ६४ ॥ अन्यच्च ।

कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते यः प्रतिष्ठते ।

नासौ प्रतिनिवर्त्तते दुःखञ्च प्राप्नुयान्नरः ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-रात्रिमें स्त्रीसंभोग करके जो मनुष्य प्रातः कालमें यात्रा करता है वह मनुष्य अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगकर फिर नहीं आता है इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

कटुतैलगुडक्षीरपक्वमांसाशन तथा ।

भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्ब्रूयाधितः स निवर्त्तते ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कटुरस, तैल, गुड, दूध और पक्वामया

मांसको यात्रा समय न खावे, जो मनुष्य इन चीजोंको खाकर यात्रा करता है वह रोगी होकर उस स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाता है ॥ ६६ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

मार्जारयुद्धे कलहे प्रवृत्ते रजस्वलास्त्रिजिननीनिषेधे ॥ ( क )

अकालवृष्टौ मृतसूतके च प्रस्थानयात्रा मरणं ध्रुवञ्च ॥ ६७ ॥

अर्थ-बिल्लीके साथ बिल्लीकी लडाईं होनेसे, कलह करके, अपनी रजस्वला स्त्रीको घरमें रखकर, माताके निषेध करनेपर वा अकालवृष्टि ( ख ) होनेसे और मरणाशौच वा जननाशौचमें जो मनुष्य यात्रा वा प्रस्थान ( दूरगमन ) करे तो उसकी निश्चयही मृत्यु होती है अथवा मृत्युके समान रोगादि होते हैं ॥ ६७ ॥

आपेच ।

वामे श्वाशिवाकुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः ।

नकुलः सर्वतो भद्रो न सर्पस्तु कदाचन ॥ ६८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है, कि, यात्रासमय वामभागमें श्व ( मृत-देह ) शिवा ( जम्बूक ) और पूर्णकुम्भके देखनेसे शुभफल होता है, दक्षिण-भागमें गो, मृग और ब्राह्मणके दर्शन होनेसे शुभफल होता है, नकुलका ( निर-लाका ) जिस दिशामें दर्शन हो उसमें शुभफल होता है और सर्पके देखनेसे अमङ्गल होता है ॥ ६८ ॥

यात्राकाले शुभदर्शनम् ।

धेनुर्वत्सप्रयुक्ता वृषगजतुरगा दक्षिणावर्त्तवह्नि-

दिव्यस्त्री पूर्णकुम्भा द्विजनृपगणिकाः पुष्पमालाः पताकाः ।

सद्योमांसं घृतं वा दधि मधु रजतं काञ्चनं शुक्रधान्यं

दृष्ट्वा श्रुत्वा पठित्वा फलमिह लभते मानवो गन्तुकामः ६९ (+)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-यात्रासमयमें जिनके देखनेसे मंगल होता है अब उनको कहते हैं-ज्यो-

( क ) "कुटुम्बकलहो गृहज्वलनमार्त्तव योपिता विहासमरं हृतं स्वलितमम्बरादे-स्तथा । दुरुक्तमातिकोपतो महिषयोश्च युद्ध भवेत्प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छिन्नये" इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

( ख ) अनाश्रुति विवाहमें कालशुद्धिप्रकरणमें लिखी है ।

\* "तृणोदकाब्धेषु वनेषु मत्ताः क्रीडन्तु गावः सवृषाः सवत्साः । क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयेविशुक्ताः " इति । ज्योतिस्तत्त्वधृतमन्त्रं यात्राकाले शृणुयात् ।

तिःसारसंग्रहमें लिखाहै, कि, बछरासहित गाय, बैल, हाथी, घोडा, दाहिनीतर्फे  
अग्नि, उचमा स्त्री, पूर्णकुम्भ, द्विजाति, राजा, गणिका, फूलोंकी माला, पताका,  
नयामांस, घृत, दही, मधु, चाँदी, सोना, शुक्लधान्य ( गोधूम ) इन सब द्रव्योंके  
देखनेसे वा इनका शब्द सुननेसे अथवा इन शब्दोंका उच्चारण करनेसे यात्रीका  
मनोरथ सिद्ध होताहै ॥ ६९ ॥

अथ यात्रासमये माङ्गल्यद्रव्यदर्शनस्पर्शनादि  
शुभफलानि ।

सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि बद्धैकपश्चामिषपूर्णकुम्भाः ।

उष्णीपभृङ्गारनृवर्द्धमानपुंयानवीणातपवारणानि ॥ ७० ॥ ( क )

दधिमधुघृतरोचनाकुमार्यो ध्वजकनकाम्बुजभद्रपीठशङ्खाः ।

सितवृषकुसुमायुधाम्बराणि मीनद्विजगणिकासजनाश्च चारुवेपाः ७१ख

ज्वलितशिखिफलाक्षतेक्षुभक्ष्यद्विरद्वराङ्कुशचामरायुधानि ।

मरकतकुरुविन्दपद्मरागस्फटिकमणिप्रमुखाश्च रत्नभेदाः ॥ ७२ ॥ ( ग )

स्वयमथ रचितान्ययत्नतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि ।

स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणदृशालभने न युतेरुपास्य ७३घ

( क ) यात्रायां मङ्गलद्रव्याणि चतुर्भिः श्लोकै राह सिद्धार्थकेति । सिद्धार्थकाः श्वेत-  
सर्पपाः, आदर्शां दर्पण, पयो रुध, जलमिति धे चित्तत्र पूर्णकुम्भस्यापि वक्ष्यमाणत्वात् ।  
बद्ध एक पशु, आमिष मांस, उष्णीपः मस्तकवेष्टनवस्त्र, भृङ्गारो जलपात्रविशेषः,  
नृवर्द्धमानः ना पुरुष' वर्द्धमान समृद्ध्या यशसा चोभयतः, पुयान नृयान दोलादि,  
आतपवारण छत्रमिति ।

(ख) कुमार्य कन्यका', भद्रपीठ भद्रासनम्, अम्बर श्वेतवस्त्र, गणिका वेश्या इत्यर्थः ।

( ग ) ज्वलिताग्निश्चारुफलानि । अज्ञता यवाः इत्युदण्डः भक्ष्यद्रव्य उपदेशादि,  
द्विरद्वरो हस्तिश्रेष्ठ', मृदिति पाठे प्रशस्तमृत्तिकेत्यर्थ । मरकतकुरुविन्दी प्रस्तरविशेषो  
पद्मरागो मणिविशेषः ।

( घ ) एतानि कथितान्युक्तानि मङ्गलद्रव्याणि यदि स्वय रचितानि अयत्नतोऽवस्मा-  
द्भितानि एतेषां नामानि यदि कथितानि यदा यस्य भवन्ति स राजा ततस्तदा कानि-  
चिन्मङ्गलानि सिद्धार्थकादीनि ग्रहणेनोपास्य स्पृष्ट्वा कानिचिद्गणिकादीनि दृशा चक्षुषो-  
पास्य दृष्ट्वा कानिचित्फलादीनि आलभनेनोपलब्धास्त्रिकारोपास्य स्वीकृत्य कानिचिद्  
वीणागीतादीनि श्रुतेन श्रवणेनोपास्य श्रुत्वा सकलां धरित्रीं जयति ॥ इति ।

अर्थ-अब यात्रासमयमें मङ्गलकारक द्रव्यके देखनेसे और छूनेसे जो फल होता है उसको कहते हैं-श्वेतसर्पप, दर्पण, ( सीसा ) दूध, ( मतान्तरमें जल ) अजून, बँधाभया एक पशु, मांस, पूर्णकुम्भ, उष्णीप ( शिरोवेष्टनवस्त्रविशेष ) भृङ्गार ( जलपात्रविशेष गडुआ ) समृद्ध और यज्ञस्वी मनुष्य, दौलादि, वीणा, छत्र, दधि, मधु, घृत, रोचना ( गोररोचना वा हरिद्रा ) कुमारी, ध्वजा, कनक, पत्र, भद्रासन, पीठ, शङ्ख, सफेद घोडा, कुसुम, आयुध, शुक्लवस्त्र, मत्स्य ( मछली ) द्विज, वैश्या, जासजन और सुवेपधारी मनुष्य, ज्वलिताग्नि, चारुफल, यव, इक्षुदण्ड, भक्ष्य द्रव्य, श्रेष्ठहाथी, अंकुश, चामर, शस्त्र, मरकत, कुरुविन्द ( प्रस्तरविशेष ) पद्मराग ( मणिविशेष ) और स्फटिकादि मणि यह सब माङ्गल्य द्रव्य यात्रासमयमें निकट ( समीप ) होय अथवा अचानक उपस्थित होजाय तब राजा श्वेतसर्पपादि द्रव्यविशेषको ग्रहणकरै वेद्यादिको देखै फलादिको छूवै और वीणादिको श्रवण ( सुन ) करके यात्राकरनेसे समस्त पृथिवीको जीतसका है परन्तु चिरप्रवासी ( बहुत दिनोंकी ) यात्रामे सूर्य शुद्ध होना चाहिये उसको स्थानके अमावसे नीचे लिखते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ( x )

अथ स्वप्रदर्शनफलम् ।

यान्यत्र मङ्गलामङ्गलानि निर्गच्छतां प्रदिष्टानि ।

स्वप्नेष्वपि तानि शुभाशुभानि विष्टानुलेपनं धन्यम् ॥ ७४ ॥ ( १ )

अर्थ-अब स्वप्नदेखनेका फल कहते हैं-यात्राविषयमें जो सब माङ्गल्यामाङ्गल्य द्रव्य कहे हैं स्वप्नमेंभी उन्ही सब द्रव्योंके देखनेसे और छूनेसे तिसि प्रकार फल होता है किन्तु स्वप्नमें विष्टानुलेपन करनेसे धनप्राप्ति होती है ॥ ७४ ॥

( x ) “ चिरप्रवासयात्राया गृहे कर्णस्य बेधने चूडाकृतौ प्रतिष्ठायाम्भानुशुद्धिविधीयते इति व्यासवचनम् ।

( १ ) अत्र दृष्टस्य स्वप्नस्य शुभाशुभफलमाह-यानीति । निर्गच्छता जनानामत्र यात्राया मङ्गलान्यमङ्गलानि द्रव्याणि यानि प्रदिष्टानि कथितानि तानि स्वप्नेऽपि दृष्टानि शुभाशुभानि । किन्तु स्वप्ने विष्टानुलेपनं धन्यं धनप्रवृत्तिमिति सक्षेपः । विस्तरश्च बृहद्यात्रायां दृष्टव्यः । तथा “ सर्वाणि शुक्लानि सुशोभनानि कार्पासभस्मास्थिकपालवर्जम् । सर्वाणि कुष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवाद्भ्रजवर्जितानि ” अत्र च स्वप्नदर्शने पुनर्न शयनं कार्यम् । दुःस्वप्नदर्शने तु पुनःशयनं विहितमेव । यथा बृहद्यात्रायाम्- “ दृष्टं स्वप्नं शोभनं नेह सुप्त्यात्पश्चाद्दृष्टो यश्च पाकं विधत्ते। शसेद्दृष्टं तज्ज्ञसाधुद्विजेभ्यस्ते चाशीर्षिः पूजयेत्पुनरेन्द्रम् । भूयः प्रस्वपनं न चास्य कथनं गङ्गाभिषेको जपः स्मृतिः स्वस्त्ययनं निवेदनमपि प्रातर्गवाश्वत्थयोः । विप्रेभ्यश्च तिलाग्रहमेतुसुमेः पूजा यथाशक्तितः पुण्यं भारतकीर्तनञ्च कथितं दुःस्वप्नविच्छिन्नस्ये ” आर्षिकं च विस्तरमयादुपेक्षितम् ।

अथ यात्रासमये वायोः शुभा शुभलक्षणम् ।

अनुलोमगते प्रदक्षिणे सुरभौ देहसुखेऽनिले गतः । ( २ )

तिमिराणि गभस्तिमानिव प्रसभं हन्ति बलानि विद्विषाम् ॥ ७५ ॥

अर्थ-अथ यात्रासमयमें वायुके शुभाशुभलक्षण कहते हैं-यात्रासमयमें यदि सुगन्धियुक्त अनुकूल वायु चले तो यात्रीको सुख होता है जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे समस्त अन्धकारका नाश होजाता है तिसी प्रकार उक्तवायुमें यात्रा करनेसे राजा शत्रुओंका नाश करता है ॥ ७५ ॥

आपिच ।

बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः ।

महोत्सवे च मांगल्ये तत्र स्त्रीणां ध्वनिः शुभः ॥ ७६ ॥

इति मत्स्यसूक्ते ।

अर्थ-मत्स्यसूक्तमें लिखा है कि, बलिकर्ममें, यात्रामें नवीन घरमें प्रवेश-समयमें, महोत्सवमें और मांगल्यकर्ममें स्त्रियोंकी ध्वनि शुभ होती है ॥ ७६ ॥

इति यात्राप्रकरणम् ।

इति वंशावरेल्यांतर्वर्तिकान्यकुलभूषणभारद्वाजगोत्रात्रिपाठनुपनाम-

केन पण्डितवैकेलालात्मजेन श्यामसुन्दरशर्मणा सम्पादिते

भाषाटीकयाविभूषिते ज्योतिषतत्त्वसुधारणवे यात्रा-

प्रकरणं नाम पष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

( २ ) वायोः शुभफलमाह-अनुलोमेति । गन्तव्यदिगनुसूलमती सुगन्धे शरीरसुख-जनके वायो गतः पुमान् शत्रूणां बलानि प्रसभ हठात् हन्ति सूष्योऽन्धकार नित्यमिव । एतेन प्रतिकूलोऽप्रदक्षिणः दुर्गन्धो ज्ञान्ज्ञावायुर्नेष्ट इति ।

## सप्तमस्तरङ्गः ७.

—ॐ—  
अथ नौकाघटनम् ।

ज्ञभहरिधटलमे देवराड्युग्विशाखा ।  
त्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ।  
सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे  
तरणघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ ॥ १ ॥ ( अ )

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अथ नौका जडवानेका मुहूर्त्त कहते हैं—दीपिकामें लिखा है कि, मिथुन कन्या सिंह और तुलालग्रमें, ज्येष्ठा, मूल, विशाखा, आर्द्रा, रोहिणी, मरणी, कृत्तिका, आश्लेषा, और रेवती नक्षत्रमें, शुभकरण, शुभतिथि और शुभयोगमें, शुक्र, बृहस्पति और राविवारमें चन्द्रमा और ताराके शुद्ध होनेसे नौका जडवाना चाहिये किसी २ आचार्यका मत है कि, “ याम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेषु ” इसको पढकर उपरोक्त नक्षत्रोंके तिवाय अन्य नक्षत्रोंमें नौका बनवाना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यच्च ।

अश्विनीरेवतीहस्तशतभं मृगशिरास्तथा ।  
अनुराधा तथा स्वातिश्चित्रा चैव प्रशस्यते ॥ २ ॥  
शुक्रेन्दुगुरुवारेषु रिक्तावर्जं तिथौ पुनः ।  
पापाहञ्च परित्यज्य नौकाघटनमुत्तमम् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अश्विनी, रेवती, हस्त, शतभिषा, मृगशिर, अनुराधा, स्वाति और चित्रानक्षत्रमें, शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें रिक्ताभिन्न तिथिमें, मासदग्धादिमुक्त पापाहको त्यागकरके नौका बनवाना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

( अ ) नौकाघटनमाह—ज्ञभेति । ज्ञभं मिथुनं कन्या च हरि सिंहः घटस्तुलालमे देवराड्युग्वं ज्येष्ठांमूले विशाखा त्रिनयनमार्द्रा रोहिणीयान्यद्वन्द्वं मरणी कृत्तिका सर्पः आश्लेषा अन्त्यं रेवती एतेषु तरणघटनं नौकानिर्माणमिष्टम् । शेषं सुगमम् । इति । केचित्तु याम्यद्वन्द्वसर्पान्त्यभेष्विति पाठं कृत्वा ज्येष्ठादिसर्पान्तनक्षत्रेतरेषु तरणघटनं वदन्ति ।



अथ घटनस्थानान्नौकाचालनम् ।

शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु ।

चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु ॥ ४ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ नौका चलानेका मुहूर्त्त कहतेहैं दीपिकामें लिखाहै कि,सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें, श्रवण, धनिष्ठा, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा, अश्विनी और हस्त नक्षत्रमें, शुभ तिथिमें और शुभ चन्द्रमामें नौकाको चलाना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ नौकायात्रा ।

अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वा मैत्रधनाच्युतभेषु सुलग्ने ।

तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारं ॥ ५ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अथ नौकामें चढकर यात्रा करनेका मुहूर्त्त कहते हैं-दीपिकामें लिखाहै कि, अश्विनी, हस्त, पुष्य, मृगशिर, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, अनुराधा, धनिष्ठा और श्रवण, नक्षत्रमें, शुभलग्नमें, शुभतारामें, शुभयोगमें, शुभतिथिमें शुभवारमें और गोचरमें चन्द्रमाके शुद्ध होनेसे नौकामें चढकर यात्रा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ वाणिज्यकरणम् ।

क्षिप्राणि यानि ऋक्षाणि चराणि च मृद्वनि च ।

वाणिज्ये तानि शस्यन्ते तिथिरिक्तां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-वाणिज्य करनेका मुहूर्त्त कहतेहैं-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, पुष्य, अश्विनी, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें रिक्ताभिन्न तिथिमें वाणिज्यकर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ कुसीदकरणम् ।

प्रतिपद्वादशीपष्ठी नक्षत्राणि ध्रुवाणि च ॥

कुसीदेवर्जनीयानि दिनं सूर्यसुतस्य च ॥ ७ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-अथ ऋण देनेका ( कर्ज देनेका ) मुहूर्त्त कहते हैं-विष्णुधर्मोत्तरमें लिखाहै कि, प्रतिपदा, द्वादशी और पष्ठी तिथिकी छोडकर अन्य तिथिमें,

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें और शनिवारको छोड़कर अन्यवारोंमें कर्ज देना चाहिये ॥ ७ ॥

अथ नक्षत्रविशेषे रोगकथनम् ।

अश्विन्यां दशरात्रेण ज्वरितः कल्यतामियात् ।

भरण्यां संशयप्राप्तिरनले दशभिर्दिनैः ॥ ८ ॥

रोहिण्यां पञ्चदिवसैश्चतुर्भिर्मृगशीर्षके ।

आर्द्रायां संशयः पञ्चदशाहश्च पुनर्वसौ ॥ ९ ॥

पुष्ये च पञ्चदिवसैर्मृत्युराश्लेषया ध्रुवम् ।

मघायां सप्तभिः पूर्वफाल्गुन्यामेकवासरम् ॥ १० ॥

सप्ताह उत्तरफाल्गुन्यां हस्तायां पञ्चभिर्दिनैः ।

चित्रायां प्राणसन्देहः स्वात्यां चैव न जीवति ॥ ११ ॥

विशाखायां सप्तदिनैर्मित्रे च दशभिर्दिनैः ।

ज्येष्ठायाञ्च ध्रुवं मृत्युर्मूले कलयं चतुर्दिनम् ॥ १२ ॥

पूर्वाषाढासु सन्देहो विश्वे पञ्चदिनै पटुः ।

श्रवणे पंचभिः कल्यो धनिष्ठे प्राणसंशयः ॥ १३ ॥

शताख्ये प्राणसन्देहः पूर्वाभाद्रपदे तथा ।

संशयश्चात्तराभाद्रे रेवत्यां पंचवासरैः ॥ १४ ॥

इति ज्योतिःसारे माण्डव्यः ।

अर्थ—अब नक्षत्रोंमें रोगकी आयु कहते हैं—अश्विनी नक्षत्रमें ज्वर होनेसे दश-रात्रितक पीडा भोगनी पढती है, इसी प्रकार भरणोंमें मृत्यु होती है, कृत्तिकामें दशदिनतक पीडा भोगनी होती है, रोहिणीमें पांचदिन, मृगशिरमें चारदिन, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसुमें पन्द्रहदिन, पुष्यमें पांचदिन, आश्लेषामें जीवनतक रोग रहताहै, मघामें सातदिन, पूर्वाफाल्गुनीमें एकरात्रि, उत्तराफाल्गुनीमें सात दिन, हस्तमें पांच दिन, चित्रामें प्राणशेषपर्यन्त, स्वातिमें मृत्यु, विशाखामें सात दिन, अनुराधामें दश दिन, ज्येष्ठामें मृत्यु, मूलमें चार दिन, पूर्वाषाढामें मृत्यु, उत्तराषाढामें पांच दिन, श्रवणमें पांच दिन, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभा-द्रपदा और उत्तराभाद्रपदामें मृत्यु और रेवतीनक्षत्रमें जिस मनुष्यको ज्वर होय उसको पांचदिनतक पीडा भोगनी होती है ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

आविच ।

कृत्तिकायां यदा कश्चिद्व्याधिरुत्पद्यते ध्रुवम् ।  
 नवरात्रं भवेत्पीडा रोहिण्याञ्च त्रिरात्रकम् ॥ १५ ॥  
 पञ्चरात्रं मृगशिरसि चार्द्रायां सप्तरात्रकम् ।  
 पुनर्वसौ पञ्चरात्रं पुष्यायाञ्च तथैव च ॥ १६ ॥  
 आश्लेषायां नवरात्रं मासमेकं मघासु च ।  
 द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् ॥ १७ ॥  
 हस्तायां सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् ।  
 मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखायाञ्च विंशतिः ॥ १८ ॥  
 मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् ।  
 मूलेन जायते मोक्षः पूर्वापाठे त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥  
 उत्तरापाठे विंशत्या द्वौ मासौ श्रवणासु च ।  
 धनिष्ठायामर्द्धमासो वारुण्यां च दशाहकम् ॥ २० ॥  
 न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरायां त्रिपञ्चकम् ।  
 रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनी ॥ २१ ॥  
 प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः ।  
 कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः ॥  
 नक्षत्रं प्रतिकर्तव्यं नक्षत्रमथ जानता ॥ २२ ॥ (क-)

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, कृत्तिकानक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे

(क) "कृत्तिकासु यदा व्याधिर्नृणां सप्रतिपादितः । नवरात्रं भवेत्पीडा त्रिरात्रं रोहिणीसु च । मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः । पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रं विधीयते । दशरात्रं तथाश्लेषे मासमेकं मघासु च । द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम् । हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः । मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् । मूलेन जायते मोक्षः पूर्वापाठे त्रिपञ्चकम् । उत्तरे विंशतिर्ज्ञेया द्वौ मासौ श्रवणे तथा । धनिष्ठायामर्द्धमासं वारुण्याञ्च दशाहकम् । न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम् । रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनी । प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः । कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः । नक्षत्रं प्रतिकर्तव्यं नक्षत्रमथ जानता ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वप्रवृत्तकौशिकवचनम् ।

नौ रात्रितकपीडा होती है, इसी प्रकार रोहिणीमें तीन रात्रितक, मृगशिरमें पांचरात्रि, आर्द्रामें सात रात्रि पुनर्वसु और पुष्यमें पांचरात्रि, आश्लेषामें नौ रात्रि, मघामें एकमास, पूर्वाफाल्गुनीमें दो मास, उत्तराफाल्गुनीमें पन्द्रहदिन, हस्तमें सातदिन, चित्रामें अर्द्धमास, स्वातिमें दोमास, विशाखामें वीसरात्रि, अनुराधामें दशदिन, ज्येष्ठामें अर्द्धमास, मूलमें मृत्यु, पूर्वाषाढामें पन्द्रह दिन, उत्तराषाढामें बीस दिन श्रवणमें दो महिने, धनिष्ठामें अर्द्धमास, शतभिषामें दशदिन, रेवतीमें बीसदिन, अश्विनीमें एक दिन, और भरणी नक्षत्रमें रोग उत्पन्न होनेसे मृत्यु होती है इसमें कुछ संशय नहीं है इस प्रकार कौशिकने कहा है. नक्षत्रके जाननेवाले मनुष्यको इसके प्रति विधान करना चाहिये ॥ १५-२२ ॥

अथ प्रतीकारा भीमपराक्रमे ।

कृत्तिकायां पिष्टकच्छागमुखे दध्युदकञ्च देयम् ।  
 रोहिण्यां पिष्टकगोमुखे शाकम् । मृगशिरसि पिष्टक  
 मृगमुखे मापो देयः । आर्द्रायां पिष्टकगोमुखे रक्तम् ।  
 पुनर्वसौ पिष्टकवराहमुखे पटोलम् । पुष्ये पिष्टकच्छाग  
 मुखे पायसम् । आश्लेषायां पिष्टकवराहमुखे घृतम् ।  
 मघायां पिष्टकवानरमुखे तिलाः । पूर्वाफाल्गुन्यां पिष्टक  
 वानरमुखे मुद्गपूपिका । उत्तराफाल्गुन्यां पिष्टकबलीवर्द्ध  
 मुखे शाकम् । हस्तायां पिष्टकमहिषमुखे पुष्करमूलम् ।  
 चित्रायां पिष्टकव्याघ्रमुखे तगरपुष्पम् । स्वात्यां पिष्टक  
 मारजारमुखे तिलाः । विशाखायां पिष्टकव्याघ्रमुखे गुड  
 भक्तम् । अनुराधायां पिष्टकमृगमुखे कुलत्थम् । ज्येष्ठायां  
 पिष्टकमूपिकमुखे धान्याकम् । मूले पिष्टकमारजारमुखे  
 तिलाः । पूर्वाषाढायां पिष्टककुम्भीरमुखे वचा । उत्तराषा  
 ढायां पिष्टकवृषमुखे शाकभक्तम् । श्रवणायां पिष्टकमहि  
 षीमुखे रक्तम् । धनिष्ठायां पिष्टकनरमुखे शाकभक्तम् । शत  
 भिषायां पिष्टकवानरमुखे पिप्पली । पूर्वाभाद्रपदायां पिष्ट  
 कनरमुखे सिततण्डुलाः । उत्तराभाद्रपदायामप्येवं रेवत्यां

पिष्टकवानरमुखे गुडभक्तम् । अश्विनीभरण्योरप्येवम् ।  
एवं नक्षत्रदोहदे कृते ज्वरा विनश्यन्ति । एतद्विधानन्तु  
प्रथमं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सदीपमाल्यपताकाभिः  
प्रपूज्य कार्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-अब नक्षत्रमें ज्वरकी पीडा भोगनेका प्रतीकार। कहते हैं-भीमपराक्रममें लिखा है कि, कृत्तिका नक्षत्रमें ज्वर होनेसे आटेकी एक बकरी बनाकर गन्धपुष्पादिसे उसकी पूजा करनी चाहिये फिर मुखमें दही और पानीको डाले इस प्रकार करनेसे ज्वर दूर हो जाता है, इसी प्रकार रोहिण्यादिनक्षत्रमें ज्वर होनेसे आटेकी गौ और मृगादिको बनाकर पूजन करके उसके मुखमें शाक और मापादिको देनेसे ज्वर दूर होता है, संस्कृत अतिसरल है अतएव सबका अनुवाद नहीं करते हैं ॥ २३ ॥

अथ विरुद्धनक्षत्रादौ रोगकथनम् ।

उरगशतभिपार्द्राज्येष्टयाम्यत्रिपूर्वा- ( × )

स्वपि च रविजभौमे चार्कवारेण योगे ।

यदि भवति चतुर्था द्वादशी भूतपष्टी

निगदित इह जन्तोर्नाशकालः प्रविष्टः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-विरुद्धनक्षत्रादिमें रोग उत्पन्न होनेसे उसका फल कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा ( मतान्तरसे स्वाति और मूल ) भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा इन सब नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र शनि, मंगल वा रविवारमें होनेसे यदि चतुर्था, द्वादशी, चतुर्दशी, वा पष्ठी तिथि होय और उसमें जो रोग उत्पन्न होय तो उक्त रोगीकी निश्चयही मृत्यु होती है ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

आर्द्राश्लेषास्वातिशाक्रे यस्य रोगो भवेद्भ्रुवम् ।

धन्वन्तरेरेष्यसाध्यो सद्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥ २५ ॥ (क)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है कि, आर्द्रा, आश्लेषा स्वाति और ज्येष्ठा नक्षत्रके

( × ) स्वातिमूलात्रिपूर्वा इति जातकचन्द्रिकायां पाठः ।

( क ) आर्द्रादिषु योगे साति मृत्युमाह-आर्द्रेति । आर्द्रादिषु यस्य रोगः भवेत्स सद्यो म्रियत इत्यर्थः ।

अन्यतम नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग होय उसको धन्वन्तरिभी चिकित्सा करके नहीं जिला सकते हैं ॥ २५ ॥

अपरश्च ।

शिवशतभिषधात्स्वातिमूलेन्द्रनागे ( ख )

रविशानिकुजवारे भूतपष्टीनवम्याम् ।

इह हि मरणयोगे यो ज्वरेणाभिभूतः

पशुपतिसदृशश्चेत्सोऽपि मृत्युं प्रयाति ॥ २६ ॥ ( ग )

इति दीपिकाटीकायाम् ।

अर्थ—दीपिकाके टीकामें लिखा है कि आर्द्रा, शतभिषा, रोहिणी, स्वाति, मूल, ज्येष्ठा और आश्लेषा नक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र, रवि, शनि वा मङ्गलवारके अन्यतम वार और चतुर्दशी, पष्टी वा नवमीके अन्यतम तिथि यदि एक समयमें होय और उसमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो रोगी शिवके समान होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

अपिच ।

सप्ताहं वारदोषे स्याद्विग्रुणं तिथिवारयोः ।

तिथिनक्षत्रयोर्मासं त्रिभिर्युक्तो न जीवति ॥ २७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, वारदोषमें रोग सात दिन रहता है, तिथि और वार दुष्ट होनेसे चौथे दिनतक रोगकी पीडा भोगनी पडती है, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेसे व्याधि एक मासतक रहती है और वार, तिथि और नक्षत्र दूषित होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है ॥ २७ ॥

अन्यच्च ।

आधाने जन्मनक्षत्रे निधने प्रत्यरो तथा ।

व्याधिरुत्पद्यते यस्य क्लेशस्तस्य भवेद्भ्रुवम् ॥ २८ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ—जातकचन्द्रिकामें लिखा है कि, आधाननक्षत्रमें, जन्मनक्षत्रमें और जन्मनक्ष-

( ख ) स्वातिमूलाश्रिपूर्वा इति ज्योतिःसारे पाठः ।

( ग ) पशुपतिसमयोगी इति जातकचन्द्रिकायां पाठः ।

सप्त वधने प्रथमपक्षे उरगशतभिषायां । इति पाठः ।

त्रसे गिनकर सातवें वा पांचवें नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होय तो उसको अत्यन्त क्लेश भोगना पडता है ॥ २८ ॥

अपरश्च ।

जन्मभे निधनक्षे वा प्रत्यरौ च विपत्करे ।

यदि व्याधिर्भवेदब्दं क्लेशो वा मरणं भवेत् ॥ २९ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ-ज्योतिःसारमें लिखा है कि, जिस मनुष्यके जन्मतारामें, निधनतारामें प्रत्यरितारामें और विपत्तारामें व्याधि उत्पन्न होय तो उस मनुष्यको एक वर्ष-तक क्लेश भोगना पडता है वा मृत्यु होती है ॥ २९ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

जन्माधाने निधनभे प्रत्यरौ च विपत्करे ।

यदि व्याधिः समुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय च ॥ ३० ॥

इति हारीतः ।

अर्थ-हारीतने कहाहै कि, जन्म, आधान, निधन ( सप्तमतारा ) प्रत्यरि ( पञ्चमतारा ) और विपत् ( तीसरे ) तारामें रोग उत्पन्न होनेसे अत्यन्त क्लेश होता है और मृत्युभी होजाती है ॥ ३० ॥

अथ सर्पदेशे नक्षत्रवशेन मरणम् ।

मूलमघाद्राश्लेषाभरणीविशाग्निदैवतेषु नरः ।

गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब सर्पके काटेहुए मनुष्यकी नक्षत्रसे मृत्यु कहते हैं-ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, विशाखा और कृत्तिका नक्षत्रमें यदि किसी मनुष्यको सर्प काटे तब वह गरुडके प्रिय होनेसेभी यमालयको पाता है ॥ ३१ ॥

अपिच ।

मूलमघाद्राश्लेषाभरणीवसुदैवभेषु नरः ।

गरुडप्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन ॥ ३२ ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-दीपिकामें लिखा है; कि, मूल, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, वा धनिष्ठा नक्षत्रमें यदि किसी मनुष्यको सर्प काटे तो वह गरुडके प्रिय होनेसेभी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

अथ मरणप्रदरोगकथनम् ।

यद्यत्र चन्द्रमास्तस्य गोचरे चाशुभप्रदः ।

तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः ॥ ३३ ॥ (\* )

अर्थ—अब मृत्युप्रद रोग कहते हैं—जिस मनुष्यके रोग उत्पन्न होनेके समय चन्द्रमा गोचरमें अशुभ होय तो उसकी अमृतकी देह होनेसेभी मृत्युकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

अपिच ।

यदा ताराः शुभाः पुंसां नक्षत्रस्याशुभं फलम् ।

तत्र नात्यन्तिकं ज्ञेयमेवमन्यत्र पण्डितैः ॥ ३४ ॥

इति ज्योतिःसारे ।

अर्थ—ज्योतिःसारेमें लिखा है कि, रोग उत्पन्न होनेके समय अशुभ नक्षत्र होनेसेभी यदि मनुष्यका तारा शुद्ध होय तो उस मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती है ॥ ३४ ॥

अथ रोगस्य शुभाशुभप्रश्नः ।

चरराशौ विलग्नस्थे द्विदेहाद्धे च पश्चिमे ।

रोगस्योपशमः प्रश्ने विपर्यासे विपर्ययः ॥ ३५ ॥ ( क )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब रोगी मनुष्यका शुभाशुभ लक्षण प्रश्नद्वारा कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि चरराशि और द्विचात्मक राशिका शेषार्द्ध प्रश्नलग्न होय तो रोगीको शीघ्र आरोग्य होता है और याद स्थिरराशि और द्विचात्मक राशिका पूर्वार्द्ध प्रश्नकी लग्न होय तो वह मनुष्य चिररोगी होता है ॥ ३५ ॥

(\* ) पूर्वोक्ताद्वांशेषास्वातीत्यादीनां मूलमघाद्वांशेषेत्यादीनां चापवादमाह—यद्यत्र चन्द्रेति । स्पष्टार्थः । यदि चन्द्रे गोचरशुभदे रोगः स्यात्तदा न मृत्युः किन्तु सशय इत्यर्थः । अत्र चान्यत्र विशेष उक्तः । शिवशतभिषपावृत्त्यातीत्यादि “सप्ताह वारदोषेण द्विगुण तिथिदोषतः । तिथिनक्षत्रयोर्मांसखिभिः कालो न सशयः ” तथा सर्वदृष्टस्यान्यत्र विशेष उक्तः । “मूलेशमप्यशक्राग्निमपाश्लेषाश्च कृत्तिना । एषु दृष्टो दन्दशर्वस्तस्य मृत्युर्न सशयः । मूलेशमपाश्लेषावहुलभरणीविशाराभेषु नरः । गच्छप्रियोऽपि दृष्टो न प्राणानि दन्दशर्णेन ” इति ।

( क ) प्रश्नलग्नद्वारागितुशलाहलमाह—चरेति । चरराशौ लग्नगते द्विचात्मकस्य शेषार्द्धभागे च प्रश्ने सति रोगस्योपशमः स्यात् । विपर्यासे स्थिरराशौ लग्न गते द्विचात्मकस्य पूर्वभागे च विपर्ययाश्चिररोगित्वात् स्यात् ॥ इति ।



अथ रोगोपशमनयोगकथनम् ।

शुभग्रहाः सौम्यानिरीक्षिताश्च विलग्नसत्ताष्टमपञ्चमस्थाः ।

त्रिषड्दशायेषु निशाकरः स्याच्छुभं वदद्भोगनिपीडितानाम् ३६ (ख)

इति ज्योतिषसारसंग्रहे

अर्थ—अब रोगोपशमयोग कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके सातवें, आठवें वा पांचवें स्थानमें शुभग्रह होय और उनको अन्य शुभ ग्रह देखते हों तब रोगी मनुष्यकी कुशल जाननी चाहिये और यदि प्रश्नलग्नके तीसरे छठे, दशवें वा ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा स्थित होय तोभी रोगी मनुष्यको शुभ होता है ॥ ३६ ॥

अथ प्रश्ने मरणसूचकयोगो ।

पापक्षे प्रश्नलग्ने तु पापसंयुतवीक्षिते ।

तथैव चाष्टमे स्थाने रोगिणां मरणं वदेत् ॥ ३७ ॥ (ग)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब प्रश्नलग्नसे रोगी मनुष्यकी आयु कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि प्रश्नलग्न पापग्रहोंकी होय और उसमें पापग्रह स्थित होय वा प्रश्नलग्नको पाप ग्रह देखतेहों तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होती है । प्रश्नलग्नका आठवों स्थान पापग्रहोंका घर होय वा पाप ग्रह उसमें होय अथवा पापग्रह उसको देखते हों तो रोगी मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ३७ ॥

अथ परदेशस्थरोगादिज्ञानम् ।

मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमः शुभैरयुतदृष्टः ।

रोगार्त्तः परदेशे चाष्टमगो मृत्युकर एव ॥ ३८ ॥ (घ)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब परदेशमें गयेहुए मनुष्यके रोग और मृत्युका ज्ञान कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, यदि पापग्रहोंके साथ शनिग्रह जन्मलग्नके नववें

(ख) प्रश्ने रोगोपशममाह—शुभेति । लग्नस्य सप्तमाष्टमपञ्चमेषु मध्ये यत्र कुत्रापि स्थिताः शुभाः शुभदृष्टा यदि स्वस्तदारोगिणा कुशल शुभं वदेत् । तथा त्रिषड्दशायेषु स्थिते चन्द्रे शुभे कुशलं वदेदित्यर्थः । इति ।

(ग) प्रश्ने मृत्युयोगमाह—पापक्षे इति । पापग्रहलग्ने पापयुक्ते पापदृष्टे च रोगिणां मरणं स्यात् । तथैवाष्टमस्थाने पापग्रहे पापयुक्ते पापदृष्टे च मरणम् । देवज्ञानलभायामन्यदुक्तम् “लग्नस्थितो वाष्टमसस्थितो वा पापग्रहो यस्य तु जन्मराशिम् । निरीक्षते तस्य गदाद्वितस्य निःसशय मृत्युमुदाहरन्ति । पृष्ठोदये विलग्नो कूराः वेन्द्राष्टमः शशी यस्य । रोगार्त्तस्य विनाशो दृष्टे वा वलयुतैः पापैः” इति ।

(घ) प्रश्नलग्नदेशान्तरस्थस्य रोगज्ञानमाह—मन्द इति । मन्दः शनिः पापयुक्तः

स्नानमें शुभग्रह युक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि न होय तब परदेशमें मनुष्य रोगी होताहै और पापग्रहोंके साथ शनैश्वर यदि मश्रलग्रहके आठवें होय और शुभयुक्त वा शुभग्रहोंकी दृष्टि उसपर न होय तो विदेशमें मनुष्य रोगी होकर मरताहै॥३८॥

अथ मनुष्यादीनां परमायुः प्रमाणम् ।

पञ्चाहानखभूसमा नृकरिणां व्याघ्राद्यजादेर्नृपा  
गोकाल्योर्हिजिनास्तथोष्ट्रखरयोस्तत्त्वानि सूर्याः शुनः ।  
अश्वायुः परमं रदा नृवदिहानीयायुरेपा परा-  
युर्निघ्नं नृपवायुपा च विहतं तेषां स्फुटायुर्भवेत् ॥ ३९ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब मनुष्यादिकी परमायुका प्रमाण कहते हैं—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, मनुष्य और हाथीकी आयु एकसौ बीस वर्ष पांच दिनकी होती है, इसी प्रकार व्याघ्र और छागादिकी आयु सोलह वर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौबीस वर्षकी ऊँठ और गधेकी आयु पच्चीसवर्षकी, कुत्तेकी आयु बाहर वर्षकी और घोड़ेकी आयु बत्तीस वर्षकी होतीहै उक्त सब जीवोंकी जन्मसमयकी लग्न तथा ग्रह-स्यापन करके आयु गिननेकी रीतिसे वत्सरादिनिर्णय करके हाथीआदिके पूर्वोक्त अपनी २ आयुद्वारा गुणन करै तदनन्तर गुणनफलको १२० से भागलेके भागफलद्वारा तिन हाथी आदिकी परमायु होतीहै ॥ ३९ ॥

अन्यत्र ।

समाः पष्टिद्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा  
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः ।  
विरूपासत्वायुर्भृगमहिपयोर्द्वादश शुनः  
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताःपट् च परमम् ॥ ४० ॥(\*)

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ—अब दीपिकाके अनुसार मनुष्यादिकी परमायु कहते हैं—मनुष्य और—प्रभलगान्नवमस्यः शुभैर्युतोऽदृष्टश्च यदि स्वात्तदा परदेशे रोगार्तो नरः स्यात् । यदि लग्नादृष्टे पापेन युक्तः शुभेनायुतोऽदृष्टश्च शनिः स्वात्तदा विदेशे रोगी भूत्वा मृत इत्यर्थः । देशान्तररोगोपशमनमाह देवज्ञावल्गुभाषाम्—“उपच्यग्रहेषु चन्द्रे शुभेषु केन्द्र-त्रिकोणनिधनेषु । शुभदृष्टे वा लग्ने रोगी देशान्तरे नीरुहः ॥ ” इति ।

(\*) मानुषादीनां परमायुःप्रमाणमाह—समा इति । पष्टिद्विघ्ना विशाधिकशतं पञ्च च निशाः पञ्च दिनानि च मानुषाणां गजानाञ्च परमायुःप्रमाणम् । अश्वानां द्वात्रिंशत् गधैर्मोक्षयोः पञ्चककृतिः पञ्चानां कृतिः पञ्चविंशतिः । स्वयं संगुणनं नाम कृतिरित्य-भिधीयते । सा पञ्चककृतिर्विरूपा एकवर्जिता चतुर्विंशतिरित्यर्थः । गोमहिपयोः । वृ-

हार्थकी आयु एकसौ बीस वर्ष पांच दिनकी होती है, इसी प्रकार घोडेकी आयु बत्तीस वर्षकी ऊँट और गधेकी आयु पच्चीस वर्षकी, गाय और भैंसकी आयु चौबीस वर्षकी कुत्तेकी आयु बारह वर्षकी और छाग, भेष और मृगादिकी आयु सोलह वर्षकी होती है ॥ ४० ॥

अपरञ्च ।

पथ्याशिनां शीलवतां नराणां सदृत्तिभाजां विजितेन्द्रियाणाम् ।  
एवंविधानामिदमायुरत्र चिन्त्यं सदा वृद्धमुनिप्रवादः ॥ ४१ ॥

इति सारावल्याम् ।

अर्थ-सारावली ग्रन्थमें लिखा है कि, जो पथ्याशी, सुन्दर स्वभाववाला, अच्छे प्रकारसे आजोविकाका निर्वाह करनेवाला और जितेन्द्रिय मनुष्योंकी उक्त एकसौ बीस वर्षकी परमायु होती है वृद्धरूपि मुनिने इस प्रकार कहा है ॥ ४१ ॥  
प्रकारान्तरञ्च ।

वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ।

विक्रियापि च दृष्ट्वैवमकाले प्राणसंशयः ॥ ४२ ॥ (क)

इति याज्ञवल्क्यः ।

अर्थ-भगवान् याज्ञवल्क्यजीने कहा है कि, तेल, शराव और बत्तीके होनेसेभी वायु आदिविक्रियासे जिस प्रकार दीपक बुझजाता है, उसी प्रकार अशुभकर्मके फल भोगनेसे आयु होनेसेभी नाकापर चढनेसे अमार्गमें जानेसे, युद्धमें पशुच होनेसे और अपथ्यादिके आहार करनेसे मृत्यु होजाती है ॥ ४२ ॥

अथ गतायुःपरीक्षा ।

न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुपः ।

दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्राक्यमरुन्धतीम् ॥ ४३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-जिस मनुष्यकी आयु गत होती है उसके लक्षण कहते हैं-ज्योतिष तत्त्वमें लिखा है कि, जिस मनुष्यकी मृत्यु निकट आजाती है उस मनुष्यकी

—स्य तु द्वादश । छागभेषमृगाणा दशसहिताः पशून् परम षोडश वर्षाणि परमायुः स्मृतम् । अश्वादीनां पुरुषवदायुर्द्वयं कृत्वाविशत्याधिकशतेन भागमपहत्य यल्लब्ध तदश्वादीनां स्वकीयद्वात्रिंशद्वर्षादिभिः पूरितं तेपामायुर्द्वयं स्यादिति ॥

( क ) यथा अविक्लवर्त्यादिसत्त्वे प्रचण्डवातादिना दीपनाशस्तथा सत्यप्यायुपि अशुभकर्मवशात्त्रैकार्दुगमवर्त्मयुद्धापथ्याशित्वादिना प्राणनाशः ।

इति ज्योतिस्तत्त्वे मलमासतत्त्वे च स्मार्तराभिहितम् ।

दीपक गुल होनेकी गन्ध नहीं जान पडती है; इसी प्रकार अपने मनुष्योंकी बातभी बुरी लगती है और आकाशमण्डलमें उस मनुष्यको अरुन्धतीका ताराभी नहीं दीख पडता है ॥ ४३ ॥

अथौषधकरणम् ।

द्वयद्भोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु सत्सु ( १ )

वारे परे च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे ।

भेषूयपन्नगविशाखाशिवेतरेषु

जन्मर्क्षविष्टिरहितेष्वगदः शुभाय ॥ ४४ ॥ (२)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अथ औषध ( दवाई ) बनानेका सुहृत् कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, द्वायात्मक ( मिथुन, कन्या, धन और मीन ) लग्नमें बृहस्पति, बुध, चन्द्रमा और शुक्र स्थित होनेसे और इन सब ग्रहोंके वारमें और रविवारमें, शुभ-चन्द्रमा, शुभ तिथि और शुभयोगमें, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, भरणी, आश्लेषा, विशाखा और आर्द्राभिन्न नक्षत्रोंमें जन्मनक्षत्र और विष्टिकरणको छोडकर अन्यसमयमें औषध बनाना चाहिये ॥ ४४ ॥

अथौषधभक्षणम् ।

हस्तस्वातिमघामूलमृगभं पुष्य एव च ।

ज्येष्ठा शतभिषा चित्रा रेवती च तथाश्विनी ॥ ४५ ॥

श्रवणा चानुराधा च लग्ने मिथुनकन्यके ।

शुकेन्दुगुरुवारेषु भेषज्यपानमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अथ औषध सेवन करनेका ( दवा खानेका ) सुहृत् कहते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, हस्त, स्वाति, मघा, मूल, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा, शतभिषा, चित्रा, रेवती, अश्विनी, श्रवणा और अनुराधा नक्षत्रमें, मिथुन और कन्यालग्नमें शुक्र, सोम और बृहस्पतिवारमें औषधका सेवन करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

( १ ) तेषामिति क्वचित्पाठः ।

( २ ) औषधकरणमाह-द्वयद्भोदय इति । द्वायात्मकलग्ने तत्र च बुधगुरुचन्द्रशुकेषु सत्सु तेषां गुरुबुधेन्दुसितानां रवेश्च वारे सुतिथौ शुभचन्द्रे शुभयोगे उग्रगणे ११ । २० । २५ । १० । २ । आश्लेषा ९ विशाखा १६ आर्द्रा ६ एतदन्येषु नक्षत्रेषु जन्मनक्षत्रयोर्जतेषु विष्टिरहितेषु अगदमीषधं शुभाय स्यात् ।

अन्यच्च ।

दहनविधिधानिष्टारेवतीस्वातिपुष्य-  
हरिभमदितिचित्रामूलशाक्रोत्तरं च ।  
दिनकरमनुराधा चाश्विनी सौम्यवारी  
हरति सकलरोगान्भक्षणाञ्चौषधस्य ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, कृत्तिका, रोहिणी, धनिष्ठा, रेवती, स्वाति, पुष्य, श्रवण, पुनर्वसु, चित्रा, मूल, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा हस्त, अनुराधा और अश्विनीनक्षत्रमें और शुभ ग्रहोंके वारमें औषध खानेसे सभी रोगोंका नाश होजाताहै ॥ ४७ ॥

अपरञ्च ।

पौष्णाश्विनीहरिभशक्रसमीरपुष्य  
हस्तादितीन्दुवसुमूलविशाखमित्रे । (क)  
चित्रान्विते भृगुबुधेन्दुरवीज्यवारे  
भैषज्यपानमचिरादपि हन्ति रोगान् ॥ ४८ ॥ (ख)

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिपतत्त्वमें लिखाहै कि, रेवती, अश्विनी, श्रवण, ज्येष्ठा, स्वाति, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिर, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, ( मतान्तरमें कृत्तिका ) अनुराधा और चित्रा नक्षत्रमें, शुक्र, बुध, सोम, रवि और बृहस्पतिवारमें रोगी मनुष्य प्रथम औषध सेवन करनेसे शीघ्रही आरोग्य होताहै ॥ ४८ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

भैषज्यपानं गुरुसोमशुक्राः शुभे विलग्रे दिवसे रवेश्च ।  
तिथावरित्के करणे च शस्ते योगे च लग्ने द्विशरीरसंज्ञे ॥ ४९ ॥

इति भीमपराक्रमे ।

अर्थ-भीमपराक्रममें लिखाहै कि, बृहस्पति, सोम, शुक्र और रविवारमें, शुभ

( क ) हुताश इति पाठान्तरम् ।

( ख ) औषधभक्षणमाह-पौष्णेति । पौष्णादिनक्षत्रेषु २७ । १ । २२ । १८ । १६ । ८ । १३ । ७ । ६ । १३ । १९ । १६ । १७ । १४ । शुक्रचन्द्रबुधरविविगुरुवारेषु औषधभक्षणं रोगमचिरेण हन्ति ।

लग्नमें, रिक्ताभिन्न तिथियोंमें, शुभकरण और शुभयोगमें, द्वाचात्मकलग्नमें द्वाईको खाना चाहिये ॥ ४२ ॥

अपिच ।

रोहिण्यां चानुराधायां शस्तमौपधभक्षणम् ॥ ५० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरमें लिखाहै कि, रोहिणी और अनुराधा नक्षत्रमें द्वाई खाना प्रशस्तहै ॥ ५० ॥

अथ वस्तिविरेचनवेधः ।

चित्रायुगे विधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणे विष्णौ ।

वस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु ॥ ५१ ॥ (ग) ॥

अर्थ—चित्रा, स्वाति, रोहिणी, मृगशिर, अनुराधा, ज्येष्ठा, पुष्य, अश्विनी, हस्त, शतभिषा और श्रवण नक्षत्रमें, शुभदिनमें, शुभतिथिमें चन्द्रमा शुद्ध होनेसे शुभ लग्नमें वस्तिविरेचन अर्थात् नाभिके अधोदेशमें व्यथा होनेसे दवा लगाना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारोग्यज्ञानम् ।

व्यादित्येषु चरेषु शक्रदिनकृत्पुष्योयचन्द्रेषु च

क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्दावशस्ते तथा ।

केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानं गदोन्मुक्तितः

स्नातं तत्र न शोभनो विधिभुजङ्गर्क्षेन्दुसद्दातराः ॥ ५२ ॥ (घ)

अर्थ—अब आरोग्य होनेके बाद स्नान करनेका सुहृत्त कहते हैं—पुनर्वसुको

( ग ) वस्तिविशोधनविरेचनव्रणादिवेधानां विधिमाह—चित्रेति । चित्रायुगे १४ । १५ । रोहिणी युगे ४ । ५ अनुराधायुगे १७ । १८ । लघुगणे ८ । १ । १३ । शतभिषायां २४ श्रवणायाञ्च २२ शोभनेषु वारतिथिचन्द्रलग्नेषु वस्तिविरेचनवेधाः कार्याः लिङ्गाद्धर्षं नाभेरधोभागो वस्तिः । “वस्तिर्नाभेरधो हयोः” इत्यमरः । अत्र च वस्तिदेशे व्यथादी जाते मण्डाद्यौपधदानेन वस्तिशोधनं क्रियत इति वैद्यकशास्त्रे प्रासिद्धेः । वस्तिशोधनकर्म विरेचनकर्म चान्तर्नाडीशोधनं विरेचनं वेधा व्रणादिवेधनञ्चकार्यमित्यर्थः । राजमात्तण्डे—“पुष्यो हस्तस्तथा ज्येष्ठा श्रवणा चोत्तराश्विनी । शुभान्येतानि धिष्ण्यानि वेधे वस्तौ विरेचने ॥” इति ।

( घ ) आरोग्यज्ञानमाह—व्यादित्य इति । पुनर्वसुर्वाजंतेषु चरगणेषु १५ । २२ । २३ । २४ । ज्येष्ठाहस्तपुष्योयग्रगणे मृगशिरसि च क्रूराहे शनिरधिमंगलवारे व्यतीपातयोगे विष्टौ गोचरशुद्धे चन्द्रे लग्नात्केन्द्रेषु अशुभेषु ग्रहेषु सत्स्वकामतिथिषु न विद्यते कामो यत्र अकामा रिक्ता तत्र गदोन्मुक्तितः रोगत्वागात्स्नानं प्रशस्तम् । राजमात्तण्डे—

छोडकर चरगणमें ( स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें ) वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें अथवा हस्त, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, मरणी और मृगशिर नक्षत्रमें क्रूर ग्रहोंके वारमें ( रवि, मङ्गल और शनिवारमें ) व्यतीपात योगमें विष्टिकरणमें गोचरमें चन्द्रमा अशुद्ध होनेसे, और लग्नके केन्द्रस्थानमें शुभग्रह स्थित होनेसे रिक्तातिथिमें आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये, किन्तु रोहिणी और आश्लेषा नक्षत्रमें और शुभग्रहोंके वारमें कभी आरोग्य होनेके बाद स्नान न करै ॥ ५२ ॥

अन्यच्च ।

चन्द्राशुद्धौ व्यतीपाते भौमार्कशनिवासरे ।

व्रणमुक्ता व्याधिसुक्तः कृच्छ्रस्नानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, गोचरमें अशुद्ध चन्द्रमा होनेसे, व्यतीपात योगमें, मंगल रवि और शनिवारमें व्रणमुक्त और व्याधिसे मुक्त हुए मनुष्यको स्नान करना चाहिये ॥ ५३ ॥

अपरञ्च ।

पूर्वात्रयं मघाश्लेषाभरणीकृतिकासु च ।

भद्रायां च तिथौ रिक्ते आरोग्यस्नानमाचरेत् ॥ ५४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ--ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा, आश्लेषा, मरणी और कृत्तिका नक्षत्रमें, भद्रा ( द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी ) और रिक्ता ( चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी ) तिथिमें आरोग्य होकर स्नान करना चाहिये ॥ ५४ ॥

आरोग्यस्नाननिषेधः ।

दशमी नवमी चैव प्रतिपच्च त्रयोदशी ।

तृतीया च विशेषेण स्नाने चैतान्विवर्जयेत् ॥ ५५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

—'जीवे शुक्रे बुधे चन्द्रे दिनेऽरिक्ते हिते तिथौ।यःशुभैःकुरुते स्नानं रोगी रोगान्न मुच्यते' अत्र च रोहिणी आश्लेषा इन्दोश्चन्द्रस्य सद्ग्रहाणाञ्च वाराः न शोभनाः प्रयत्नेन वर्जनीया इत्यर्थः । सद्ग्रहाणांभित्यनेन सिद्धे इन्दोः पृथगुपादान क्षीणत्वेऽपि तस्य वारस्य वर्जनार्थम् । प्रतिपदादितिथिनिषेध विशेषेणाह-राजमार्त्तण्डे--"प्रतिपदा द्वितीया वा दशमी च त्रयोदशी । कृच्छ्रस्नानं न कुर्वीत यदीच्छेदारमनो हितम् " इति ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि—तप्तमी, नवमी, प्रातिपदा, त्रयोदशी और चतुर्था तिथिमें आरोग्य होकर स्नान न करना चाहिये ॥ ५५ ॥

अथ तैलाभ्यङ्गनिषेधः ।

अकै नूनं हरति हृदयं कीर्त्तिलाभश्च सोमे  
भौमे मृत्युर्भवति नियतं चन्द्रजे पुत्रलाभः ।  
अथे हानिर्भवति हि गुरौ भार्गवे शोकयुक्तः  
तैलाभ्यङ्गात्तनयप्ररणं सूर्यजे दीर्घमायुः ॥ ५६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब तेल लगानेके निषिद्ध वार कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रविवारमें तेल लगानेसे कष्ट होता है, इसी प्रकार सोमवारमें कीर्त्तिलाभ, मङ्गलवारमें मृत्यु, बुधवारमें पुत्रलाभ वृहस्पतिवारमें अर्थहानि, शुक्रवारमें पुत्र-शोक और शनिवारमें तेल लगानेसे दीर्घायु होती है ॥ ५६ ॥

प्रातिपदसो यथा ।

रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भूमिं भूमिजवांसरे ।  
भार्गवे गोमयं दद्यात्तैलदोषोपशान्तये ॥ ५७ ॥ ( × )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—रविवारमें पुष्प ( फूल ) डालकर तेल लगाना चाहिये, इसी प्रकार वृहस्पति वारमें दूर्वा डालकर, मंगलवारमें मृत्तिका डालकर और शुक्रवारमें गोबर डालकर तेल लगाना चाहिये पुष्पादिवासित तेल लगानेसे दोष नहीं होता है इस प्रकार ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है ॥ ५७ ॥

अन्यच्च ।

अतैलं सार्पणं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् ।  
अदुष्टं पक्वतैलं च स्नानाभ्यङ्गेषु नित्यशः ॥ ५८ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, सरसोंके तेलको तेलसंबा नहीं है, पुष्प-वासित तेल पक्वतेलकी ( पकेहुए तेलकी ) शरीरमें नित्य प्राति मालिसकरनी चाहिये, उसमें कुछ दोष नहीं है ॥ ५८ ॥

( + ) तैलपदं तिलतेलपरामिति हृदयानन्दः ।



अथ साधारणकार्ये वारादिव्यवस्था ।

शुकेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।

भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वपि ॥ ५९ ॥

अर्थ-शुक्र, सोम, बुध और बृहस्पतिवार सभी कर्ममें शुभफलप्रदान करते हैं, रवि, मंगल और शनिवारमें कोई २ शुभकर्म प्रशस्त हैं ॥ ५९ ॥

अपिच ।

सर्वत्र कार्ये बुधजीवशुक्राः केन्द्रत्रिकोणोपगताः प्रशस्ताः ।

तृतीयलाभारिगताश्च पापास्तिथिर्विरिक्ताशुभदस्य चाहः ॥ ६० ॥ (×)

अर्थ-कर्म करनेके समय लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें वा दशवें स्थानमें बुध बृहस्पति और शुक्रके होनेसे, तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थानमें पापग्रह होनेसे रिक्ताभिन्न तिथिमें और शुभग्रहोंके वारमें प्रायः सभी कर्म करना चाहिये ॥ ६० ॥

अन्यच ।

निरंशं दिवसं विष्टिं व्यतीपातञ्च वैधृतिम् ।

केन्द्रञ्चापि शुभैः शून्यं पापाहमपि वर्जयेत् ॥ ६१ ॥ (१)

अर्थ-निरंश अर्थात् रविसंक्रान्तिदिन, विष्टिभद्रा, व्यतीपात और वैधृति-योग (केन्द्रमें शुभग्रह न होनेसे उस लग्नमें) और पापग्रहोंके वारमें कोई कार्य न करना चाहिये ॥ ६१ ॥

अपरञ्च ।

इन्द्रष्टमगान्पापान्वर्जयेन्नैधनं विलग्नञ्च ।

चन्द्रञ्च निधनसंस्थं सर्वारम्भप्रयोगेषु ॥ ६२ ॥

अर्थ-सभी कार्यमें चन्द्रगत पाप ग्रह और लग्नगत पापग्रहको परित्यागकरे और चन्द्रमाके वा लग्नके आठवें पापग्रहोंकोभी परित्याग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

+ साधारणसर्वकर्मसु ग्रहाणा शुद्धिमाह-सर्वत्रेति । शुभदस्य शुभग्रहस्याहः वारः शस्त इत्यर्थः । अत्र शुभदस्येत्यनेन गोचरे दशायां वा शुभफलदायकस्य पापस्यापि वारः शुभ इत्यर्थः ।

( १ ) सर्वकर्मस्वन्यानापि वर्जनीयानाह-निरशमिति । निरश रविणांशं शून्यांकृत दिनं रवेः सञ्चारदिनं नान्यस्येत्यर्थः । तथाच राजमार्तण्डे-“ अस्त प्रयाते च भृगौ गुरौ वा सूयं निरशे हिमगौ प्रणष्टे । न कूपवाप्यादिकमन्दिरार्थ्यं शुभं प्रदिष्टं धनकी-त्तनाशात् ” इति । शुभैरिति बहुवचनमाविवक्षितं यत्किञ्चिदापि केन्द्रं शुभमात्रेण युतं चत्तदा न दोष इत्यर्थः । पापाह पापवारम् एतेन पापयोश्चन्द्रबुधयोर्द्विनमपि वर्जयेदित्यर्थः । इति ।

अथ रविसंक्रान्तिकथनम् ।

विषुवन्मेपतुलयोरयनं मकरे रवौ कुलीरे च ।

पडशीतिद्विशरीरे विष्णुपदी च स्थिरे राशौ ॥ ६३ ॥ (अ)

अर्थ—अब संक्रान्तिकी संज्ञा कही जाती है—मेप और तुलाकी संक्रान्तिको विषुवसंक्रान्ति कहते हैं, मकर और कर्ककी संक्रान्तिको अयनसंक्रान्ति कहते हैं, मिथुन, कन्या, धन और मीन संक्रान्तिको पडशीतिसंक्रान्ति कहते हैं और वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

मृगकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने । (आ)

विषुवती तुला मेपे गोलमध्ये तथापराः ॥ ६४ ॥

धनुर्मिथुनकन्यासु मीने च पडशीतयः ।

वृषवृश्चिकसिंहेषु कुम्भे विष्णुपदी स्मृता ॥ ६५ ॥

इति भविष्यमास्त्वयोः ।

अर्थ—भविष्यपुराणमें और मत्स्यपुराणमें लिखाहै कि, मकर संक्रान्तिको उत्तरायणकी संक्रान्ति कहते हैं, इसीप्रकार कर्क संक्रान्तिको दक्षिणायन तुला संक्रान्तिको जलविषुव, मेप संक्रान्तिको महाविषुवसंक्रान्ति कहते हैं, राशिचक्रके मध्यमें अन्यान्यसंक्रान्ति अर्थात् धन, मिथुन, कन्या और मीन संक्रान्तिको पडशीतिसंक्रान्ति कहते हैं और वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ संक्रान्तिको विष्णुपदी संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अपरञ्च ।

अयने द्वे विषुवे द्वे चत्वारि पडशीतयः ।

चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारे ज्योतिःसारसंग्रहे च ।

अर्थ—ज्योतिःसारेमें और ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, दो अयन संक्रान्ति दो विषुवसंक्रान्ति, चार पडशीतिसंक्रान्ति और चार विष्णुपदीसंक्रान्ति सब बारह संक्रान्ति होती हैं ६६ ॥

(अ) गमिसंक्रान्तीनां मनामाह—विषुवदिति । मेपतुलास्ये मेपप्रदेशे तुलाप्रदेशे भेत्वर्यः । एतन्मन्त्रापि ।

(आ) “महाविषुवमाख्यात मेपराशौ र्भेर्गती । जलविषुवतुलायां कर्कटे दक्षिणायनम् । उत्तरायणमण्युक्तं मकरस्ये र्भौ तथा ” इति ज्योतिःसारे ।

अथ संक्रान्तिक्रमः ।

विषुवविष्णुपदीपडशीतयोऽयनविष्णुपदीपडशीतियः ।

विषुवविष्णुपदीपडशीतयोऽयनविष्णुपदीपडशीतियः ॥ ६७ ॥

इति जातकचन्द्रिकायाम् ।

अर्थ-जातकचन्द्रिकामें लिखाहै कि, महाविषुव, विष्णुपदी, पडशीति, दक्षिणायन विष्णुपदी, पडशीति, जलविषुव, विष्णुपदी, पडशीति, उत्तरायण, विष्णुपदी और पडशीति यह चारह संक्रान्ति क्रमानुसार चारह राशिमें होती हैं ॥ ६७ ॥

अथ संक्रान्तीनां नक्षत्रघटितमन्दादिसंज्ञाः ।

मन्दा मन्दाकिनी ध्वांशी घोरा चैव महोदरी ।

राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप ॥ ६८ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अब संक्रान्तिकी विशेषसंज्ञा कहते हैं-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, मन्दा, मन्दाकिनी, ध्वांशी, घोरा, महोदरी, राक्षसी और मिश्रिता यह सप्त संज्ञा विषुवादिसंक्रान्तिकी नक्षत्रविशेषमें होती हैं, उनको नीचे लिखा है ॥ ६८ ॥

मन्दा ध्रुवे सुविज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा ।

क्षिप्रे ध्वांशी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्तिता ॥ ६९ ॥

चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैर्ऋक्षैश्च राक्षसी ।

मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रितक्षैश्च संक्रमे ॥ ७० ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अब तिथितत्त्वके अनुसार मन्दादिसंक्रान्ति कहीं जाती हैं-उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और रोहिणीनक्षत्रमें संक्रान्ति लगनेसे उसको मन्दा संक्रान्ति कहते हैं, इसी प्रकार चित्रा, अनुराधा, मृगशिर और रेवती नक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मन्दाकिनी संक्रान्ति, पुष्य, आश्विनी और हस्तनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको ध्वांशी संक्रान्ति; पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, मघा और भरणीनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको घोरा-संक्रान्ति, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और ज्येष्ठाभिपानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको महोदरी संक्रान्ति, आश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको राक्षसी संक्रान्ति और कृत्तिका तथा विशाखानक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मिश्रिता संक्रान्ति कहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

पडशीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्रये ।

भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे ॥ ७१ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ—अब तिथितत्त्वेके अनुसार संक्रान्तिका पुण्यकाल कहते हैं—पडशीति-संक्रान्ति और विषुवसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके उपरान्त पुण्यकाल होता है; इसी प्रकार दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें और उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके बाद पुण्यकाल होता है ॥ ७१ ॥

यावद्विंशकलाभुक्ता तत्पुण्यं चोत्तरायणे ।

निरंशे ( १ ) भास्करे दृष्टे दिनास्तं दक्षिणायने ॥ ७२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखा है कि, उत्तरायणसंक्रान्तिमें संक्रान्तिके लगनेसे बीसदण्डतक पुण्यकाल होता है, और दक्षिणायनसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें तीस दण्ड पुण्यकाल होता है ॥ ७२ ॥

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ॥ ७३ ॥ (क)

इति बृहद्वसिष्ठः ।

अर्थ—बृहद्वसिष्ठने कहा है कि, दक्षिणायन ( कर्कटकी ) संक्रान्तिमें तीस दण्ड ( घड़ी ) पुण्यकाल होता है और मकर अर्थात् उत्तरायणकी संक्रान्तिमें बीस दण्ड पुण्यकाल होता है ॥ ७३ ॥

अर्वाक्षपोडश विज्ञेया नाड्यः पश्चाच्च षोडश ।

कालःपुण्योऽर्कसंक्रान्तेर्विद्वाद्भिः परिकीर्तितः ॥ ७४ ॥

इति शातातपः ।

अर्थ—शातातपने कहा है कि, रविसंक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्त सोलहदण्डतक पुण्यकाल होता है, इस प्रकार विद्वानोंका अभिप्राय है ॥ ७४ ॥

( २ ) निरंशेऽशुक्रज्ञान्ये संक्रान्तिकाले हि भास्करोऽशुक्रहितो भवति तस्मिन् दृष्टे दिनेति यावत्।दिनश्च दिनवत्संस्कृताश्चिन्नाडिका इति ज्योतिर्विदः । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

( क ) नाडी दण्डः तथाच सूर्यसिद्धान्तः “उत्पलाद्विपल पट्या विपलात्तु पल नयेत् । पलात्पट्या नयेत्तर्दी तत्पट्या तु रथेदिनम् ” इति तिथितत्त्वे ।

अतीतानागतौ भोगो नाड्यः पञ्चदश स्मृताः ॥ ७५ ॥ ( ❀ )

इति देवीपुराणे ।

अर्थ-देवीपुराणमें लिखा है कि, विष्णुपदी संक्रान्तिमें संक्रान्ति लगनेके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमें सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है ॥ ७५ ॥

पुण्यायां विष्णुपद्याञ्च प्राक्पश्चादपि षोडश ॥ ७६ ॥

इति जावालिबृहदसिधौ ।

अर्थ-जावालने और बृहदवशिष्ठने कहा है कि, विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमें सोलह दण्ड और उपरान्तमें सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है ॥ ७६ ॥

पडशीतिचतसृणां तथा विपुवयोरपि ।

पश्चात्षोडशनाडीनां पुण्यत्वं समुदाहृतम् ॥ ७७ ॥

त्रिंशद्दण्डास्तथा पुण्या भविष्यदक्षिणायने ।

उत्तरायणसंक्रान्तेः पश्चाद्द्विंशत्तिनाडिकाः ॥ ७८ ॥

विष्णुपद्यामुभयतः प्राक्पश्चादपिषोडश ।

दण्डाः पुण्यास्तु विज्ञेया दिवासंक्रमणे रवेः ॥ ७९ ॥

इति ग्रन्थान्तरैः ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें लिखा है कि, पडशीतीत्यादि चार संक्रान्तिके और जल-विपुव तथा महाविपुवसंक्रान्तिके लगनेसे सोलह दण्डतक पुण्यकाल होता है, इसी प्रकार दक्षिणायन ( कर्क ) संक्रान्तिमें संक्रान्तिके लगनेसे पूर्वमें तीस दण्ड, उत्तरायण ( मकर ) संक्रान्तिके उपरान्त वीसदण्ड और विष्णुपदी संक्रान्तिके पूर्वमें और उपरान्तमें सोलह दण्ड तक पुण्यकाल होता है ॥७७॥७८॥७९॥

आह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् ।

रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः ॥ ८० ॥

इति बृहदसिधः ।

अर्थ-बृहदसिष्ठने कहा है कि, दिनमें संक्रान्ति लगनेसे सभी दिन पुण्यकाल होता है और रात्रिमें संक्रान्तिके लगनेसे अर्द्धदिनतक पुण्यकाल होता है । उसमेंही संक्रान्तिनिमित्त स्नान और दानादि करना चाहिये ॥ ८० ॥

( • ) इदं वचनं दिवा विष्णुपदीविषयमिति स्मार्त्तनाभिहितम् ।

अथ रात्रिसंक्रमणे पुण्यकालव्यवस्था ।

कलान्यूनाद्धरात्रे तु यदि संक्रमणं भवेत् ।

तदहः ( \* ) पुण्यमिच्छन्ति गार्ग्यगालवगौतमाः ॥ ८१ ॥

इति गार्ग्यः ।

अर्थ—गार्ग्यमुनिने कहाहै कि, एकदण्डन्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै इस प्रकार गार्ग्य, गालव और गौतमादि मुनियोंका मत है ॥ ८१ ॥

अद्धरात्रे त्वसम्पूर्णे दिवापुण्यमनागतम् ।

अद्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयं चापरेऽहनि ॥

सम्पूर्णे चार्द्धरात्रे च उदयेऽस्तमयेऽपि वा ॥ ८२ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें लिखाहै कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै, इसी प्रकार एकदण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे पर दिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है और दण्ड-द्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै ॥ ८२ ॥

अन्यच्च ।

मानार्द्धं भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्वरीदले ।

सम्पूर्णे तूर्भयौदयमतिरेके परेऽहनि ॥ ८३ ॥

अर्थ—चचनान्तरमें कहाहै कि, एकदण्ड न्यून रात्रिके पूर्वार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्वदिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होताहै, इसीप्रकार दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होताहै और एक दण्ड न्यून रात्रिके परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होताहै ॥ ८३ ॥

अद्धरात्रे कलाधिक्ये यदा संक्रमते रविः ।

तदोत्तरदिनं ग्राह्यं स्नानदानजपादिषु ॥ ८४ ॥

इति भुजबलीमपराक्रमे ।

अर्थ—भुजबली मीमपराक्रममें लिखा है कि, एक दण्ड अधिक अद्धरात्रिके

( \* ) तदहरिति यामह्यपरम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तेनोक्तम् ॥

अतीत कालमें यदि सूर्यकी संक्रान्ति लगे तो ज्ञान, दान और जपादि परादिनके पूर्वार्द्धमें करना चाहिये ॥ ८४ ॥

अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा संक्रमते रविः ।

सा ज्ञेया कूटसंक्रान्तिर्मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ ८५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, रात्रिके शेषार्द्धमें संक्रान्तिके लगनेसे उसको मुनिगण कूट संक्रान्ति कहते हैं ॥ ८५ ॥

अर्द्धरात्रे तु सम्पूर्णे यदा संक्रमते रविः ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८६ ॥

इति भुजबलमीमपराक्रमे ।

अर्थ-भुजबल भीमपराक्रममें लिखा है कि, सम्पूर्णार्द्धरात्रिमें अर्थात् ( दण्ड-द्रयात्मक ) अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्कटकी संक्रान्तिको छोड़कर अन्य सब संक्रान्तिमें ही पूर्वदिनके परार्द्धमें और परादिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है ॥ ८६ ॥

पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु रविसंक्रमणं भवेत् ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ८७ ॥

इति शातातपजावाली ।

अर्थ-शातातपने और जावालीने कहा है कि, पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे मकर और कर्कटकी संक्रान्तिको छोड़कर शेष संक्रान्तिमें दोनों दिनमें ही पुण्यकाल होता है ॥ ८७ ॥

आदौ पुण्यं विजानीयाद्यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ-पूर्ण आधी रातके समय संक्रान्ति लगनेसेभी यदि सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एकातिथि होय तो पूर्व दिनके परार्द्धमें ही पुण्यकाल होता है ॥ ८८ ॥

अर्द्धरात्रादधस्तास्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रियाः

ऊर्द्ध संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ।

पूर्णार्द्धरात्रसंक्रान्तौ द्वे दिनार्द्धे तु पुण्यदे ॥ ८९ ॥ ( ❀ )

इति संवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमें संक्रान्ति लगनेसे उस

( \* ) उभयोदिने पुण्यकाले पूर्वदिनाकरण एव परादिने । “ श्वः कार्यमद्य कर्त्तव्यं पूर्वाह्ने चापराह्णिकम् । नहिं प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ” इति लिङ्गपुराणात् ।

दिनके दो प्रहरके उपरान्त संक्रांति निमित्तक क्रिया करनी चाहिये, अर्द्धरात्रिके उपरान्तमें संक्रान्तिके लगनेसे परादिनमें सूर्योदयकालसे दो प्रहरके मध्यमें स्नानदानादि संक्रान्तिका कर्म करना चाहिये और पूर्ण अर्द्धरात्रिके समय संक्रान्ति लगनेसे दोनों दिनमें पुण्यकाल होता है ॥ ८९ ॥

अर्द्धरात्रादधश्चैव दिनार्द्धस्योपरि क्रियाः ।

ऊर्द्ध संक्रमणे भानोरुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ ९० ॥

इति भोजराजः ।

अर्थ-भोजराजने भी कहा है कि, अर्द्धरात्रिके पूर्वमें संक्रान्ति लगनेसे उसी दिनके दो प्रहरके उपरान्त स्नानदानादि करे अर्द्धरात्रिके उपरान्तमें संक्रान्ति लगनेसे परादिनमें सूर्योदयकालसे दो प्रहरके मध्यमें संक्रान्ति निमित्तक कर्म करना चाहिये ॥ ९० ॥

अथ मृगकर्कटयोरर्द्धरात्रिसंक्रमणे विशेषमाहं ।

मिथुनात्कर्कसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः ।

प्रदोषे वा निशीथे वा कुर्यादहनि पूर्वतः ॥ ९१ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ-भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि, रात्रिके पूर्वार्द्धमें हो वा पूर्ण अर्द्ध रात्रिमें हो मिथुनराशिसे कर्कराशिमें सूर्यके जानेमें अर्थात् दक्षिणायन-संक्रांतिके होनेसे पूर्व दिनके परार्द्धमेंही पुण्यकाल होता है ॥ ९१ ॥

कार्मुकञ्च परित्यज्य झपं संक्रमते रविः ।

प्रभाते वार्द्धरात्रे वा स्नानं कुर्यात्परेऽहनि ॥ ९२ ॥

इति भविष्योत्तरे ।

अर्थ-भविष्यपुराणके उत्तरखण्डमें लिखा है कि, धनराशिसे मकरराशिमें रात्रिके शेपार्द्धमें वा पूर्णार्द्धरात्रिमें सूर्य गमन करे अर्थात् उत्तगयण संक्रान्ति लगे तो परादिनके पूर्वार्द्धमें संक्रान्तिनिमित्तक स्नानदानादि करना चाहिये ॥ ९२ ॥

अथ मन्दादिभेदेन संक्रान्तीनां पुण्यकालः ।

त्रिचतुःपञ्चसप्ताष्टनवद्वादश एव च ।

क्रमेण घटिका ह्येतास्तत्पुण्यं पारमार्थिकम् ॥ ९३ ॥

इति देवीपुगणे ।

अर्थ-अब मन्दादिसंक्रान्तिका पुण्यकाल कहते हैं, देवी पुराणमें लिखा है कि, मन्दासंक्रान्तिका पुण्यकाल तीन दण्ड होता है; इसी प्रकार मन्दाकिनिका चार दण्ड, घ्वांक्षीका पांच दण्ड, घोराका, ज्ञात दण्ड, मशेदीरीका आठ दण्ड, राक्ष-



सौका नौ दण्ड, और मिश्रिता संक्रान्तिका पुण्यकाल बारह दण्ड होता है ॥९३॥  
 ( संक्रान्तिप्रकरण आतिवृहत् हे यदि पूरा लिखाजाय तो ग्रन्थ बहुत बढजा-  
 यगा अतएव पूरा प्रकरण संक्रान्तिनिर्णयनामक पुस्तकमें लिखूंगा, यहाँ संक्षे-  
 पसे वचनोंका तात्पर्यार्थ लिखता हूँ, दिनमें संक्रान्तिके लगनेसे जिस दिनमें  
 पुण्यकाल कहागया है, उसीमें दानपूजादि करना चाहिये पन्द्रह दण्ड, सोलह-  
 दण्ड, बीसदण्ड और तीसदण्डादि जिस संक्रान्तिमें पुण्यकाल कहा है उसको  
 पुण्यतर काल जानो और मन्दादिभेदसे जो तीनदण्ड, चारदण्ड, पाँचदण्ड  
 इत्यादि कहे हैं उसको पुण्यतम काल जानना चाहिये फालितार्थ यह है  
 कि, प्रत्येकसंक्रान्तिमें ही इन तीनों प्रकारके काल जानना चाहिये । दिनमें  
 संक्रान्तिके लगनेसे सोलह वा बीसदण्डादि पुण्यतर काल यदि रात्रितक  
 होय तब उसकोभी पुण्यकाल कहते हैं । एकदण्ड न्यूनरात्रिके पूर्वार्द्धमें  
 संक्रान्तिलगनेसे उस दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है । एकदण्डन्यूनरात्रिके  
 परार्द्धमें संक्रान्ति लगनेसे परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता है दक्षिणायन  
 और उत्तरायणकी संक्रान्तिको छोडकर अन्य संक्रान्तिमें दण्डद्वयात्मक मध्यरा-  
 त्रिमें अर्थात् पूर्वार्द्धरात्रिके शेष दण्डमें वा परार्द्धरात्रिके प्रथमदण्डमें संक्रान्तिके  
 लगनेसे यदि पूर्वदिनके सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एकतिथि होय तो  
 पूर्वदिनके शेषार्द्धमें पुण्यकाल होता है और सूर्योदय कालसे संक्रान्तिके कालतक  
 एकतिथि न होय तो पूर्वदिनके परार्द्धमें और परदिनके पूर्वार्द्धमें पुण्यकाल होता  
 है । इस स्थलमें संक्रान्तिकृत्य स्नानदानादि पूर्वदिनमें न करसकनेसे पर दिनमें  
 करना चाहिये । दक्षिणायनकी संक्रान्तिमें तिथिका भेद होय वा न होय दण्ड-  
 द्वायात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे पूर्व दिनके परार्द्धमें पुण्यकाल होता है,  
 और उत्तरायणकी संक्रान्तिमें दण्डद्वयात्मक मध्यरात्रिमें संक्रान्ति लगनेसे  
 सूर्योदयकालसे संक्रान्तिके कालतक एक तिथि होय वा न होय परदिनके पूर्वा-  
 र्द्धमें पुण्यकाल होता है ) ।

अथ महाजयाकथनम् ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते शविः ।

महाजया ( १ ) तदा प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ॥ ९४ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ-अथ महाजयाको कहते हैं-ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, शुक्लपक्षकी सप्तमी

( १ ) अत्र " मासपक्षतिथिनाञ्च निमित्तनाञ्च सर्वशः " इत्यनेन प्राप्तातिथ्युल्लेखे  
 तद्विशेषणत्वेन; महाजयेत्युल्लेखे सज्ञाविधेरेतदेव प्रयोजनं यत्तया निर्देशः । एवं संक्रा-  
 न्तिविशेषस्य निमित्तत्वेन प्राप्ता विपुलाद्युल्लेखोऽपि । इति तिथितत्त्वे स्मार्तनोक्तम् ।

तियिमै यदि संक्रान्ति लग्ने, तो इस भास्करकी प्रिया सप्तमीको महाजया कहते हैं ॥ ९४ ॥

स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवादिपूजनम् ।

सर्वं कोटिगुणं प्राक्तं तपनेन महौजसा ॥ ९५ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—महाजयामें स्नान, दान, तपस्या, यज्ञ, पितृश्राद्ध वा देवार्चना करनेसे कोटिगुण फल प्राप्त होता है, भगवान् सर्वदेवने स्वयं इस प्रकार ब्रह्मपुराणमें कहा है ॥ ९५ ॥

अथ संक्रान्त्यादिषु पुण्यकर्मकरणे फलम् ।

अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च ।

पडशीतिसहस्रान्तु पडशीत्यामुदाहृतम् ॥ ९६ ॥

शतमिन्दुक्षये पुण्यं सहस्रान्तु दिनक्षये ।

विषुवे शतसाहस्रमाकामावैष्वनन्तकम् ॥ ९७ ॥ ( २ )

इति मत्स्यपुराणे ।

अर्थ—संक्रान्तिमें पुण्यकर्म करनेसे जो फल होता है अब उसको वर्णन करते हैं—मत्स्यपुराणमें लिखा है कि, अयनकी संक्रान्तिमें दानादि करनेसे उसमें कोटिगुण फल प्राप्त होता है, इसी प्रकार विष्णुपदीसंक्रान्तिमें लक्षगुण, पडशीति संक्रान्तिमें ८६ हजारगुण, अमावास्यामें शतगुण, अहस्पर्शमें सहस्रगुण और आपाद, कार्तिक, माघ और वैशाखकी शृण्णामां चानटानादि करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथद्वयापि यदत्तं कुपात्रेभ्योऽपि मानवैः ।

अकालेऽपि हि तत्सर्वं सत्यमक्षयतां व्रजेत् ॥ ९८ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, संक्रान्तिमें पुण्यकालमें यदि अथवासे अकालमें कुपात्रमें भी दान करें तो उसका अक्षय पुण्य होता है ॥ ९८ ॥

रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यस्तु मानवः ।

सप्तजन्मस्वर्सा रोगी निर्द्धनश्चोपजायते ॥ ९९ ॥

इति देवीपुराणे ।

अर्थ—देवीपुराणमें कहा है, सूर्यसंक्रान्तिके दिन जो मनुष्य स्नान दानादि

( २ ) चावामादिषु चापादीषु भक्तिमीमांसादिशास्त्रेषु पूजिमासु । इति त्रियित्तरे

स्मार्तनोक्तम् ।

पुण्य नहीं करताहै वह सात जन्मपर्यन्त रोगी और धनहीन ( दरिद्री ) होता है ॥ ९९ ॥

अथ विषुवादिस्त्रारगणनम् ।

तत्रादौ महाविषुवस्थ ।

मूर्ध्नि सप्त मुखे त्रीणि हृदये पञ्च विन्यसेत् ।

त्रितयं हस्तपादेषु महाविषुवभक्रमात् ॥ १०० ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब विषुवादि संक्रान्तिकी संचारप्रणाली कहतेहैं-तहाँ प्रथम महाविषुवको कहतेहैं, ज्योतिषतत्त्वमें कहाहै कि, पुरुपाकार संक्रान्तिस्वरूप लिखकर मस्तकमें ७ नक्षत्र, मुखमें ३ नक्षत्र, हृदयमें ५ नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन २ नक्षत्र अत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र सूर्यसंक्रान्तिकालके नक्षत्रसे स्थापन करै फल नीचे लिखते हैं ॥ १०० ॥

मस्तकमें १।२।३।४।५।६।७

मुखमें ८।९।१०

दक्षिणहाथमें १६।१७।१८

हृदयमें ११।१२।१३।१४।१५



वामहाथमें १९।२०।२१

दक्षिणपादमें २२।२३।२४

वामपादमें २५।२६।२७

फलम् ।

मस्तके भूपतेः सौख्यं वदने पटुता शुभे ।

हृदये च घनाध्यक्षो ह्यर्थातिर्दक्षिणे करे ॥ १ ॥

वामे करे महदुःखं मुखं पादे च दक्षिणे ।

अमणं वामपादे च कथितं विषुवत्फलम् ॥ २ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-महाविषुवसंक्रान्तिनक्षत्रसे जो, फल होताहै अब उसको ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार कहतेहैं-संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे राज-सौख्य होताहै, इसी प्रकार मुखमें जन्मनक्षत्र पडनेसे पटुता ( दक्षता ) हृदयमें

धनेश्वर, दहिने हाथमें अर्थ प्राप्ति, बायें हाथमें अत्यन्त दुःख, दहिने पैरमें सुख और संक्रान्तिपुरुषके बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे भ्रमण होता है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ जलविपुवगणनम् ।

पण्मूर्ध्नि वदने पञ्च चत्वारि हृदये तथा ।

त्रितयं करपादेषु पयोविपुवभक्रमात् ॥ ३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वोक्तप्रकार संक्रान्ति पुरुष बनाकर संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे उसके मस्तकमें छः नक्षत्र, मुखमें पांच नक्षत्र, हृदयमें चार नक्षत्र, प्रत्येक हाथमें तीन २ नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र स्थापन करे फल नीचे लिखते हैं ॥३॥

फलम् ।

मानं मूर्ध्नि मुखे वैरं हृदये सुखसम्भवः ।

दोः पदोर्दक्षयोर्भोगस्त्रासश्च वामयोः स्वभे ॥ ४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ जलविपुवका फल ज्योतिस्तत्त्वके अनुसार कहते हैं—मनुष्यका जन्म-नक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पडनेसे सन्मान होता है, इसी प्रकार मुखमें पडनेसे वैरता, हृदयमें, सुख, दहने हाथमें और दहने पैरमें भोग और संक्रान्ति पुरुषके बायें हाथमें और बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे प्रास होता है ॥ ४ ॥

अथोत्तरायणसंक्रमणनम् ।

शीर्षे पञ्चमुखे त्राणि हस्तयोश्च त्रयं त्रयम् ।

हृदि पञ्च शशी नाभौ गुदे च पादयो रसाः ॥

उत्तरायणभाज्ज्ञेयं स्वनक्षत्रस्थितैः फलम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार संक्रान्तिपुरुषको बनाकर उसके मस्तकमें उत्तरायण संक्रान्तिकालके नक्षत्रसे मस्तकमें पांच नक्षत्र, मुखमें तीन नक्षत्र, प्रतिहाथमें तीन २ नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, नाभिमें एक नक्षत्र, गुदांमें एक नक्षत्र और प्रत्येक पादमें तीन २ नक्षत्र रखे, अनन्तर मनुष्यका जन्मनक्षत्र जिस स्थानमें पडे उसको देखकर फल विचारना चाहिये ॥ ५ ॥

फलम् ।

शीर्षेथलाभो वदने सुखानि दक्षे करेऽङ्गुलौ हृदये च सौख्यम् ।

नाभौ शुभं वामकरेऽर्थनाशो गुह्ये भयं वामपदे प्रवासः ॥ ६ ॥

अर्थ—मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पडनेसे अर्थ लाभ सुखमें, दाहिने हाथमें, दाहिने पादमें और हृदयम सुख, नाभिमें मङ्गल, बायें हाथमें अर्थनाश, गुदामें भय और बायें पैरमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे प्रवास ( देशान्तरवास ) होता है ॥ ६ ॥

अथ दक्षिणायनसंक्रान्तिगणनम् ।

शीर्षे त्रीणि मुखे त्रीणि हृदये पञ्च हस्तयोः ।

अष्टौ पादद्वयेऽप्यष्टौ दक्षिणायनमक्रमात् ॥ ७ ॥

अर्थ—दक्षिणायन संक्रान्ति कालके नक्षत्रसे संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें तीन नक्षत्र, मुखमें तीन नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, दोनों हाथमें आठ नक्षत्र और दोनों चरणमें आठ नक्षत्र स्थापन करना चाहिये ॥ ७ ॥

फलम् ।

शीर्षे मानं मुखे विद्या हृदये वित्तसञ्चयः ।

प्रवासः स्यात्करे वामे भिक्षालाभश्च दक्षिणे ।

निष्फलं वामपादे च किञ्चिद्लाभश्च दक्षिणे ॥ ८ ॥

अर्थ—दक्षिणायनकी संक्रान्तिका फल ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मस्तकमें पडनेसे सन्मान होता है इसी प्रकार मुखमें विद्यालाभ, हृदयमें वित्तसञ्चय, बायें हाथमें प्रवास ( देशान्तरवास ) दाहिने हाथमें भिक्षाप्राप्ति, वाम पादमें निष्फल और दक्षिण पादमें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे किञ्चित् लाभ होता है ॥ ८ ॥

अथ विष्णुपदीसञ्चारगणनम् ।

ऋक्षे संक्रमणं यत्र विष्णुपद्यामुखे तु तत् ।

चत्वारि दक्षिणे बाहौ त्रीणि त्रीणि पदद्वये ॥ ९ ॥

चत्वारि वामबाहौ च हृदये पञ्च निर्दिशेत् ।

अक्ष्णोर्द्वयद्वयं योज्यं मूर्ध्नि द्वे चैकभं गुदे ॥ ११० ॥

इति च ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जिस नक्षत्रमें विष्णुपदी संक्रान्ति लगे उसी नक्षत्रको संक्रान्तिपुरुषके

मुखमें, उसके उपरान्त चार नक्षत्र दहिनी भुजामें, तीन २ नक्षत्र प्रत्येक पादमें चार नक्षत्र बायीं भुजामें, पांच नक्षत्र हृदयमें, दो २ नक्षत्र प्रत्येक नेत्रमें, दो नक्षत्र मस्तकमें और एकनक्षत्र संक्रान्ति पुरुषकी गुदामें स्थापन करै इस प्रकार ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है ॥ ९ ॥ ११० ॥

फलञ्च ।

रोगो भोगस्तथा मानं बन्धनं लाभ एवच । ( १ )

ऐश्वर्यं राजपूजा च अपमृत्युरिति क्रमात् ॥ ११ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ विष्णुपदी संक्रान्तिका फल ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं—मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पडनेसे रोग होता है, इसी प्रकार दहिने हाथमें जन्मनक्षत्र पडनेसे भोगकी वृद्धि होती है, दोनों चरणमें गमन वा मान, बायें हाथमें बन्धन, हृदयमें लाभ, दोनों नेत्रोंमें ऐश्वर्य, मस्तकमें राजपूजा और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे अपमृत्यु होती है ॥ ११ ॥

अथ पडशीतिसञ्चारगणनम् ।

मुखे चैकं करे वेदाः पादयुग्मे द्वयं द्वयम् ।

क्रोडे बाणास्तथा वेदाः करे सव्येतरेऽपि च ॥ १२ ॥

द्वयं द्वयं तथा नेत्रे मस्तके त्रितयं तथा ।

द्वयं चैव तथा गुह्ये पडशतियां स्वभे स्थिते ॥ १३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अथ ज्योतिषतत्त्वके अनुसार पडशीतिसंक्रान्तिकी सञ्चारप्रणाली कहते हैं—पडशीतिसंक्रान्ति कालका नक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें स्थापन करै उसके उपरान्त दूसरे नक्षत्रसे दहिने हाथमें चार नक्षत्र, प्रति चरणमें दो २ नक्षत्र, हृदयमें पांच नक्षत्र, बायें हाथमें चार नक्षत्र, प्रत्येक नेत्रमें दो २ नक्षत्र, मस्तकमें तीन नक्षत्र और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें दो नक्षत्र स्थापन करै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ फलम् ।

मुखे दुःखं करे लाभः पादयोर्भ्रमणं हृदि ।

कान्तास्याद्बन्धनं वामे हस्ते स्यात्स्त्रीयभे नृणाम् ॥ १४ ॥

सन्मानं नेत्रयोश्चैव अपमानञ्च मस्तके ।

गुह्ये चैव भवेन्मृत्युः पडशीतिफलश्रुतिः ॥ १५ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अब पडशीतिसंक्रान्तिका फल कहतेहैं-ज्योतिस्तत्त्वमें लिखाहै कि, मनुष्यका जन्मनक्षत्र संक्रान्तिपुरुषके मुखमें पडनेसे दुःख होताहै, इसी प्रकार दाहिने हाथमें पडनेसे लाभ, दोनों चरणमें भ्रमण, हृदयमें स्त्रीलाभ, बायें हाथमें बन्धन, दोनों नेत्रमें सन्मान, मस्तकमें अपमान और संक्रान्तिपुरुषकी गुदामें मनुष्यका जन्मनक्षत्र पडनेसे मृत्यु होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ नाडीनक्षत्रेपापग्रहसंक्रमणफलम् ।

नाडीनक्षत्रादिवसे रविभौमशनैश्चराः ।

संक्रान्तिं यस्य कुर्वन्ति तस्य क्लेशोऽभिजायते ॥ १६ ॥ ( क )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब नाडी नक्षत्रमें पापग्रहोंकी संक्रान्तिका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहतेहैं-यदि सूर्य, मंगल, वा शनैश्चर किसी मनुष्यके नाडी नक्षत्रगत होकर अथवा नाडी नक्षत्रके दिनमें एक राशिसे दूसरी राशिमें गमनकरें तो उस मनुष्यको अत्यन्त क्लेश होताहै ॥ १६ ॥

अथ नाडी नक्षत्रेण पापग्रहसंक्रमणस्नानम् ।

गोमूत्रसर्पपैः स्नानं सर्वापधिजलेन च ।

ग्रहं सम्पूज्य तं दद्याद्विप्राय कनकोत्तमम् ॥ १७ ॥ ( ख )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, नाडी नक्षत्रके दिनमें पापग्रहोंका सञ्चार होनेसे गोमूत्र, सरसों और सर्वापधियुक्त जलसे स्नानकरै और जो ग्रह नाडी नक्षत्रगत हुआहो उसकी पूजा करै और ब्राह्मणोंको सुवर्ण दान करके देय तो दोष दूर हो जाताहै ॥ १७ ॥

अथ जन्मनक्षत्रे रविसंक्रान्तिफलम् ।

यस्य जन्मक्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् ।

( क ) पापग्रहसञ्चारेण नाडीदोषमाह-नाटीति । संक्रान्तिम् । राशिसञ्चारमित्यर्थः ।

( ख ) एतत्प्रतीकारमाह-गोमूत्रेति । मुराभासीत्यादिना वक्ष्यमाणसर्वापधयः । यस्य ग्रहस्य प्रतीकारस्तं ग्रहं सम्पूज्येत्यन्वयः ॥ इति ।

तन्मासाभ्यन्तरे तस्य रोगक्लेशधनक्षयाः ॥ १८ ॥ ( ग )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—पूर्वमें जो नाडी नक्षत्रमें सूर्यके सञ्चारका दोष सामान्यप्रकारसे कहा है अब केवल नाडी नक्षत्रमें सूर्यके सञ्चारका विशेष दोष ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं— यदि किसी मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें प्राप्त होकर सूर्य एकराशिसे दूसरी राशिमें गमन करे तो उस सौर मासमें इस मनुष्यको रोग, क्लेश और धनक्षय होता है ॥ १८ ॥

अथ जन्मनक्षत्रेण रविशान्तिस्नानम् ।

तगरसरोरुहपत्रे रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः ।

स्नानं जन्मर्क्षादिने रविसंक्रान्ती नृणां शुभदम् ॥ १९ ॥ ( घ )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—जन्मनक्षत्रमें संक्रान्तिके लगनेसे उसका प्रतीकार ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं—जिस मनुष्यके जन्मनक्षत्रमें संक्रान्ति होय तो तगर पुष्प, पद्मपत्र, हरिद्रा सफेद सरसों और लोध्रयुक्त जलमें स्नान करनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाता है ॥ १९ ॥

अथ गोचरेऽशुभवौ स्नानम् ।

मञ्जिष्ठात्वय पत्राङ्गं कुंकुमं रक्तचन्दनम् ।

एतत्पूर्णेस्ताम्रकुम्भैः स्नानमर्काविशुद्धये ॥ २० ॥ ( ङ )

अर्थ—पूर्वोक्त गोचरमें सूर्यके अशुभ होनेसे उसके दोषकी शान्तिके अर्थ स्नान करने हैं—मंजीठ, तेजपात, केसर और लालचन्दन इत्यादि द्रव्ययुक्त जलको ताँबेके कलसोंमें भरकर उनके द्वारा स्नान करनेसे सूर्यका गोचरजनक दोष नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अपिच ।

धनूरवीजसलिलैः स्नायात्संक्रान्तिशान्तये ।

तथा सर्वोपधीभिश्च विष्णुमंत्रांश्च संजपेत् ॥ २१ ॥

इति संवत्सरप्रदीपे ।

( ग ) पूर्वी नाडीनक्षत्रे रविसञ्चारे सामान्यतो दोष उक्तः । अधुना तु केवलजन्म नाडीनक्षत्रे विशेषदोषमाह—यस्येति । जन्मर्क्षे यत्र पुमान् जात इत्यर्थः ।

( घ ) एतत्प्रतीकारमाह—तगरेति । रजनी हरिद्रामात्रमिति ।

( ङ ) एतत्प्रतीकारमाह—मञ्जिष्ठेति । पत्राङ्गं तेजपत्रं तेन च, मञ्जिष्ठादिद्रव्येण पूर्णस्ताम्रकुम्भैः कृतं स्नानं रविदोषोपशान्तये रव्यादित्यर्थः ।



अर्थ-सम्बत्सरप्रदीमें लिखा है कि, धतूरेके बीज और सर्वौषाधियुक्त जलसे स्नान करके विष्णुका मन्त्र जपनेसे संक्रान्तिजनक दोष दूर होजाता है ॥ २१ ॥

दिवामेपसंक्रान्तौ रात्रौ तुलासंक्रान्तौ तत्फलम् ।

यदाह्नि मेपसंक्रान्तिस्तुलासंक्रमणं निशि ।

तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः ॥ २२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, दिनमें मेपकी संक्रान्ति ( महाविषुवसंक्रान्ति और रात्रिमें तुलाकी संक्रान्ति ( जलविषुवसंक्रान्ति ) के होनेसे उस वर्षमें प्रजाकी धनधान्यादिके साथ वृद्धि होती है ॥ २२ ॥

शानिमंगलवारे महासंक्रमणफलम् ।

कुजार्कशनिवारेषु महासंक्रमणं यदा ।

तदा भवेत्प्रजानाशोदुर्भिक्षादिभयं महत् ॥ २३ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें लिखा है कि, मंगल, रवि वा शनिवारमें यदि महासंक्रमण अर्थात् मेपकी संक्रान्ति होय तो उस वर्षमें प्रजाका नाश और दुर्भिक्षादि अनेक प्रकारके भय होते हैं ॥ २३ ॥

इतिरविसंक्रान्तिकथनम् ।

अथ ग्रहणम् ।

भत्रिपादान्तरे ( १ ) राहोः केतोर्वा संस्थितो रविः ।

चतुष्पादान्तरे चन्द्रस्तदा संभाव्यते ग्रहः ॥ २४ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ग्रहण किस प्रकारसे होता है अब उसको ज्योतिषतत्त्वके अनुसार कहते हैं-राहु वा केतु जिस राशिमें स्थित होय तो उस राशिघटक नक्षत्रके त्रिपादमें सूर्यके होनेसे सूर्यग्रहण, और चतुष्पादमें चन्द्रमाके होनेसे चन्द्रग्रहण होता है ॥ २४ ॥

अथ चन्द्रग्रहणम् ।

यस्मिन्नक्षत्रे रविस्तस्माच्चतुर्दशगतः शशी ।

पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुणा ग्रस्यते शशी ॥ २५ ॥ ( २ )

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-अब तिथितत्त्वके अनुसार चन्द्रग्रहण कहते हैं-जिस नक्षत्रमें सूर्य होय

( १ ) भत्रिपादान्तरे नक्षत्रस्य नक्षत्रयोर्वात्रिपादाभ्यन्तरे । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् । ( २ ) एतदपि पूर्ववचनानुसारेण तच्चतुष्पादाभ्यन्तरे सति शेषं तस्मात्तमारभ्य तत्परतो वा इत्यर्थः ।

उस नक्षत्रसे चौदहवें नक्षत्रमें चन्द्रमाके होनेसे पूर्णिमा और प्रतिपदाकी सन्धिकालमें राहु चन्द्रमाको ग्रास करता है अर्थात् चन्द्रग्रहण होता है ॥ २५ ॥

सूर्यग्रहणम् ।

कृष्णपक्षे तृतीयायां मासर्क्षे ( ३ ) यदि जायते ।

ततस्त्रयोदशे सूर्ये राहुणा ग्रस्यते रविः ॥ २६ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, कृष्णपक्षकी तृतीयामें यदि मासनक्षत्र ( ४ ) होय और उसके तेरहवें नक्षत्रमें यदि सूर्य होय तो अमावस्या और प्रतिपदाकी सन्धिकालमें सूर्यग्रहण होता है ॥ २६ ॥

अथ नवांशविशेषे वर्षणादिकथनम् ।

रविभौमनवांशे तु निरभ्रं ग्रासमादिशेत् ।

बुधसौरिनवांशे तु मलिनं क्षुद्रवर्षणम् ॥ २७ ॥

गुरोरंशकमासाद्य दृश्यते स बलाहकः ।

शशिशुकनवांशे तु प्रावृद्धकाले महज्जलम् ॥ २८ ॥

अन्यत्रा ( ५ ) व्यक्तभूतौ तौ दृश्येते च्छादितास्वरौ ॥ २९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्य और मङ्गलके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाशमण्डल मेघशून्य निर्मल होता है अतएव ग्रहण मली-भौतितसे दिखाई देता है, बुध और शनिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाता है और उसके द्वारा अल्पवृष्टि होती है, बृहस्पतिके नवांशमें ग्रहण होनेसे आकाश मेघावृत होजाता है और उसके द्वारा ग्रहण नहीं दीखपडता है, चन्द्रमा और शुक्रेके नवांशमें वर्षाऋतुमें ग्रहण समयमें अत्यन्त वृष्टि होती है और वर्षाभिन्न ऋतुमें चन्द्रमा और शुक्रेके नवांशमें ग्रहण

( ३ ) मासर्क्षे कार्तिकादी कृत्तिकादि “अन्वयौपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयी फाल्गुनश्च त्रिभौ मतः । शेषमासा द्विभा ज्ञेयाः कृत्तिकादिव्यवस्थया,” इति मलमासतत्त्वधृतवचनात् । एतदपि भविष्यद्वाक्ये साति ज्ञेय राहोः पादभोगश्च मासद्वयेन ।

( ४ ) मासनक्षत्र कार्तिकमें कृत्तिकादि, वैशाखमें विशाखादि, ज्येष्ठमें ज्येष्ठादि-करके जानना चाहिये ।

( ५ ) अन्यत्र वर्षेतरकाले तौ चन्द्रार्का इति त्रियित्तत्त्वे स्मार्ताः ।

होनेसे मेघद्वारा आकाश आच्छादित होजाताहै और आकाशक आच्छादित होजानेसे ग्रहण नहीं दीख पडताहै ॥ २७-२९ ॥

अथ ग्रहणसमये राहुवर्णफलम् ।

श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडाश्च निर्दिशेद्राहौ ।

अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशनवृत्तीनाम् ॥ १३० ॥

इति वराहमिहिरः ।

अर्थ-वराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका श्वेतवर्ण दीखपडनेसे सुभिक्ष और ब्राह्मणजातिकी पीडा होती है, और राहुका अग्निवर्ण दीखपडनेसे अग्निकाभय और ब्राह्मणोंकी पीडा होतीहै ॥ १३० ॥

हरिते रोगोऽनुतापः सस्यानामीतिभि ( ❀ ) श्व विध्वंसः ।

कपिले शीघ्रगतत्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ३१ ॥

इति वराहमिहिरः ।

अर्थ-पीतवर्ण दीख पडनेसे मनुष्यको रोग और अनुताप होताहै और अति-वृष्टि, अनावृष्टि प्रभृतिसे सस्यका नाश होताहै । कपिलवर्ण दीखपडनेसे शीघ्र चलनेवाले मनुष्योंका और म्लेच्छोंका नाश होताहै और दुर्भिक्ष होताहै इस प्रकार वराहमिहिराचार्यने कहाहै ॥ ३१ ॥

अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षं वृष्टयो विहगपीडा च ।

धूम्राक्षे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिश्च ॥ ३२ ॥

इति वराहमिहिरः ।

अर्थ-वराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, ग्रहणसमय राहुका अरुणवर्णके समान वर्ण दीख पडनेसे दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि और पाक्षियोंका नाश होताहै और धूम्रवर्ण दीखनेसे मङ्गल, सुभिक्ष और अल्पवृष्टि होतीहै ॥ ३२ ॥

कपोतारुणकपिले श्यामाभे च क्षुद्रयं विनिर्दिशेत् ।

कपोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ३३ ॥

इति वराहमिहिरः ।

अर्थ-राहुका वर्ण ग्रहणके समय कबूतरके समान तथा अरुणवर्ण कपिलवर्ण और श्यामवर्ण होनेसे क्षुधाका भय होताहै तिनमें कपोतके समान वर्ण होनेसे और कृष्णवर्ण होनेसे शूद्रोंको रोगभय होताहै ॥ ३३ ॥

( • ) इतपश्च "अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः सगाः । प्रत्यासन्नास्तु राजानः पडेते इतयः स्मृताः" ।

विमलकमलपीताभो वैश्यध्वंती भवेत्सुभिक्षाय ।  
साच्चिन्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे च युद्धानि ॥ ३४ ॥

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ—राहुका निर्मल पद्मकी समान वा पीतवर्ण ग्रहणसमयमें दीखनेसे वैश्योंका नाश और सुभिक्ष होताहै । अत्यन्त तेजस्वी राहु देखपडनेसे आग्निका-मय होताहै और गेरूके समान राहुका वर्ण दीखनेसे पृथिवीमें युद्ध होताहै ॥ ३४ ॥

दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे चापि विनिर्दिशेन्मरणम् ।

अशनिभयसम्प्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः ॥ ३५ ॥ ( क )

इति बराहमिहिरः ।

अर्थ—बराहमिहिराचार्यने कहाहै कि, राहुका दूर्वादलके समान श्यामवर्ण व हारिद्रावर्ण ग्रहणके समयमें देखपडनेसे जीवोंका नाश होताहै पाटलिपुष्पके वर्णकी समान राहु देख पडनेसे वज्राघातसे अनेक जीवोंका नाश होताहै ॥ ३५ ॥

अथ ग्रहणदर्शननिषेधः ।

सप्ताष्टजन्मशेषेषु चतुर्थे दशमे तथा ।

नवमे च तथा चन्द्रे न कुर्याद्ब्राह्मदर्शनम् ॥ ३६ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ—मनुष्यको जन्मराशिसे किस २ राशिमें ग्रहण न देखना चाहिये उसको राजमार्तण्डके अनुसार कहते हैं—जन्मचन्द्रमा और जन्मराशिसे सातवें, आठवें, बारहवें, चौथे, दशवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे राहुको न देखना चाहिये ॥ ३६ ॥

आपेच ।

जन्मभे जन्मराशौ च षष्ठाष्टमगते तयोः । ( ख )

चतुर्थे द्वादशे चन्द्रे न कुर्याद्ब्राह्मदर्शनम् ॥ ३७ ॥

आसदर्शनमात्रेण चार्थहानिर्महद्भयम् ।

जायते नात्र सन्देहस्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

इति वासप्रः ।

अर्थ—वासिष्ठने कहा है कि, मनुष्यके जन्मतारासे सातवें तारामें और जन्म-

( क ) पतानि वचनानि वृत्त्यचिन्तामणी पृतानि ।

( ख ) जन्मनक्षत्रापेक्षया षष्ठे ज्योतिषे सप्तमतारायाम् निधनेऽपि चेत्येकवाक्यत्वात् ।  
इति स्मार्तनाभिहितम् ।



प्रकारान्तरश्च ।

यस्मिन्निजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ ।

तज्जातीनां भवेत्पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः ॥ ४१ ॥

इति गर्गः ।

अर्थ—गर्गने कहा है कि; मनुष्यके त्रिजन्मनक्षत्रमें ( × ) चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण होय और वह मनुष्य यदि ग्रहणके दोषकी शान्ति न करै तो सजातिके साथ पीडित होता है ॥ ४१ ॥

आपिच ।

वैनाशिक ( १ ) ऋक्षे दृष्टं ग्रहणं सुधांशुभास्करयोः ।

जनयति रोगं बहुधा क्लेशं वित्तक्षयं चाशु ॥ ४२ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ—तिथितत्त्वमें लिखा है कि, वैनाशिक अर्थात् जन्मनक्षत्रसे सातवें तारामें यदि कोई मनुष्य चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणको देखे तो उस मनुष्यको रोग, अनेकप्रकारके क्लेश और उसके धनकी हानि शीघ्रही होती है ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ।

सप्ताष्टजन्मशोषाङ्कचतुर्थदशमे विधौ ।

त्रिजन्मनि त्रिनिधने न कुर्याद्ब्राह्मदर्शनम् ॥ ४३ ॥

दृष्टस्तु जनयेद्भ्रीर्तिं क्लेशं रोगं घनक्षयम् ।

दैवात्तत्र विधुं दृष्ट्वा दद्यात्स्वर्णं द्विजातये ॥ ४४ ॥

इति राजमार्तण्डे वचनान्तरम् ।

अर्थ—राजमार्तण्डग्रन्थके वचनान्तरमें भी लिखा है कि, जन्मचन्द्रमामें वा जन्मचन्द्रमासे सातवें आठवें नववें चौथे वा दशवें चन्द्रमामें त्रिजन्म (अ) और निधन

( × ) त्रिजन्मनक्षत्र पूर्वमें कहचुके हैं ।

( १ ) वैनाशिकऋक्षे त्रयोविंशतिनक्षत्रे इति केचित् । वस्तुतस्तु वैनाशिकपदं निधनतापर निधनेऽपि चेत्येकवान्यत्रादिनाशिकपदस्य गणने विपत्करादिसाहचर्यात् त्रयोविंशतिनक्षत्रस्य प्रत्यग्पदप्राप्तादापि सप्तमतारायां पठितत्वाच्च यथा “ विपत्करप्रत्यरिसङ्घितेषु वैनाशिकसंशु कृतं हि कर्म । सर्वं नृणां निष्फलमेव तस्मात्कृतेऽपि तत्रास्ति शुभं न किञ्चिद् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनोक्तं दृष्टञ्च ।

( अ ) जन्मनक्षत्र और जन्मनक्षत्रसे दशवें नक्षत्रना और उद्गीसर्वं नक्षत्रका नाम त्रिजन्मनक्षत्र है ।

नक्षत्रमें ( आ ) राहुको न देखे जो मनुष्य उपरोक्त निषिद्ध राश्यादिमें राहुको देखते हैं उनको भय, क्लेश, रोग और धनका क्षय ( नाश ) होता है देवयोगसे देखनेसे ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके देवै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

जन्माष्टजायान्त्यखधर्म (इ) संस्थेनिशाकरे जन्मसु तारेकासु ।

दृष्ट्वा तमश्चन्द्रमसं (ई) प्रयत्नादभ्यर्च्य दद्यात्कनकं द्विजाय ॥ ४५ ॥

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें कहा है कि, मनुष्यकी जन्मराशि और जन्मराशिसे आठवें सातवें बारहवें दशवें वा नववें स्थानमें चन्द्रमाके स्थित होनेसे अथवा जन्म-तारामें यदि ग्रहणको देखे तो यत्नपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणको सुवर्ण दान करके देय ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहणगतनाडीनक्षत्रफलम् ।

ग्रहणं रविचन्द्रमसोर्नाडीनक्षत्रवासरे यस्य ।

अन्नाद्धाभ्यन्तरतो दुष्टा नाड्यः समस्ताःस्युः ॥ ४६ ॥ (उ)

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब मनुष्यकी नाडीनक्षत्रमें ग्रहण होनेसे उसका फल ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार कहते हैं-जिन नक्षत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण होय और वह नक्षत्र यदि मनुष्यकी जन्मादिनाडीके मध्यमें कोईभी एक नाडी होय तो छः महीनेके मध्यमें इस मनुष्यकी सभी नाडी दूषित हो जाती हैं ॥ ४६ ॥

ग्रहणगतनाडीनक्षत्रदोषोपशमसाम्नायम् ।

ग्रहणग्रहपीडितनाडीनक्षत्रदोषोपशमनाय ।

शतशतपुष्पैः स्नायात्फलिनीफलचन्दनोशीरैः ॥ ४७ ॥ (ऊ)

अर्थ-जिस मनुष्यके नाडीनक्षत्रमें ग्रहण होय उसके दोषशान्तिके अर्थ शत

( आ ) जन्मनक्षत्रसे सातवें, सोलहवें और पच्चीसवें नक्षत्रको त्रिनिघन कहते हैं ।

( इ ) जायान्त्यखधर्माः मत्तम द्वादश दशम नवमराशयः ।

( ई ) उपक्रमे सुधाशुभारुरयोरिति दर्शनाच्चन्द्रमसामिति सूर्यस्याप्युपलक्षणमिति स्मार्त्ताः ।

( उ ) ग्रहणपीडितानां तेषामेव नाडीनक्षत्रमशुभफलमाह-ग्रहणमिति । नाडी-समूहो दोषः । नाडीनामलुरूपमशुभफलमिति तच्च पूर्वमेव लिखितमास्ते ।

( ऊ ) शतपुष्पा सोषा इति ख्याता फलिनी प्रियंगुः फल जातोफलम् उशीर खस-मूलम् । इति ज्योतिषतत्त्वे स्मार्त्तैर्न व्याख्यातम् एतदप्रतीकारमाह-ग्रहणमिति । शत-

पुष्प ( सोएका शाक वा सौंफ ) त्रियङ्गु ( पीपल ) जातिफल ( जायफल ) चन्दन और खसकी जड इन सब द्रव्योंको जलमें डालकर उसके द्वारा स्नान करनेसे ग्रहणगत नाडीनक्षत्रका दोष दूर हो जाता है ॥ ४७ ॥

अथ सूर्यग्रहणे विशेषः ।

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं पूर्णं वा गव्यसर्पिषा ।

भास्करग्रहणे दद्यान्नाडीदोषोपशान्तये ॥ ४८ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, सूर्यग्रहणमें नाडीदोषकी शान्तिके निमित्त ताम्र पात्रमें तिल भरकर अथवा गौका घृत भरकर दान करना चाहिये ॥ ४८ ॥

अथ चन्द्रग्रहणे विशेषः ।

घृतकुम्भोपरि निहितं शङ्खं नवनीतपूरितं दद्यात् ।

नाड्यादिदोषशान्त्यै द्विजाय दोषाकरग्रहणे ॥ ४९ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—चन्द्रग्रहणमें नाडीका दोष दूर करनेके अर्थ गौका घाँ भरकर कुम्भमें उसके ऊपर मक्खनसे भरकर शङ्ख धरके आनन्दके साथ ब्राह्मणको दान करके देवे ॥ ४९ ॥

अथ स्वराश्यादौ ग्रहस्थिते ग्रहणफलम् ।

यस्य राशौ ग्रहाः पञ्चाथवा सप्त नराधिप ।

ग्रहणं चन्द्रसूर्यस्य ग्रहैर्वाष्टमसांस्थितैः ॥ १५० ॥

बलिदानं प्रकर्त्तव्यं मातृणां पूजनं हितम् ।

सूर्यस्याभ्यर्चनं कार्यं शिवस्याशुभनाशनम् ॥ ५१ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, यदि किसी मनुष्यकी जन्मराशिमें पांच वा सात ग्रह हों अथवा आठवें स्थानमें ग्रह हों और उस समय चन्द्र वा सूर्यग्रहण

—पुष्पं सोपाशाकमिति प्रसिद्धं फलनीफलं त्रियङ्गुफलमित्यर्थः । अन्यच्च राजमार्तण्डे-  
उक्तं यथा—“गव्यपयोयुट्पुष्पं ताम्रमु दधि पायस क्रमेणाह । तरुणद्विजाय दद्यादनिष्ट-  
नाडीविशुष्यर्थम् । ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णम्” इत्यादि । घृतकुम्भोपरि निहितमित्यादि ।  
एष एव प्रतीकारो ग्रहणसमये ग्रहणानन्तरं वा कार्यः । न तु प्राक् यतः प्रतीकारो नेमि-  
स्तिक एव निमित्तानन्तरञ्च नेमित्तिकं भूतरथैव निमित्तत्वात् । एवञ्च यत्र यत्र प्रतीकार  
उक्तस्तत्र तत्र दोषकारणस्य पश्चादेव कर्त्तव्य इत्यर्थः ।



होय तो मातृगणकी पूजा और बलिदान करै और दोषशान्तिके अर्थ सूर्य और शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥ १५० ॥ ५१ ॥

अथ ग्रहणफलम् ।

ग्रस्ताबुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।  
सर्वग्रस्तौ च दुर्भिक्षमरकदौ पापसंहृष्टौ ॥ ५२ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-अब बराहसंहिताके अनुसार ग्रहणका फल कहते हैं-ग्रस्तोदय वा ग्रस्ता-स्त होनेसे शरत्कालके धान्यका और राजाका अमङ्गल होता है, पापग्रहोंकी दृष्टिमें सर्वग्रस्त होनेसे दुर्भिक्ष और मरकी आदि होती है ॥ ५२ ॥

मुक्ते सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽर्थसंक्षयं कुरुते ।

नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रचुरनृपमृत्युम् ॥ ५३ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें यदि पांशुवृष्टि होय तो धनका नाश होता है और कुहिर होनेसे रोगका भय होता है और ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें भूकम्प होनेसे राजाका अमङ्गल होता है ॥ ५३ ॥

उल्कामान्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम् ।

स्तनितं गर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ५४ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें उल्कापात होनेसे राजमन्त्रीका नाश होता है, अनेक प्रकारके मेघोंका वर्ण आकाशमें देख पड़नेसे प्राणियोंको अत्यन्त भय होता है, मेघोंके गर्जनसे गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ गिरजाता है आर बिजली चमकनेसे राजाको पीडा होती है ॥ ५४ ॥

परिवेपो रूक्पीडां दिग्दाहो नृपवधञ्च साग्निभयम् । ( १ )

रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं घत्ते ॥ ५५ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें परिवेप अर्थात् चन्द्रमण्डल देखपड़नेसे प्राणियोंको दुःख और पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राजाके धनका नाश और आगिका भय होता है और रूक्ष वायुके चलनेसे चोरोंका भय होता है ॥ ५५ ॥

( १ ) "वातेन मण्डलीभूतःसूर्यचन्द्रमसोः करः । मालामो व्योम्नि तनुते परिवेपः प्रकीर्तितः" इति ग्रन्थान्तरे ।

निर्घातः सुरचापो दण्डश्च क्षुद्रयं स्वपरचक्रम् । ( २ )  
 ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तथैव निर्दिष्टः ॥ ५६ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ—ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें निर्घात(आकाशजनित अपशब्द) सुननेसे, इन्द्रका धनुष और दण्ड देखपडनेसे प्राणियोंकी क्षुधामें कष्ट होता है स्वचक्र और परचक्रका मय होताहै और ग्रहोंका युद्ध होनेसे राजाओंका युद्ध होताहै ॥ ५६ ॥

अथ ग्रहणदोषप्रतिप्रसवकथनम् ।

अविकृत ( ३ ) सलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् ।  
 यज्ञाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ॥ ५७ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ—ग्रहणदोषके प्रतिप्रसव कहते हैं—वराहसंहितामें लिखाहै कि,ग्रहणके उपरान्त सात दिनके मध्यमें अविकृत अर्थात् करकापात और झटिकादि न होकर भेषसे वृष्टि होनेसे पृथिवीमें बहुत धान्य होकर सुभिक्ष होताहै और ग्रहणजनक जो दोष हैं उनका नाश होजाताहै ॥ ५७ ॥

अथ ग्रहणे भोजनव्यवस्था ।

चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहानि भार्गव ।  
 ग्रहणन्तु भवेत्तत्र तत्पूर्वा भोजनक्रियाम् ॥ ५८ ॥  
 नाचरेत्सग्रहे चैव तथैयास्तमुपागते ।  
 यावत्स्यान्नोदयस्तस्य नाश्रीयात्तावदेव तु ॥ ५९ ॥  
 सुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वा परेऽहनि ॥ १६० ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ—अब ग्रहणमें भोजनकी व्यवस्था कहते हैं—विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहण जिस दिन होय उस दिन ग्रहणके पूर्वमें वा ग्रहणके समय भोजन न करना चाहिये और ग्रस्तास्त होनेसे जयतक उदय दीखपडे तयतक भोजन न करे दूसरे दिन उदयको देखकर स्नान करके भोजन करना चाहिये ॥ ५८-१६० ॥

( २ ) “यदान्तरिक्षे बलवान्मारुतो महताहतः । पतत्यधो यो निर्घोषो निर्घातः स उदाहृतः ” इति ग्रन्थान्तरे ।

( ३ ) अविकृतोति करकादिराहितैर्यः इति त्रितयित्तये ।

आपिच ।

चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्धयति ।

तास्मिन्नेव दिने ( क ) भुक्त्वा त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६१ ॥

इति देवलः ।

अर्थ-देवलने कहा है, चन्द्रग्रहणके समय भोजन करनेसे प्राजापत्य प्रायश्चित्त करना चाहिये, ग्रहणके दिन निषेद्ध कालमें जो मनुष्य भोजन करे तो वह त्रिरात्र उपवास करनेसे शुद्ध होता है ॥ ६१ ॥

अन्यच्च ।

आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥ ६२ ॥ ( ख )

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वमें कहा है कि, रविवारकी संक्रान्तिमें तथा चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें पुत्रवान् गृहस्थ मनुष्यको पारणा और उपवास न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

अथ ग्रहणात्पूर्वमोजनानिषेधमाह ।

सूर्यग्रहे तु नाश्रीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् ।

चन्द्रग्रहे तु यामास्त्रीन्बालवृद्धातुरौषिना ॥ ६३ ॥

इति बृहद्गीतमः ।

अर्थ-अब गौतममुनिके वचनानुसार ग्रहणके पूर्वमें भोजनका निषेध कहते हैं-बालक, वृद्ध और रोगी मनुष्यको छोड़कर अन्य मनुष्य सूर्यग्रहणके चार ग्रह और चन्द्रग्रहणके तीन ग्रह पूर्वसे भोजन न करे ॥ ६३ ॥

चन्द्रस्य ग्रस्तोदये विशेषमाह ।

ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत् ॥ ६४ ॥

इति बृहद्दक्षिणः ।

अर्थ-चन्द्रमाके ग्रस्तोदयमें विशेष कहते हैं-बृहद्दक्षिणने कहा है कि, चन्द्रमाके ग्रस्तोदय होनेसे एकदिन पहिलेसे भोजन न करना चाहिये ॥ ६४ ॥

( क ) तास्मिन्नेव दिने । तद्विषयीयनिषिद्धकालाभ्यन्तरे । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तैन व्याख्यातम् ।

( ख ) अत्र वचने उपवासनिषेधात्पुत्रिणो गृहस्थस्यापि ग्रस्तास्तेऽपि नोपवासः किन्तु ग्रहणानन्तरं पूर्वं वा निर्दोषकाले तेन किञ्चिद्भक्ष्यमिति सवत्सरप्रदीपः ।

अथ बालवृद्धातुरविषये ।

सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् ।

अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने चैत्र संगवे ।

सङ्गवे ( १ ) ग्रहणं चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया ॥ ६५ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-बालक, वृद्ध और रोगीके विषयमें मार्कण्डेय मुनिने कहा है कि, सायं-कालमें ग्रहण होनेसे बालक, वृद्ध और रोगी मनुष्यको अपराह्न समयमें भोजन न करना चाहिये, इसी प्रकार अपराह्नमें ग्रहण होनेसे मध्याह्नमें, मध्याह्नमें होनेसे सङ्गवमें और सङ्गवमें ग्रहण होनेसे प्रातःकालमें भोजन न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ ग्रहणादौ स्नानमाह ।

संक्रमे ग्रहणे चैव न स्नायाद्यस्तु मानवः ।

सप्तजन्मसु कुष्ठी स्यादुःखभागी च सर्वदा ॥ ६६ ॥

इति बृहद्वासिष्ठः ।

अर्थ-ग्रहण संक्रान्ति आदिमें स्नानकी आवश्यकता कहते हैं-बृहद्वासिष्ठने कहा है कि, जो मनुष्य संक्रान्तिमें और ग्रहणके निमित्त स्नान नहीं करते हैं-वे सातजन्मपर्यन्त कोठी होते हैं और सदा दुःखी रहते हैं ॥ ६६ ॥

अपरञ्च ।

सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने ।

स्नानमात्रन्तु कर्त्तव्यं दानश्राद्धविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ ( क )

इति सवत्सरप्रदीपः ।

अर्थ-संवत्सरप्रदीपमें कहा है कि, जननाशौच वा मरणाशौचके समय यदि ग्रहण होय तो उसको देखकर अवश्य स्नान करना चाहिये, किन्तु जनन, मरण वा ग्रहणनिमित्तक दान और श्राद्ध नहीं करना चाहिये ॥ ६७ ॥

अथ राहुदर्शने सूतककथनम् ।

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।

स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

इति त्रिथितत्त्वे ।

अर्थ-अत्र त्रिथितत्त्वके अनुसार राहु देखनेका अशौच कहते हैं-राहुके देख-  
( १ ) " प्रातःकाली मुहूर्त्ताधीन्सङ्गवस्नापदेव तु । मध्याह्नधियग्रहर्त्तः स्यादपराह्न-  
स्ततः परम् । सायाह्नाधिसुहर्त्तः स्यात् " इत्यादि ।

( ५ ) अनाशौचेऽपि स्नान कर्त्तव्यं न श्राद्धादि । इति स्मार्त्तनोक्तम् ।

नेसे सभी वर्णके मनुष्योंको अशौच होता है, अतएव स्नान करके कर्म करे और पूर्वके पक्वान्नको परित्याग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

अथ ग्रहणमुक्तस्नानम् ।

ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तो सौतिकं स्मृतम् ।

तयोः सम्पत्तिमात्रेण उपस्पृश्य क्रियाक्रमः ॥ ६९ ॥

इति ब्रह्मांडपुराणे ।

अर्थ-ब्रह्माण्डपुराणें लिखा है कि, ग्रहण होनेसे मृताशौच होता है और ग्रहणमुक्त होनेसे जननाशौच होता है, अतएव ग्रहणके उपरान्तमें स्नान करके क्रिया करनी चाहिये ॥ ६९ ॥

अथ ग्रहणादी पर्युपितान्नवर्जनकथनम् ।

प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं ग्रहे पर्युपितञ्च यत् ।

दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ १७० ॥

इति स्मृती

अर्थ-स्मृतिमें कहा है कि, प्रेतश्राद्धके पात्रका शेष अन्न, ग्रहणसमयका अन्न तथा घरके स्वामी और स्वामिनीकी भोजनथालीका बचाभया अन्न कभी न खाना चाहिये ॥ १७० ॥

अथ वैधग्रहणदर्शनफलम् ।

चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे ।

अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्यकै विशेषतः ॥ ७१ ॥

इति मार्कण्डेयः ।

अर्थ-अब वैधग्रहण देखनेका फल कहते हैं-मार्कण्डेयमुनिने कहा है कि, चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणकी कोई मनुष्य देखे तो उसका अक्षय पुण्य होता है, विशेषतः सूर्यग्रहणके देखनेसे अधिक पुण्य होता है ॥ ७१ ॥

अथ वैधतरग्रहणदर्शननिषेधः ।

तेले जले तथा वक्रमादर्शे च मलान्विते ।

न पश्येन्न तथा पश्येद्दुपरक्तं दिवाकरम् ॥ ७२ ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरे ।

अर्थ-अब विष्णुधर्मोत्तरग्रन्थके वचनानुसार वैधतर ग्रहण देखनेका निषेध

कहते हैं-तेलमें, जलमें और मलयुक्त दर्पणमें मुखको न देखें और सूर्य चन्द्रका ग्रहणभी न देखना चाहिये ॥ ७२ ॥

इति ग्रहणम् ।

अथ कूर्मादिचलनम् ।

मनि कुलीरे मकरे च कूर्मः

सिंहे तुलायां मिथुने फणीशः । ( × )

कुम्भे ( १ ) धनुःकन्येकयोर्धरित्री

मेपे वृषाल्योर्दिग्भिश्चलन्ति ॥ ७३ ॥ ( २ )

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अब भूकम्पका विषय वर्णन करते हैं-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, मनि, कर्क और मकर लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म ( कच्छप ) विचलित होते हैं, इसी प्रकार सिंह तुला और मिथुन लग्नमें नाग ( अनन्त ) कुम्भ, धन और कन्या लग्नमें पृथिवी और मेप, वृष और वृश्चिक लग्नमें दिग्गजगण विचलित होते हैं ॥ ७३ ॥

तस्य फलम् ।

कच्छपे चलिते मृत्युर्हुर्भिक्षमथ पन्नगे ।

कुशलं ( ३ ) सर्वजन्तूनां पृथिव्याश्च गजेऽपि च ॥ ७४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, कच्छपके चलायमान होनेसे अति मृत्यु होती है इसी प्रकार नागमें हुर्भिक्ष, और पृथिवी तथा हाथियोंके चलायमान होनेसे प्राणियोंका मद्दल होता है ॥ ७४ ॥

अन्यच्च ।

कीटे मीनपृगेद्रयोर्पदि मही कूर्मो ध्रुवं कम्पते

कन्यायां मिथुने भुजङ्गमपतिर्मेपे वृषे दन्तिनः ॥

( × ) ' कुम्भे तुलायां मिथुने फणीशः ' इति ग्रन्थान्तरे ।

( १ ) ' सिंहे पतुः कन्येकयोर्धरित्री ' इति-पुस्तकान्तरे ।

( २ ) इदं लग्नपरामिति प्राचीनाः ।

( ३ ) ' आरोग्य सुखसम्पत्तिः पृथिव्याश्च गजेऽपि च ' इति ग्रन्थान्तरे ।

' कुशलं सर्वराम्येषु पृथिव्यां चलिते गजे ' इत्यापि पुस्तकान्तरे ।

शैलस्तौलिषटे प्रकीर्तितमिदं व्यासादिगर्गादिभिः  
शेषस्था धरणी यदा विचलते सर्वत्र संकारिणी ॥ ७५ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-ग्रन्थान्तरमें कहा है कि, वृश्चिक, मीन और सिंह लग्नमें भूकम्प होनेसे कूर्म ( कच्छप ) चलायमान होते हैं इसा प्रकार कन्या और मिथुन लग्नमें सर्प, मेष और वृष लग्नमें हाथी, तुला और कुम्भ लग्नमें पर्वत और कर्क धन और मकर लग्नमें भूकम्प हानस पृथिवी चलायमान होती है ऐसा व्यास आदिमुनियोंने कहा है ॥ ७५ ॥

अपरञ्च ।

वृषवृश्चिकमेपेषु गजाश्च परिकम्पिताः ।  
मृगकर्कटयोश्चापि कच्छपः परिकीर्तितः ॥ ७६ ॥  
कन्यामिथुनसिंहेषु पन्नगाः कम्पिता ध्रुवम् ।  
शेषे राशौ वसुमती कम्पिता शुभदा स्मृता ॥ ७७ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-वचनान्तरमें कहा है कि, वृष वृश्चिक और मेष लग्नमें हाथी विचलित होतेहैं, इसी प्रकार मकर और कर्कलग्नमें कच्छप कन्या, मिथुन और सिंह लग्नमें सर्प और तुला, धन, कुम्भ और मीन लग्नमें पृथिवी स्वयं विचलिता होती है और यह भूकम्प शुभ होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

फलम् ।

कच्छपे मरणं घोरं दुर्भिक्षं परिकीर्तितम् ।  
पृथिव्यां शुभमतुलं मंगलं पन्नगे स्मृतम् ॥  
गजेषु नरनाशः स्याद्वासादिवचनं यथा ॥ ७८ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ-कच्छपके चलित होनेसे घोरतर महामारी और दुर्भिक्ष होता है इसी प्रकार पृथिवी स्वयं चलिता होनेसे मङ्गल होता है सर्पोंके चलायमान होनेसे शुभ और हाथियोंको चलायमान होनेसे मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ ७८ ॥

अथ हेमन्तादौ भूकम्पफलम् ।

हेमन्ते च वसन्ते च यदा चलति मेदिनी ।  
दिवा दुर्भिक्षमरणं रात्रौ कम्पः शुभावहः ॥ ७९ ॥

वर्षाकाले तथा ग्रीष्मे शरच्छशिरयोरपि ।

रात्रौ कम्पे त्वनावृष्टिर्दुर्भिक्षं पीडिताः प्रजाः ॥ १८० ॥ ( क )

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—हेमन्त ऋतुमें और वसन्तऋतुमें यदि दिनमें भूकम्प होय तो दुर्भिक्ष और महामारी होती है और रात्रिमें होनेसे शुभ होता है, और वर्षाऋतुमें, ग्रीष्ममें, शरत्कालमें और शिशिरऋतुमें रात्रिके समय भूकम्प होनेसे अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और प्रजाको पीडा होती है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

अथ वारफलम् ।

रविशानिकुजवारे भूमिकम्पो यदि स्या-

त्तदपि मनुजपीडां सस्यहानिं करोति ॥ ( ख )

दहति सकलराज्यं छत्रभङ्गो नृपाणां

भवति विषमयुद्धं संक्षयन्त्येव लोकाः ॥ ८१ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब भूकम्प होनेसे वारोंका फल कहते हैं—रवि, शानि वा मंगलवारमें यदि भूकम्प होय तो मनुष्योंको पीडा, शस्य ( धान्य ) का नाश, सर्वस्थानमें अग्निदाह, राजच्छत्रभङ्ग, घोरतर युद्ध होता है और मनुष्योंकी अनेक प्रकारसे हानि होती है ॥ ८१ ॥

शीघ्रशीघ्रं चलति वसुधा चन्द्रसूर्योपरामे

लोके वह्निर्ज्वलति सलिलं चञ्चलं वा कदाचित् ।

पृथ्वी शस्यं न फलति जनोत्पातकङ्कालमाला

युद्धे राजा न भवति जयी नष्ट चेष्टां करोति ॥ ८२ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—चन्द्रग्रहण वा सूर्यग्रहणके समयमें यदि पुनः २ भूकम्प वा अग्निकाण्ड अथवा जलकम्प होय तो पृथिवी धान्यशून्य होती है, मनुष्योंपर अनेक प्रकारके उत्पात होते हैं और युद्धमें राजाकी पराजय होती है और चेष्टा व्यर्थ हो जाती है ॥ ८२ ॥

( क ) “द्विवाकम्पे च दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च जायते” इति ग्रन्थान्तरे विरुद्धवचनमस्ति ।

( ख ) पूर्वोक्तं ज्योतिःसारसंग्रहे लिखितम् ।



अथाम्बुवाची कालः ।

आर्द्रादितो विशाखान्तं रविचारेण वर्षति ।

तस्याश्च प्रथमे पादेऽम्बुवाची समुदाहृतः ॥ ८३ ॥

इति भैरवाचार्यः ।

अर्थ-अब अम्बुवाचीकालको वर्णन करते हैं-भैरवाचार्यने कहाहै कि, आर्द्रासे विशाखातक ग्यारह नक्षत्रोंमें जितने दिन सूर्य रह उसी समयतक वर्षा होती है और आर्द्रा नक्षत्रके प्रथमपादमें सूर्यके होनेसे अम्बुवाचीकाल होताहै ॥ ८३ ॥

अपिच ।

यस्मिन्वारे सहस्रांशुर्यत्काले मिथुनं व्रजेत् । (+)

अम्बुवाची भवेन्नित्यं पुनस्तत्कालवारयोः ॥ ८४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखाहै कि, जिस वारमें जिस समय सूर्य मिथुन राशिमें जाय उस वारके उसी समयको अम्बुवाचीकाल कहते हैं ॥ ८४ ॥

अपरञ्च ।

मृगशिरसि निवृत्ते रोद्रपादेऽम्बुवाची  
भवति ऋतुमती क्ष्मा वर्जयेत्रीण्यहानि ।

यदि च वपति बीजं कर्पकः क्षेत्रमध्ये

न भवति फल ( १ ) भोगः सस्यचाण्डालपाकः ॥ ८५ ॥

इति राजमार्तण्डे ।

अर्थ-राजमार्तण्डमें कहाहै कि, मृगशिरसनक्षत्रनिःशेष होकर आर्द्रानक्षत्रका आरम्भ होनेसे अम्बुवाची अर्थात् तीन दिनतक पृथिवी ऋतुमती होती है अम्बुवाचीके मध्यमें किसान यदि खेतमें बीजको बोवै तो उसमें उत्पन्न हुए धान्यको न खाना चाहिये, और वह धान्य चाण्डालके पापके समान होजाताहै ॥ ८५ ॥

अन्यच्च ।

आर्द्राद्यपादगे सूर्ये त्र्यहं पृथ्वी रजस्वला ।

अम्बुवाचीति संज्ञं तत्स्वाध्यायं तत्र वर्जयेत् ॥ ८६ ॥

अर्थ-आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्यके होनेसे तीन दिनतक पृथ्वी रजस्वला

( × ) एतच्च प्रायिकम् । इति मलमासतत्त्वे च स्मार्तानाभिहितम् ।

( १ ) न भवति फलभागीति पाठान्तरमस्ति ।

होती है, इसी समयको अम्बुवाची कहते हैं, इसमें अध्ययन न करना चाहिये ॥ ८६ ॥

अपरञ्च ।

रजोयुक्क्षमाम्बुवाची च रौद्राद्यपादमे रवौ । ( ❀ )

तस्यां पाठो बीजवपनो नाहिर्भीर्दुग्धपानतः ॥ ८७ ॥ ( क )

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-ज्योतिषतत्त्वमें कहा है कि, आर्द्रानक्षत्रके प्रथम पादमें सूर्यके होनेसे पृथिवी ऋतुमती होती है और इस कालको अम्बुवाची कहते हैं, अम्बुवाचीमें वेदादिका पाठ और बीजवपन न करना चाहिये और इस समयमें दूधके पीनेसे सर्पका भय नहीं रहता है ॥ ८७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

आर्द्राकै चाम्बुवाचीस्याद्भूमिस्तत्र रजस्वला ।

भूमेरुत्खननं तत्र कुर्वन्भवति किल्बिपी ॥ ८८ ॥ ( ख )

अर्थ-आर्द्रानक्षत्रमें सूर्यके जानेसे अम्बुवाचीकाल होता है और इसी समयमें पृथ्वी रजस्वला होती है अम्बुवाचीमें भूमिखनन करनेसे मनुष्य पापी होता है ॥ ८८ ॥

अम्बुवाच्यां निषिद्धानिषिद्धकर्माणि ।

अम्बुवाच्यां भूखननं यः करोतीहं मानवः ।

स याति कृदंशञ्च स्थितिस्तत्र चतुर्गुणा ॥ ८९ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-अथ ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसार अम्बुवाचीमें निषिद्धानिषिद्ध कर्म कहते हैं-अम्बुवाचीमें जो मनुष्य भूमिखनन करता है वह कृमिदंशनामक नरकमें चतुर्गुण काल वास करता है ॥ ८९ ॥

अन्यञ्च ।

अम्बुवाच्यां भूखननं जले शौचादिकं तथा ।

निष्ठीवनं तथा कृत्वा ब्रह्मत्यां लभेत सः ॥ १९० ॥

इति प्रकृतिलण्डे ।

अर्थ-प्रकृतिलण्डमें कहा है कि, अम्बुवाचीकालमें भूमिखनन जलक वीचमें

( • ) रजोयुक्क्षमा ऋतुमती पृथ्वी । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनं व्याख्यातम् ।

( क ) आर्द्रायाः प्रथमे पादे क्षीरं पिबति यो नरः । अपि रोपान्धितस्तस्य तक्षरः किं करिष्यति ॥ इति मलमासतत्त्वपृथगतनयम् ।

( ख ) इत्यादि कथनादम्बुवाचित्वं कालस्यैव न तु भूमेः ।

शौचादि क्रिया और श्लेष्मादि ( कफ आदि ) के डालनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है ॥ १९० ॥

अपरश्र ।

ज्येष्ठआषाढमासे च कल्पदाहो दिनत्रयम् )

योपिद्भिस्तत्र कर्तव्यं व्रतं वैष्णवमुत्तमम् ॥ ११ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिनामक ग्रन्थमें लिखा है कि, ज्येष्ठ और आषाढके मध्यमें तीन दिनतक कल्पदाह होती है इन तीन दिन स्त्रियोंको वैष्णवव्रतमें निरत रहना चाहिये ॥ ११ ॥

कल्पदाहे न कुर्वीत विधवा चाग्निसेवनम् ।

द्विजाश्च ब्रह्मनिर्घोषं न कुर्वीरन्मुमुक्षुषः ॥ १२ ॥

इति कृत्यचिन्तामणौ ।

अर्थ-कृत्यचिन्तामणिके वचनान्तरमें कहा है कि, कल्पदाहमें विधवा स्त्रीको अग्नि न छूना चाहिये और ब्राह्मणोंको इन तीन दिन वेदाध्ययन न करना चाहिये ॥ १२ ॥

प्रकारान्तरश्च ।

यतिनो व्रतिनश्चैव विधवाया द्विजस्य च । ( १ )

अम्बुवाचिदिने चैर्वापाकं कृत्वा न भक्षयेत् ॥ १३ ॥

इति राजमातृण्डे ।

अर्थ-राजमातृण्डमें लिखा है कि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ मनुष्य और विधवा स्त्री इन सबका अम्बुवाचीमें पकाकर भोजन न करना चाहिये अर्थात् पकाए भक्षण करनेका निषेध है उक्त वचनका पाठान्तर देखकर विदित होता है कि विधवाभात्रमें और ब्राह्मणोंको भी पकाए भक्षण करनेका निषेध है ॥ १३ ॥

वचनान्तरश्च ।

स्वपाकं पर पाकं वा अम्बुवाचिदिने तथा ।

भक्षयेन्नकदाचित् चाण्डालात्रसमं स्मृतम् ॥ १४ ॥

इति सवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-सवत्सरप्रदीपमें कहा है कि, अम्बुवाचीमें अपना बनाया भोजन अन्न वा

( १ ) विधवा च द्विजस्तथा । इति कश्चित्पुस्तके पाठः ।

दूसरेका बनाया हुआ अन्न कमी न खाना चाहिये, क्यों कि, इस समयका बनाया हुआ भोजन चाण्डालके अन्नकी समान होता है ॥ ९४ ॥

अम्बुवाचिमनाधकृत्याह ।

सापेक्षे दैवपैत्र्ये च बीजोत्तिर्हलवाहनम् ।

न स्वाध्यायो वषट्कारो न देवपितृतर्पणम् ॥ ९५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ-ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें देवकर्म पितृकर्म बीज-वपन वा हलवाहन, वेदादि अध्ययन, होमादि, देवतर्पण और पितृतर्पणादि कार्य न करना चाहिये ॥ ९५ ॥

अन्यच्च ।

हलानां वाहनं चैव बीजानां वपनं तथा ।

दिनत्रयं न कुर्वीत यावत्पृथ्वी रजस्वला ॥ ९६ ॥

अर्थ-जिस समय तीन दिन पृथ्वी ऋतुमती होती है उसमें हलका चलाना बीज बोना न चाहिये ॥ ९६ ॥

अपरञ्च ।

एकोद्दिष्टं वृषोत्सर्गं नित्यञ्च प्रेतकर्म च ।

एतान्न हापयेद्विद्वान्काम्यं किञ्चिन चाचरेत् ॥ ९७ ॥

इति सप्तत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-सप्तत्सरप्रदीपमें लिखा है कि, अम्बुवाचीमें एकोद्दिष्ट, वृषोत्सर्ग, नित्य कर्म और प्रेतकर्मको परित्याग न करै, किन्तु अनारब्ध काम्य कुछभी न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

धरण्यामृतुमत्यां च भूमिकम्पे तथैव च ।

अन्तरागमने ( १ ) चैव विद्यां नैव पठेन्नरः ॥ ९८ ॥

इति सप्तत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-सप्तत्सरप्रदीपमें कहा है कि, पृथ्वी रजस्वला होनेसे भूकंप होनेसे गुरुके निकटसे विद्या न पढ़ना चाहिये ॥ ९८ ॥

इत्युम्बुवाचिकाल कथनम् ।

( १ ) " पशुमण्डकनज्जलश्रादिमाज्जारमूषिकैः । गतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शिष्टे च गृह-  
मागते " इति षष्ठादिगमनेऽध्ययननिषेधकथनम् ।

अथ युगाद्याकथनम् ।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम् ।

कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताथ नवमेऽहनि ॥ ९९ ॥

अथ भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम् ।

माघे च पौर्णमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम् ।

युगारम्भास्तु तिथियो युगाद्यास्तेन विश्रुताः ॥ २०० ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—अब युगाद्यातिथिको कहते हैं—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, वैशाखके महीनेकी शुक्लपक्षकी तृतीयामें सतयुगकी उत्पत्ति हुई है इसी प्रकार कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमीमें त्रेतायुगकी उत्पत्ति, भाद्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें द्वापरयुगकी उत्पत्ति और माघकी पूर्णिमा तिथिमें कलियुगकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं चार तिथिमें युगोंका आरंभ हुआ है और इन्हींको युगाद्या तिथि कहते हैं ॥ ९९ ॥ २०० ॥

अपि च ।

वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।

नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ।

एता युगाद्याः कथिताः पुराणैरनन्तपुण्यास्तितथयश्चतस्रः ॥ १ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ—विष्णुपुराणमें कहा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी, भाद्रके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा इन सब तिथियोंके क्रमानुसार युगाद्या कहते हैं, इनमें पुण्यकर्म करनेसे अनन्तफल होता है ॥ १ ॥

अपरश्च ।

शुक्ला तृतीया वैशाखे प्रेतपक्षे त्रयोदशी ।

कार्तिके नवमी शुक्ला माघमासे च पूर्णिमा ॥ २ ॥

एते युगादयः प्रोक्ता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ३ ॥

इति नारदीये ।

अर्थ—नारदीय पुराणमें लिखा है कि, वैशाखके शुक्लपक्षकी तृतीया, भाद्रके

श्रेतपक्षकी त्रयोदशी, कार्तिकके शुक्लपक्षकी नवमी और माघकी पूर्णिमा इन तिथियोंको युगाद्या कहते हैं इनमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होताहै ॥२॥३॥  
अथाक्षया ।

सोमवारेऽप्यमावस्या आदित्याहे च सप्तमी ।

चतुर्थ्यङ्गारवारे च अष्टमी च वृहस्पतौ ॥ ४ ॥

अथ यत्क्रियते पापमथवा धर्मसञ्चयः ।

कोटिजन्मसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ अक्षयातिथि ज्योतिःसारसंग्रहके अनुसर कहतेहैं—सोमवारमें अमा-  
वस्या रविवारमें सप्तमी, मङ्गलवारमें चतुर्थी और वृहस्पति वारमें अष्टमी तिथिके  
होनेसे उसको अक्षया तिथि कहते हैं, अक्षयातिथिमें पापकर्म वा धर्मका सञ्चय  
जो कुछभी किया जाय सहस्रकोटिर्वर्षतक अक्षय होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ पुण्यतरा ।

शनैश्वरस्य वारेण वारेणाङ्गारकस्य च ।

कृष्णाष्टमीचतुर्दश्यां पुण्यात्पुण्यतरे स्मृते ॥ ६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अथ पुण्यतरा कहते हैं—ज्योतिःसारसंग्रहमें लिखा है कि, शनिवारमें  
कृष्णपक्षकी अष्टमी और मङ्गलवारमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी होनेसे उसको पुण्य-  
तरा कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ मन्वन्तरा ।

अश्वयुक्लुक्कनवमी द्वादशी कार्तिकी तथा ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ७ ॥

फाल्गुनस्याप्यमावस्या पोपस्यैकादशी तथा ।

आषाढस्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी ॥ ८ ॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ ९ ॥

मन्वन्तरादयस्त्रैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ २१० ॥

इति भविष्यमत्स्ययोः ।

अर्थ—अथ मन्वन्तरा तिथि कही जाती है, भविष्यत्पुराणमें और मत्स्यपुरा-

णमें लिखा है कि, आश्विनके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको मन्वन्तरा कहते हैं इसी प्रकार कार्तिकके शुक्लपक्षकी द्वादशीको, चैत्र और मादोंके शुक्ल तृतीयाको फाल्गुनकी अमावास्याको पौषकी शुक्ल एकादशीको, आपादकी शुक्लदशमीको माघकी शुक्ल सप्तमीको श्रावणकी कृष्णाष्टमीको और आपाद कार्तिक फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमाको मन्वन्तरा तिथि कहते हैं । मन्वन्तरातिथिमें दान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है ॥ ७-२१० ॥

अर्द्धोदययोगः ।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्यौषमाधयोः ।

अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः । ( क )

दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन ॥ ११ ॥ ( ख )

इति पाश्चात्यनिर्णयामृते ।

अर्थ-अम अर्द्धोदययोग कहते हैं-पौष वा माघके गौण चान्द्रकी अमावस्या तिथिमें शिववार, व्यतीपातयोग और श्रवण नक्षत्रके होनेसे अर्द्धोदयसंज्ञक योग होता है यह योग कोटि करोड सूर्य ग्रहणके समान है । दिनमें उक्त योग प्रशस्त है रात्रिमें यह फल नहीं करता है ॥ ११ ॥

वचनान्तरञ्च ।

अर्द्धोदये तु संप्राप्ते सर्वे गङ्गासमं जलम् ।

शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेद्युर्वहसंसंमिताः ।

यत्किञ्चित् क्रियते दानं तदानं सेतुसन्निभम् ॥ १२ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ-स्कन्दपुराणमें कहा है कि, अर्द्धोदययोगके होनेसे साधारण जल गङ्गा-जलकी समान हो जाता है, ब्राह्मणगण ब्रह्माके समान हो जाते हैं और किञ्चित् दान करनेसे उसमें सेतुदानके समान फल होता है ॥ १२ ॥

( क ) 'सूर्यपरिशताधिक' इति कृत्यचिन्तामणी पाठः ।

( ख ) स च योगो शिववारव्यतीपातश्रवणनक्षत्रैर्युक्ता चेत्यौषमाधयोरमावस्या स्यात्तदा भरति इति त्रिपितृन् स्मार्त्तनाभिहितम् । अत्र मासोद्धेतो गौणवान्द्रेण । गङ्गास्नाने कोटिसूर्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यपुण्यसमपुण्यप्राप्तिः फलम् । एवं दानाद्रावधि बोध्यम् ।

अथ व्यतीपातयोगः ।

श्रवणाश्विधनिष्ठाद्रानागदैवतमस्तके ।

यद्यमा रविवारणे व्यतीपातः स उच्यते ॥ १३ ॥ ( ग )

इति बृहन्मनुः ।

अर्थ—अब बृहन्मनुके वचनानुसार व्यतीपातयोग कहते हैं—रविवार अमावस्या तिथिमें यदि श्रवण, आश्विनी, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा व मृगशिर नक्षत्रयुक्त होय तो व्यतीपात नामक योग होता है ॥ १३ ॥

अपिच ।

संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।

पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत् ॥ १४ ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्माण्डपुराणमें कहा है कि, संक्रान्तिमें, व्यतीपात योगमें, चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें और पुष्यनक्षत्रमें जो मनुष्य गंगास्नान करता है उसके कोटि-कुलतक तर जाते हैं ॥ १४ ॥

वचनान्तरे च ।

चतुर्दश्यां यदा योगो व्यतीपातेन चार्द्रया । ( घ )

तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ॥ १५ ॥

तदा यः स्नाति गङ्गायां भक्त्या तत्फलमाप्नुयात् ।

यत्र यत्र विपत्रो हि गङ्गामरणजंतु सः ॥ १६ ॥

इति गङ्गामृतग्रन्थधृतभविष्यपुराणे ।

अर्थ—गङ्गामृतग्रन्थधृत भविष्यपुराणमें कहा है कि, चतुर्दशी तिथिमें यदि व्यतीपात योग और आर्द्रानक्षत्र होय तो उसको पुण्यतम काल कहते हैं, यह पुण्यतम काल देवताओंको भी दुर्लभ है, इसमें भक्तिपूर्वक गङ्गास्नान करनेसे देवदुर्लभ फल प्राप्त होता है और इस समय जिस जीवकी किसी स्थानमें मृत्यु होय तो उसको गङ्गामें मृत्यु होनेका फल होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

( ग ) नागदैवतमाश्लेषामस्तकमृगशिराः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्त्तं व्याख्यातम् ।

( घ ) व्यतीपातेन चन्द्रमाः । इति गङ्गावाक्यावल्युक्तपाठोऽनन्वितत्वाद्देयः । इति प्रायश्चित्ततत्त्वे स्मार्त्तं वक्षितम् ।



अथ चूडामणियोगः ।

सूर्यग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहो भवेत् ।

चूडामणिर्यं योगस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥ १७ ॥ ( ङ )

इति गरुडपुराणे ।

अथ-अथ गरुडपुराणके वचनानुसार चूडामणि योग कहते हैं-रविवारमें सूर्यग्रहण और सोमवारमें चन्द्रग्रहणके होनेसे चूडामणियोग होताहै, उक्त योगमें गङ्गास्नान करनेसे अनन्तगङ्गास्नानका फल होताहै इस योगमें रात्रिसमयमें भी गङ्गास्नान करे, अभिलाषवाक्यमें (अनन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः) इत्यादि कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ नारायणीयोगः ।

मूलर्क्षचापसंयुक्ते ( १ ) यदि सोमदिने कुहूः ।

नारायणीति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥

इति गरुडपुराणे ।

अर्थ-अथ गरुडपुराणके वचनानुसार नारायणीयोग कहते हैं-मूलनक्षत्रयुक्त सौर पौषमासमें सोमवारके दिन यदि अमावस्या तिथि होय तो नारायणीयोग होताहै नारायणी योगमें करतोया ( २ ) में स्नान करनेसे तीन करोड कुलका उद्धार होजाता है ॥ १८ ॥

नारायणीयोगे कृत्वं तथा फलम् ।

करतोयाजलं प्राप्य योगे नारायणी शुभे ।

प्रातर्मौनेन यः स्नायात्त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नारायणीयोगमें प्रातः कालके समय जो मनुष्य मौन धारण कर करतो याके जलमें स्नान करै उसके तीन करोड कुलोंका उद्धार होजाता है ॥ १९ ॥

अपिच ।

करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुता कुहूः ।

अरुणोदयवेलायां सूर्यग्रहशतैः समा ॥ २२० ॥

इति तिथितत्त्वधृता स्मृतिः

अर्थ-तिथितत्त्वधृतस्मृतिके वचनमें कहाहै कि, अमावास्यातिथियुक्त सोमवा-

( ङ ) अत्रानन्तगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिः फलम् । रात्रावप्यनन्तत्वेऽपि फलमूहनीयम् ।

( १ ) 'चापके मूलसंयुक्ता' इति पाठान्तरमस्ति ।

( २ ) उत्तरदेशस्थनदीविशेषः ।

रके दिन सूर्योदयकालमें करतोयामें स्नान करनेसे जो फल सैकड़ों सूर्यग्रहणके समय स्नानादि करनेसे होताहै तिसीके समान फल प्राप्त होताहै ॥ २२० ॥

अथ वारुणीकथनम् ।

वारुणेन ( १ ) समायुक्ता मघौ ( २ ) कृष्णा त्रयोदशी ।  
गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहणैः समा ॥ २१ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासके गौण चान्द्रकी कृष्णत्रयोदशी-  
तिथिमें शतभिषा नक्षत्र होनेसे उस तिथिको वारुणी कहते हैं, इस समय गङ्गा  
स्नान करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेका फल होताहै ॥ २१ ॥

अथ महावारुणी ।

शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता ।

गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ २२ ॥

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—अब महावारुणी कहतेहैं—शतभिषानक्षत्रयुक्त चैत्रमासकी गौण चान्द्रके  
कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें शनिवार होनेसे उस दिन महावारुणी होती है,  
इसमें गङ्गास्नान करनेसे करोड़ सूर्यग्रहणके समय गङ्गास्नान करनेसे जो फल  
होता है उसके समान फल होताहै ॥ २२ ॥

शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि ।

महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥ २३ ॥ (क)

इति स्कन्दपुराणे ।

अर्थ—स्कन्दपुराणमें कहाहै कि, चैत्रमासकी गौणचान्द्रके कृष्णपक्षकी त्रयो-  
दशीमें यदि शुभयोग, शतभिषानक्षत्र और शनिवारके होनेसे महामहावारुणी  
होती है, उक्त योगमें स्नान करनेसे तीन करोड़ कुलका उद्धार हो  
जाता है ॥ २३ ॥

( १ ) वारुणं शतभिषा । इति तिथितत्त्वे ।

( २ ) मघुश्चैत्रमासः । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तं व्याख्यातम् ।

( क ) कुलं पुरुषम् । इति याज्ञवल्क्यदीपकालिका । अत्र संज्ञाभिधेः सार्थकत्वाय  
निमित्तत्वेन मासपक्षतिथ्युल्लेखानन्तरं महावारुणी महावारुण्या उल्लेखनीये आदौ पार्श्व-  
ण्यादिस्तौल्लेखवत्पौर्णमास्यमात्रस्ययोः । पक्षोल्लेखवच्च । मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्ताना-  
ञ्चेत्यादिवचनात् । तेन चैत्रे मासि कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ महावारुण्यां महामहा-  
वारुण्यां वा यथायथं प्रयोज्यम् । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तंभिहितम् ।

अथ ब्रह्मपुत्रस्नाने विशेषयोगकथनम् ।  
 पुनर्वसौ वृषे लग्ने चैत्रे मासि सिताष्टमे ।  
 लौहित्याविरजे स्नायात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥ (ख)

इति तिथितत्त्वे ।

अर्थ-तिथितत्त्वके अनुसार ब्रह्मपुत्रमें स्नान करनेका योग कहते हैं-पुनर्वसु-  
 नक्षत्र और वृषलग्न यदि चैत्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीमें होय तो इस योगमें  
 ब्रह्मपुत्रनामक नदमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है और उसको  
 सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

अथ बुधाष्टमीयोगः ।

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी ।  
 स्रोतस्सु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥ २५ ॥

इति विष्णुपुराणे ।

अर्थ-अब विष्णुपुराणके वचनानुसार बुधाष्टमीयोग कहते हैं-बुधवार चैत्र-  
 मासकी शुक्लाष्टमीमें पुनर्वसु नक्षत्र होनेसे यदि मनुष्य स्रोत ( सोत ) के जलमें  
 स्नान करे तो वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है, किन्तु ब्रह्मपुत्रनदमें इस योगके  
 समय स्नान करनेसे सब पापोंसे छूटजाता है, सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल  
 और वाजपेय यज्ञका फल होता है ॥ २५ ॥

अथ दशहरा ।

ज्येष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखं स्मृतम् ।  
 तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः ॥ २६ ॥  
 यां काञ्चित्सरितं प्राप्य दद्याद्भस्तिलोदकम् ।  
 मुच्यते दशभिः पापैः सुमहापातकोपमैः ॥ २७ ॥ (ग)

इति ब्राह्म-ब्रह्मवैवर्तपुराणयोः ।

अर्थ-ब्रह्मपुराणमें और ब्रह्मवैवर्त पुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठ मासके शुक्ल-

(ख) "पृथिव्या यानि तीर्थानि सरितः सागरादयः । सर्वे लौहित्यमायान्ति चैत्रे  
 मासि सिताष्टमी " स्नानमन्त्रः । "ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलनन्दन । अमोघाग-  
 भसम्भूत पाप लौहित्य मे हर " इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तन धृतम् ।

(ग) अत्र केवलदशम्यां नदीभात्रे दर्भकरणकतिलनर्पणाङ्गकस्तानादृश विधपापक्षय-  
 फलम् एव दानादावपि । वस्तुतस्तु बह्यमाणभविष्ये जाह्नवीपदश्रवणात् हेतुमात्रिगदस्वर-  
 साञ्च ब्रह्मवैवर्तेऽपि सरिपद जाह्नवीपरम् अन्यथा नानाविधिः स्यात् । यां काञ्चिदिति  
 तु जाह्नवीस्तावकम् अन्यथा कुल्यास्नानेऽपि दशविधपापक्षयः स्यात् मन्त्रलिङ्गे जाह्नवीति  
 पदश्रवणाच्च । इति तिथितत्त्वे स्मार्त्तनाभिहितम् ।

पक्षकी दशमी ( दशहरा ) संवत्सरमें परम प्रासिद्ध तिथि है, इस तिथिमें स्नान और दान करना चाहिये उक्त तिथिमें जिस किसी नदीके जलमें स्नान, दान और तिलोदकमें कुशसे तर्पण करनेसे दश प्रकारके पापोंसे छूट जाता है इसी प्रकार किसी २ का मत है, किन्तु स्मार्त्त महामहोपाध्याय रघुनन्दनभट्टाचार्यने कहा है कि, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें जो सरित् शब्द लिखा है उससे नदीको न जान भागीरथी श्रीगङ्गाजीको जानना चाहिये, इसी प्रकार जिस स्थानमें सरित्का लेख है उसको जाह्नवीकी स्तावकता मात्र जानो इस प्रकार मीमांसा न करनेसे अनेकप्रकारकी कल्पना करनी चाहिये विशेषकरके कृत्रिम जलकी प्रणालीमें स्नान करनेसेभी दशप्रकारके पापोंका नाश होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपिच ।

शुक्लपक्षस्य दशमी ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तम ।

हरते दश पापानि तस्माद्दशहरोच्यते ॥ २८ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि, ज्येष्ठ महीनेके शुक्लपक्षकी दशमीमें गङ्गास्नान करनेसे दश प्रकारके पापोंका नाश होजाता है, अतएव उक्त तिथिको दशहरा कहते हैं ॥ २८ ॥

अन्यच्च ।

ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु हस्तयोगेन जाह्नवी ।

हरते दश पापानि तस्माद्दशहरोच्यते ॥ २९ ॥

इति भाविष्यपुराणे ।

अर्थ—भाविष्य पुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें हस्त नक्षत्रके होनेसे गङ्गामें स्नान करनेसे दश प्रकारके पापोंसे मनुष्य छूट जाता है ॥ २९ ॥

अपरञ्च ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तयोगतः ।

दशजन्माघडा गङ्गा दशपाप ( १ ) हरा स्मृता ॥ २३० ॥

इति पराशरमाष्ये यम ।

अर्थ—पराशरमाष्यमें, यमने कहा है कि, ज्येष्ठके दशहरामें हस्त नक्षत्रके

( १ ) “अदत्तानामुपादानं हिंसा च प्राणिधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ पारुष्यममृतञ्चैव वैशुन्यञ्चापि सर्वशः । अस्त्रमन्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । परद्रव्येष्वभिधानं मनसानिष्ठधित्तनम् । नितयाभिनिवेशश्च त्रिविधं यमं मानसम् ॥” इति दशाविधपापानि वाल्मीकिना कथितानि ।

होनेसे यदि उसमें गङ्गास्नान किया जाय तो दशजन्मके दश प्रकारके पापोंसे छूट जाता है ॥ २३० ॥

प्रकारान्तश्च ।

ज्येष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्रपक्षे दशम्यां  
हस्ते शैलान्निरगमदियं जाह्नवी मर्त्यलोकम् ।  
पापान्यस्यां हरति च तिथौ सा दशेत्याहुरार्याः  
पुण्यं दद्यादपि शतगुणं वाजिमेधायुतस्य ॥ ३१ ॥ (क)

इति शलः ।

अर्थ-शङ्खने कहा है कि, मंगलवारमें ज्येष्ठका दशहरा हस्तनक्षत्रयुक्त होनेसे यदि उसमें गङ्गास्नान किया जाय तो मनुष्यके दश जन्मोंके दश प्रकारके पापोंका नाश होता है और दश अश्वमेध यज्ञका सौगुना फल होता है ॥३१॥

अथ महाज्यैष्ठी योगः ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।  
पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३२ ॥

इति सवत्सरप्रदीपे ।

अर्थ-अब संवत्सरप्रदीपके वचनानुसार महाज्यैष्ठीयोग कहते हैं-जेठमासकी पूर्णिमामें बृहस्पतिवार और ज्येष्ठा नक्षत्रके होनेसे यदि इसी नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमा होय और रोहिणी नक्षत्रमें सूर्य होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥३२॥

अन्यच्च ।

ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा ।  
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३३ ॥

अर्थ-ज्येष्ठा नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमा होय, रोहिणी नक्षत्रमें सूर्य होय और इस समय जेठ महीनेकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३३ ॥

अपरश्च ।

ऐन्द्रे भेत्रे यदा जीवस्तत्पञ्चदशके रविः ।  
पूर्णिमाशक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३४ ॥

अर्थ-ज्येष्ठ वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति होय और रोहिणी नक्षत्रमें वा

( क ) भोमवारहस्तनक्षत्रयुक्तदशम्यां गङ्गास्नानाद्दशनिपापक्षयशतगुणवाजिमेधा-युतजन्मपुण्यमपुण्य फलम् । इति त्रियित्तो स्मार्त्तनोक्तम् ।

मृगशिर नक्षत्रमें सूर्य होय तथा ज्येष्ठा नक्षत्रमें चन्द्रमा होय और इसी समयमें जेठकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३४ ॥

प्रकारान्तरञ्च ।

ऐन्द्रक्षे त्वथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदा स्थितौ ।

पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३५ ॥

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्रमें वा अनुराधा नक्षत्रमें बृहस्पति और चन्द्रमाके होनेसे यदि उक्त समयमें जेठमासकी पूर्णिमा होय तो महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३५ ॥

अपिच ।

ज्येष्ठे संवत्सरे ( ३ ) चैव ज्येष्ठमासस्य पूर्णिमा ।

ज्येष्ठाभेन च संयुक्ता महाज्यैष्ठी प्रकीर्तिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—ज्येष्ठ नामक संवत्सरमें ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमा होनेसे महाज्यैष्ठी योग होता है ॥ ३६ ॥

महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत्पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।

विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ॥ ३७ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, महाज्यैष्ठीमें जो मनुष्य पुरुषोत्तम ( जगन्नाथ ) स्वामीका दर्शन करता है, उसको अन्तसमय विष्णुप्राप्ति होती है और महाज्यैष्ठीमें गङ्गास्नान करनेसे अन्तसमय मोक्षप्राप्ति होती है ॥ ३७ ॥

मासि ज्येष्ठे तु संप्राप्ते नक्षत्रे शुकदैवते ।

पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वपापं हरोद्विजाः ॥ ३८ ॥

तस्मिन्काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम् ।

वलभद्रं सुभद्राञ्च ते यान्ति पदमव्ययम् ॥ ३९ ॥

इति ब्रह्मपुराणे ।

अर्थ—ब्रह्मपुराणमें कहा है कि, ज्येष्ठानक्षत्रयुक्त जेठके महीनेकी पूर्णिमामें स्नान करनेसे मनुष्य सय पापोंसे बूट जाता है, इस समयमें पुरुषोत्तम ( जगन्नाथ ) वलभद्र और सुभद्रा देवीके दर्शन करनेसे अन्तसमय अव्यय पदको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति महाज्यैष्ठीरुचनम् ।

( १ ) ज्येष्ठसंवत्सरञ्च “ज्येष्ठाश्रूलोपमे जीवे धर्मं स्यान्तुक्रद्दत्तम् ” इति विष्णुधर्मो-

अथप्रश्नेधातुमूलजीवज्ञानम् ।

स्वांशं विलग्नं यदि वा त्रिकोणे  
स्वांशे स्थितः पश्यति धातुचिन्ताम् ।  
परांशकस्थश्च करोति जीवं  
मूलं परांशोपगतः परांशम् ॥ २४० ॥

इति दीपिकायाम् ।

अर्थ-अब दीपिकाके बचनानुसार प्रश्नलग्नसे धातु, मूल और जीवका ज्ञान कहते हैं-प्रश्नसमय यदि कोई ग्रह अपने नवांशमें होकर लग्नगत होय वा प्रश्नलग्नके नववें वा पांचवें स्थानमें होय अथवा प्रश्नलग्नको देखतेहों तो प्रश्नकर्ता धातु ( १ ) की चिन्ता करताहै ऐसा कहै, यदि कोई ग्रह अन्य ग्रहके नवांशमें रहकर प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके नववें वा पांचवें स्थानको देखता होय तो प्रश्नकर्ताने जीव ( २ ) के सम्बन्धमें प्रश्न करा है ऐसा जाने और यदि कोई ग्रह अन्य ग्रहके नवांशमें स्थित होकर अपरग्रहके नवांशगत लग्नमें वा पांचवें स्थानमें अथवा नवमें स्थानमें देखता होय तो प्रश्नकर्ताने मूल ( ३ ) सम्बन्धमें प्रश्न करा है इस प्रकार जानकर कहना चाहिये ॥ २४० ॥

धातुं मूलं जीवमित्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम् ।

लग्ने योऽंशस्तत्कमाद्गण्य एवं संक्षेपोऽयं विस्तृतस्तत्प्रभेदः ॥ ४१ ॥

अर्थ-लग्नको नौ भागमें विभक्त करनेसे एक २ भागको नवांशा कहतें है ओज अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भराशि प्रश्नलग्न होनेसे प्रथम २ नवांशमें धातुकी चिन्ता, दूसरे नवांशमें मूलकी चिन्ता और तीसरे नवांशमें जीवकी चिन्ता जाननी चाहिये । चौथे नवांशमें धातु, पांचवें मूल, छठमें जीव, सातवें धातु, आठवें मूल और नववें नवांशमें प्रश्न होनेसे जीवकी चिन्ता जाननी चाहिये और युग्म राशियोंमें इसके विपरीत होता है अर्थात् प्रथम नवांशमें प्रश्न होनेसे जीव दूसरेमें मूल और तीसरे नवांशमें प्रश्न होनेसे धातुकी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥

उक्तो आहः न तु सवत्सरादिपञ्चकान्तर्गतवर्षविशेषो व्येष्ट इति वर्षविशेषणस्य वैष-  
र्ष्यापत्तेः । सवत्सरे यदि स्थाविति षाठः कालपरिचरः इति तिथितत्त्वे स्मार्त्ताः ।

( १ ) धातुशब्दसे सुवर्ण, रजत और मृत्तिकादि जाननी चाहिये ।

( २ ) जीवशब्दसे पुरुषादि सरिसृपपर्वन्त जानी ।

( ३ ) मूलशब्दसे स्थलज और जलज इन दोनोंको जानना चाहिये ।

अथ शुभाशुभप्रश्नः ।

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु ।

सर्वार्थासिद्धिं प्रवदेन्नराणां विपर्ययेष्वेषु विपर्ययः स्यात् ॥ ४२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार शुभाशुभ प्रश्न कहते हैं—शुभग्रह यदि प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके चौथे, सातवें, दशवें, पाँचवें और नववें होय और पापग्रह लग्नमें वा लग्नके चौथे, सातवें दशवें और आठवें स्थानमें न होय तो प्रश्नकर्त्ताका कार्य सिद्ध होता है ऐसा जानै, किन्तु पापग्रह यदि प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमें, त्रिकोणमें वा आठवें स्थानमें होय और शुभ ग्रह केन्द्रमें और त्रिकोणमें न होवें तो अशुभ होताहै ॥ ४२ ॥

त्रिपञ्चलाभास्तमयेषु सौम्या

लाभप्रदानेष्टफलाश्च पापाः ।

तुलाथ कन्या मिथुनं घटश्च

नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥ ४३ ॥

अर्थ—यदि प्रश्नलग्नके तीसरे, पाँचवें, ग्यारहवें और सातवें स्थानमें शुभ ग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताको लाभ होताहै और पापग्रह उक्तस्थानोंमें होनेसे अनिष्ट होताहै, तुला, कन्या, मिथुन और कुम्भ इन सब नरराशियोंमें शुभ ग्रह होनेसे शुभ होताहै ॥ ४३ ॥

स्थानप्रदा दशमसप्तमगाश्च सौम्या

मानार्थदाः स्वसुतलग्नगता भवन्ति ।

पापा व्ययायसहिता न शुभप्रदाः स्यु-

र्लभ्रे शशी न शुभदो दशमेऽशुभश्च ॥ ४४ ॥

अर्थ—यदि प्रश्नलग्नके दशवें और सातवें स्थानमें शुभग्रह होय तो प्रश्नकर्त्ताको स्थानकी प्राप्ति होती है प्रश्नलग्नके दसरे स्थानमें, पाँचवें स्थानमें वा प्रश्नलग्नमें शुभग्रहके होनेसे सम्मान और धनादिकी प्राप्ति होती है पापग्रह प्रश्नलग्नके बारहवें और ग्यारहवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै और चन्द्रमा प्रश्नलग्नमें वा प्रश्नलग्नके दशवें स्थानमें होनेसे अशुभ होताहै ॥ ४४ ॥

इन्दुं द्विसप्तदशमायरिपुत्रिसंख्यं

पश्येद्गुरुः शुभफलं प्रमदाकृतं स्यात् ।



लग्नत्रिधर्मसुतनैधनगाश्च पापाः

कार्यार्थनाशभयदाः शुभदाः शुभाश्च ॥ ४५ ॥

अर्थ-यादि प्रथमलग्नके दूसरे, सातवें, दशवें ग्यारहवें, छठे वा तीसरे स्थानमें चन्द्रमा होय और उस चन्द्रमापर बृहस्पतिकी दृष्टि होय तो प्रथमकर्ताके स्त्री हेतुक शुभ फल होता है । प्रथमलग्नमें वा प्रथमलग्नके तीसरे नववें, पांचवें और आठवें स्थानमें पाप ग्रहोंके होनेसे कार्यनाश, अर्थक्षय और भय होता है और उक्त स्थानोंमें शुभग्रह होनेसे शुभ फल होता है ॥ ४५ ॥

यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा  
सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः ।

पापैरेवं तस्य तस्यास्ति हानि-

निर्देष्टव्या जन्मतः प्रथतो वा ॥ ४६ ॥

एतानि ज्योतिस्तत्त्वधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रथम समयमें वा जन्मसमयमें तन्वादि ( १ ) द्वादश भावके जो कोई भाव शुभग्रह वा स्वामीग्रहोंसे दृष्ट अथवा युक्त होनेसे उसकी वृद्धि होती है, और पापग्रहोंसे दृष्ट वा युक्त होनेसे उसकी हानि होता है ॥ ४६ ॥

अथ लाभालाभप्रश्नः ।

सौम्यैर्विलग्रे यदि वास्य वर्गे  
शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् ।

अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः

कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ ४७ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ-अथ ज्योतिषतत्त्वके वचनानुसार लाभालाभ प्रश्न कहते हैं-शुभग्रह यदा प्रश्नके मालिक हों वा शुभग्रहके वर्गमें, अथवा शीर्षोदय लग्नमें प्रश्न होय तो

( १ ) "तनुर्धन सोदरश्च बन्धु पुत्रो रिपुस्तथा । पत्नी च निधन धर्मः कर्म चायो व्ययोऽपि च " इति जातकचन्द्रिकायाम् । लग्नको तनु कहते हैं, इसी प्रकार द्वितीय धनस्थान, तृतीय सोदरस्थान, चतुर्थ बन्धुस्थान, पञ्चम पुत्रस्थान, षष्ठ रिपुस्थान, सप्तम पत्नीस्थान, अष्टम मृत्युस्थान, नवम धर्मस्थान, दशम कर्मस्थान, एकादश आयस्थान और द्वादश स्थानको व्ययस्थान कहते हैं ।

कार्यसिद्धि होती है और इसके विपरीत होनेसे कार्य नहीं सिद्ध होता है विमिश्रित लग्नके होनेसे कार्य कष्टसे सिद्ध होता है ॥ ४७ ॥

अथ नष्टलाभादिप्रश्नः ।

होरास्थितः पूर्णतनुः शशाङ्को

जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन ।

क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लब्धिं

लाभोपयातो वलवाञ्छुभश्च ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब नष्टलाभाद् प्रश्न कहते हैं—प्रश्नलग्नमें पूर्णचन्द्रमा होय और बृहस्पति वा शुक्र उसे देखते होय तो गई वस्तु शीघ्र मिलती है और उक्तप्रकार न होकर यदि प्रश्नलग्नके ग्यारहवें स्थानमें मात्र बलवान् शुभग्रह होय तौभी गई वस्तु मिल जाती है ॥ ४८ ॥

पूर्णः शशा लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च ।

नष्टस्य लाभं कुरुते तदाशु लाभोपयातो वलवाञ्छुभश्च ॥ ४९ ॥

अर्थ—शीर्षोदय अर्थात् मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक; कुम्भ वा मीन यदि प्रश्नलग्न होय और उसमें पूर्णचन्द्रमा और शुभग्रह होय और शुभग्रहोंकी उपर दृष्टि होय तो गई वस्तु शीघ्र मिलती है, और प्रश्नलग्नके ग्यारहवें स्थानमें शुभ ग्रहोंके होनेसेभी गई वस्तु शीघ्र मिलजाती है ॥ ४९ ॥

स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा ।

स्थितं तत्रैव तद्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ २५० ॥

अथ—स्थिर राशि वा स्थिर राशिका नवांशा अथवा वर्गोत्तम यदि प्रश्नलग्न होय तो अपहृत वस्तु आत्मीय मनुष्यने चुराकर उसी स्थानमें रखती है ऐसा जाने और यदि इसके अन्यथा होय तोगैर मनुष्यने चुराई है इस प्रकार जनना चाहिये ॥ २५० ॥

आदिमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु विशेषतः ।

द्वारदेशे तथा मध्ये गृहान्ते च वदेद्भ्रुवम् ॥ ५१ ॥

अर्थ—लग्नके प्रथम द्रेष्काणमें प्रश्न होय तो गई वस्तु द्वारदेशमें है ऐसा जाने, इसी प्रकार दृग्द्वारे द्रेष्काणमें प्रश्न होनेसे घरके बीच रसोई स्थानके समीपमें और तीसरे द्रेष्काणमें प्रश्न होनेसे अपहृत वस्तु घरके पीछेके स्थानमें है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

दिग्वाच्याः कण्टकगैरसम्भवैर्वा वदेद्विलग्रशात् ।

मध्याच्चयुतैर्विलग्रनवांशकैर्योजनानि वदेत् ॥ ५२ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहधृतवचनानि ।

अर्थ-प्रश्नलग्नके केन्द्रस्थानमें स्थित ग्रहोंसे गई हुई वस्तु किस स्थानमें है उसको कहते हैं-यथा सूर्य केन्द्रमें होनेसे पूर्वदिशामें, शुक होनेसे आग्निकोणमें, मंगल होनेसे दक्षिणमें राहुहोनेसे नैऋतमें, शनि होनेसे पश्चिममें, चन्द्रमा होनेसे चायुकोणमें, बुध होनेसे उत्तरमें और केन्द्रमें बृहस्पतिके होनेसे अपहृत वस्तु ईशानकोणमें जानना चाहिये केन्द्रमें यदि अनेक ग्रह हों तब अधिक बलवान् ग्रहके दिशानुसार दिक्निर्णय करें । यदि केन्द्रमें ग्रह न होय तो दिग्धिपतिकी लग्नके अनुसार दिशाओंका निर्णय करें नवांशासे दूरता जानी जाती है, अर्थात् पांचवें नवांशके बाद जिसने नवांशा बीतें उतनेही योजनके अन्तरमें चुराई हुई वस्तु है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ प्रवासादिज्ञानप्रश्नः ।

दूरगतस्यागमनं सुतधनसहजस्थितैर्विलगात् ।

सौम्यैर्नष्टप्राप्तिं लब्ध्वा गमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-अब प्रवासादि विषयमें प्रश्न कहते हैं-यदि प्रश्नलग्नके पांचवें, दूसरे और तीसरे स्थानमें ग्रह स्थित होंय तो परदेशसे मनुष्य आता है ऐसा जान, उक्त स्थानोंमें शुभ ग्रह होनेसे नष्टवस्तु प्राप्त होती है, और यदि बृहस्पति तथा शुक प्रश्नलग्नके पांचवें, दूसरे वा तीसरे स्थानमें स्थित होय तो परदेशसे मनुष्य शीघ्र आता है ॥ ५३ ॥

यामित्रेऽप्यथवा पष्टे ग्रहः केन्द्रे बृहस्पतिः ।

प्रापितागमनं विद्यात्त्रिकोणे ज्ञे सितेऽपि वा ॥ ५४ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नके सातवें वा छठे स्थानमें यदि ग्रह होंय और बृहस्पति यदि लग्नमें वा लग्नके चौथे सातवें अथवा दशवें स्थानमें स्थित होय तो परदेशी मनुष्यका आना होता है, प्रश्नलग्नके नववें और पांचवें स्थानमें बुध और शुकके होनेसेभी परदेशी मनुष्यका आना जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

ग्रहः सर्वोत्तमबली लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः ।

मासैस्तत्तुल्यसंख्यातैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-प्रश्नलग्नसे जिस २ स्थानमें अत्यन्त बलवान् ग्रह होंय उसीके समान . महीनोंमें लौटकर आना कहना चाहिये ॥ ५५ ॥

चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेतद्विनिर्दिशेत् ।

द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं तद्विरात्मके ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो चरराशिके नवांशमें स्थित हो उसमें उसी अनुसार समय कहिये, स्थिरराशिके नवांशमें स्थित होनेसे राशिसंख्यासे द्विगुण कहना और द्विःस्वभाव राशिके नवांशमें हो तो राशिसंख्यासे त्रिगुण समय कहना ॥ ५६ ॥

यातुर्विलग्नयामिन्नभवनाधिपतिर्यदा ।

करोति वक्रमावृत्तेः कालं तं भ्रुवतेऽपरे ॥ ५७ ॥

अर्थ—और आचार्य कहते हैं कि, लग्नसे सातवें स्थानका स्वामी वकी होकर पीछेकी राशिपर लौट आवे तो उसी राशिसंख्याके अनुसार समय करता है ऐसा जानना ॥ ५७ ॥

अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः ।

प्रवासी सुखमायाति सौम्यैर्लाभसमन्वितः ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नके आठवें स्थानमें चन्द्रमाके होनेसे और केन्द्रस्थानमें पाप ग्रहोंके न होनेसे परदशस मनुष्य सुखपूर्वक आता है, और केन्द्रमें शुभ ग्रहोंके होनेसे आनेवाला मनुष्य परदेशसे लाभ करके आता है ॥ ५८ ॥

पृष्टोदये (क) पापनिरीक्षिते वा पापास्तृतीये रिपुकेन्द्रगे वा ।

सौम्यैरदृष्टा वधबन्धदाः स्युर्नष्टा विनष्टा मुपिताश्च वाच्याः ॥ ५९ ॥

अर्थ—पृष्टोदय अर्थात् वृष, मेष, धन, कर्क, मकर और मीनराशिके मध्यमें यदि कोई राशि प्रश्नलग्न होय और पापग्रह उसको देखते हों तो प्रवासिमनुष्यका वध, छेदन वा बन्धन होता है । प्रश्नलग्नके तीसरे स्थानमें पापग्रह होंय और उनको शुभग्रह न देखते हों तो आनेवाला मनुष्य देशान्तरमें जाता है प्रश्नलग्नके छठे स्थानमें पापग्रह हों और उनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि न होय तो प्रवासी मनुष्यकी मृत्यु होती है और प्रश्न लग्नके केन्द्रस्थानमें पापग्रह हों और उनको शुभग्रह न देखते हों तो प्रवासी मनुष्यके द्रव्यादिकी चोरी हो जाती है ॥ ५९ ॥

ग्रहो विलग्नद्यतमे ग्रहे तु तेनाहता द्वादशराशयश्च ।

तावद्दिनान्यागमनस्य विद्यान्निवर्तनं वक्रगतैर्ग्रहैश्च ॥ २६० ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नसे जिस २ राशिमें ग्रह होय उन अङ्गोंसे बारहकी संख्या पूरी

( क ) वृषमेषकर्कटमकरधनुर्मीनाः पृष्टोदयाः ।

करके जो अङ्क प्राप्त हों उन्ही अङ्कसंख्यक दिनमें प्रवासी मनुष्यका आगमन जानै और ग्रहोंके वक्ती होनेसे इन संख्यक दिनतक आनेकी निवृत्ति जानना चाहिये ॥ २६० ॥

**वृषसिंहवृश्चिकघटविंद्धि स्थानं गमागमौ न स्तः ।**

**न मृतं न चापि नष्टं न रोगशान्तिर्न चाभिभवम् ॥ ६१ ॥**

अर्थ—वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ लग्नमें प्रश्न होनेसे प्रश्नकर्ताको स्थानकी प्राप्ति होती है और इन लग्नोंमें गमनागमन, रोगीके रोगकी शान्ति, मरण और पराभव नहीं होता है, धान्यादिके विषयमें प्रश्न होनेसे धान्य सममावसे विकता है ॥ ६१ ॥

**तद्विपरीतं चरैर्द्विशरीरैर्मिश्रितं भवति ।**

**लग्नेन्द्रोर्वक्तव्यं शुभदृष्ट्या शोभनमतोऽन्यच्च ॥ ६२ ॥**

इति ज्योतिस्तत्त्वधृतवचनानि ।

अर्थ—चरराशि अर्थात् मेष, कक, तुला और मकरराशि प्रश्नलग्न होनेसे पूर्वोक्त स्थानादि प्राप्तिके विपरीत फल होता है अर्थात् स्थानादिप्राप्ति नहीं होती है, गमनागमन होता है, रोगीकी मृत्यु होती है, धान्यादि नष्ट होता है और रोगकी शान्ति तथा पराभव होता है । द्रव्यात्मक राशि प्रश्नलग्न होनेसे मिश्रफल होता है अर्थात् पूर्वोद्धमें प्रश्न होनेसे स्थिर राशिकी समान और परार्द्धमें प्रश्न होनेसे चरराशिकी समान फल होता है, परन्तु प्रश्नलग्न और चन्द्रमापर यदि शुभग्रहोंकी दृष्टि होय तो शुभफल होता है और पापग्रहोंकी दृष्टि होनेसे अशुभ फल हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथांशकादिना हतद्रव्यादीनां ज्ञानम् ।

**अंशकाज्ज्ञापते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः ।**

**राशिभ्यः कालदिग्देशावयोजातिस्तु लग्नपात् ॥ ६३ ॥**

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब नवांशाविसे अपहृत द्रव्यादि कहते हैं—प्रश्न लग्नके नवांशासे कहा जाता है, इसी प्रकार द्रेष्काणसे तस्करका विचार, राशिसे काल, दिग् और देश निर्णय और लग्नके मालिकसे चोरकी आयु और जाति जानी जाती है ॥ ६३ ॥

अथ पुत्रजन्मादिप्रश्नः ।

विषमस्थितेऽर्कतनये सुतस्य जन्मान्यथाङ्गनायास्तु ।  
लभ्या वरस्य नारी समस्थितेऽन्यथा वामम् ॥ ६४ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार पुत्रके जन्मादि विषयमें प्रश्न कहते हैं—यदि प्रश्न लग्नके तीसरे, पाँचवें, सातवें नववें और ग्यारहवें स्थानमें शनैश्वर होय तो पुत्र होता है, इन सब स्थानोंके अतिरिक्त शनि होनेसे कन्या होती है और प्रश्नलग्नसे सम राशिमें शनैश्वरके दानसे कन्या होती है, विषमराशिमें शनैश्वरके होनेसे विपरीत अर्थात् पुत्र होता है ॥ ६४ ॥

पुंवर्गे लग्नगते पुंग्रहदृष्टे बलान्विते पुरुषः ।

युग्मे स्त्रीग्रहदृष्टे स्त्रीबुधयुक्ते तु गर्भयुता ॥ ६५ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—ज्योतिःसारसंग्रहमें कहा है कि, पुंवर्गराशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धन वा कुम्भ यदि प्रश्नलग्न होय और पुरुषग्रह उसको देखते हों तो पुत्र होता है समराशि यदि प्रश्नलग्न होय और स्त्रीसंज्ञक ग्रह उसको देखते हों तो कन्या होती है और प्रश्नलग्नमें बुधके होनेसे प्रसव नहीं हुआ है ( गर्भवती है ) इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

अथ विवाहज्ञानप्रश्नः ।

गुरुरविसौम्यैर्दृष्टस्त्रिसुतमदनायारिगः शशी विलग्रात् ।

भवति तु विवाहकर्ता त्रिकोणकेन्द्रेषु वा सौम्याः ॥ ६६ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब विवाहविषयमें प्रश्न ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार कहते हैं—यदि चन्द्रमा प्रश्नलग्नके तीसरे पाँचवें, सातवें, ग्यारहवें वा छठे स्थानमें होय और उसपर सूर्य और बुधकी दृष्टि होय तो विवाह हो जाता है, शुभग्रहगण प्रश्नलग्नके नववें पाँचवें वा केन्द्रस्थानमें होनेसे भी विवाह हो जाता है ॥ ६६ ॥

अथ प्रश्ने बालादिचिन्ताकथनम् ।

कुमारिकां बालशशी बुधश्च वृद्धां शनिः सूर्यगुरू प्रसूताम् ।

स्त्री कर्कशांभौमसितौ विधत्ते एवंवयः स्यात्पुरुषेषु चैवम् ॥ ६७ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार प्रश्ने बालकादिकी चिन्ता कहते

हैं यदि प्रश्नलग्नमें बाल चन्द्रमा ( १ ) होय उसको दृष्टि होय तो प्रश्न कर्ताके मनमें कन्याकी चिन्ता है और प्रश्नलग्नमें बुध होय वा बुध प्रश्नलग्नको देखता होय तौभी कन्याकी चिन्ता जानी, इसी प्रकार युवाचन्द्रमा ( २ ) प्रश्नलग्नमें होय वा प्रश्नलग्नको देखता होय तो युवतीकी चिन्ता करता है, वृद्धचन्द्रमा ( ३ ) और शनैश्चर प्रश्नलग्नमें हो वा प्रश्नलग्नको देखते हों तो वृद्धाकी, सूर्य और बृहस्पति प्रश्नलग्नमें होय वा उसको देखतेहों तो प्रसवयुक्ताकी, मंगल और शुक्र प्रश्नलग्नमें हों वा उसको देखते हों तो कर्कशा ( अति तरुणी ) की प्रश्नकर्ताके मनमें चिन्ता है ऐसा जानना चाहिये । उक्त प्रकारसे शरीरकी आयुभी जानी जाती है । और स्त्रीपुरुषका ज्ञानभी इसी प्रकारसे जाना जाता है ॥६७॥

अथ मग्ने आत्मसमादिचिन्ताकथनम् ।

आत्मसमो लग्नगतैर्भ्राता सहजस्थितैः सुतः सुतगैः ।

माता वा भगनी वा चतुर्थगैः शत्रुगैः शत्रुः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अब प्रश्नलग्नसे आत्मादिकी चिन्ता कहते हैं—बलवान् ग्रह यदि प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने मनमें अपने शरीरके तुल्य कुछ चिन्ता करता है । इसी प्रकार प्रश्नलग्नके तीसरे स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे भ्रातृचिन्ता, चौथे स्थानमें होनेसे माता और भगनीकी, पांचवें स्थानमें होनेसे पुत्रकी चिन्ता और प्रश्नलग्नके छठे स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें शत्रुकी चिन्ता है इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

भार्या सप्तमसंस्थेनैवमे धर्माश्रितो गुरुदंशमे ।

स्वांशपतिमित्रशत्रुस्तथैव वाच्यो बलयुते तेषु ॥ ६९ ॥

अर्थ—प्रश्नलग्नके सातवें स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें स्त्रीकी चिन्ता जाननी चाहिये, इसी प्रकार नववें स्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे धर्मयुक्त पुरुषकी चिन्ता और प्रश्नलग्नके दशमस्थानमें बलवान् ग्रहके होनेसे प्रश्नकर्ताके मनमें गुरुकी चिन्ता जाननी चाहिये । और यदि अपने नवांशका स्वामी लग्नका मालिक होकर प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने धनकी चिन्ता करताहै । अपने नवांशके मालिकका मित्र यदि प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ता अपने मित्रकी और नवांशके मालिकका शत्रु प्रश्नलग्नमें होय तो प्रश्नकर्ताके मनमें शत्रुकी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ ६९ ॥

( १ ) शुरुपक्षकी प्रतिपदासे दशमीतक बालचन्द्रमा होता है ।

( २ ) शुरुपक्षकी दशमीसे कृष्णपक्षकी पञ्चमीतक चन्द्रमा युवा होता है ।

( ३ ) कृष्णपक्षीसे अमावस्यातक चन्द्रमा वृद्ध होता है ।

चरलग्ने चरभागे मध्याह्ने प्रवासचिन्ता स्यात् ।

भ्रष्टः सप्तमभवनात्पुनर्निविष्टो यदा तु नो वक्त्री ॥ २७० ॥

एतानि ज्योतिःसारसंग्रहधृतवचनानि ।

अर्थ—चरलग्ने वा चरराशिके नवांशमें अथवा लग्नके पञ्चमांश व्यतीत होनेसे यदि प्रश्न होय तो प्रवासकी चिन्ता जाननी चाहिये, प्रश्नलग्नके सातवीं राशिमें यदि ग्रह चलित होय तो प्रवासी मनुष्यके प्रवास निवृत्तिकी चिन्ता जाननी चाहिये, प्रश्नलग्नके सातवीं राशिमें स्थित ग्रह वक्त्री हों वा न हों तो उसमेंभी उक्त प्रकारका फल जानना चाहिये ॥ २७० ॥

अथ वर्षासमये वृष्टिज्ञानम् ।

चन्द्रार्कयोः सप्तमगौ सितार्का  
सुखेऽष्टमे वापि तथा विलग्नात् ।

द्वितीयदुश्चिक्क्यगतौ तथा वा  
वर्षासु वृष्टिं प्रवदेद्विलग्नात् ॥ ७१ ॥

इति ज्योतिःसारसंग्रहे ।

अर्थ—अब ज्योतिःसारसंग्रहके वचनानुसार वृष्टिविषयमें प्रश्न करते हैं—चन्द्रमा और सूर्यके सातवें स्थानमें शुक्र और शनैश्वरके होनेसे वृष्टि होती है, और प्रश्नलग्नके चौथे और आठवें स्थानमें वा दूसरे और तीसरे स्थानमें उक्त दोनों ग्रहोंके होनेसेभी वृष्टि होती है ॥ ७१ ॥

अथ मरणे त्रिपुष्करदोषः ।

भग्नपादे तु नक्षत्रे भौमार्कज्ञानिवासरे ।

भद्रातिथिसमायोगे त्रिपुष्कर उदाहृतः ॥ ७२ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—अब मरणमें त्रिपुष्करदोष ज्योतिषतत्त्वके वचनानुसार कहते हैं—भग्नपाद अर्थात् कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र यदि मंगल, रवि वा शनिवारमें होय और भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी वा द्वादशी तिथि उत्तमें होय तो त्रिपुष्कर दोष होता है ॥ ७२ ॥

त्रिगुणं स्यात्त्रिभिर्योगे द्वाभ्यां द्विगुणमेव च ।

एकेनापि भवेदेको गुणस्तत्र त्रिपुष्करे ॥ ७३ ॥

इति ज्योतिस्तत्त्वे ।

अर्थ—ज्योतिषतत्त्वमें लिखा है कि, वार तिथि और नक्षत्रके योगसे त्रिगुण



दोष होता है, इसी प्रकार दोका योग होनेसे द्विगुण दोष और एकके होनेसे एक गुण दोष होता है ॥ ७३ ॥

ग्रन्थान्तरञ्च ।

पुनर्वसूत्तरापाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी ।

पूर्वभाद्रं विशाखा च पडेते वै त्रिपुष्कराः ॥ ७४ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-वराहसंहितामें कहा है कि, पुनर्वसु, उत्तरापाढा, कृत्तिका उत्तराफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा और विशाखा नक्षत्र त्रिपुष्करसंज्ञक हैं ॥ ७४ ॥

द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी तिथिरेव च ।

शनिर्भौमो रविश्चैव पडेते वै त्रिपुष्कराः ॥ ७५ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि, शनि, मंगल और रविवार इन छहोंकी त्रिपुष्करसंज्ञा है ॥ ७५ ॥

अथ फलम् ।

एवं त्रिपुष्करे दोषे हानिरेव न संशयः ।

पुत्राश्च भ्रातरः पत्न्यः पितरो मातरस्तथा ।

पितृव्याश्च भगिन्यश्च म्रियन्ते तत्प्रभावतः ॥ ७६ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-अब वराहसंहिताके बचनानुसार त्रिपुष्करदोषका फल कहते हैं-पूर्वोक्त त्रिपुष्कर दोषमें निःसन्देह हानि होती है यथा-पुत्र, भ्राता, पत्नी, पिता, माता, पितृव्य और भगनी प्रभृतिकी त्रिपुष्करदोषमें मृत्यु होती है ॥ ७६ ॥

माता भ्राता स्वसा चैव ज्ञातयश्च सर्पिडजाः ।

सर्वाभावेरिष्टिदोषैर्वास्तुवृक्षो न जिवति ॥ ७७ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-माता, भ्राता, भगिनी और सर्पिण्ड जातिकक जिसके नहीं है उस मनुष्यके पुष्करयोगमें मरनेसे इस दोषमें वास्तुवृक्षतक नहीं जीसक्ता है ॥ ७७ ॥

पक्षेऽथवा त्रिपक्षे वा पण्मासे वत्सरेऽपिवा ।

अवश्यं मरणं तस्य नास्ति गण्डो निरामिपः ॥ ७८ ॥

इति वराहसंहितायाम् ।

अर्थ-वराहसंहितामें कहा है कि, त्रिपुष्करदोषमें पक्षके मध्यमें, तीन पक्षमें,

छः महीनेमें अथवा संवत्सरके मध्यमें पुत्रादिकी अवश्यही मृत्यु होती है त्रिपुष्करदोष कभी व्यर्थ नहीं होता है ॥ ७८ ॥

अन्यत्र ।

पुनर्वसूत्तरापाठाकृतिकोत्तरफाल्गुनी ।

पूर्वभाद्रं विशाखा च रविभौमशनेश्वराः ॥ ७९ ॥

द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी तिथिरेव च ।

एतेषामेव योगे तु भवतीति त्रिपुष्करः ॥ २८० ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब ग्रन्थान्तरसे त्रिपुष्करयोग कहते हैं—पुनर्वसु, उत्तरापादा, कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा और विशाखानक्षत्रके अन्यतम नक्षत्र यदि रवि, मंगल शनिवारके अन्यतम वारमें हों और द्वितीया सप्तमी वा द्वादशी तिथि होय तो त्रिपुष्करयोग होता है ॥ ७९ ॥ २८० ॥

तत्फलम् ।

वारे सस्यसुतौ हन्ति तिथौ गोधनमेव च ।

नक्षत्रे गोत्रहानिः स्याद्वास्तु (+) वृक्षो न जीवति ॥ ८१ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—ग्रन्थान्तरकी रीतिसे त्रिपुष्करयोगका फल कहते हैं—त्रिपुष्करमें मरनेसे वारदोषमें सस्य ( धान्य ) और सुतकी हानि होती है, इसी प्रकार तिथिदोषमें गौका नाश और नक्षत्रदोषमें गोत्रके मनुष्योंकी मृत्यु होती है । त्रिपुष्करदोषमें वास्तुके वृक्षतकका नाश होजाता है ॥ ८१ ॥

अथ त्रिपुष्करप्रतिप्रसवकथनम् ।

अष्टादशन्तु संस्थाप्य तिथिवारसमन्वितम् ।

पुनर्देयाः सप्तदश त्रिभिरेतत्पुनर्हरेत् ॥ ८२ ॥

एकेन वसति स्वर्गं द्वाभ्यां पातालमेव च ।

शून्ये मर्त्ये विजानीयात्तत्रातीवाशुभं भवेत् ॥ ८३ ॥

इति ग्रन्थान्तरे ।

अर्थ—अब त्रिपुष्कर दोषके प्रतिप्रसव ग्रन्थान्तरकी रीतिसे कहते हैं—एक

स्थानमें अठारह अङ्क स्थापन करके मृत्युसमयकी तिथि और वारके अङ्क उसमें मिलावै, फिर उसमें सत्रह अङ्क दूसरीवार मिलाकर तीनसे भाग करै भाग करनेसे जो शेष बचै उनसे त्रिपुष्करदोषकी स्थिति निर्णय करनी चाहिये । एकके बचनेसे त्रिपुष्करदोषको स्वर्गमें जानना चाहिये, इसी प्रकार द्वाक बचनेसे पातालमें और भागके शेषमें शून्य बचनेसे त्रिपुष्कर दोषको पृथिवीमें जानना चाहिये । पृथिवीमें त्रिपुष्कर दोषके होनेसे अत्यन्त अमङ्गल होताहै ॥८२॥८३॥

अथ त्रिपुष्करदोषशान्तिः ।

तस्मात्पाप्रशान्त्यर्थं होमं ( १ ) कुर्याद्विचक्षणः ।

तत्रायुतं तदर्द्धं वा सहस्रं वा शतन्तथा ॥ ८४ ॥

होमं दानं तथा कृत्वा मुक्तो भवति नान्यथा ॥ २८५ ॥

इति बराहसहितायाम् ।

अर्थ-अथ बराहसंहिताके बचनानुसार त्रिपुष्करदोषके शान्तिके अर्थ होमादि करना चाहिये, होममें सामिध शक्त्यनुसार दशसहस्र, पाँचसहस्र, सहस्र वा इसमेंभी अशक्त होनेसे सौकाभी विधान है । बराहसंहितोक्त होम और दानादिके करनेसे त्रिपुष्कर दोषकी शान्ति होती है ॥ ८४ ॥ २८५ ॥

इति श्रीवशाखरेलिनिवासिकान्यकुब्जकुलभूषणभारद्वाजगोत्रोत्पन्नेन  
त्रिपाठ्युपनामकेन पण्डितर्षाकेलालात्मजेन श्याममुन्दरशर्मणा  
सम्पादिते भाषाटीकया विभूषिते ज्योतिस्तत्त्वसुधार्षणे  
नौकाघटनादित्रिपुष्करदोषशान्तिर्नाम

सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

वेदवाणनिधीन्द्रवदे माघे मासि सिते दले ।

पञ्चम्यां गुरुवारं च ग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात् ॥ १ ॥

( १ ) "कङ्कतोदुम्बराश्वत्थैः प्रत्येकाष्टोत्तर शतम् । एकमेकेन कर्त्तव्यं द्वाभ्यां द्विगु-  
णमेव च । त्रिगुणं त्रिगुणं तत्र पुष्करं परिकीर्तितम् " इति बराहसहितायाम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,  
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर"स्टीम् प्रेस,  
कल्याण.-मुम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,  
"श्रीवेंकटेश्वर"स्टीम् प्रेस.  
खेतवाडा-बम्बई.

श्रीगणेशाय नमः ।

“ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ” स्टीम्-यंत्रालयकी परमोपयोगी  
स्वच्छ शुद्ध और सस्ती पुस्तकें ।



यह विषय आज ४० । ५० वर्षसे अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस यंत्रालयकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यंत्रालयमें प्रत्येक विषयकी पुस्तकें जैसे-वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, छन्द, ज्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोप, वैद्यक, साम्प्रदायिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके ग्रंथ प्रत्येक अवसरपर विक्रीके अर्थ तैयार रहते हैं. शुद्धता स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिल्दकी बंधाई देशभरमें विख्यात है. इतनी उत्तमता होनेपरभी दाम बहुतही सस्ते रखे गये है और कमीशनभी पृथक् काट दिया जाता है. ऐसी सरलता पाठकोंको मिलना असंभव है । संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकतानुसार पुस्तकोंके मंगानेमें झुटि न करना चाहिये. ऐसा उत्तम, सस्ता और शुद्ध माल दूसरी जगह मिलना असम्भव है. ' सूचीपत्र ' मंगा देखो ।

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

“ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ” छापाखाना,  
कल्याण-मुंबई.